तत्त्व ग्राहक पुरुषोने परम हितकारी ग्रंथ

श्री सुमतिप्रकाश ग्रंथ.

(श्री देवचंद्रजी कृत अतित चोवीशी तथा विहरमान जिन स्तवन वीशी विगेरेनो संग्रह)

॥ दोहरा ॥

भव्य भ्रमर भर तृप्तिकर, जिन मुख पद्म पराग ॥
मोक्षार्थी जिन वचनमां, धारो परम सुराग ॥ १ ॥
स्याद्वाद शुचि बोधिनो, नमुं सरस्वति माय ॥
गौतम गणधर लब्धिनो, हो भविने सुपसाय ॥ २ ॥

छपावी प्रसिद्ध कर्त्ता

"दाहोद" निवासी शा. संतोकचंद माणेकचंद.

आवृत्ति १ ली प्रत १०००

मुंबाई मांडवी डुंगरी स्ट्रीट नंबर ३५०-५१ मां आवेला "स्वधर्मनिष्ठ" नामक मुद्रणयंत्र मध्ये द्विवेदी गिरिजाशंकर काशीरामे मुद्रित कर्यो

संवत १९६७ सन् १९११

किंमत रु०-१-४-०

अमारा तरफथी छपाई बहार पडेला अमूल्य उपयोगी ग्रंथो

तत्त्व ग्राहक पुरुषोने निचे प्रमाणे किंमते मलशे. पोस्टेज जुदुं पडशे.

श्री सुमतिविलास	रु० १–०–०
श्री सुमतिव्यवहार	रु० १–०–०
श्री नवपद पूजादि संग्रह	रु० ०–८–०
श्री सुमतिप्रकाश	रु० १–४–०
श्री छ कर्मग्रंथ मूल	रु० ०–२–०

प्रथम अमे सदरहु ग्रंथो पैकीना ग्रंथो भेट तरिके आपता हता पण हवेथी उपर प्रमाणे किंमते वी–पी–थी मोकलवामां आवशे श्री सुमतिप्रकाश ग्रंथ शिवाय बाकीना ग्रंथो हमारी पासे जुज रह्या छे केटलाक लोको मंगावी उपयोग करता नथी माटे जुज किंमत राखवामां आवी छे; वली ए नाणुं आवे ते ज्ञान वृद्धिमांज वापरवानुं छे

ग्रंथो मलवानु ठेकाणु

गांधी कोदरलाल छगनलाल

मु० वेजलपुर. स्टेसन खरसालीआ जील्ला पचमहाल.

शा० संतोकचंद माणेकचंद मु० दाहोद. जील्ला पंचमहाल.

अनुक्रमणिका.



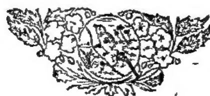
प्रस्तावना.

॥ दोहरो ॥

अंतातीत गुणे भर्यां, सिद्ध अनंतानंत ॥
निर्भय सहज स्वतंत्र शिव, नमो परम जयवंत ॥ १ ॥

आ जगतत्रयमा वसता सर्वे प्राणीउ जो के दुःख कलेश विगेरेथी मुक्त थवा तथा सुख रूप परम निवृत्तिमां निरंतर रहेवा चाहे छे, पण अनादि अज्ञानरूप तिमिर रोग वडे ज्ञानरूप दिव्य दृष्टि आछादित होवाथी परम निवृत्तिरूप अनुपम सुखने यथार्थ उलखी शकता नथी, तथा जेम धतुरानो रस पीधेलो पुरुष सुवर्णथी अन्य वस्तुउने पण सुवर्णरूप जुए छे, तेम पौद्गलीक भोगो जे वास्तवीक रीते उपाधिना प्रतिकार छे तेने सुख मानी तल्लीन थई परम निवृत्तिरूप पोताना शुद्धात्म स्वरूपना ज्ञान तथा अनुभवथी दूरवर्ती रहे छे, अने निरंतर मोहमद्यवडे बेभान थई मोह राजाना संसाररूप महान्भयंकर जेलखानामां वसता पोतानी शक्तिनो दुरुपयोग करता दुःसह दुःख समूहने पोताना कोमल शिरपर धरेछे

छता तेमाथी अवसर पामी केटलाक प्राणीउ सचेत थई पोताना आत्म स्वरूपनु भान पामी पोतानी आत्मीय शक्तिउनो दुरुपयोग करवो त्यागी, पोताना सम्यक् प्राक्रमने स्फुरायमान करी, मोह राजाना जेलखानाने तोडी तेमांथी बहार नीकली रत्नत्रयरूप मोक्षमार्गमां विचरता पोतानी अखूट अव्याबाध अनुपम शाश्वत अने निरुपचरित सुख प्रद पोतानी स्वतत्र आत्मिय भूमिमां विराजमान थई अनत समाधिमय आत्म राज्यना सादिअनंत भागे भोक्ता बनेछे



प्रस्तावना.

॥ दोहरो ॥

अंतातीत गुणे भर्या, सिद्ध अनंतानंत ॥
निर्भय सहज स्वतंत्र शिव, नमो परम जयवंत ॥ १ ॥

आ जगतत्रयमा वसता सर्वे प्राणीउं जो के दुःख कलेश विगेरेथी मुक्त थवा तथा सुख रुप परम निवृत्तिमां निरतर रहेवा चाहे छे, पण अनादि अज्ञानरूप तिमिर रोग वडे ज्ञानरूप दिव्य दृष्टि आछादित होवाथी परम निवृत्तिरूप अनुपम सुखने यथार्थ उलखी शकता नथी, तथा जेम धतुरानो रस पीधेलो पुरुष सुवर्णथी अन्य वस्तुउंने पण सुवर्णरूप जुए छे, तेम पौद्गलीक भोगो जे वास्तवीक रीते उपाधिना प्रतिकार छे तेने सुख मानी तल्लीन थई परम निवृत्तिरूप पोताना शुद्धात्म स्वरूपना ज्ञान तथा अनुभवथी दूरवर्ती रहे छे, अने निरंतर मोहमद्यवडे बेभान थई मोह राजाना संसाररूप महान्भयंकर जेलखानामां वसता पोतानी शक्तिनो दुरुपयोग करता दुःसह दुःख समूहने पोताना कोमल शिरपर धरेछे.

छता तेमाथी अवसर पामी केटलाक प्राणीउं सचेत थई पोताना आत्म स्वरूपनु भान पामी पोतानी आत्मीय शक्तिउंनो दुरुपयोग करवो त्यागी, पोताना सम्यक् प्राक्रमने स्फुरायमान करी, मोह राजाना जेलखानाने तोडी तेमांथी बहार नीकली रत्नत्रयरूप मोक्षमार्गमां विचरता पोतानी अखूट अव्याबाध अनुपम शाश्वत अने निरुपचरित सुख प्रद पोतानी स्वतत्र, आत्मिय भूमिमां विराजमान थई अनत समाधिमय आत्म राज्यना सादिअनंत भागे भोक्ता बनेछे

एवा अत्यंत धीर वीर उदार करुणानिधान जगत् जीवोना खेदज्ञ सर्वज्ञ वीतराग अने निष्कलंक तीर्थंकर गणधरादि परोपकार करवामा अग्रेसर अनेक महान् पुरुषो पोते जे मार्गे परमनिवृत्ति स्थितिने पाम्या छे ते मार्ग यथार्थ रीते परम करुणावडे संसाररुप जेलखानामा वसता दुःखमय प्राणीओने उपदेशे छे सर्वत्र अने सर्वदा एके अवाजे पुकारे छे के " हे भव्य पुरुषो ! जो तमे आ दुःखमय ससाररुप जेलखानामांथी मुक्त थई परमनिवृत्तिमय मोक्षपद पामवा ईच्छता हो तो स्वपर द्रव्य भाव प्राणनी हिंसानो जेमा सर्वथा अभाव छे एहवा सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान सम्यक्चारित्ररुप धर्ममां निरतर प्रवृत्तमान थाओ "

ससारी जीवोने ते रत्नत्रयरुप पवित्रधर्म प्राप्त थवाना हेतुए ते परोपकारी महान् पुरुषो स्फटिकमणि समान पोताना अत्यत निर्मल हृदय कोषमांथी नय निक्षेप पक्ष प्रमाणयुक्त स्याद्वादमय अत्यत मधुर अने विशद वचनरत्नोनुं अस्खलित प्रवाहरुपे आ भूमन्डलमां प्रदान करे छे, परंतु आ भरतक्षेत्रमा आजे आपना हीण भाग्ये तेवा परोपकारी (तीर्थंकर गणधर पूर्वधर) पुरुषोनु दर्शन पण दूर्लभ थई पड्युं छे, पण ते पूज्यपुरुषोनी आपणाउपर केटली करुणा द्रष्टि के तेओना समागमना अभावे पण आपणे तेओनी दिव्य वाणीनो कईक आस्वाद पामी शकीए एवा उदार हेतु वडे महान गंभीर अनेक सूत्रोनी रचना करी पोतानी करुणारस वडे भरपूर चद्रमा समान उज्वल कीर्तीने आ भूमडलमा सर्वत्र फेलावी अमर करी छे, वली ते गंभीर सूत्रोमा अल्प मतिवडे प्रवेश थवो दुष्कर जाणी श्री जिनभद्र गणी क्षमा श्रमण, श्रीसिद्धसेन दिवाकर श्रीमदुमास्वाती वाचक, श्री हरिभद्रसूरि, श्री अभयदेवसूरि, श्री यशोविजयजी, श्री देवचद्रजी विगेरे महान् बुद्धिवान करुण पुरुषोए ते सूत्रोनो गूढ भावार्थ आपणी बुद्धि गोचर थई शके एवा उदार हेतुए पोताना अमूल्य ज्ञान तथा

कालने वापरी ते सूत्रोनो पवित्र जक्तिरूप अनेक सुगम्य अने परम हितकारी सरल ग्रंथो रची आपणा उपर असीम उपकार कर्यो, जेनी पंरपराए आ पंचमकालमां माहरा जेवा अल्प मतीने रत्नत्रयना हेतु रूप अमूल्य वचन रत्नोनो लाज मले वे

अरे! जो ते महोपकारी आचार्यो द्वारा ते परम कल्याणकारी तीर्थंकर जगवंतनी दिव्यवाणी आपणा सुधी आवी पहोंची न होत तो आ ड़ुपम कालमा आ जवसमुद्रमां बूडताने कोण शरण थात? आपणी शी दशा थात? परंतु कोई आपना जाग्योदये आज सुधी पण ते दिव्य वाणीनो अमृत सार आपणने प्रदान करनारा महान् पुरुषो वर्त्या जाय वे.

जेना प्रत्युपकार सुधी आपणुं सामर्थ्य पहोंची शकतु नथी, एम प्रतित थता मात्र परम आदर सहित ते पुरुषोनी पवित्र वाणीनो सेवा करवी, तेनी जक्ति अर्थे तेउनी पवित्र वाणीना प्रसार थवामां सेवा बजाववी ते माहरी शक्तिने लायक समजी माहरा केटलाक धर्मस्नेही सन्मित्रोनी सम्मतिथी नीचे प्रमाणे ग्रंथो प्रसिद्ध करवा अजिलाषी थाउ वु

(१) " महोपाध्याय श्री देवचंद्रजी कृत अतित चोवीश जिन स्तवनावली " (श्रीमान् मनसुखलालजी हरिलालजी विरचित बालावबोध सहित) जेमा ड्रव्यानुयोग, न्याय अने संयम विगेरे मुक्तिनां साधनो स्फुट रीते सिद्ध करी दर्शाव्यां वे

(२) " श्रुतधरने सोल उपमा " (ढाल बद्ध) उत्तराध्ययन सूत्र उपरथी (श्रीमान् मनसुखलालजी विरचित.)

(३) " विषय परिहार " इंद्रिय पराजय शतकनो सार ग्रहण करी विषयो तरफ वैराग्य जाव उपजे एवी वैराग्य जनक ढालोनो संग्रह (श्रीमान्—मनसुखलालजी विरचित.)

(४) " ममत्व परिहार " जे वडे परद्रव्य परक्षेत्र परकाल परभाव उपरथी ममत्व बुद्धि उठी स्वद्रव्यादिकमा स्थिति थाय एवो पद्यात्मक ग्रंथ (श्रीमान्–मनसुखलालजी विरचित)

(५) " सूत्र तत्त्वार्थ सार विचार " (ढाल बद्ध) जेमा तत्त्वार्थ सूत्रना आधारे जीवादि तत्त्वोनु स्वरुप विस्तार पूर्वक वर्णवेल छे, चारे अनुयोगनो जेमा संक्षेपे समावेश छे, (श्रीमान्–मनसुखलालजी विरचित)

(६) श्रीमान् देवचंद्रजी कृत विहरमान विंशति जिन स्तवनावली बालावबोध सहित

ए प्रमाणे छ ग्रंथोनो संग्रह करी ते संग्रहित ग्रंथने " श्री सुमति प्रकाश " एवा सार्थ नाम वडे प्रसिद्ध करु छु

बालक जेम जलमा पडेला चंद्रबिंब ग्रहण करवानो मनोरथ करे छे, तेम में पण श्री जिन वचननी भक्तिना उतरावी माहरी शक्तिनो विचार नहि करता श्रीमान् महोपाध्याय श्री–देवचंद्रजी विरचित विहरमान वीश जिन स्तवनावलीनो अर्थ करवानो अति साहसिक अने दुष्कर माहरो मनोर्थ श्री गुरुनी कृपा दृष्टिथी संपूर्ण थयो छे

स्वपर हित विचारी केटलाक प्राचीन आचार्योना वचनाधारे माहरी मति प्रमाणे ते अर्थ लख्यो छे, छता तेमा जे कई माहरी अल्प मतिने लीधे सूत्र विरुद्ध लखायु होय ते हे सुज्ञ निद्धरो ! मने अल्प मति जाणी क्षमा करशो, अने सूत्र प्रमाणे जे वचन होय ते हंसनी पेठे गुणग्राही बुद्धि वडे ग्रहण करशो ए आप प्रति माहरी नम्र विनती छे

आ " श्री सुमति प्रकाश "छपावी प्रसिद्ध करवामा माहरा धर्म स्नेही वेजलपुर निवासी गांधी कोदरलाल छगनलाले फारमो तपासवा लखवा विचारवा विगेरेनी पुरेपुरी मदद करेल छे, ते माटे तेमनो हु अतिशय आभारी छु अने इच्छु छु के तेमना हृदय कमलमां एवी प्रवचन भक्तिरुप लक्ष्मी निरंतर वास करो

आ ग्रंथ छपाववामां थता खर्च पैकी गोधरा निवासी " बाई-रुखमाणी हरिलाल वरजलाल "ना स्मर्णार्थे तेमना तरफथी तेमना भत्रीजा " शा. मगनलाल मनसुखलाले " रु. २५० अंके रुपीआ वसें पचाश ज्ञानना बहु मानार्थे भेट तरीके अर्पण करेला छे; तथा बीजा जे पुरुषोए पोताना तन मन धन विगेरेथी मदद करेली छे ते सर्वेने कोटीशः धन्यवाद छे.

आ ग्रंथ छपाववामां जे कंई द्रष्टि दोषवडे भूलो रहेली, तेमांनी जेटली द्रष्टि गोचर थई तेटली माटे शुद्धि पत्र आपेलुं छे, छतां जे कांई भूलो रही होय तेमाटे सुधारी वांचवा हुं भलामण करुं छुं.

(संपूर्ण)





विद्वद्वर श्रीमान मनसुख लालजी

॥ ॐ श्री सर्वज्ञायनमः ॥

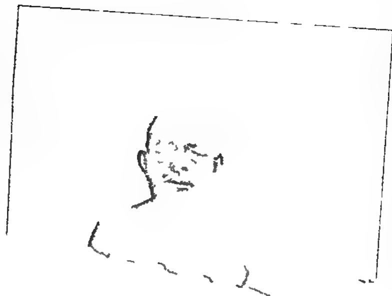
श्रीमान् मनसुखलालजीनु संक्षिप्त जीवन चरित्र

॥ दोहरो ॥

॥ सिद्ध समाधि मयी सदा, पूरण परमानंद ॥
शिवदायक वंदुं सदा, केवल ज्ञानानंद ॥ १ ॥

" श्रीमान् मनसुखलालजी " नो जन्म पंचमहाल जील्लाना (गोधरा–गौचरा) गोधरा गाममा सवत १८९९ ना माहा वदी १४ नी सवारमां पोताना दादा दोशी अवईदास दयालजीना घरमां थयो हतो, अने तेमना पिताश्री हरिलाल वरजलाल नामे ग्रहस्थ हता अने तेमनी मातुश्री जयन्ती नामे [illegible] हतां [illegible] वखतमां आ [illegible] ख्यात हतो अने [illegible] जील्लो अमुक वर- [illegible] फक्त पोतानी मील- [illegible] री रैयतने जोइती [illegible] गी निशालोमां वेपार [illegible] हिसाब तथा वेपार [illegible] णी पुरी थई तेवुं लोको [illegible] ाथे वेपार अथवा नोकरी [illegible]

[illegible] ारा नशीबे एक उपाश्रय हतो [illegible] नसाधु श्री रामविजयजीना ना- [illegible] तथा [illegible] व्यवहारीक [illegible] जैन वालकोने [illegible] साधुश्री राम-



॥ ॐ श्री सर्वज्ञायनमः ॥

श्रीमान् मनसुखलालजीनु संक्षिप्त जीवन चरित्र

॥ दोहरो ॥

॥ सिद्ध समाधि मयी सदा, पूरण परमानंद ॥
शिवदायक वंडुं सदा, केवल ज्ञानानंद ॥ १ ॥

"श्रीमान् मनसुखलालजी" नो जन्म पंचमहाल जील्लाना (गोधरा–गौचरा) गोधरा गाममा सवत १८९९ ना माहा वदी १४ नी सवारमां पोताना दादा दोशी अचईदास दयालजीना घरमां थयो हतो, अने तेमना पिताश्री हरिलाल वरजलाल नामे ग्रहस्थ हता अने तेमनी मातुश्री जयती नामे हतां अने ते बंने धर्मीष्ट हतां. ते वखतमां आ पंचमहाल जील्लो पावागढ पंचमहालना नामथी प्रख्यात हतो अने श्रीमंत श्री सिंधीआ सरकारना तावामां हतो. आ जील्लो अमुक वरसने माटे पट्टे आपवामां आवतो हतो. पटादारो फक्त पोतानी मीलकतमां वधारो करी जाणता हता अने तेथी करी रैयतने जोइती केलवणी विगेरे आपवामां आवती न हती. खानगी निशालोमां वेपार संबंधी ज्ञान आपवामां आवतुं हत, साधारण हिसाव तथा वेपार संबधी नामुं तथा व्याज आवडे एटले केलवणी पुरी थई तेवुं लोको समजता; त्यार बाद नाना छोकराउने माथे वेपार अथवा नोकरी करवानुं आवी पडतु.

गोधरामां ते वखते जैन बंधुउना सारा नशीबे एक उपाश्रय हतो अने ते ते वखतना तेमां रहेनार जैनसाधु श्री रामविजयजीना नामथी प्रख्यात हतो तेउश्री संस्कृत तथा मागधी तथा व्यवहारीक विद्यामां पूर्ण जाण हता आ साधश्रीना हाथ नीचे जैन बालकोने गुजराती भाषामां केलवणी आपवामां आवती हती. साधुश्री राम-

विजयजी पोताना बाल शिष्योने गुजराती चापानी साथे जैन पुस्तकोनो पण अभ्यास करावता हता अने तेऊ पोताना शिष्य श्री विनय विजयजीनी मददथी ते वखतना जैन बालकोने सारुं ज्ञान आपता हता

श्रीमान् मनसुखलालजीने ते वखते तेमना दादा दोशी. अंबईदास दयालजी जे ते वखते जैन पचना एक आगेवान महस्थ हता, ते हमेशा व्याख्यान सांभळवा उपाश्रयमां साथे लई जता हता घणी नानी उमरमा पण तेऊश्री एकाग्र चित्ते व्याख्यान सांभळता हता, अने नानपणनी केटलोक गदापणानी रीतो बीजा बालकोमा जोवामा आवे छे तेवी तेऊश्रीमा जोवामां आवती न हती बाल वयमा जेवी रीते नाना छोकराऊ रमतमां पडे छे तेवी रीते तेऊश्री रमतमां पडता नहि. जन्मनी वखतथी जे जे तेऊश्रीना सबधमा थतु ते ते तेऊश्रीना लक्षमा रहेतु, अने ते वखतथीज जेम पूर्वनु ज्ञान होय तेम साधु असाधुनी परीक्षा तेऊश्रीना मनमा हती खावा पीवानी बालकोने जेवी लालसा होय छे तेवी तेमने न हती रात्री भोजनमा, वासी खावामा, तथा कंदमूल खावामा दोष छे, ए आदि जे जे भारे दोषो तेमना सांभळवामा आव्या हता ते ते तेऊश्रीए नानपणथी त्याग कर्या हता एटले सूत्रमा कहेला घणा गुण ग्रहण करवा अने दोषो त्यागवा एवो तेऊश्रीनो स्वभाव हतो ज्ञान संपादन करे तेवी एटले आशरे वरस छनी उमरना थता तेऊश्रीने साधुश्रीए गुजराती केळवणी आपवा माडी, तेनी साथे जैनधर्मनो अभ्यास पण वखत जोइ शरु कराववामा आव्यो, साधुश्रीने लाग्यु के आ बालकने जैनधर्मनो अभ्यास कराववाथी एक जैनधर्मनु सारु बीज रोपाशे, वली ते साधुश्री बोलता के आ बालक मने तेम कोई पण ग्रथधारी साधुने नमशे वादशे नहीं पण फक्त साचो निग्रथ मलशे तेनेज नमशे वादशे, एवुं लोको समक्ष कहेता हता

आशरे वरस नवनी उमरमां तेउश्रीए जीव विचार, नव तत्व विगेरे साधारण प्रकरणोनो अभ्यास कर्यो हतो. ते वखते तेउश्री छ आवश्यक क्रिया पण विधि सहित अर्थ पूर्वक सारी रीते करता हता अने ते वखतथी तेउश्री साधु मात्रने साधुपणाना गुण देख्या विना नमता वादता नहि

तेर वरसनी उमर थई त्यारे तेउश्रीनुं लग्न शा. मोरारजी कसनजीनी बीजी छोकरी साथे थयु. रीवाज मुजब रात्रे पाननी बीडी तथा कसार खवडाववा आग्रह करवामां आव्यो पण तेउश्रीए ते वात कबूल राखी नहीं, तेम लग्नना दिवसे नातना रीवाज मुजब परणनार वरने माताए लई जई नमावे पूजावे छे, ते प्रमाणे करवा तेउश्रीने कह्यु पण तेउश्रीए ते प्रमाणे कर्युंज नहीं.

तेउश्रीए गुजरातीनो थोडो अभ्यास कर्या पछी श्री गोवाना आवेला एक मी फेवीक पासे अग्रेजी थर्ड रीडर सुधीनो अभ्यास कर्यो, आगल ते अभ्यास करवानी ईछा हती, तेमज जैन तत्त्व संबंधी सारीरीते अभ्यास करवानी ईछा पण हती पण घर संबंधी केटलाएक कारणोने लीधे ते बंने ईछा पूर्ण थई शकी नहि ते वखते तेउश्री कोइ स्त्री साथे बोलवा विगेरेनो कोई पण संबंध मन वचन कायाथी राखता नहीं ए विगेरे केटलाएक नियमो पच्चखाण लीधा शिवाय पण सत्तर वरसनी उमरसुधी तेउश्रीए राख्या हता; एम हाल सुधी पच्चखाण लीधा विना पण व्रती सरखी वर्त्तणुक राख्या करे छे पच्चखाण लेवामां पच्चखाण भागवा संबंधी अथवा ते व्रतना अतिचार संबंधी तेउश्रीने घणो डर रहेतो हतो उपवासादि करवानी शक्ति तेउश्रीमां न हती तेथी बीश वरसनी उमर सुधीमां (६१) एकसठ उपवास तथा (७५) पंचाशी आंबील तथा (५) पांच एकासणां कर्यां हतां.

संवत १९१७ नी सालमा जीवविचार तथा नव तत्त्वादिकना विचारमा खद्‌द्रव्यना विषयमां वधारे खुलाशो करवानी ईच्छा थई के समकीत शु ? साचो गुरु कोण ? साचो धर्म शु ? तथा धर्मास्तिकायनो पधप्रजाय शु ? ए आदि निश्चय करवानो विशेषे लक्ष रह्यो अने तेते शकाउंना खुलासा माटे केटलाएक श्री पूज्यो तथा नामीचा जैन साधुउं तथा पन्निओने प्रश्न पुछ्या कर्या पण संतोषकारक जवाब देवावालो कोइ मल्यो नहीं तेथी तेउंश्रोए नाममात्र साधुउंनो समागम ने वस्तनथीज बध कर्यो हतो, पछी घणी जरुरना कारणे कोइ साधुनी साथे वात करीहशे पण विशेषे परिचय राख्यो न हतो विशेषे तत्त्वनी शोधमा पडवाथी प्रतिक्रमण, वाह्य व्यवहार व्रत क्रिया उपरथी ध्यान उठाव्यु अने सद्‌गुरुंने शोधवा उपर तथा समकित निर्मल करवा उपर पूर्ण ध्यान राख्यु तेथी करी जैनधर्मनां पुस्तको वांचवा तथा मनन करवा अभ्यास राख्यो, तेमाथी जोईतो सारो सरल मार्ग मल्यो पण गुरुगमनी जरुर वाकी रही अने तेथी कया साधु सरल मार्ग बतावी शके छे, तेनी शोधमा केटलोएक वखत काढ्यो दुनियाना चालता नियम प्रमाणे दरेक माणस पोते वहारथी सारा देखाय तथा नजदिकना माणसो पोताना वखाण सारी रीते करे, तेम तेउं दररोज यत्न करे छे अने तेमा फतेहमद थाय तो तेउं एम समजे छे के आ नवनु सार्थक थयुं, आ क्रमने अनुसारे घणो खरो जैन साधु वर्ग पण चाल्यो जाय छे तेउं पोते पोताने मलेला वखतनो जोईए तेवो उपयोग करवाने वदले गछ तथा चेला चेलीउंनो खोटी खटपटमा पडे छे दुनियादारीमा रहेनार स्त्री पुरुषोने जेम फरजननी लालसा होय छे तेमज घणा खरा जैन साधुउंने पण चेला चेलीउंनो आकांक्षा होय तेम देखाय छे, तने लीधे तेउं ज्ञान मेलववानो मलेलो अवसर फोगट गुमावे छे

जैनधर्मनुं खरुं रहस्य जाण्या वगर घणा। खरा जैनवर्गना माणसो मत (श्वेतांबर, दीगंबर) विगेरेना फंदमां पडी आडे मार्गे चडे छे अने ते आडे मार्गे चडाववामां मुख्यत्वे करीने बंने पक्षना जैन पंडितो अने साधुवर्ग सहायकारी थई पडे छे एहवुं श्रीमान् मनसुखलालजीने सिद्ध थयु. आम करवामा जैनवर्ग तो शुं पण घणा खरा अन्य धर्मना लोको पण पोताने मलेली तक फोगट गुमावे छे आ प्रमाणे तपास करतां स्थूल दोष वगरना अने सूत्र प्रमाणे शुद्ध बोलनार सद्गुरु मल्या नहीं तेथी तेउश्रीनी साधु उपरनी जे आस्ता हती ते बिलकुल उठी

जैन शास्त्रो वाचवा विचारवामां काल व्यतीत थवानी साथे ज्ञाननो पण वधारो थयो अने पूर्वना ज्ञान उदयथी ज्ञानचक्षु खीलवा मांड्या अने मनमां निश्चय कर्यो के हवे केवलज्ञानी मल्या विना माहरा प्रश्नोनी समाधानी थाय तेवो संभव नथी, एम विचारी आ काममांथी ध्यान उठावी आजीवीका करवा तरफ लक्ष खेंची वेपार अगर नोकरी करवानो विचार राख्यो.

संवत् १९१९ नी शालमां पंचमहालना मुखी गोधरा निवासी शेठ इसमालजी गुलामहुसेनजी साहेरवालानो त्यां नोकरीमां जोडाया आशरे पाच वरस पछी पोतानी पासे नाणु एकठुं करवुं एवा अभिप्रायथी संवत् १९२४ नी सालमां कलकत्ते जवानी उमेद धारी व्यापार अर्थे निकल्या, ते श्री वडोदरा गामे जई काइंक व्यापार कर्यो तेवामां तिहा दाहोदना महमदअली करीने मोटा वेपारी मल्या, ते प्रथमना संबंधवाला हता तेमणे तेउश्रीने पूछ्यु के तमो शा उमेद उपर निकल्या छो ? तो तेउश्रीए कह्यु के माहरे कलकत्ते नोकरी करवा सारु जवुं छे त्यारे ते महमदअलीए कह्युं के ते करतां हमारी पासे आवो तो नोकरी अने वेपार बंने तमोने सारु फायदाकारी थई पडशे. एम सांभली तेउश्री कलकत्ते जवानो विचार वध

राखी ते महमदअली साथे दाहोद गया, त्यां नोकरी तथा वेपार बनेमां सारी पेदाश थवा लागी तेउश्रीने वेपार अर्थे दक्षिण, कोंकण, माळवा, सोरठ, काठियावाड विगेरेमां जवानो ज्यारे ज्यारे प्रसंग आवतो त्यारे त्यारे जैनधर्मना साधुउनी तपास करता पण साचा तत्त्वने बतावनार गुरु कोई मळ्या नहि वळी सर्वे अन्य धर्म शास्त्रीउना तत्त्वोनुं पण शोधन कर्या कर्युं, "बायबल, ऊबूर, तोराइन, किलामेसरीफ" विगेरे शास्त्रो सारी रीते तपास्यां, वळी वेदनु निगम शास्त्र, गीता, पंचिकरण आदि ते लोकोनी गुरुगम सहित तेमनी साथे रही सारी रीते तपास्यां, तथा वेदनी श्रुतिउ विगेरेनो घणो तपास कर्यो, वळी घणा वेद वादि, सांख्य, वैशेषिक, जैमीनीय, मीमांसक, योग शास्त्रवाळा तथा मुसलमानो तथा खीस्तीउ साथे वादविवाद चर्चा कर्या करी पण कोई साथे कयरो टंटो कर्यो नथी तेम तेउनु मन पण दुखव्युं नथी पण सलाह तरीके वात चर्चा करता के जेथी ते लोको फरीथी वात करवा खुशी रहेता पोताने जैननो अथवा डीगंबर श्वेतांबर विगेरे कोईपण मतनो हठवाद के पक्षपात नहोतो पण न्यायनी वात जे पोताने निश्चय थाय तेज ध्यानमां राखता

संवत् १९२५ नी सालमां पंचमहाल जिल्लाना कालोल तालुकाना गुसर गामनी नजदीक एक गुफानी अंदर जैनमुनि "श्री हुकुममुनिजी" महाराज आवी पधार्या, अने त्यां तेउश्री आशरे दश बार दिवस ध्यान करवा रह्या ते बाबतनी वेजलपुर निवासी जैन गृहस्थोने खबर पडवाथी ते गृहस्थो तथा लग्न प्रसंगे वेजलपुर आवेला गोधराना जैन गृहस्थो मळी हर्ष सहित वधते आनंदे घणा आग्रह पूर्वक महाराजश्रीने तेडवा माटे गया महाराजश्री तेउना घणा आग्रहथी वेजलपुर पधार्या, सघना आग्रहे केटलाक दिवस वेजलपुरमां रह्या त्यां

ते साधुश्री पोताना स्वाभाविक गुणे धर्मोपदेश करता अनेक भव्य जनोने प्रतिबोधता ज्ञान दर्शन चारित्र वडे कर्म क्षय करता अने ग्रंथो पण रचता हता, घणा अन्य दर्शनीयो पण महाराजश्रीनी देशना सांभलवा आवता हता अने पोताना प्रश्नोनो खुलासो पामी घणा खुशी थता, तेमज महाराजश्रीना घणां वखाण करता हता. गोधरा तथा वेजलपुरना गृहस्थोने ते महाराजश्रीनी देशना अति चमत्कारीक अने आश्चर्य उपजावनारी लागी.

श्रीमान् मनसुखलालजीना मित्र गोधरा निवासी शा मनसुखलाल देवचंदे श्रीमान् मनसुखलालजीने पत्रद्वाराए सूचव्यु के श्री हुकममुनीजी नामना एक साधु हालमां वेजलपुर आवी पधारेला छे अने ते अध्यात्म ज्ञानी तथा ध्यान अभ्यासी छे तेथी ते महाराजश्री तमारा प्रश्नोनो उत्तर आपशे, एहवुं अमारा धारवामां छे माटे तमो आ पत्रथी तुरत अतरे आवजो ने कागल तेउश्रीने मलतां तेना उत्तरमा तेउश्रीए पोताना मित्र मनसुखलाल उपर लख्युं के तमे पोते समजी लेजो, मने तो एहवा घणाए मल्या छे, केमके घणा साधुउने मलवाथी प्रथमथीज तेउश्रीनुं चित्त नाउमेद थयेलुं हतुं, इहा लगी के हमणां जैन तत्वनो साचो उत्तर आपी शके एहवो कोई जणातो नथी तो फोगट श्रम शा वास्ते करवो ? त्यार पछी बे चार पत्रना जुवाब सवाल तेउश्रीने पोताना मित्र साथे थया, आखर तेउश्रीना मित्र मनसुखलाले लख्युं के तमारा मूख्य बे चार प्रश्नो लखजो एटले अमो महाराजश्रीने पूछीने तेनो उत्तर तमोने लखीशुं पछी तमारु मन माने तो आवजो. त्यारे तेउश्रीए पत्रद्वाराए प्रश्न लखी मोकल्यां ते नीचे प्रमाणे—

१ गुणठाणां एटले शुं ?

२ धर्म शु ? अने ते रुपी के अरूपी ? अने ते आत्माथी भिन्न के अभिन्न ए आदि ?

३ धर्मास्तिकायनो खधपर्याय ते शु ?

ऊपर प्रमाणेना प्रश्नो लखी तेओश्रीए तेमना मित्र मनसुखलाल ऊपर मोकल्या एटले ते पत्र लेई ते मनसखलाल महाराजश्री पासे गया अने ऊपरना प्रश्नो पूछ्या तेनो महाराजश्रीए उत्तर आप्यो के कोई रात दिन बे वरस सुधी माहरी पासे बेसे पण ए प्रश्नोनो पुरो उत्तर लखी शकाशे नहि माटे तेमने समजवु हशे तो आवशे छेवट महाराजश्रीए ते कागल पोताना हाथमा लई वाची जोयो तो तेमां लख्युं हतुं के आ प्रश्नोनो पुरो उत्तर तमे समजी लेजो अने सक्षेपे मने लखी जणावजो, आ बीना वाची महाराजश्रीए सक्षेपे उत्तर लखाव्यो ते कागल तेओश्रीने पहोंचताज मनमां आव्युं के अहिंआं कांई सारो खुलासावध उत्तर मले तेम जणाय छे, मुनि पण ज्ञानी अने समजापी होय एम जणाय छे, माटे नोकरी विगेरेनु गमे तेम थाय पण जाते जई महाराजश्रीने मलवु जोईए एम विचारी शेठनी रजा लई तुरतज श्री दाहोदथी नीकली बीजे दिवसे सांजना चार वागतां गोधरे आव्या, अने तुरतज तेवातनी खबर पडता गोधरावाला तेमना मित्र मनसुखलाल विगेरे दश बार श्रावकोए तेमनी पासे आवी कह्युं के अत्यारेज वेजलपुर जवु जोईए केमके ए मुनि कोईना प्रतिबधमा नथी, घडीमां विहार करे तो आपणो उमेद अटके, एम कहेवाथी तेज दिवसे गोधराथी नीकली कहेवा आवेला श्रावको साथे रातना आठ नव वागताना सुमारमा वेजलपुर जई पहोच्या अने वांछित प्रश्नो महाराजश्रीने पुछता केवलज्ञानीनी पेठे उत्तर मल्यो ते साचली तुरतज वह भय, ताप, अने क्लेश उतरी गयो, अने मनमा आव्यु के शु आ केवली छे ? ए विगेरे मनमां विचारो आव्या अने सर्वे प्रश्नोना उत्तरथी नि शक समाधि थई कोमो मण भार जेम माथा ऊपरथी उतरी जाय तेथी जे हलवा पणुं लागे अने अंगमां

जेम वीर्य फुरे तेम ज्ञानानंद वीर्यनी स्फुरणा थई. एज तरण तारण, एज साचा गुरु, एज माहरा धर्माचार्य छे, ए समान में कोईने आजसुधी गुरु जाण्या नथी एम तेउश्रीना मनमां निर्धार कर्यो. त्यारबाद गोधरावाला श्रावको आग्रह करी महाराजश्रीने गोधरे तेडी लाव्या, त्यां महाराजश्री पासे आठ दिवस सुधी श्रीमान् मनसुखलालजी रह्या. वली विविध प्रकारे रहस्यो सहित प्रश्नो पुछयां अने महाराजश्रीनो शुद्ध नयनी देशना सांजल्या करी. आखर दाहोद जवा सारु रजा मागी अने कह्युं के आजथी माहरे तमारुं शरण छे अने मने शो हुकम फरमावो छो ? त्यारे महाराजश्रीए कह्युं के " एज एथीज सर्वे कार्य तथा समाधानी थशे" एम रजा मलवाथी उपाश्रयथी बहार निकल्या पछी पांच सात डगलां घर तरफ वलता मनमां आव्यु के "एज एटले पोतानी निर्मल ज्ञायकतामां उपयोग देवो तथा तिहांज थिरता वधारवी अने परद्रव्यना समस्ते अगर राग द्वेषादिके उपयोग चूकवो नहि अने एज वदले पुद्गल विषयादिनो राग तजी उपयोग थिरता अर्थे शुद्ध नये सिद्धांत अभ्यास कर्या करवो" ए विचार आवता अभेदध्यान नहि पण अभेदध्यान जेवो एक मोटो परम उल्लास आव्यो के ज्ञायकतामां उपयोग थिर राखवो एमां धर्म संबंधीना असंख्याता योगो समाय छे क्षांत्यादि दश धर्म, पंच महाव्रत, पंचाचार, खट् आवश्यक, पुजा, शील, तप, संयमादि सर्वे धर्मानुष्ठानोनो जाव एमां समाय छे माटे हवे ज्ञान दर्शन चरण वीर्यादि आत्म स्वजाव पर्याय जे कर्म योगे मलिन थया छे ते सर्वे कर्मयोग वर्जी स्वजाव योगे थिर रमण करवाथी सर्वे शुद्धात्म स्वजाव निर्मल थशे एम आनंदनो उजरो वारवार हृदयमां आव्या कर्यो. रस्ते चालतां आरुं अवलुं ध्यान गयुं नहि, घेर जई घरना कामथी परवारी दाहोद जता सुधी आनंद शिवाय बीजु कांइ मनमां आव्युं नहि त्यारबाद पण आनंदनो उछालो मटी धीरे धीरे आनंद

जमाव थयो, हरेक कार्य करतां वारवार स्वभाव रमण थावतुं रह्यु अने थानदमां वृद्धि थती रही.

सवत १९३९ मां नोकरी छोडी दाहोदमांज पोताना नामनी पेढी खुल्ली करी आडत विगेरे रोजगार शरु कर्यो, पोते अने बे वाणोतर मली पेढीनु काम चलाव्यु ते वखतमा श्री देवचंदजी महाराज कृत "नयचक्रसार, आगमसार" विगेरे ग्रंथो वाचवामां आव्या, वली ते शिवाय कुंदकुंदमुनि कृत "समयसार, पचास्तिकाय, प्रवचनसार, अष्ट पाहुड आदि" तथा श्री यशोविजयजी कृत "द्रव्य गुण पर्यायनो रास, अध्यात्मसार" विगेरे ग्रंथो वांचवा अने उपदेश देवानो शरु थयो, कोई कोई वखत गोधरा, वेजलपुर आवता त्यारे पण उपदेश करता रहेता.

आशरे सवत १९३९ नी सालमां दाहोदनी दुकाननुं काम वडा पुत्र मगनलालने सोंपी व्यापार माटे रतलाम गया, तिहा बे त्रण वरस सुधी काई उपदेशनी वात करी नहि पण आखरे स्वभाव छुप्यो रह्यो नहि एटले केटलाक तिहाना निवासी तेरापंथी गृहस्थो जेठमलजी, हीराचंदजी, ताराचंदजी, निहालचंदजी, विगेरेने शुद्ध तत्त्वनी श्रद्धा प्रतित करावी वली तेरापंथीओना साधु दीपचंदजी, डालचंदजी विगेरे तथा साधवी नूराजी विगेरे केटलाकने तथा केटलाक मंदिर मार्गीओने शुद्ध तत्त्वनी प्रतित करावी तेओश्री पोतानु ध्यान निर्मल राखवा गाम बहार हवा खावा जता आवतां अने पाछली राते अगर जे जे वखते पोताना मनने अवकाश मलतो ते ते वखते उपयोगनी थिरता शुद्धता वधारता रहेता दाहोदनी दुकाननु काम तेओश्रीना वडा पुत्र मगनलालजीए चलावता हता तेथी तेओश्रीने ते तरफनी फिकर बिलकुल हती नहि

सवत १९५० ना आसो मासमा तेओश्री दाहोद आवी रह्या अने त्या पण तत्त्वनो अभ्यास तथा उपदेश चालु राख्यो अने ग्रंथो रचवा

उपर ध्यान लाग्युं पण तुटा ग्रंथो शिवाय अंग उपांगो पुरेपुरां पोताना सांभळवामां आव्यां नहोतां ते कके कके मंगावी वांचवा मांड्यां एटलामां दरदथी आंख वगरुवा मांडी त्यारे तेओ घणी मुश्केलीथी पोते वांचता हता पण ग्रथो पहेला वांच्या निरधार्यां हता ते उपरथी उपदेशनी रुचि यथा करती हती पण अंगो उपांगो पुरेपुरां सांभळवा न मळ्यां तेथी घणी नाउमेदी थई

संवत १९५३ नी सालमां तेओश्रीना मनमां आव्युं के में सूत्रो सांभळ्या नथी अने मात्र ग्रथो सांभळी वांचीने उपदेश करु छुं ते सारी वात नथी अने भगवती सूत्र विगेरे कोई कोई सूत्रो बाळपणामा सांभळ्या पण हता पण तेनी पुरेपुरी स्मृति विना अने नयज्ञाने निश्चय कर्यां विना बाळजीवने उपदेश देवो तेमां उत्सूत्रनो मोटो भय छे केमके उत्सूत्र बोलवा जेवुं कोई मोटुं पाप नथी. एम विचारी उपदेश करवो बंध राख्यो अने शुद्धात्म तत्त्वनुं ध्यान करवु एज पोताने माटे श्रेय छे एम जाणी ध्यान करवानो तथा मात्र पोतेज वांची समजवानो विचार राख्यो. पण दिने दिने आंखे कांईक दरद वधवाथी आखनी शक्ति मंद पडी गई त्यारे सगा अने मित्रो पासे जाचना करी के कोई मने सूत्रो वांची संभळावे तो तेनो हुं मोटो आभारी थईश वखते कोईए कांई वांची आप्यु पण अखंडधारा श्रुतज्ञाननो अगर श्रुतश्रवणनो स्वाद मळ्यो नहि. तेथी चित्तमां घणो खेद थयो, पुर्वकृत पापनो घणो पश्चाताप आव्यां कर्यो, मने दीन अनाथने सूत्र वांची आपनार कोण मळे? एम चित्तमा तेओश्रीने घणो खेद उपज्यो स्कूलोमां भणेला छोकराओने पण पगार आपी आपीने केटलीक वखत केटलाक मास सुधी वंचाव्युं पण कांई प्रसन्न पड्युं नहि. एम आशरे संवत १९५५ नी साल सुधी सूत्रो सांभळवा न मळ्यां ते बाबतनुं मनमा घणु दुःख वेद्यु आखर एज

संवत १९९५ ना चईतर मासमां पूर्व महत्त्व पुण्य योगे " कस्तुरां " नामनी एक बाई तेऊश्रीने त्यां आवी तेने तेऊश्रीए पुछ्युं के हे बाई! तुं शा कामे आवी छे? ते बाईए कह्युं के माहरे दवा विगेरे कांई पण संसारी काम नथी पण हु सहजे आवी छुं, मने कांई तत्वनी वात समजावो. त्यारे ते बाईने तेऊश्रीए कह्यु के में उपदेश देवो बंध कर्यो छे तेवामां तेणीनी बेहेन " हमीरा " ते पण तिहां आवी, ते बंने बेहेनोए उपदेश माटे घणी खेंच करी अने तेऊ बोली के हमो खरा मध्याने खरा ताप वखते उपदेश सांजलवा आवीशु के जेथी तमोए उपदेश बंध करेला छे अने अमने समजावो तेनी कोईने खबर पडशे नहि के जेथी तेऊने माठुं पण लागशे नहि ए प्रमाणे तेऊनी वधारे खेंचथी शुद्ध तत्त्व अने शुद्ध उपयोगनो उपदेश शरुआतथीज करवा मांड्यो. ते बाईऊ तीर्थंकरोनां शुद्ध स्याद्वाद वचनो अमृत पेठे गट गट पीवा लागी अने पोताना आत्म अगे प्रगमाववा लागी पछीथी उपदेश बध करवानी वात करी पण ते बाईऊए ते वात कबुल करी नहि अने तेऊ बोली के हमे तो दररोज तत्त्वोपदेश सांजलवा आवीशुं त्यारे तेऊश्रीए कह्यु के हे बाइऊ! "माहरे सत्रो सांजलवानो उमेद छे पण उपदेश देवानो उमेद नथी " त्यारे ते बे बेहेनोमाथी कस्तुरा बोलीके तमारे जे जे सूत्रो सांजलवानो अजिप्राय होय ते ते सूत्रो हु तमोने वाची सत्र लावीश अने तेनो अर्थ समजाववा पण तमो रोकाशो नहि, पण तमो सूत्रो सांजल्या पहेला अने पछो जे जे तत्त्व सबधी हुं तमोने प्रश्नो पूछु ते ते मने करुणा करी समजावता रहेजो पछी ते कस्तुरा बाइए असड पाच पांच छ छ कलाक सुधी खेद आलस उघ नाउ-मेदी विना आशरे पदर सूत्र तेऊश्रीने चार पाच वरस सुधीमा वाची सजलाव्या वली पाच सात सूत्र वेजलपुर निवासी "गांधी-दलसुखनाथजीए" पण तेऊश्रीने वांची संजलाव्या ए शिवाय बाकीना सूत्रो कोइ कोइ वाची आपनार मल्या ते सूत्रोनी विगत–

" आचारांगादि अगीआर अंग, जीवाजिगम, पन्नवणा, उववाइ सूत्र, रायपश्रेणी, महानिशीथ, नंदीसूत्र, अनुयोगद्वार, उत्तराध्ययन, दश पयन्ना मांहेथी आशरे ठ सात पयन्ना, दश वैकालिक "

कुल ढवीश सूत्र तथा ए शिवाय पण केटलांक सूत्रोमांनो कोई कोई भाग तेउश्रीए सांजल्यो. ए शिवाय " सुमतितर्क, पंचवस्तु, खट्दर्शन समुच्चय, विशेषावश्यक, स्याद्वादमंजरी, स्याद्वाद रत्नाकरावतारिका, तत्त्वार्थ टिका " ए आदि केटलाक ग्रंथो महान् पंडितोना करेला तेउश्रीने कोइ कोइ वांची संजलावनार मल्या, पण मूख्य " कस्तुरां वाईनी " तेउश्रीने पूर्ण मदद हती तेथी तेउश्री ते कस्तुरां वाईनो महान् उपकार मानता रह्या अने ते वाईने शुद्धात्म जावमां दृढ करवाने माटे विशेषे करी उपदेश देता रह्या. तेउश्री उपदेश देवाने उत्सूत्रना जयथी करता हता अने घणी वखत उपदेश देवो बंध करता हता पण ते वाईना आग्रहथी आजसुधी उपदेश देवो चालु वर्त्ते ठे

ते वाई पाठलथी पोताना पती "शा. सतोकचंदजी माणेकचदजी" ने पण तेउश्री पासे लावी अने ते पण उपदेश सांजली थोडाज वखतमा शुद्ध तत्त्वना जाण थया. जेणे "श्रीदेवचंद्रजी कृत वीशी" नो बालाव-बोध कर्यो ठे, ते वांचवाथी पंडितोने तेमनी पंडिताई तथा ज्ञान के रुचि समजाशे. ए शिवाय ते "संतोकचंदजीए" केटलाक अध्यात्मिक पत्रो विगेरे रच्या ठे. ते सर्वे आ नीचे लखेला ग्रंथोमां सामेल ठे. ते जोएथी तेमनी विद्वता प्रगट जणाइ आवशे. आज पण श्रीमान् मनसुखलालजीनी शैलीमा सर्वेथी संतोकचदजी घणी चढती पायरीमां ठे अने तेउश्री एमनी सलाहथीज वर्त्या करे ठे ए संतोकचंदजी तथा चंपालाल, जेचंद, गीरधरलाल, ठोटालाल मनसुखलाल विगेरे दाहोदमा केटलाक जाईउ तथा केटलीक वेहेनो केई दरजो तत्त्वज्ञान पामेलाठे

अने एमने लीधे दाहोदना दीगवरी लोकोमा पण केटलो सुधारो थतो आव्यो ते शिवाय केटलाक ब्राह्मणो अने मुसलमानो विगेरे पण तेउश्रीना बोधने चहाय छे

संवत १९५७ नी शालथी तेउश्रीए ग्रंथ रचवा शरु कर्या तेमा तेउश्रीने मूरय पणे समचात्र उपर ध्यान वधारे होवाथी "सामायक सिध्युपाय" नामनो पहेलो ग्रथ कर्यो, त्यार बाद शुद्ध उपयोग उपर ध्यान तेथी "शुद्धोपयोग प्रवेशिका" नामे ग्रथ कर्यो, वली कस्तुरा बाइनो महत् उपकार पोताना मनमा हतो अने ते बाई गाम "राणापुर" गएला हता, त्यां तेमनो बोध द्रढ रहेवा माटे "आत्मबोध पत्रिका" नामे ग्रंथ रची ते बाई उपर लखी मोकलाव्यो तथा अनुभवमा प्रेम हतो तेथी "अनुभव प्रवेशिका" नामनो ग्रथ रच्यो, तथा द्रव्यानुयोग विना जे अध्यात्मनो उपदेश ते कूटस्थ एकांत जेवो थइ जाय छे माटे "सम्यक् न्याय सुधारस" नामे द्रव्यानुयोगनो ग्रथ रच्यो. एम ए पाच ग्रंथो सवत १९६२ सुधीमा पुरा कर्या ते सवत १९६३ नी सालमा "श्री सुमति विलास" नामना पुस्तकमा उपरना पाच ग्रथोनो समावेश करी दाहोदनिवासी "शा सतोकचदजी माणेकचदजी" विगेरेए छपावी प्रसिद्ध करेला छे

त्यार पछी शुद्ध व्यवहार सहित निश्चयमां ध्यान राखवा माटे "श्री सुमति व्यवहार" नामनो ग्रंथ तेउश्रीए सवत १९६३ नी साल सुधीमा तैयार कर्यो ते ग्रथ संवत १९६४नी सालमा दाहोदनिवासी शा सतोकचदजी माणेकचंदजी विगेरेए छपावी प्रसिद्ध कर्यो छे एमा उत्तराध्ययनना मोक्षमार्ग नामा अठावीशमा अध्ययनना सारनी ढालो, तथा सम्यक्पराक्रम नामना ओगणतीसमा अध्ययनना सारनी ढालो, तथा अनाथी मुनीनी सझ्झाय, वली श्री केशी स्वामी

तथा श्री गौतम स्वामीना प्रश्नोत्तरनी ढालो, तथा तेर क्रियानी सज्झायनी ढालो, तथा उत्तराध्ययन मांहेला कोई कोई विषयनी ढालो, तथा सद्बोध अष्टोत्तरी, तथा घहुंलीउं, तथा परचुरण स्तवनो, तथा पदो, सज्झायो, तथा रुषभादि चोवीश जिनोनो स्तवन चोवीशी अर्थ सहित, तथा चैत्यवदन चोवीशी अर्थ सहित, तथा चोवीश जिननी थोयो, तथा नवपदनी नव थोयो, तथा सुबोध प्रकाशक छंद के जेमां नव तत्त्वनुं स्वरुप तथा क्रोधादिक कषायोना दुर्गुणो तथा तेने जीतवाना उपायो दर्शाव्या छे ए आदि विषयो छे

त्यार वाद नवपद ध्यान अर्थे "नवपद पूजादि संग्रह" नामनो त्रीजो ग्रंथ तेउश्रीए संवत १९६५ नी साल सुधीमां तैयार कर्यो ते ग्रंथ "सतोकचंदजी" विगेरेए संवत १९६५ नी सालमां छपावी प्रसिद्ध कर्यो छे जेमां नवपद पूजा मूल तथा अर्थ सहित, तथा जिनवाणी छद बावनी, तथा परचुरण घहुलीउं, स्तवनो, पदो, तथा महोपाध्याय श्री देवचंद्रजी कृत प्रभंजनानी सज्झाय मूल, तथा अष्ट प्रवचन मातानी सज्झाय पोताना करेला अर्थ सहित, तथा साधुनी पच भावना पोताना करेला अर्थ सहित, तथा "संतोकचंदजी माणेकचंदजी" कृत चैत्यवंदनो, छंदो, पद विगेरे, तथा "बेह्नेन कस्तुरां कृत" छंद, स्तवन विगेरे तथा पूर्वाचार्य श्री विजयभद्र सूरिनो करेलो गौतम स्वामीनो रास—पोताना करेला अर्थ सहित ए आदि विषयो छे.

त्यारवाद द्रव्यानुयोगना विशेष जाणपणा माटे "श्रीसुमति प्रकाश" ए नामनो चोथो ग्रंथ तेउश्रीए संवत १९६६ नी साल सुधीमां तैयार कर्यो ते संवत १९६६ नी सालमां दाहोद निवासी "शा. सतोकचंदजी माणेकचंदजीए छपावी प्रसिद्ध कर्यो छे. जेमां महोपाध्याय श्री देवचंद्रजी कृत अतीत स्तवन चोवीशी पोताना करेला अर्थ सहित, तथा श्री देवचद्रजी कृत विहरमान स्तवन वीशी सतोकचंदजी माणेकचं-

दजीना करेला, अर्थ सहित, तथा श्रुतधरने सोल उपमानो ढालो, तथा विषय परिहारनो ढालो, तथा ममत परिहारनी ढालो, तथा सूत्र तत्त्वार्थ सार विगेरे विषय छे.

संवत १९५६ नी सालमा दुकाल पड्यो ते वखते दाहोदमां कुवा विगेरेमा पाणी खूटयु अने डोहोलु पाणी वापरमां लेवुं पडतु हतुं, तेवामा गोधरा गामे एक वोहोरानी मदगी मटाडवा सारु ते वोहोराए तेउंश्रीने तेडाव्या, तेथी तेउंश्रीने गोधरे जवु पड्युं अने केटलाक दिवस तिहा रहेवुं पड्यु, एटले तिहांना निवासी श्रावक लोको तत्त्वनो उप-देश सांभलवा आववा मांड्या अने गोधरे पाणी तथा दूध चोख्खु मलतु हतु तेथी तिहा तेउंश्रीए वधारे दिवस मुकाम राखवो निश्चय कर्यो भाईउं तथा बेहेनो मली आशरे त्रीश चालीश जण उपदेश सांभलवा आवता हता, तेमा " समरत अमीचद " नामे एक बाईने शुद्धात्म तत्त्व आराधवा बदले अने द्रव्य भावदया आदरवा चित्तमां चोट लागी—उपदेश लाग्यो त्रणमास रहीने त्यारबाद तेउंश्री दाहोद गया अने ते " समरत अमीचदे " एक बोजाने वात करवाथी गोधरा नजीकना वेजलपुर गाम निवासी पण केटलाक श्रावको उपदेश सांभ-लवाना वधारे रागी थया. केमके ते वेजलपुरना श्रावको पण गोधरे आवता त्यारे तेउंश्रीनो उपदेश सांभलवा प्रथमीज आवता हता तेमा गाधी कोदरलाल छगनलाल, तथा दलसुख नाथजी, तथा मणीलाल खेमचद विगेरे विशेष रुची वाला थया संवत १९५९ नी सालमां बाई-समरते वेजलपुर जई उपदेश फेलाव्यो तेथी केटलाक भाईउं तथा बेहेनो रुची वाला वध्या ते वेजलपुर वालानी रुचि अने आग्रहथी संवत १९६० ना अरसामां तेउंश्री पण आशरे एक मास रहेवु धारी श्री वेजलपुर गया त्यारे संतोकचदजी तथा कस्तुरा बाई तथा समरत विगेरे सर्वे साथेज हता घणा दिवस उपदेश चालवाथी वेजलपुरना

श्रावकोमां घणा जीवो रुचिवाला थया, त्यार पछी दरसाल थोडा थोडा दिन वेजलपुर तेउश्री आवता अने उपदेश आपता रह्या. एम संवत १९६५ नी साल सुधी बन्युं; पछीथी वृद्धावस्थाने लीधे तथा नावी आंखे उपदेश देतां वधारे दरद थवा लाग्यु तेथी संवत १९६६ नी सालमां तेउश्री वेजलपुर जई शक्या नहोता पण संवत १९६० नी सालथीज वेजलपुरमां शास्त्र वांचवा, सांजलवा, जणवा, विचारवानो अभ्यास दिने दिने वधतो रह्यो अने जणनारनो, जणावनारनो टाईम नियम सारी रीते बंधायो, तेथी शास्त्र अभ्यासनुं काम सारी रीते धमधोकार चाल्यु अने तत्त्वनी दृढ रुचि, प्रतित, वधवा लागी वेजलपुरना रुचिवंत श्रावको वार मासमा पांच सात वखत उपदेश सांजलवा तेउश्री पासे दाहोद जावरू आवड करता रह्या. तेउश्रीना करेला ग्रंथोनो जथ्थो अने अभ्यास वध्यो, तेम श्री देवचंद्रजी कृत, श्री यशोविजयजी कृत, श्री हरिभद्र सूरी कृत, श्री कुंदकुंदमुनि कृत, ए विगेरे महान् पंडितोना रचेला ग्रथो तथा पिसतालीश आगम मांहेला घणा सूत्रो मंगावी मगावी दाहोद, गोधरा, तथा वेजलपुर निवासी सर्वे संघ वांचता, तपासता, विचारता, अभ्यास वधारता रह्या गोधरामां "शा सामलदास गीरधरलाल" विगेरे केटलाक भाईउ तथा बेहेनो वधती रुचिवाळां थयां.

हालमा तेउश्रीनुं शरीर अशक्त रहेछे तेथी ग्रंथो रचवानुं काम बंध छे तेम उपदेश पण उछोज चालेछे कदापी शरीर सुधरी शक्ति सारी आवशे तो पाछुं पुर्व प्रमाणे कार्य बनतु रहेशे.

तेउश्रीना ग्रंथो वांचवाथी वांचनारने एहवो भास थाय छे के आ ग्रंथो जैनधर्मनां घणांज पुस्तको वाच्या पछी रचाया हशे. व्याकरण अने पिंगलनो अभ्यास कर्या वगर तेमज संस्कृत अने मागधी भाषाना ज्ञान वगर जैनधर्मनां पुस्तको वांचवामां घणीज अडचणो पडे छे तो

लखवा अने रचवामा आथी वधारे अडचणो पडे ए साधारण अक्कलनो माणस पण समजी शके तेम छे.

श्री मान् मनसुखलालजी पोते जे जे ग्रथो रची शक्या छे ते हालना अभ्यासथी नहीं पण पूर्वना ज्ञानना बलथी रची शक्या छे एम कहीए तो तेमा अतिशयोक्ति नथी तेओश्रीना बनावेला ग्रंथोनो साधारण माणस पण केटलेक दरजो अर्थ समजी शके तेम छे केमके जापा घणी सरल छे, पण जे वखते तेओश्री पोते पोताना अथवा तो पूर्वाचार्योना करेला ग्रथोनो अर्थ समजावे त्यारे घणी न्याय युक्तिथी समजावे छे तेथी सांजलनारने स्पष्ट रीते अर्थ समजाय छे, ज्ञान फेलेछे. अने जेम ज्ञान समुद्रनी लहेरो लेता होईए एम सांजलनारने लागेछे एमना कहेवामा सर्वे विद्याओमा आत्मविद्या एज परमोत्कृष्ट स्वतंत्र परमानद प्राप्तिनु कारण छे

केटलाक लोको एवुं धारेछे के एमनी पासे मत्रो अने मत्रोनी कला विशेष छे तेथी जे तेओश्री पासे जाय छे ते वश थई जाय छे अने तेओश्रीनी वातने काई नामजूर करी शकतो नथी, एम लोको बोले छे पण मत्र अथवा जत्र तेओश्री जाणता नथी अने करता पण नथी. माणसनुं मन ज्यारे दुनियादारीनी दरेक बाबतोमाथी स्वस्थ होयछे अने तेमने वर्त्तमान तथा जविष्यनी फिकर करवानु कारण ज्यारे होतु नथी तथा जूतकाल सबंधी पण कई कल्पना होती नथी, त्यारे तेओ पोताना चित्तने ज्ञान रुपी दोरीथी एकज सरल मार्गे दोरवी शकेछे, अने आथी करीने पोतानी नजरथी दूर शु बने छे ते तेओ जाणी कही शकेछे आ जाणवानी क्रियाने केटलाक लोको मत्र कहेछे श्रीमान् मनसुखलालजीमा आ बाबत दृढ होवाथी केटलाक लोको एम कहे छे के तेओश्रीने मत्र आवडे छे

जेम दूरना माणसना गुणो मनमा आवे छे तेम नजीकना माणसना गुणो मनमा आवता नथी दरेक माणस पूर्ण ज्ञानथी जरेलो नथी

अने जो ते प्रमाणे पूर्ण ज्ञाने चरेलो होय तो ते श्री केवलज्ञानीज छे एम जाणवुं दरेकमां ओछा वधता प्रमाणमां ज्ञान होय छे, जेम जेम वधारे ज्ञान होय छे तेम तेम ते वधारे ज्ञानवान कहेवाय छे वस्तुने जेम तोलवा अने मापवा माटे माप छे तेम ज्ञानने मापवा तोलवा माटे देखीतुं माप नथी पण ज्ञान तथा अज्ञान ए बंनेनुं प्रमाण करनार एकलु निर्मल ज्ञानज छे.

जे पोते पोताना आत्माने आ दुःखजल संसारथी तारवा चाहाय ते पोतेज निरपक्ष थई ज्ञानदृष्टिमां उंडो उतरी विचारशे तो तेहने खरो रस्तो हाथ लागशे अने जोलपण राखी हरेक अर्थीओना कह्या प्रमाणे दोरायां करशे तेने साचुं तत्त्व नजरे पडवानुं नथी.

आ उपरथी माहरो मतलब एहवो नथी के तेओश्रीना जेवो आ दुनियामां बीजो कोई नथी अथवा तो ज्ञान आपनार बीजो कोई मली शकशे नहि पण माहरा अनुभव उपरथी हुं जाहेर करुं छुं के मने सरल अने सारो मार्ग बतावनार एज उत्तममां उत्तम मल्या छे.

श्रीमान् मनसुखलालजी हालमां पंचमहाल जिल्लाना दोहद गामे एक जैनज्ञानीने जोईए तेवी रीते रहे छे, पोते संसारमां रह्या छतां संसारी नथी; तेओश्रीने बे पुत्रो छे पण ते बे पुत्रो उपर तेओश्री पोतानो आधार राखता नथी. तेओश्रीना पुत्रो तेमज तेमना भाई बेहेन विगेरे कोई तेओश्रीने मोक्ष मार्ग साधतां आडे आव्या नथी. तेओ बीजा जनसमूह उपर पण आधार राखता नथी बंने पुत्रो पैकी तेओश्रीना वडा पुत्र "मगनलाल" दोहदमां आडत अने सराफी दुकान चलावे छे अने तेओश्रीनी मददथी जैनधर्मनो अभ्यास पण करे छे तथा लघु पुत्र "महासुखलाल" बीएनी परिक्षामां पास थई पचमहालमां रेवन्यु खातामां जोडायला छे.

घणा पुरुषो हरेक ग्रंथ एकवार वाचीने एम समजे छे के आ ग्रंथनी बीना हुं समजी गयो पण तेज पुरुष बीजी, त्रीजी; चोथी; पांचमी, छठी, सातमी वार तेज ग्रंथ वाचे त्यारे ते एम समजे के आ ग्रंथमांथी हुं कांईक समज्यो अने बहुज वार ज्यारे वांचे त्यारे एम समजे के आ ग्रंथ समुद्र जेवो छे अने तेमांथी हुं तो एक बिंदु मात्र समज्यो छु भावार्थ के जेम जेम ग्रंथ विशेष वाचे अने विशेष विचार करे तेम तेम ते ग्रंथना भाव विशेष जणाता जाय अने जाणे के पहेला हुं बरावर समज्यो नहोतो अने हवे कांई समज्यो मने घोडाउपर बेसतां आवडे छे एवु कहेनार घणा माणसो आपणी नजरे पडे छे पण ज्यारे घोडो लावी उभो राखवामा आवे छे अने बेसवानी दरेक क्रिया अजमाववामां आवे छे त्यारे दर सो माणसे भाग्येज बे त्रण माणस पूर्ण फतेह पामे छे आ दृष्टांत शास्त्रो वाची हु तेना परमार्थने समजुं छुं एम कहेनारने लागु पडे छे अमुक पुस्तको में वांच्यां छे एवुं कहेनार घणा माणसो जोवामां आवे छे पण साधारण वांचवामां अने समजवामा फेर छे गुजराती त्रीजी चोपडीनो अभ्यासी गुजराती सातमी चोपडी वाची शकेछे पण तेमा शु मतलब समाई छे ते समजवी समजाववी घणी मुश्केल छे. तेवीज रीते ज्यांसुधी तेमना जाणपणानी तपास करनार मळ्यो नथी त्यांसुधी हुं जाण छुं एवो पोतानो भर्म भागतो नथी पण साचो परिक्षक ज्यारे मळे छे त्यारे खरुं शुं छे ते पोतानेज मालूम पडे छे अने जे कंई पोताने आवडे छे ते समुद्रना एक जलबिंदु समान भासे छे.

श्रीमान् मनसुखलालजी माटे तेउंना रचेला पुस्तको बाहार पाड्या पछी सामान्य जनसमूह तथा साधुसमूह ('श्वेतांबर एकलाज नहि पण अन्य साधुओ) नो शो मत छे ते तेउंना उपर तेउंश्रीना तथा साधमीं उपर आवेला पत्रो जेमांना थोडाकमांनी टुक हकीकत नमुना

माटे आ नीचे लखवामां आवेली छे ते उपरथी मालूम पडे छे के तेओना रचेल पुस्तको जे हाल सुधीमां प्रसिद्ध करवामां आव्यां छे ते सर्वे ज्ञान न्याय तथा दयाथी भरपूर छे तथा शब्दे शब्दे मोक्ष मार्ग बतावता होय तेवुं साफ मालूम पडेछे.

ता० ११-१-१९०८ बोरसद—क्षमा मुनि—तमारा तरफथी आवेलो सुमति विलास ग्रथ आमोए पूर्ण वाच्यो छे, वांची अति आनंद उल-स्योछे, आ पुस्तक वाची माहरु चित्त निर्मल थयुं छे काईक अनुभव प्राप्त थशे एम लागे छे पुस्तक अति अमूल्य छे.

ता० ८-४-१९०८ वढवाण—घेलाभाई लवजीभाई—आपे परिश्रम लईने ज्ञाननी वृद्धि सद्विचारना प्रबल आख्याननुं सुमतिविलास नामनुं पुस्तक छपाव्युं ते घणुं रसिक, मनोवृत्ति निर्मल थवानुं, मोक्ष मार्गनुं पगथीउं कहीए तो चाले. शांत वैराग्यनुं पुष्ट कारण छे अने ते श्री उत्तमचंदजी स्वामीने माटे एक प्रत मोकलावशो. तमो मोकलेथी ज्ञाननी वृद्धि अने सद्विवेक वैराग्यनुं सदन छे तो महाराज साहेब वांचेथी तेज तत्त्व विचारनु ज्ञान अने तेमा भावार्थ निस्पृही छे एहवी हकीकत हमोने एक पासेथी ग्रथ होवेथी मंगावी त्यारे स्पष्ट जणायुं छे माटे ज्ञाननी वृद्धि अर्थे तस्दी लई मोकलावशो. साधु महात्मा वांचशे तो ज्ञाननो फेलावो थशे वली पोते ग्रहण करीने बीजा भव्यजीवोने सद्ज्ञाननो बोध आपशे ए श्रेय छे सुमतिविलास ग्रंथना नाम प्रमाणेज गुण छे माटे ते पुस्तक मुमुक्षु वैराग्यने खरेखर कौस्तुभ मणि समान छे पण मूर्ख कदाग्रहीने कामनी नथी माटे साधु मुनिओनेज ते भेट आप-वाथी ज्ञानवृद्धिनु कारण छे

ता० १४-५-१९०८ वढवाणकांप—बेहेचरदास नथुभाई आपना तरफथी छपाएल सुमतिविलास वांचता आत्मानंद थयोछे अने आथी करीने हृदयमंदिरमां सकल जनो उपर करुणा बुद्धिनी स्फुरणा रहे ए काई ओछो लाभ नथी. कर्मानुसार आत्माने स्थानांतर थवुं पडे छे तेनो

विचार करी स्थिर थवुं कर्त्तव्य छे. आशा छे के आ प्रमाणे आत्मोदय थाय. आ पुस्तक कोई मुमुक्षु तरफथी वाचवा मलेल छे ते वखतसर तेने पाछुं आपवुं जोईए तो कदाच आपनी ईछानुकुल होय तो एक प्रत भेट तरीके मोकलशो.

ता० ५–६–१९०८ आटकोट–दलपतराम वनमालीदास–तमारा मोकलेला सुमतिविलास नामना ग्रथ नं २) पोहोंच्या छे. महाराजश्रीने हाथोहाथ पोहोंचाड्या छे ते महाराजश्री बोल्याके आ ग्रंथो वाचवाथी अंतरात्मामा घणोज आनद उत्पन्न थयो छे. आ ग्रथ वांचनार जनोने घणोज सहायकारी छे आपे जे आ पुस्तकनुं नाम राख्युं छे ते जेवु नाम तेवोज गुण छे " यथा नामा तथा गुणा " ए पुस्तकनो बीजो भाग छपाई रह्यो होय तो मोकलावशो.

ता० १६–६–१९०८ वांसावाडे–वोरा–भाईचंद भावजी–अत्रे बिराजमान मुनि महाराज श्री लक्ष्मीचंदजी स्वामी तथा मुनिराज श्री अमरचदजी स्वामी आदे ठाणां वे सुखसातामां बिराजे छे आपना तरफथी आवेला सुमतिविलास ग्रथ न २) तेउंश्रीने पोहोंचाड्या छे तेउंश्री कहेछे के अहो सुज्ञ श्रावकजी ! आ ग्रंथ वांचवाथी अमारा अतरात्माने अत्यानद प्राप्त थयो छे. आप जे ज्ञान उत्तेजन आपो छो तेथी आपनो मोटो उपकार मानुं छु सर्वोत्तम–श्रेष्टदान ते ज्ञानदान छे आ ग्रंथ ते तमाम मुमुक्षु जीवोने हितार्थ रस्तो बतावनार थवाना छे तमाम वाक्यो मनन करवा योग्य छे आ ग्रंथनो बीजो भाग छपाएथी मोकलावी आपशो.

अशाडवदी २ सने १९६६–माडल–मणीयार. वाडीलाल पचाणजी राधनपुरवाळा–अत्रे अकस्मात् नेत्र प्राप्तिथी थता आनद तुल्य आपनो कृपापत्र मल्यो, वांचता अमृत रस प्राप्त थता अतृप्तिज रह्यां करे छे. आपनो अमृत तुल्य उपदेश वाचता थतो आनंद दर्शावी शकवा कोपनो दुष्काळ पड्यो छे. अर्थात् थतो आनद दर्शाववा कलम चाली

शकतो नथी.अपूर्व आनंद थयो. आपनी पासे वारंवार अहर्निश प्रार्थना छे के अमृत उपदेश जल सिंचन करी आ लघु सेवकने कृतार्थ करी आभारी करशोजी, अवकाश अभाव हाल घणो छे. अवकाशे आपना ग्रंथोनुं मनन करवानोज विचार चालुज छे. आपना समागमे अमृत देशनानो लाभ लेवानो उत्साह अकथनीय छे. परंतु द्राक्ष पाकवाना अवसरे जेम कागने मुख रोग थाय छे तेवुं थाय छे, अर्थात् हु गमे तेम करी आपना दर्शन अने अमृतगीरानो लाभ लेवा शक्तिमान् थात परंतु अमारा शेठजीने कार्यवशात् आजे बहार जवुं पडे छे; दुकाने बीजो माणस नथी एटले आवी शकवा कमनशीब रह्यो छुं. ते माटे थतो खेद लखी शकतो नथी आपे आ रंक सेवकने मात्र पत्रनीज उल-खाणथी आपनो अमूल्य वखत रोकीने पण उपकारनी बुद्धिथी पत्र लखी तेडाव्यो पण रांकने रत्नप्राप्ति न होय तेवु थयुं छे ते माटे खेद थाय छे, ते दर्शावी शकुं तेम नथी आपनो पत्र वारवार वांचवानी अभिलाषा थाय छे, वारंवार एज प्रार्थना छे के हितोपदेश पत्र द्वारा लखावी आ रंकने उपकार करशो पत्र बंध करवानी अनेछा छता मतिमदता अने अवकाशना अभावे वधु नथी लखी शकतो, छेवट एट-लीज प्रार्थना ईष्ट देव प्रते छे के आपश्री जैन धर्मनो विजय जगत्मां प्रवर्त्तावया दीर्घायुषी थई अमारा जेवा रंकने स्याद्वाद अमृतनुं पान कराचा भाग्यशाली थाओ

श्रावण वदी १४ सन १९६६—पत्री—मुनिश्री नागचन्द्रजी—आपना तरफथी मोकलावेल सुमतिविलास, सुमति व्यवहार, आदि त्रण ग्रंथो मने मळता प्रेम पूर्वक स्विकारेल छे. श्रीमान् पन्डितवर्य मनसुखलालजी हरिलालजीनी विद्वता अपूर्व जणाय छे, तेमनां वचनो नि.पक्षपाती, रसीक अने वेधक छे, माणसोने असर थाय तेवी तेमनी वाणी मिष्ट अने ईष्ट छे. आपे जे पुस्तको प्रगट करेला छे तेवां उत्तम पुस्तको जैन प्रजामां घणां थोडांज प्रगट थाय छे. खरेखर

हालनी प्रजाने एवाज पुस्तकोनी जरुर छे जैन प्रजामां हाल आत्मिकज्ञान लय पाम्या जेवु थई गयुं छे साधु वर्गमां पण जवल्लेज एवा कोई हशे श्रीमान् मनसुखलालजीने हु कोटीशः धन्यवाद आपुं छुं के जेमणे अपूर्वज्ञान मेलवी घणा माहरा जेवा उपर दया लावी शुद्ध अंत करणथी स्याद्वाद जैन वाणीनुं रहस्य समजाववा प्रयास कर्यो हे शासनदेव ! एहवा नररत्न जो ठेर ठेर होत तो आजे जैनीओनी केवी जाहोजलाली प्रगटे?पण सबूर! सिंहना कांई टोला न होय, वने वने चदन न होय, यत "शैले शैले न माणिक्य" पंडितवर्य श्री देवचंद्रजी महाराजनी चोवीशी अर्थवाली आपे छपाववा उत्तम प्रयास करेल छे ते ज्यारे पूर्ण छपाई रहे त्यारे एक प्रत मोकलशो.

आसोवद३गुरु–१९६६–पत्री–मुनि नागचंद्रजी–आप तरफनो हालमां पत्र नथी अत्र आनंद मूर्ती स्वस्वरुपमा रमण करनार महात्माओनी कृपावडे आनंद छे प्रजातना भगवतीजी सुत्र अने उपर सुमतिव्यवहार ग्रंथ वचाय छे, नवीन ग्रंथ अने रसीक होवाथी श्रोताजनोने बहु रसिक लागे छे ग्रथना प्रयोजक घणा विद्वान अने नि पक्षपाती होवाथी वचनो बहु अमूल्य नीकलेला छे, जेथी दरेक लोकोने दाय आवे ए बनवा जोग छे बपोरना रामरस उपर सामायकसिद्धउपाय एक कलाक चाले छे ते साजलवाथी घणा भाईओ तथा बाईयोनी सामायक करवानी रीती सुधरेल छे, तेम सामायकनु स्वरूप पण समजता थया छे, ए बधो उपगार मनसुखभाईनोज समजवो हवे देवचंद्रजी कृत अतित चोवीशी विगेरे साथे जो छपाई गएल होय तो एक नकल मोकलावशो अने एक नकल पुजा संग्रहनी पण साथे मोकलावशो कार्तिक पूर्णिमा पहेला आवे तो सारुं पूजा संग्रहनी नकल फरीथी मगाववानुं कारण जे आपे प्रथम मोकलावेल नकल एक मुमुक्षुने पाच भावनाओ साथे शीखवानी होवाथी ते लई गएल छे अने माहरे अष्ट प्रवचननी ढालो

शीखवी छे माटे बीजी नकल आपनी पासे मंगावी छे. एज वखतो पत्र पाठवशो.

ता० २१–१०–१९१०

गोधरा. पंचमहाल. ली० शा० महासुखलाल मनसुखलाल.

॥ जिन आणा सेवा स्तवन ॥ ॥ स्वामी श्री संदरा ॥ ए राह ॥

मेव अरिहंतनी आदरो भवि जना, हाण जीव सुखनी तजि रहो थिर मना; पाप अष्टदश थकी जीव सुख हाण छे, पाप अष्टदश तजे सुपद निरवाण वे ॥ १ ॥ अचल उपयोगमां सिद्धि सुख साधिए, सुनय युत शुद्ध जिन वचन आराधिए; ज्ञानसुख हाणि छे राग ने रोषथी, त्यागि विकलप सकल दुर रहो दोषथी ॥ २ ॥ ज्ञायक भावमां जे सदा थिर रहे, तेह निर्दोष निर्भयपणे शिव लहे, दरशसुख हाणि मिथ्या वचन जल्पथी, तजत मिथ्यात तस कोइ भवभय नथी ॥ ३ ॥ काय संचलनथी चरणसुख किम रहे, काय थिर करत निज रम्यमां रमि रहे; द्रव्य ने भाव इम प्राण वे विधि तणा, जीवने सूखना हेतु सद्गुरु भणया ॥ ४ ॥ द्रव्य भावे स्वपर प्राणनी जे दया, तेह संजम विमल साधि मुनि शिव गया: भेदि मिथ्यातमल मोह उछेदिए, पूजि जिनराज निज संपदा वेदिए ॥ ५ ॥ जिनवर पूजना तेह आतम दया, परिहरो विरुद्ध सहु जीवनुं धरि मया, आठ वर पुष्पथी पूजिए जिन धणी, निरखि हरिभद्र कृत पूजा अष्टक भणी ॥ ६ ॥ वर दया प्रथम छे पुष्प चंगेरिनुं, सत्य वच कुंद दुःख हरण भव

केरिनु, तृतीय अस्तेय वर भाग चंपक भलुं, शुद्ध सुब्रह्म सरस केतकी निरमलुं ॥ ७ ॥ सहज असंगता जाइनुं फूल छे, सद्गुरु भक्ति महावेलि सुख मूल छे. तप महा मोलसिरि भव दवानल हरे, ज्ञान वर पद्मनु पुष्प शिवसुख करे ॥ ८ ॥ एह अम पुष्पथी जिन चरण पूजिए, परम उत्साह शुद्धात्म रस धरि हिये[1], पंच आचार वर पुष्प पचरंगिए, पूजता जीवने होय शिव संगि ते ॥ ए ॥ ममत परिहार ते वास मृगमद तणी, ध्यान शुभ धूप शीखा मुनिवर भणी, अष्ट मद त्याग घनसार अति महमहे, त्यागि परभाव निज भाव कुंकुम ग्रहे ॥ १० ॥ त्यागि त्रय जोग सावद्यमय सेवना, शुद्ध निरवद्य चदन रसे अनुदिना, भावसेवा तणुं कारण सत्य जे, त्यागि प्रमादने आदरो नित्य ते ॥ ११ ॥ प्राण सुखहाणि ए न्याय नवि संभवे, प्राणहाणि तजे सहज सुख अनुभवे, प्राण रक्षाथी सजम कह्यु जिनवरे, जाणि बुध न्याय शुद्ध सजम आदरे ॥ १२ ॥ जाणि सावद्यना हेतु सवि भवि तजो, आण जिनदेवनी सेवना नित भजो; सहज शुध भावमां धारि दृढ रंगता, त्यागि परभाव एक सेवो नि संगता ॥ १३ ॥ नमन वंदन जिनराज प्रतिमा प्रते, शल्य त्यागी स्वगुण ध्यान भावना छते, द्रव्यसेवा एम शुभमती आदरे, मिच्छ अन्नाण कषायथी निस्तरे ॥ १४ ॥ एह जिनराजनी आण सभालिए, जंतु सुख राखि प्रभु सेवमा चालिए. “ मनसुख ” जिनपद पूजशे ते नरा, सहज शिव संपदा पामशे अति त्वरा ॥ १५ ॥

॥ सपूर्ण ॥

[1] हृदयमां

॥ श्री वेजलपुर पौषधशाला स्थापी ते विषे ॥ हरिगीत छंद ॥

परम पंच परमेष्टि वंदि सुमन रंग उमंगमां, जल भरी थापो कुंभ अमृत आण जिन भवि संगमां ॥ १ ॥ आत्म भवने आज थापो कुंभ ज्ञानामृत तणो, ते पान करतां प्रगट होवे अचल वीरज आपणो ॥ २ ॥ वर कल्पतरु शुध चरण मूले सींचीए अमृत सदा. फले चरण शिवफल चाखता होय सहज आनंद रस मुदा ॥ ३ ॥ उग ज्ञान चरण सुवीर्य आदिक गुण अनंता ऊपजे, नहि रोग शोग वियोग जिहां वळि उविध संपति संपजे ॥ ४ ॥ सादि अनंतानद प्रगटे आत्म-भूमि रयण भरी, स्वतंत्र संग सुरंग शिवत्रिय भोगवे मन-सुख करी ॥ ५ ॥

॥ संपूर्ण ॥



पृष्टांक	लिटी	अशुद्ध	शुद्ध
२	ए	वारमा अने तेरमा	वारमा अने तेरमा गुणस्थान वासी
१४	२२	ज्ञायक जाव महंत	ज्ञायक ज्ञान (जाव) महंत
१७	१०	कर्युं	कर्युं
१८	१३	वसंतमा	वसतमां
२०	१२	नाहिं	नाही
२ए	६	करयों	कर्यो
३७	२	निज	जिन
४१	७	वधायेलाने	वंधायेलाने
४३	१२	तम	तेम
५६	४	पूरा	पूरो
५ए	२१	प्रदेशमा	प्रदेशमां
६४	२५	पयाय	पर्याय
७३	४	साध्यादि	स्याद्वादी
७३	७	साध्य आदि	स्याद्वाद अनेकांत
८१	१६	करणवीर्य वके घाधकनाए	करणवीर्य
८२	०	क्रीर	कीर
८ए	१२	द्रव्यमा	द्रव्यमां
ए०	११	समय बे	समय बे ते प्रति समय व्यक्ति पणे युगपदे प्रवर्त्यां करे बे
ए४	२२	घात्ती	घाती
एए	१ए	मुणेयवे	मुणेयवो
१०१	८	महाव्रत	महाव्रत
१०४	२२	काई	काई
११२	१२	सुदर्शन चक्रहो ॥	सुदर्शन चक्रहो॥ हेजी चारित्र शुद्ध गदा धक्र, हेजी चित्त विजाव न वक्रहो,

पृष्ठाक	लिटी	अशुद्ध	शुद्ध
११७	३	मनसुलाल	मनसुखलाल
११८	१२	चाह्	चाहे
१२१	११	लही	लह्यु
१२२	९	नसाय	वचाय
१२४	२४	होष्ट	ओष्ट
१२६	९	रत्नो थकी पणी	रत्न थकी पण
१३५	२३	यागेथो	योगथी
१३८	१२	ते	तो
१३९	१४	सेवता	सेवतां
१५६	८	बीजा	बीजे
१५७	२७	हेयमान	हीयमान
१५८	२१	होय मई ॥	होय ॥ मई
१६६	१३	दे	देव
१६६	१५	बीजा	बीजा
१७२	१२	विमानर्ना	विमानमां
१७६	२	माह्य	मांह्य
१७७	१४	जेह्ना	जेह्ना
१७९	१०	त्रिय	त्रय
१९३	१३	डुगछना	डुगछना
१९८	९	राख सजम	राखे सजम
२००	२०	नि:शक	नि.संग
२२२	२२	नारायनी	नारायणनी
२२८	२८	प कारका	ये कारका
२३१	३	सर्व्व	सरूव
२३१	३	समदिठि	सम्मदिठिं
२३५	२५	तय	नय

पृष्टांक	लिटी	अशुद्ध	शुद्ध
२३०	१०	लुख्ख	लुख्खे
२३७	८	पज्ञायइंजं	पज्ञायाइज्ञा
२४३	१२	वध थाय	वंध थाय (रोकाय)
२४८	३	लोग	लाग
२४८	११	थतां	थता
२५३	२१	॥ ५ ॥	॥ ६ ॥
२५४	१३	॥ ५ ॥	॥ ६ ॥
२५६	२३	स्वरुपी	स्वरुपी रे ॥ मन० ॥
२७०	१४	मारुतां पहेला	मांडता पहेलां
२७६	७	वीयांतरना	वीयांतरायनां
२७७	२२	डेपादि	डूपादि
३०५	१	एकादश	एकादशम
३०७	१	एकादश	एकादशम
३०८	२	द्वादश	द्वादशम
३०७	१	द्वादश	द्वादशम
३१०	५	पूर्ण	पूर्ण
३११	१	द्वादश	द्वादशम
३११	७	वुद्मादि	वुध्मादि
३१७	११	वुध्य	वुरूय॰
३१७	१४	कारण	कारणो
३२३	१५	सेवन थाय	सेव न थाय
३२३	२१	देवचड	देवचड
३४०	१३	तमा	तेमा
३४०	२५	वंध	वध
३६१	२	रवजावने	स्वजावने
३७७	२३	प्राणी निज ॥	प्राणी निज

संपूर्ण

॥ ॐ परमगुरुभ्यो नमः ॥

॥ अथ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी बालावबोध सहित लिख्यते ॥

॥ दोहरा ॥

जिन गुण कीर्त्तन करि करो, आतम कीर्त्ती अनंत ॥
शुद्धातमता ध्यावता, लहो निज पद सुमहंत ॥ १ ॥
अतित समयमां जे हुवा, तीर्थपती चोवीश ॥
तस गुण स्तावि नविजन लहो, सहजातम सुजगीश ॥ २ ॥
शुद्ध ध्येय ध्यातां लहे, धर्म शुकल शुभ ध्यान ॥
परमातम पूजी वरो, नवि निज सिद्धि विधान ॥ ३ ॥
विघन हरण मंगल करण, जस अतिशय चउतीश ॥
तस पद सेवी नवि रहो, धर्म मग्न निशदीश ॥ ४ ॥
अक्षय आतम संपदा, आतम वीर्य अनत ॥
सहज स्वतंत प्रयास विण, प्रगटे शांति अत्यंत ॥ ५ ॥

॥ अथ प्रथम तीर्थंकर श्री केवलज्ञानी जिन स्तवन ॥

नामे गाजे परम आल्हाद, प्रगटे अनुभव रस आस्वाद॥ तेथी थाये मति सुप्रसाद, सुणता भाजेरे कांइ विषय विषादरे, जिणंदा तादरा नामथी मन भीनो ॥ १ ॥

अर्थ.—जेना नामथी नवि जीवोना हृदयमां परम आल्हाद गाजी रहे छे, त्रणे भुवनना जीवो सिद्ध समान पोतानुं शुद्ध स्वरूप अणजाणता सडण, पडण, विध्वंसण धर्मी अपवित्र देहमां पोतापणुं जाणी मानी जन्म, जरा, मरणादि आधि व्याधि अहंपणे भोगवता अने मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय वशे कर्मबंध करताने प्रभुजी सिद्ध

समान निर्मल ज्ञान दर्शन चरण वीर्यमय स्वतन्त्र अजर अमर अक्षय अनत आनदमय शुद्धात्म स्वरूप बतावे, तेज आत्म अनात्म लक्षण भिन्न समजता, रूची प्रतित थता, भविजीवोना हृदयमां परमानंद प्राप्ति थाय छे वली रागादि दोषो मटी निर्मल शाश्वत ज्ञान दर्शन चरण वीर्यादि पोतानी अनंत शुद्ध शक्तिनो अनुभव आस्वाद स्वतंत्र पणे प्रगटे छे एज परम आल्हाद गाजे छे ताहरा वचन सांभलता विषय अने कषायोनो विषाद ताप दुर जागे अने प्रशमतानो आनद आवे अगीआरमा बारमा अने तेरमा सामान्य जिनोमा ईन्द्र सरखा शासन नायक तमारा नामथी माहरूं मन आश्चर्य पामे छे, माहरू मन प्रभुना स्याद्वादामृत वचन रसे भिनुं छे ॥ १ ॥

क्षेत्र असंख्य प्रदेश, अनंत पर्याय निवेश ॥ जाणग शक्ति अशेष, तेहथी जाणेगे काई सकल विशेषरे॥जि०॥२ ॥

अर्थ.—आत्म द्रव्यना प्रदेश लोकाकाशना असंख्याता प्रदेशमा विस्तरी शके छे ते स्वप्रति प्रदेशे ज्ञानादि अनत गुणोना वति पर्यायो अनंतानता तिरो भावे रह्या छे ते परिणामिक धर्म बडे खट् गुण हाणिवृद्धिपणे पर्यायो दर समये सामर्थ्यपणे परिणमि आप आपणा कार्यपणे उर्द्धरूप आवी परिणमे छे तेमा आवीर्भावपणे थया जे ज्ञान पर्यायो ते बडे रूपी अरूपी सकल ज्ञेयनी त्रिकालवर्त्ती दूर निकटनी सकल प्रवृत्तिना जाण छो माटे

अर्थः—सकल प्रमेय प्रमाण के० पंचास्ति द्रव्य छे तेमां धर्मास्ति अधर्मास्ति अने आकाश ए एक एक द्रव्य छे अने जीव, पुद्गल अनंतानंत द्रव्य छे अने त्रिकालना समय अनंता छे तेमांथी कोई द्रव्य वधे नहीं तेम घटे पण नहीं एटले नवो उपजे नहीं, पूर्वलो नाश थाय नहीं वली जे द्रव्यमां जे गुणो छे तेमांथी कोई गुण पूर्वलो नाश थाय नहीं तेम नवो उपजे पण नहीं अने जे द्रव्यमां जेटला छति पर्याय छे ने पर्यायोमांथी कोई पर्याय वधे नहीं तेम घटे पण नहीं, पर्याय उत्पाद् व्ययपणे परिणमे पण सत्ताए जेटला गुणो अने जेटला पर्यायो छे तेटलाज रहे. जीव द्रव्यना गुण पर्याय जीव कार्य करे अने पुद्गल द्रव्यना गुण पर्याय पुद्गल कार्य करे पण कोई द्रव्य अन्य द्रव्यना कार्यने करे नहीं, जे वस्तुनो जे स्वभाव होय तेमां जे पर्यायनी व्यक्ति जे समये आववानी होय तेज समये आवे, पर्यायो पोतानो क्रम छोडे नहीं वली जेमां जे भवितव्यता होय अगर जेने जेनो योग थवानो होय तेने ते योग थाय, ए आदि द्रव्य गुण पर्याय आप आपणी मर्यादा छोडे नहीं तेने प्रमेय कहीए एम सकल प्रमेयनुं प्रमाण करनार प्रभुजीनुं प्रधान केवलज्ञान छे. तेथीज प्रभुजी तमारूं केवलनाणी एवुं नाम छे. जेने प्रधान मुनिओ सदा मन वचन कायाना जोगो थिर राखी ध्यानमां ध्याय छे एटले तमारा शुद्ध गुणो वार वार संभाली ध्यानाग्नि धमी तुम सरखा गुणो आत्म अगमां अभेदपणे ध्याई कर्मरूपी काष्टने प्रजाले छे ॥ ३ ॥

ध्रुव परिणति छति जास, परिणति परिणमे त्रिक राश ॥
करता पद प्रवृत्ति प्रकाश, अस्ति नास्तिरे कांई सर्वनो भासरे ॥ जि० ॥ ४ ॥

अर्थ.—ते केवलज्ञानी अतितकालना प्रथम तीर्थंकरने ध्रुव परिणति अस्तिपणे छे तेज परिणति उत्पाद् व्यय ध्रुव ए त्रण राशि

पणे सर्वे समय परिणमे छे एटले सर्व समय पूर्व पर्यायनो व्यय, उत्तर पर्यायनो उत्पाद् अने सकल सत्तानु ध्रुवपणुं सर्वे द्रव्यमा होय. जो सर्वे समय द्रव्यमांहे उत्पाद् व्यय ध्रुवता न मानीए तो द्रव्य पोताना कार्यनी क्रीया करे नही तो शुन्यपणु थाय कह्युं छे के-" अर्थ क्रिया कारित्वं द्रव्यं तथा उत्पाद् व्यय ध्रुव युक्त सत् लक्षण द्रव्यं " एटले द्रव्य आप आपणुं कार्य करवानी क्रिया एटले पर्याय प्रवृत्ति न करे तो द्रव्यनुं द्रव्यत्वपणुं रहे नहीं अने सर्वे समय उत्पाद् व्यय न होय तो द्रव्यनुं सत् लक्षण पण रहे नहीं माटे उत्पाद् व्यय ध्रुवपणुं सर्वे समय मानवुं. तेथी प्रभुजी पोताना शुद्धात्म पदनी प्रवृत्तिना प्रकाश करवावाला छो वली सर्वे द्रव्य पोत पोताना द्रव्य क्षेत्र काल अने भावपणे सदा अस्ति एटले छता छे अने परद्रव्यना द्रव्यादिक पणे कोई द्रव्य थाय नहीं. पर द्रव्यादिक रूपे न थवुं एवो स्वभाव पण पोतामां अस्तिपणे रह्यो छे तेनेज नास्ति स्वभाव कहीए. एम अस्ति नास्ति आदि वस्तुना अनंत स्वभाव समकाल सर्वे समय तमारी ज्ञायकतामां भासे छे ॥ ४ ॥

सामान्य स्वभावनो बोध, केवल दर्शन शोध ॥ सहकार अभावे रोध, समयतर रे काई बोध प्रबोधरे ॥ जि० ॥ ५ ॥

अर्थ.--सर्वे द्रव्यना अस्तित्व वस्तुत्व आदि सामान्य स्वभावनु जाणवुं तेने दर्शन गुण कहीए ते दर्शन गुण तमारे परम प्रगट शुद्ध थयो छे सामान्यपणे वस्तुनी छती जाणवामा ईंद्रिर्ड तथा चंद्र सूर्यादिनी सहाय जोईती नथी अने अरोध के० ते दर्शन गुण रूपी अरूपी अनंत द्रव्य जाणवामां कोई ठेकाणे रोकातो रूधातो नथी एटले अस्खलित केवलदर्शन गुण प्रगट थयो छे एटले सामान्य विशेष बोध समयांतरे थयो छे पण अखंड समय केवलज्ञान अने केवलदर्शन उपयोग वर्त्ते छे ॥ ५ ॥

कारक चक्र समग्ग, ते ज्ञायक भाव विलग्ग ॥ परमभाव संसग्ग, एक रीतेरे काई थयो गुण वग्गरे ॥ जि० ॥ ६ ॥

अर्थः—जीवमां अनंता गुणो छे, ते सर्वे समय अनंत कार्य करे छे, ते दरेक कार्यनां कारक चक्र भिन्न भिन्न छे, ते सर्वे कारक चक्र ज्ञान कारक चक्र संबंधे वलगेलां छे. ज्ञानकारकचक्र फरे तेम दर्शनादि सर्वे आत्म कार्यनां कारकचक्र फरे ते ज्ञान कार्यनां कारक नीचे प्रमाणे जाणवां:—

(१) कर्त्ता कारक—ते ज्ञान कार्यनो कर्त्ता पोते आत्मा.

(२) कार्य कारक—स्वपर स्वरूप त्रिकाल भावनु जाणवुं ते ज्ञान कार्य.

(३) करण कारक—ज्ञान कार्यनुं उपादान कारण असंख्य प्रदेशे रहेला ज्ञानना अनंता शक्ति पर्याय. अने ज्ञान कार्यनु निमित्त ज्ञेय

(४) संप्रदान कारक—शक्ति पर्याय सामर्थ्यपणे प्रवर्त्तावी पोतेज पोताने अनंत बोधनुं दान आपे ते स्वसंपदा देवा रूप संप्रदान.

(५) अपादान कारक—तेज शक्ति पर्यायो सामर्थ्यपणे प्रवर्त्तावी अबोधनो नाश करवो ते अपादान

(६) अधिकरण कारक—स्वआत्म प्रदेशमां स्वकाल प्रवृत्ति ते अधिकरण.

एम अनंत गुणोनां अनंत कारकचक्र ज्ञानाश्रित समकाले प्रवर्त्ते छे तेथी अनत गुणोनो वर्ग एक रीते थयो एटले परम भावने ससर्गे सर्वे गुणो प्रवर्त्ते ॥ ६ ॥

इम सालंवन जिन ध्यान, भवि साधे तत्त्व विधान ॥
लहे पूर्णानद अमान, तेहथी थायेरे कांई शीव इशानरे ॥ जि० ७

अर्थ—एम प्रभुना अवलंबने जे भवि शुद्धात्म ध्यान राखी तत्त्व विधान साधे एटले प्रभुजीए अनंत गुणोना कारकचक्रो पोतानाज कार्यमा प्रवर्त्तावी पूर्ण आत्म सिद्धि करी तेम माहरे पण आत्म सिद्धि रूप कार्य करवुं अगर एज प्रमाणे आत्म सिद्धि करवा माटे प्रभुजीए कह्यु तो माहरे सर्वे गुणो निजात्म शुद्ध कार्यमां प्रवर्त्ताववा एज प्रभुनु आलबन जाणवुं प्रभु आलंबन विना अनादि अविद्या वडे पुद्गल द्रव्य गुणपर्यायमा कार्य मानी ज्ञान गुण तेमां प्रवर्त्तावे छे एटले पुद्गल कार्यमा रोके छे त्याज अवराय छे पण शुद्धात्म उपयोगमा प्रवर्त्तावतो नथी तेमज दर्शन गुण पण पुद्गलीक कार्यमा प्रवर्त्तावी शुभाशुभ अशुद्ध निश्चयमा रोके छे तेमज चरण गुण पण पुद्गलना अनत गुणोमा (विषयोमा) प्रवर्त्तावे छे, कषायोमां मुझाय छे (मोह पामे छे.) वीर्यगुण पण पुद्गलना गुणपर्यायोमां फोरवी चल मलिन अने परतत्र करे छे एम पोताना अनंत गुणो परसगे चल मलिन करी ससार भ्रमण करता दु ख पामे छे पण ज्यारे जीव प्रभु आलबनी थाय त्यारे सकल कारक शुद्ध स्वभाव धर्ममा प्रवर्त्तावी सकल दु खथी निवर्त्ति परमानद प्रगट करे छे. एम पूरो जेनो माप नहीं एहवो अत्यतीक आनद प्रगट थाय छे एटले आत्मा उपद्रव रहित परम निर्वाण पदनो जरुर स्वामी थाय छे ॥ ७ ॥

दास विभाव अपाय, नासे प्रभु सुपसाय॥ भ तन्मयताए ध्याय, सही तेहनेरे देवचंद्र पद थाय रे ॥ जि० ॥ ८ ॥

अर्थ—हु प्रभुनो दास ते प्रभुना आलंबने नथी वर्त्यो त्यासुधी परद्रव्यनी ममता आदि विभाव अनेक प्रकारना दे आलवने सकल विभाव दु ख दोष नाश थाय जाणवो प्रभुने तन्मयताए के० प्रभु जेम राग स्वभावाचरणमा थिर थया तेम जे भवि

आनंद स्वभावमां थिर थइ एटले तन्मय थइ ध्याय ते जरुर सकल देवोमां चंद्रमा समान शुद्ध सिद्धपद पामे ॥ ७ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ द्वितीय श्री निर्वाणी प्रभुनुं स्तवन ॥

वीरजी प्याराहो वीरजी प्यारा ॥ ए राग ॥

प्रणमुं चरण परमगुरु जिनना, हंस ते मुनि जन मनना ॥ वासी अनुभव नंदन वनना, भोगी आनंद घनना ॥ १ ॥ मोरा स्वामी हो तोरो ध्यान धरीजे, ध्यान धरीजे हो सिद्धि वरीजे, अनुभव अमृत पीजे । मोरा स्वामी हो तोरो० ॥ ए आंकणी ॥

अर्थः—घनघाती रुप कर्म शत्रुने जीत्या अने केवलज्ञानादि चार अनतां जेणे प्रगट कर्यां एहवा निर्वाणी प्रभु अतित चोवीशीना बीजा तीर्थंकर परमगुरुना चरणकमलने अगर शुद्ध स्वभावाचरणने बहु सन्माने प्रणमु छुं जेने मुनिजनो पोताना मनरुप मानसरोवरमां हंस रुपे रमावे छे हंस जेम दुधथी पाणी भिन्न करी दुध पीए छे तेम प्रभु अनात्म भावनां लक्षण भिन्न जाणी दर्शावी मुनिओने पण अनात्म लक्षणोनो आदर तजावी शुद्धात्म लक्षणमय शुद्धात्म लक्ष्यनो अनुभव करावे छे वली प्रभु आत्मानी अनत शुद्ध शक्तिरुप नदनवनमां वसे छे, अनंत गुणोनी सुवासनामां मग्न तृप्त थई रह्या छे, एम अनत स्वगुण आनंद समकाले भोगवे छे तेथी आनंदघन भोगी एहवा माहरा नाथ विभाविक दुःखथी छोडावनार अने परम निवृत्ति स्थानक आनंदपुरीमां (शिव नगरीमां) निरवाण पद (निश्चल पद) ना दातार तमारुज ध्यान धरीए जगवासी जीव पुद्गल ध्याने, अशुद्ध अध्यवसाये, अशुद्ध लेश्याए, अशुद्ध चेष्टाए विभावमां प्रीति करवे ज्ञानावरणादि कर्म बाधी दीन दु खी परतत्र थई रह्या छे ते. देखी

हु नवनयथी शुद्धिरा थयो प्रभुनुज ध्यान करुं एटले प्रभुनी आणा समय मात्र पण चूकु नहीं ए जिज्ञासा छे तमारुज ध्यान धरीए तो सिद्धि वरीए माटे शुद्धात्म गुणमा उपयोग थिर राखवा अने थिरता वधारवा रुप अनुभव अमृत पीए ॥ १ ॥

सकल प्रदेश समा गुण धारी, निज निज कारज कारी ॥
निराकार अवगाह उदारी, शक्ति सर्व विस्तारी ॥मोरा०॥ २॥

अर्थ –प्रभुजीने असंख्यात प्रदेशे ज्ञानादि अनंत स्वगुणो सरखा छे कोई प्रदेशे कोई गुण पण अंश मात्र ओछो अधिको नथी जेम सोनाने सर्वे प्रदेशे भारे पीलाश चीकाशादि सर्वे गुणो सरखा छे तेम शुद्ध द्रव्यने सर्वे प्रदेशे गुणो सरखा होय छे. ते दरेक गुणो आप आपणु कार्य सर्वे समय निरंतर करे छे कोई गुणनी प्रवृत्ति कोई समय पण रोकाती नथी तेम अन्यद्रव्य कोई द्रव्यना गुणपर्याय प्रवाहने अटकावी रोकी शकतो नथी जेम वर्ण गुण गंध आदि गुणनुं कार्य करतो नथी पण वर्ण गुण वर्ण पर्याय प्रवृत्ति रूपज कार्य करे छे तेम ज्ञान गुण दर्शन गुण आदि अन्य गुणनु कार्य करतो नथी अर्थात् सर्वे गुणो सर्वे समय आप आपणुं कार्य करे छे पण स्वजाति अन्य गुण के विजाती अन्य गुणनुं कार्य कोई गुण कोइ समय पण करतो नथी एम परिणामीकता धर्म जाणवो प्रभुनुं अंग निराकार ज्ञायक रूप छे पुद्गलो पेठे वर्णादि वीश गुण रूपे अथवा ते माहेला कोई रूपे पण नथी तेथी कल्याणकारी निराकार अवगाहना छे अवगाहना तो आकाश प्रदेशने रोके तेने कहीए प्रभुनी अवगाहना व्यवहारथी आकाश प्रदेशमा कहेवाय पण निश्चयथी तो प्रभु स्वक्षेत्री छे परक्षेत्री नथी. जे प्रदेशमा सिद्धनी अवगाहना छे तेज प्रदेशमा अजीव पुद्गल खधो तथा निगोद राशी शरीर विगेरे अनेक द्रव्यो छे पण सिद्धनी अवगाहनाथी ते क्षेत्र रोकातु नथी

पण व्यवहार नयथी व्यवहार दृष्टिने समजवा वदले अवगाहना कही पण परमनये जीव अनवगाही छे. " उक्तंच आचारांगे पांचमा अध्ययने उद्देशे छठे कह्युं छे—से न दीहे, न हस्से, न वट्टे, न तंसे, न चउरंसे, न परिमंडले, न किण्हे, न नीले, न लोहिए, न हालिद्दे, न सुकिल्ले, न सुरभि गंधे, न दुरभि गधे, न तित्ते, न कडुवे, न कषाये, न आंबिले, न महुरे, न कक्खडे, न मउए, न गुरूए, न लहुए, न सीए, न उण्हे, न निन्द्धे, न लुक्खे, न काउे, न रूहे, न संग, न इथ्थि, न पुरिसे, न अन्नहा परिन्ने, सन्नेउवमा निविज्झये, अरूवि सत्ता अपयस्स पय नथ्थि" एम छे तो साकार अवगाहना केम कहेवाय? आत्मामां अनंत गुणोनी अनंत शक्ति छे ते सर्व शक्ति संसारीक जीवोनी परभाव अनुयायीपणे रोकाइ छे पण प्रभुजीए तो सकल परभावनो नाश करी गुण गुणना अनंतानंत पर्यायनी शक्ति प्रगट करी स्वतंत्रपणे विस्तारी छे ॥ २ ॥

गुण गुण प्रति पर्याय अनंता, ते अभिलाप्य स्वतंता ॥
अनंत गुणानभिलापी संता, कार्य व्यापार करंता ॥मोरा०॥३

अर्थ—प्रभुजीने अनता गुणो छे ते गुणगुण प्रते अनंत पर्याय पोताने स्वतंत्र छे तेमांथी अनता पर्यायो अथवा धर्मो वचन आलापमा आवी शके एवा छे तेने अभिलाप्य धर्म कहिए अने तेथी अनंतगुणा वचन आलापमां न आवी शके एहवा अणभिलाप्य धर्म छे. ते अभिलाप्य अने अणभिलाप्य सर्वे धर्मो आप आपणुं कार्य दर समय करे छे व्यापार के० ने सर्वे पर्यायो कार्य करवामा प्रवर्त्ते छे. एज प्रमाणे पञ्चास्तिकायमा अभिलाप्य धर्म अनता अने तेथी अणभिलाप्य धर्म अनंतगुणा जाणवा ॥ ३ ॥

छति अविभागी पर्यय व्यक्ते, कारज शक्ति प्रवर्त्ते ॥ ते विशेष सामर्थ्य प्रशक्ते, गुण परिणाम अभिव्यक्ते ॥मोरा०॥४

पुष्ट निमित्तालंबन ध्याने, सालंबन लय ठाने ॥ देवचंद्र गुणाने एक ताने, पहोचे पूरण थाने ॥ मोरा० ॥८ ॥

अर्थ-प्रभुजी तमे मोक्षाभिलाषीने पुष्ट आलंबन छो एटले जेम प्रभुए ज्ञानदर्शन चरण वीर्यादि आत्मगुणो पुद्गलीक कार्यमांथी पाछा वाली सहजात्म कार्यमा जोड्या अने भव्य जीवोने सर्वे शक्ति सहजात्मकार्यमा प्रयुजवी दर्शावीए बन्ने प्रकारे प्रभुनु आलंबन लेई जे वर्त्ते ते आखर निरालंबता पामे एटले ते जीवने कोई समय पण पुद्गलीक आलबन लेवुं पडे नहीं, पर आलबन लय थाय. चारनिकायना देवोमा चद्रमा समान निर्वाणी प्रभुना व्यक्त ज्ञानादि शुद्ध गुणोमा एकतापणे उपयोग अखंड करे एटले शुद्ध गुणीना गुण बहु माने पूर्णानद स्थानके पहोंचे ॥ ८ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ श्री तृतीय सागर प्रभु जिन स्तवन ॥

॥ चउमासी पारणुं आवे ॥ ए राग ॥

गुण आगर सागर स्वामी, मुनि भाव जिवन नि कामी॥
गुण करणे कर्त्तृ प्रयोगी, प्राग्भावी सत्ता भोगी ॥ १ ॥
सुहकर भव्य ए जिन गावो, जिम पूरण पदवी पावो ॥
॥ सुहकर० ॥ ए आकणी ॥

अर्थ.-श्री सागर स्वामी ज्ञान दर्शन वीर्यादि अनत उत्तम गुणोना आगर के० निधान छे, मुनिनुं मुनिपणु कायम राखवा मुनिओना भाव जीवन छे अने मुनि लोकोने शुद्धात्म तत्वमा विशेषे विश्राम आपवावाला छे वली सागर स्वामी सकल परद्रव्यनी कामना रहित छे, ज्ञान दर्शनादि स्वभाविक अनंत कार्य सकल समय

सहज स्वभावे करे छे अने ते कार्यगुण प्रगटपणे थयो ते ज्ञान दर्शन चरण वीर्यादि अनंत कार्यगुण समुदायना समकाले अनंत आनंद भोगी छो आत्माना प्रति प्रदेशमां निज कार्य करवाना छति पर्यायो अनंता छे जेम जाणवा रूप कार्य करवाना छती पर्यायो अनंता, देखवा रूप कार्य करवाना छती पर्यायो अनंता, आचरण रमण रूप कार्य करवाना छती पर्यायो अनंता, वीर्य अचल राखवा रूप कार्य करवाना छती पर्यायो अनंता तेम ए आदि अनंत कार्य करवाना अनंत गुणना छती पर्याय प्रति प्रदेशे अनंतानंता छे ते छती पर्याय रूप गुण करण प्रयोगे विना प्रयासे दर समय अनंत स्वस्वकार्य थयां करे छे ते कार्यनी व्यक्ति अने शक्तिना पण भोगी छो. हे भवि जीवो! एवा सुख करवावाला परम समाधिना दातार जिनेश्वरने सेवो–तेमना गुण गावो जेथी पोतानी सहज पूर्ण परमानंद पदवी पामो ॥ १ ॥

सामान्य स्वभाव स्वपरना, द्रव्यादि चतुष्टय धरना ॥
देखे दरशन रचनाये, निज वीर्य अनंत सहाये ॥ सु० ॥२ ॥

अर्थः—अस्तित्वादि स्वपर द्रव्यना सामान्य स्वभावने अने द्रव्य क्षेत्र काल भाव एहवा निजात्म स्वभावने निज अनंत वीर्य सहाय वडे दर्शन गुणे करी सकल समय पूरण पदे देखो छो ॥ २ ॥

तेहने ते जाणे नाण, ए धर्म विशेष पहाण ॥ सावय वीकारज शक्ते, अविभागी पर्यय व्यक्ते ॥ सु० ॥ ३ ॥

अर्थः—एमज स्वपर सामान्य विशेष स्वभावने अने स्वपर द्रव्यादिकने विशेष प्रधान ज्ञान गुणे करीने पूर्ण पर्याये सकल समय जाणो छो एटले निर्मल केवलज्ञान रूप छो. प्रति प्रदेशे सर्वे कार्य करवाना करणपणे छती पर्यायो अनंतानंत रह्या छे ते सावयव के० एक समय प्रवर्त्तीमां आवीर्भावे उपजे अने तीरोभावे विणसे वली बीजा समये आवीर्भावे थएला पर्यायो आवीर्भावथी विणसी तीरोभावे

जाय (उपजे) एम दर समये जूदा जूदा कार्य करवाने माटे तेज पर्यायो आवीर्भावे तिरोभावे उपज्या विणस्या करे तेथी ते पर्यायोने सावयव पण कहीये अने समय समय जूदा कार्य करे तेने वीकारज शक्ति कहीए पण ते सर्वे छती पर्यायो अविभागी छे अने कार्य प्रयोजने एटले उर्ध्वताए सामर्थ्यपणे आवे पण ते सर्वे छती प्रजायो सत्तापणे सदा ध्रुव छे नवे नवे समये ज्ञेयोनी नवी नवी वर्त्तना थाय ते अनंतानती वर्त्तनाने जाणे माटे जूदा जूदा कार्यने जाणे ते वीकारज शक्ति कहिये बीजी रीते सावयव के० अविभागी भिन्न भिन्न पर्याय माटे आत्म अंगना अवयवो पण कहीये ॥३॥

जे कारण कारज भावे, वरते पर्याय प्रभावे ॥ प्रति समये व्यय उत्पादि, ज्ञेयादिक अनुगत सादि ॥ सु० ॥ ४ ॥

अर्थ.—छती पर्यायो प्रवर्त्ते तेने कारण कहीए अने कारण होय ते अवश्य कार्य करे अने प्रजाय पोताना प्रभावे वर्त्ते तेथी प्रति समय व्यय उत्पाद् एटले कारणपणेथी कार्यपणे उपजे अने कार्य करी पाछा कारण पणे उपजे तेथी दर समय व्यय उत्पाद् थया करे अने नवा नवा ज्ञेयने जाणनाथी तेनो सादि पण कहीए उक्तच—"परिगमन पज्जाओ" एटले प्रजायो एक कार्य रुडी रीते करी बीजा कार्यमां जाय, एक कार्यपणे उपजेला त्याथी विणसी बीजा कार्यपणे उपजे तेमज दर समय प्रजाय प्रवाह जाणवो ॥ ४ ॥

अविभागी पर्यव भेद, समवायी कार्यना गेह ॥ जे नित्य त्रिकाली अनत, तसु ज्ञायक भाव महंत ॥ सु० ॥ ५ ॥

अर्थ—प्रति प्रदेशे अविभागी जे छती पर्याय रह्या छे ते आत्माथी अभेदपणे समवाय संबंधे छे अनादि संबंधे पण कहिए अने ते प्रजायोने सर्वेसमय कार्य समवाय एटले कार्य संबध छे एटले ते कार्यना घर छे ते अविभागी पर्यायो नित्य छे, त्रिकाली छे, अखंड छे, तेमाथी

एक पर्याय पण कोई काले घटे वधे नहीं तेथी अक्षय छे, स्वतंत्र छे. अप्रयासे कार्यकारी छे एटले विना प्रयासे पण सहज स्वभाविक कार्य थयां करे. तेमाना ज्ञानना अनंत पर्यायोमां परम ज्ञायकभाव रह्यो छे ते पर्यायो वडे पोते पोताने अने अन्य द्रव्यना गुण पर्यायोने जाणवानी महत शक्ति रही छे ते शक्ति प्रभुजीने तो व्यक्ति पणे थई तेथी ते ज्ञानादिक अनंत गुणोना ज्ञाता भोक्ता छे ॥ ५ ॥

जे नित्य अनित्य स्वभाव, ते देखे दर्शन भाव ॥ सामान्य विशेषनो पिंड, द्रव्यार्थिक वस्तु प्रचंड ॥ सु० ॥ ६ ॥

अर्थः—वस्तुना जे नित्यानित्य स्वभाव तेने प्रभुजी दर्शनभावे करी देखे छे तेथी प्रभु सामान्य अने विशेष लक्षणना एकत्व पिंड आत्म द्रव्य छे ते द्रव्यपणे सदा छतीवंत छे अने प्रचंड के० महा-वीर्यवंत (बलवंत) वस्तु छे ॥ ६ ॥

ईम केवल दरशन नाण, सामान्य विशेषनो भाण ॥ थीगुण आतम श्रद्धाए, चरणादिक तसु व्यवसाए ॥ सु० ॥ ७ ॥

अर्थः—एम प्रभुजी केवलदर्शन अने केवलज्ञानवंत छो एटले वस्तुना सामान्य विशेष भाव प्रकाश करवावाला सूर्य छो. उपयोगमयी आत्मा छे अने ते उपयोग सामान्य विशेष बे प्रकारे छे उक्तंच "उव-ओगमओ अप्पा, उवओगो दुविअप्पो" एटले आत्मा दर्शन ज्ञान-मयी छे अने चरणादिक तसु व्यवसाए के० ज्ञान उपयोग अने दर्शन उपयोगमां थिरताए रमण तेनुंज नाम चारित्र कहीए वली ज्ञान दर्शनना अनंत पर्यायमां थिरताए उपयोग रमे तिहां रागादि विभावनो अवकाश नथी माटे परम वीतरागताए शुद्धात्मभावमां थिरता तेनेज चारित्र कहिए अने आदि शब्दे उपयोगमां आत्म अग अने आत्म गुणपर्याय अबाधितपणे रहे तेने अव्याबाध गुण कहीए, उपयोगने थिर अडोल अकंप राखवावाली निज शक्तिने

अचल अनत वीर्य कहीए, शुद्ध उपयोगमा थिर रहेलो आत्मा परम समाधि जोगवे ठे माटे तेने परम समाधि कहिए, कोई प्रकारनो जय आवे नहीं माटे निर्जय कहिए वली कोई प्रकारे आकुलता आवे नहीं माटे निराकुल कहीए, उपयोगमां अन्य प्रवृत्ति नथी माटे परम निवृत्ति कहीए, शुद्धोपयोगवंतने परतत्रता नथी माटे परम स्वतंत्रता कहीए, शुद्धोपयोगी आत्म गुणमाहे परम तृप्तिवंत ठे माटे परम तप कहीए, थिर उपयोगवत स्वपरद्रव्य जाव प्राणनी हाणी करतो नथी तेथी परम क्षमा कहीए वली सर्वे जीवोनी सत्ता समान जाणे ठे कोईने हीण अधिक जाणतो नथी माटे परममार्दव कहीए, अहींआ स्वपर जीवने वचवुं ठगवुं नथी वक्रता नथी माटे परम आर्यव कहीए, अहींआ परद्रव्यनी कामना इछा मूर्छा ग्राहकता व्यापकता रक्षकता स्पृहा नथी माटे परम सुत्ति कहीए एम सहज शुद्धात्म अनंत गुणो उपयोगमाज जासे ठे ए प्रमाणे व्यवसाय के० ज्ञानदर्शन शुद्धोपयोग व्यापारमा चरणादिक अनंत गुणो आव्या जाणवा ॥ ७ ॥

द्रव्य जेह विशेष परिणामी, ते कहीए पज्जव नामी ॥
ठती सामर्थ्य दुजेदे, पर्याय विशेष निवेदे ॥ सु० ॥ ८ ॥

अर्थ –द्रव्य पोते सामान्य ठता विशेष परिणामी ठे एटले एक द्रव्यमा अनत स्वपर्याय अने अनंत स्वपर्यायमा एक द्रव्यपणु माटे पर्यायनामी कहीए, उक्तंच –" ॥ गुणाणमासउं दवं, एक दवसिया गुणा ॥ लख्खण पज्जवाणतु, उजउं निस्सिहिआ जवे " ॥ एटले अनत पर्याय लक्षणवत द्रव्य जाणवो ते पर्यायो ठती अने सामर्थ्य एम बे जेदे ठे, ठती पर्याय क्षेत्र विस्तारपणे सर्वे प्रदेशमा अनंतानता रह्या ठे अने ते स्वकाले सामर्थ्य पणे उर्द्धताए आवी कार्य करे ठे एटले तिर्यक् क्षेत्र विस्तारपणे जे रह्या ते ठती पर्याय कहीए अने स्वकाले उर्द्धताए आवी आप आपणु कार्य करे ते सामर्थ्य पर्याय

कहीए एम विशेष पर्यायने निवेदे के० विशेषे जोगवे छे ॥ ८ ॥

तसु रमणे जोगनो वृंद, अप्रयासी पूर्णानंद ॥ प्रगटी जस शक्ति अनंती, निज कारज वृत्ति स्वतंती ॥ सु० ॥ ए ॥

अर्थः—ते अनंत स्व शुद्ध रम्य पर्यायमां रमण तेथी दरेक समय समकाले अनंतानंदनो जोग छे. अने ते पर्याय प्रयुंजवामा अने जोग जोगववामां कोई प्रकारे कोई वखत पण प्रयास करवो पडतो नथी पण सहेजे पर्याय प्रवर्त्ते छे अने सहेजे जोग आनद उपजे छे एवी जेने अनंती शक्ति स्वतंत्र प्रगट थई छे तेथी सकल गुणोनी आप आपणा कार्योनी प्रवर्त्ती सहज स्वजावे स्वतत्रपणे थाय छे ॥ ए ॥

गुण द्रव्य सामान्य स्वजावी, तीरथपती त्यक्त विजावी। प्रजु आणा जक्ते लीन, तिणे देवचंद्र पद कीन ॥ सु०॥१०॥

अर्थः—प्रजु, गुणे अने द्रव्ये सामान्य स्वजावी छे चतुर्विधि संघने तारवानो मार्ग स्थापन करवावाला तेथी तीर्थपती. जेणे सकल विजाव तज्यो छे एम छतां पण उदय प्रजावे जवि जीवोने देशना आपी तारे छे पण तेनुं ममत्व करता नथी जे जीव प्रजुजीनी आणा सेववामां लयलीन थयो तेणे देवमां चंद्रमा समान एवुं पोतानु सिद्धि पद प्रगट कर्युं, करे छे अने करशे ॥ १० ॥

॥ अथ चतुर्थ श्री महाजस जिन स्तवन ॥

आत्म प्रदेश रंगथल अनुपम, सम्यकदर्शन रगरे, निज सुखके सधैया ॥ तुं तो निज गुण खेल वसंतरे ॥ निज० ॥ पर परिणति चिंता तजी निजमें, ज्ञान सखाके संगरे॥ नि०॥१

अर्थ.—आत्माना असंख्याता प्रदेशमां रहेली ज्ञानदर्शन चरण वीर्यादि अनंत आत्म शक्ति ते अनंत आनद आपवावाली छे माटे

रंग स्थानक तेनेज कहीए के ज्यां अनंत आनंद आवे अने जे विषयेनो आनंद ते तो अथिर परतंत्र बहु रोगी अने कर्मबंधनुं कारण छे तेमा विषयरोग वशे अज्ञानीने जोगवुद्धिए आनंद मालूम पडे छे पण आत्म सत्ताजूमिमा रहेलो आत्मीक आनंद तेने एहवा उपचरीत आनंदनी उपमा लागी शके नहीं एवो अनुपम निरुपचरीत परम आणंद छे पण ज्यारे जीव मिथ्यात्व बुद्धिए थयेली विपर्यास वासना तजे अने सम्यक्दर्शन प्रगट थाय तोज ते आणंद लई शके तो सम्यक्दर्शने करी रंग आवे माटे सम्यक्दर्शन सहित आत्म सिद्धि सुखना दातार श्री महाजस जिनेश्वर महाजसवंतने आत्म सिद्धि सुखना साधक जव्यजीवो सेवो-ध्यावो हे शाश्वतसुख अजिलाषी! जेमा अनंत पर्यायनो वास छे एहवा आत्मगुण रुप वसतमा निरंतर खेलो पुद्‌गल परिणतिथी कोई काले पण सुख होय नहीं केमके ते अनंत वर्गणाथी निपजेली माटे विनाशीक अने आपणी इछाए रहे नहीं, आपणी इछाए वर्ते नहीं एम छता पण मूढ जीव ए माहे ज्रमथी सुख मानी उलटो प्रयास करी फोगट श्रम खेद जोगवे छे एमा उमेद करवाथी नाउमेदपणु थाय, ए माहे सुखनी आशा राखवाथी निराशपणुं आवे माटे पर परिणतिनी आशा तजी शुद्ध दर्शन ज्ञान चरणमय निजात्म परिणतिमा खेलो परपरिणतिनु चिंतवन ते क्लेश मात्र छे माटे ते तजी ज्ञानमित्र साथे अखंड स्वतंत्र शुद्धात्म परिणतिमा खेलो तेथीज एकांतीक अत्यंतीक आनंद उपजे अहिंआ कांई क्लेश के परतंत्रता छे नहीं ॥ १ ॥

वास बरास सुरुचि केशर घन, छाटो परम प्रमोद रे ॥नि०
आतम रमण गुलालकी लाली, साधक शक्ति विनोदरे ॥
निज० ॥ ७ ॥

अर्थ —शुद्धात्म परिणतिमा उपयोगनो वास करवो ते रूप बरासनी शितल सुवासना ल्यो अने शुद्धात्म गुण समुदायमा रूडी परम रूचि

रूप जथावंध केशर परमानंदे निज अंगे छांटो अने रम्य आत्म गुणमां रमण रींझ रक्त परिणाम रूप गुलालनी लाली आत्म अंगे थढे तेथी साधक जीवने आपणी अनंत स्वतंत्र शक्तिनो विशेष प्रमोद हर्ष उपजे ॥ २ ॥

ध्यान सुधारस पान मगनता, भोजन सहज स्वभोगरे ॥ ॥ निज० ॥ रिंझ एकत्त्वता तानमें वाजे, वाजिंत्र सनमुख योगरे ॥ निज० ॥ ३ ॥

अर्थः—देहिक कार्यप्रवृत्तियी मन वचन कायाना जोगने निवारी निवृत्ति लेई उपयोगने एक शुद्धात्म ध्येयमां लाववो, थिर अडोल अकंप करवो तेनुं नाम ध्यान कहीए. ते ध्यान रूप अमृत पानथी मग्न थवुं ते परम मग्नता जाणवी अने आत्म गुणोना सहज सुभोग रूप भोजन जाणवु. परमानंद स्वगुण परिणतिमां रींझ तथा आत्म गुणना अनंत पर्यायमां एकता रूप अखंड धाराए तान लाग्युं ते तान कहीए अने मन वचन काय योगनी प्रवर्त्ती अन्य कार्यथी तूटी संजम कार्य सन्मुख लागी ते योग सन्मुख रूप वाजित्र कहीए ॥ ३ ॥

शुक्लध्यान होरीकी ज्वाला, जाले कर्म कठोररे ॥ निज० शेष प्रकृति दल खिरण निर्झरा, भस्म खेल अति जोररे ॥ निज० ॥ ४ ॥

अर्थः—सकल द्रव्यना द्रव्य गुण पर्याय लक्षण भिन्न भिन्न विचारी जे जेना ते तेनामां समावी पर लक्षणथी परम उदासिन्न थवुं ते पृथक्त्ववितर्क सपर विचार नामा शुक्लध्याननो पहेलो पायो अने आपणा अनत पर्यायो गुणोमां अने गुणो द्रव्यमा संक्रमावी अभेद निर्विकल्प उज्वल समयानंतर अखड ध्यानरुप शुक्लध्यानना एकत्ववितर्क अपर विचार नामा बीजा पायानी ज्वाजल्य ज्योति रुप होलीनी ज्वालामा कर्मरुप कठोर काष्ट बाली भस्म करी

खाल उमावी चौदमा गुणगाणानो अंते शेष बार तेर प्रकृति दल खेरववा रुप निर्झरा ते व्युछिन्नक्रिया निवृत्तिरुप जसमखेल अति जोरे करी सकल कर्म पापमल धोई शुद्ध ब्रह्मरुप परम सिद्धि पामे ॥४

देव महाजस गुण अवलंबन, निर्जय परिणति व्यक्तिरे ॥ निज० ॥ ज्ञाने ध्याने अति बहुमाने, साधे मुनि निज शक्तिरे ॥ निज० ॥ ५ ॥

अर्थः—श्री महाजस देवना पूर्ण निर्मल गुण जाणी तेज अवलंबने अने गुणध्याने अने अति सन्माने जवि जीवो निर्जयपणे आत्मगुणनी आत्म परिणतिनी पूर्ण प्रगटता पामे मुनिओ एम निज शुद्धात्म शक्ति साधे ॥ ५ ॥

सकल अजोग अलेस असंगत, नाहिं होवे सिध्द रे ॥ निज० ॥ देवचंद्र आणामें खेले, उत्तम थुंहिं प्रसिध्द रे ॥निए

अर्थः—अने मन वचन काया तथा अन्य सर्वे पुद्गल योग रहित तथा लेस्या रहित अने पर संग रहित होय एटले जोगादिकथी नाही धोई सिद्ध थई शिव महेलमा शिववधु संगे सादि अनंत स्वतंत्र आनंद जोगवे देवचद्र मुनि कहे छे के जे जिनेश्वरनी शुद्ध स्याद्वाद आणामा खेलवु तेज उत्तम सिद्धि सुख पामवानुं उत्तम प्रसिद्ध साधन छे ॥ ६ ॥



॥ अथ पंचम श्री विमलजिन स्तवन ॥

॥ राग—कडखो ॥

धन्य! तुं धन्य तुं! धन्य! जिनराज तुं, धन्य! तुज शक्ति व्यक्ति सनूरी ॥ कार्य कारण दशा सहज उपगारता, शुद्ध कर्तृत्व परिणाम पूरी ॥ धन्य० ॥ १ ॥

अर्थः—हे ! श्री विमलनाथ स्वामी तुं धन्य ! के मोहादिक सकल कर्म शत्रुने जीती आत्म सत्ताभूमि पोताने तावे करी अखड राज्य भोगवो छो वली ज्ञान दर्शन चरण वीर्यादिक ताहरूं धन छे वली धन्य ! तमने के हमारा सरखा रक जीवोने सहज आत्म शुद्धतारूप धन दर्शावी धनवंत करो छो ए आदि अनेक प्रकारे तमने धन्य! छे धन्य ! तमारी शक्ति के जे महा तेजवंत व्यक्त (प्रगट) थई छे ज्ञानादिक सकल गुणकार्यरूप कार्यदशा तथा ते कार्यना कारण रूप छती पर्यायनी प्रवृत्ती एम कार्य कारण दशा ए बन्ने तमारी तमारामां अभेदपणे छे वली हमारा पण आत्म सिद्धि कार्यना परम कारण तमेज छो वली प्रभुजी कारण विना सहज स्वभावे भवि जीवोने उपकार करे छे ज्ञानादि अनेक कार्यनी कर्तृती पूर्ण पर्याये अने पूर्ण परिणामे करो छो एटले परपरिणामीकता टाली शुद्ध सद्भाव परिणामे आत्मीक अनत कार्य करो छो ॥ १ ॥

आत्म प्रभाव प्रतिभास कारज दशा, ज्ञान अविभागि परजय प्रवृत्ते ॥ एम गुण सर्व निज कार्य साधे प्रगट, ज्ञेय दृश्यादि कारण निमित्ते ॥ धन्य० ॥ २ ॥

अर्थः—हे प्रभुजी ! तमने पोतानाज प्रभावथी स्वसिद्धि रूप कार्य सिद्ध करवुं भास्युं तेथी ज्ञानादिकना छती अविभागि पर्यायो कार्य सन्मुख प्रवर्त्त्या एटले समस्त गुणोना छती अविभागी पर्यायो आप

आपणा कार्य सन्मुख प्रवर्त्यां तेथी प्रगटपणे कार्य सिद्ध थयुं अने ज्ञेयनुं जाणवु तथा देखवुं ते निमित्त कारण मात्र छे पण उपादान पणे तो पोताना छती पर्यायो सकल स्वस्वकार्यमां प्रवर्त्तवाथी कार्य सिद्धि थाय छे एम हमारा पण छती पर्यायो पर प्रवर्त्तीमा जोडायेला छे त्यायी तोडी हमारा ज्ञानादि आत्म कार्य सन्मुख प्रवर्त्तावीशुं तो हमारू पण कार्य सिद्ध थशे एमा कइ शंका नथी ॥ १ ॥

दास बहु मान भासन रमण एकता, प्रभु गुणालंबनी शुद्ध थाये ॥ बंधना हेतु रागादि तुज गुण रसी, तेह साधक अवस्था उपाये ॥ धन्य तु० ॥ ३ ॥

अर्थ –ताहरी आज्ञा सेववावाला ताहरा दासने ताहरा गुणोनो परम आदर बहु सन्मान आववाथी ताहरा गुणो यथार्थ भासे अने रमण पण तमारा शुद्ध गुणोमां थाय अने साधकना परिणाम विषयादिक पुद्गल गुणोमां जोडायला ते त्यांथी तुटी ताहरा शुद्ध गुणोमां एकत्वपणे रमे ते साधक प्रभु गुण आलंबनी थई पोताना ज्ञानादिक गुणो राग रहित करी शुद्ध थाय अने कर्मबंधना हेतु रागादि तथा मन इंद्रियो आदि पर गुण रसी हता ते प्रभु गुण रसी थई पोतानी शुद्ध सिद्धिनी साधक दशा उपजावे एटले बंध हेतुता टली मोक्ष हेतु थाय ॥ ३ ॥

कर्म जंजाल युजनकरण योग जे, स्वामी भक्ति रम्या थिर समाधि ॥ दान तप शील व्रत नाथ आणा विना, थईय बाधक करे भव उपाधि ॥ धन्य० ॥ ४ ॥

अर्थ –पंच इंद्रियो अने मनवचन कायाना योग परद्रव्यमा रक्त थई कर्म जंजाल निपजावे छे ज्यांसुधी प्रभुनी आज्ञा जाणी आदरी नथी त्यांसुधी आत्मा कर्मचेतनापणे अने कर्मफलचेतनापणे परिणम्यो थको पुद्गल क्रियाथी सुख थाय एटले पुद्गल त्याग ग्रहण

प्रवर्त्तिथी सुख थाय छे एम जाणी त्रणे योगो अने पंचे इंद्रिय पुद्गल क्रियामां प्रयुजे ते वडे आठे कर्मनी जाल गुंथी पोतेज तेमां फसायो बंधायो रहे पण ज्यारे प्रभुनी आज्ञा जाणे सन्माने आदरे त्यारे ते पंचेंद्रियो अने त्रणे योग थिर समाधिमां रमे अने प्रभुनी आज्ञा बहारनु दान शील तप व्रतादि भावधर्म विना एकांते इहलोक आहारादि अर्थे, परलोक देवादि अर्थे, अपमान टालवा अने मान मेलववा अर्थे जे जे अनुष्ठानो आदरे ते ते कर्मबंधनां कारण थई भव उपाधिने वधारनार थाय ॥ ४ ॥

सकल परदेश समकाल सवि कार्यता, करण सहकार कर्तृत्व भावो ॥ द्रव्य परदेश पर्याय आगमपणे, अचल असहाय अक्रिय दावो ॥ धन्य० ॥ ५ ॥

अर्थः– प्रभुने सर्वे समय समकाले सर्वे कार्यनी कारणताना करण रुपे छती अविभागी पर्याय अनंता छे ते छतीपर्यायरूप करणनी प्रवर्त्ति रुप कारणनी सहाये सर्वे कार्य समकाले थया करे छे पण द्रव्यना प्रदेशरूप पर्याय आगममां कह्या प्रमाणे अचल असहाय अने अक्रियपणे छे एटले प्रदेश कांई कार्य करता नथी पण प्रदेशने आधारे छती अविभागी पर्यायो रह्या तेज कार्य करवाना कारणपणे प्रवर्त्ते छे ॥ ५॥

उत्पति नाश ध्रुव सर्वदा सर्वनी, षट्गुणी हानीवृद्धि अन्यूनो ॥ अस्ति नास्तित्व सत्ता अनादि थको, परिणमन भावथी नहीं अजूनो ॥ धन्य० ॥ ६ ॥

अर्थः–ते छती पर्यायो सर्वे सर्वदा कार्यपणे उपजे अने कारण पणेथी विणसे वली कार्यपणेथी विणसी कारणपणे उपजे वली आवीर्भावपणे उपजे अने तीरोभावपणेथी विणसे वली तीरोभावपणे उपजे अने आवीर्भावपणेथी विणसे वली खट्गुणी वृद्धि हाणी पणे उपजे विणसे तेनी विगत.–

ठती पर्यायमाथी जे प्रदेशे सामर्थ्यजावे अनंत पर्यायो आव्या ठे तेथी अन्य प्रदेशे तेज समये अनंतगुणा पर्याय सामर्थ्यपणे आवे वली तेथी अन्य प्रदेशे तेज समये असंख्यातगुणा पर्यायो सामर्थ्यपणे आवे–उपजे वली तेज समये तेथी अन्य प्रदेशे सख्यातगुणा पर्याय सामर्थ्यपणे उपजे वली तेज समये अन्य प्रदेशे अनंतमे जागे पर्याय सामर्थ्यपणे उपजे वली तेज समये अन्य प्रदेशे असंख्यातमे जागे पर्यायो सामर्थ्यपणे उपजे वली तेज समय अन्य प्रदेशे संख्यातमे जागे पर्यायो सामर्थ्यपणे उपजे एज प्रमाणे ठए जेदे सामर्थ्यपणेथी विणसे अने तीरोजावे उपजे एम खट्गुणी हाणी अने वृद्धिनो उत्पाद् अने व्यय एक समय समकाले थाय ज्या हाणीनो व्यय त्या वृद्धिनो उत्पाद् अने ज्या वृद्धिनो व्यय त्यां हाणीनो उत्पाद् एम प्रदेश आश्रित तिर्जकताए हाणी वृद्धि समजवी हवे समय आश्रित उर्ऊताए खट्गुण हाणीवृद्धि कहीए ठीए तेनी विगत–

प्रथम समय जे प्रदेशे अनंता पर्यायनो सामर्थ्यपणे उत्पाद् हतो अने तीरोपणानो व्यय हतो तेज प्रदेशे अन्य समये तेथी अनंतगुणा पर्यायनो सामर्थ्यपणानो उत्पाद् अने तीरोपणे व्यय वली तेथी अन्य समये तेज़ प्रदेशे तेथी असंख्यातगुणा पर्यायनो सामर्थ्यपणे उत्पाद् अने तीरोपणे व्यय वली तेथी अन्य समये तेज प्रदेशे तेथी सख्यात गुणा पर्यायनो सामर्थ्यपणे उत्पाद् अने तीरोपणे व्यय वली तेथी अन्य समये तेज प्रदेशे तेथी अनतमे जागे पर्यायनो सामर्थ्यपणे उत्पाद् अने तीरोपणे व्यय वली तेथी अन्य समये तेज प्रदेशे तेथी असंख्यातमे जागे पर्यायनो सामर्थ्यपणे उत्पाद् अने तीरोपणे व्यय वली तेथी अन्य समये तेज प्रदेशे तेथी सख्यातमे जागे पर्यायनो सामर्थ्यपणे उत्पाद् अने तीरोपणे व्यय थाय एम समय आश्रित पण खट्गुण हाणीवृद्धि जाणवी ते उर्ऊताए हाणीवृद्धि कहीए एम सिद्धातमा विविध प्रकारे हाणीवृद्धि कही ठे ते सिद्धातोर्थ

समजी लेवी. ग्रंथ गौरव माटे अहिंआं विशेष लख्युं नथी अहिंआं खट्गुण हाणीवृद्धि कही ते समासथी समजवी पण अनंताना अनंत, असंख्याताना असंख्यात अने संख्याताना संख्यात भेद छे ते सर्वे मलीने अनंतगुण हाणिवृद्धि समजवी.

ए खट्गुण हाणीवृद्धि रुप परिणमन कह्युं तेम सर्वे समय अस्ति अस्तिरुप परिणमे, नास्ति नास्तिरुप परिणमे, ज्ञानपर्याय ज्ञानपणे, दर्शनपर्याय दर्शनपणे, वर्णपर्याय वर्णपणे, गंधपर्याय गंधपणे ए आदि जे जे द्रव्यमा जे जे सामान्य विशेष स्वभाव होय ते ते सर्वे समय ते ते रुपेज परिणमे. एम परिणमन धर्म अनादिथी सर्व द्रव्यमां छे कांई नवो थतो नथी अने जूनो मटतो नथी पण नवि नवि स्वगुण परिणतिए परिणमे. यतः भगवई अंगेः—" अत्थि ते अत्थितं परिणमयी नत्थि ते नत्थितं परिणमयी " एटले कोई द्रव्य स्वस्वरुप अगर स्वस्वभाव छोडे नहीं अने अन्य स्वभावने ग्रहे नहीं पण मिथ्यात्वी वहिरात्मा जीवनी द्रष्टी आत्मस्वभाव वाहिर वर्त्ते छे तेथी पोताना शुद्ध परिणमन तरफ द्रष्टी विना ते शुद्ध भावने जाणी आदरी शकतो नथी एटलेज पुद्गल परिणतिमां पोतानुं कार्य मानी ज्ञान दर्शन चरण वीर्यादि गुणोने पुद्गल परिणतिमां रोके छे तेथी स्वगुणो अवरायी चल अने मलिन थई शुद्ध स्वगुण कार्य करी शकता नथी तेथी शुद्ध स्वतंत्र परमाणंदनो भोग केम लेई शकाय ? अर्थात् नज लेई शकाय माटे विमल जिनेश्वरनां विमल वचनो हृदयमां धारी परम सन्माने प्रभु आलंबने वर्त्ते ते सकल दुःखथी निवृत्ति परमाणंद प्राप्त करे वली सर्वे द्रव्यने खट्गुण हाणी वृद्धिमां कोई समय पण न्यूनपणुं के अधिकापणुं थतुं नथी. द्रव्यमां अगुरुलघुनुं एक अखंड चक्र छे ते सर्वे समय परिणमे—फरे प्रदेश गते हाणी वृद्धि कहेवाय पण द्रव्य स्वभावे तो गुरु लघु थतो नथी तेथी अगुरुलघु नामें ए गुण जाणवो. पंचास्ति द्रव्यने स्वद्रव्ये स्वक्षेत्रे स्वकाले अने स्वभावे

अस्तिपणुं छे अने परद्रव्य परक्षेत्र परकाल अने परभाव रुप थवानी सत्ता स्वद्रव्यादिकमां नथी एटले परद्रव्य परक्षेत्र परकाल अने परभाव रुप न थवा देवानी सत्ता द्रव्यमा छे तेनेज नास्तिस्वभाव कहीए एम सदा स्वद्रव्यादिके रहेवु ते अस्तिस्वभाव अने परद्रव्यादिके थवानो स्वभाव पोतामा नहीं ते नास्तिस्वभाव कहीए. ते नास्तित्वस्वभाव पण द्रव्यमा छतो छे अस्तित्वस्वभाव सर्वे समय स्वद्रव्यादिकने छतीपणे राखे अने नास्तिस्वभाव ते परद्रव्यादिकपणे न थवा दे ए बने स्वभाव द्रव्यना द्रव्यथी अभेदपणे जाणवा. एम नित्य स्वभाव, अनित्यस्वभाव, भेदस्वभाव, अभेदस्वभाव, भव्यस्वभाव, अभव्यस्वभाव, एम द्रव्यना सामान्य विशेषादि अनेक स्वभाव द्रव्यमा द्रव्यथी अभेदपणे छे तेमाथी मुख्यपणे कोई कोई ठेकाणे ओछा अधिका मुख्य स्वभाव दर्शाव्या छे पण द्रव्य अनंत स्वभावी छे ते सर्वे स्वभावना परिणमन भाव सहित द्रव्य अनादिनो छे पण नवो परिणमन भावी थयो नथी सर्वे समय आप आपणी परिणामीकताने कोई द्रव्य के कोई गुणो के कोई पर्यायो चूके नहीं, कोईनी परिणामीकता कोईथी रोकाय नहीं माटे शुद्धात्म परिणामीकता अखंड जाणी निर्भय निराकुलपणे स्व छती पर्यायना अनंत स्वतंत्र आनंदमा मग्न रहेवु ज्यासुधी आत्म शुद्धतानु ज्ञान नथी त्यासुधी जीव विभावतामा रमी दुःखी रहे छे पण शुद्धात्म ज्ञान थया आदस्था पछी विभावतानो अंश रहे नहीं तो दुःख शाने होय ? माटे आत्मा पूर्ण स्वगुण पर्यायने जाणी परमानंद भोगी थाय माटे अवसर पामी प्रमाद छोडी शुद्ध सदागम सेवी परमानंद भोगी थवु एज उपदेश छे ॥ ६ ॥

ईणी परे विमल जिनराजनी विमलता, ध्यान मन मंदिरे जेह ध्यावे ॥ ध्यान पृथक्त्व सविकल्पता रंगथी, ध्यान एकत्व अविकल्प आवे ॥ ७ ॥

अर्थः—ए प्रमाणे विमल जिनेश्वरनी पूर्ण विमलता उलखी मन मंदिरमां विमलतानुं ध्यान ध्याय ते प्रत्येक द्रव्यना भिन्न भिन्न गुण पर्यायोना भिन्न भिन्न विचार रूप पृथक्त्ववितर्क नामा सविकल्प ध्यान रंगे करी करे तेज पुरुष स्वगुण पर्याय स्वद्रव्यथी अभेदपणे जाणे अने तेनेज एकत्वपणे विकल्प रहित शुद्ध शुक्लध्यान आवे पण जिन आज्ञाथी जे विमुख छे ते सूत्रना अभिप्राय जाण्या विना ध्येय केवो अने ध्यान विधि केवी तेने ते शु जाणे? अर्थात् नज जाणे. माटे सद्गुरु सगे रहि शुद्ध ध्येय अने शुद्ध ध्यान विधि जाणी शुक्ल-ध्यान माटे उद्यम परिणामी थवुं एटलेज घनघाती कर्मनो नाश करी शकाय ॥ ७ ॥

उक्तंच " जो जाणइ अरिहंते, दव्व गुण पज्जवंतेहिं ॥ सो जाणइ अप्पाणं, मोहो खलु जाहि तस्स लयं "

वीतरागी असंगी अनंगी प्रभु, नाण अप्रयास अविनाश धारी ॥ देवचंद्र शुध्द सत्ता रसी सेवतां, संपदा आत्म शोभा वधारी ॥ धन्य० ॥ ८ ॥

अर्थः—प्रभुने राग सर्वांशे नाश थयो छे अने पर द्रव्यादिकनो सग नथी तथा औदारिकादि पुद्गलीक विनाशीक अंग पण नथी तेथी ज्ञान दर्शन चरण अने वीर्यादि अनंत गुणो परम निर्मल अने थिर थया छे अने अंग रहित तथा पर संग रहित थया माटे ते गुणो मलिन थवाने निमित्त पण नथी अने जेना ज्ञानादि गुणो, विना-प्रयासे सहज स्वतत्रपणे सकल समय पूर्ण पर्याये प्रगटपणे वर्त्ते छे अने पोतानुं आत्म अग अने आत्मिक रिद्धि अनंतकालसुधी अक्षय अविनाशीपणे प्रगट सिद्धता पाम्या छे एहवा चारे निकायना देवोमां चंद्रमा समान शुद्ध सत्ता रसी प्रभुजीने शुद्ध सत्ता रसीउ थई सेवे ते स्वभावीक आत्मीक संपदा धारी थाय ॥ ८ ॥ सपूर्ण ॥

॥ अथ षष्ठम श्री सर्वानुभूति जिन स्तवन ॥

॥ जगजीवन जगवालहो ॥ ए देशी ॥

जग तारक प्रभु वीनवुं, विनतडी अवधाररे ॥ तुज दरशन विण हुं भम्यो, काल अनत अपाररे ॥ जग० ॥१॥

अर्थः–शुद्धात्म अनत गुण पर्यायनो सकल समय जेने अनुभव विलास छे एवा सर्वानुभूति नामा छठा तीर्थंकर जग जीवोना तारक तमारा आगल हु अरज करू तु ते माहरी अरज अवधारो तमारा सरखा उपकारीनी आणा अणजाणतो तमारा दर्शावेला जीवादिक नव पदार्थना भाव मने दृश्यो नहीं त्यांसुधी देहादिकनी ममताए ज्ञानावरणादिक आठ कर्म बांधी भव वनमा भूलो भटकी अनादि अनत अपार काल आज सुधी में बहु दु ख सह्यां ॥ १ ॥

सुहम निगोद भवे वस्यो, पुद्गल परिअट्ट अनंत रे ॥ अव्यवहारपणे भम्यो, खुल्लक भव अत्यंतरे ॥जग० ॥ २॥

अर्थ –सूक्ष्म निगोदमां अनंत पुद्गलपरावर्त्तन कर्या अने अनत कालसुधी व्यवहार राशीमा पण आव्यो नहीं. बलवंत पुरूषना एक श्वासोश्वासमां अढार वखत जन्म्यो अने सत्तर वखत मरण कर्युं एम खुल्लक भव अत रहित कर्या वली कषाय अने मरणानिक समुद्घातनी वेदना वारवार सही विश्राम न पाम्यो ॥ २ ॥

व्यवहारे पण तिरिय गते, ईग वण खंध असन्नीरे ॥ असंख्य परावर्त्तन थया, भमियो जीव अधन्नरे ॥ जग० ॥३

अर्थ –व्यवहार राशीमा आव्या पछी पण तिर्यंच गतिमा एकेंद्रिय वनस्पति अने असज्ञीपणामां असख्याता पुद्गलपरावर्त्तन कर्या एम मारा ज्ञान दर्शनादि निज धन विना अधन्न एहवो हुं नीचपणामा भम्यो ॥ ३ ॥

सूक्ष्म थावर चारमें, कालह चक्र असंख्यरे ॥ जन्म मरण बहुलां कर्यां, पुद्गल भोगनी कंखरे ॥ जग० ॥ ४ ॥

अर्थः–वली पृथ्वी, अप, तेउ अने वायु ए चार सूक्ष्म स्थावरमां असंख्याता कालचक्रसुधी उपज्यो मर्यो. एम पुद्गल भोगनी आकांक्षाए तथा आहारादि चार संज्ञा वशे अथाग जन्म मरण कर्यां॥४

ओघे बादर भावमें, बादर तरु पण इमरे ॥ पुद्गल अढी लागट वस्यो, नाम निगोदे प्रेमरे ॥ जग० ॥ ५ ॥

अर्थः–ओघे बादर भावमां एटले बादर निगोद साधारण अनंत काय वनस्पतिमां पण सरवाले अढी पुद्गलपरावर्त्तन सुधी लागलो भम्यो ॥ ५ ॥

स्थावर थूल परितमें, सीत्तर कोडाकोडिरे ॥ आथर भम्यो प्रभु नवि मिल्या, मिथ्या अविरती जोडिरे ॥ जग० ॥ ६ ॥

अर्थ–बादर प्रत्येक पंचे थावरमां सीत्तेर कोडाकोडी सागरोपम भम्यो पण तुम समान तारक दीनदयाल मल्यो नही तेथी मिथ्यात्व अने अविरती संगे रह्यो ॥ ६ ॥

विगलपणे लागट वस्यो, संखिज वास हजाररे ॥ बादर पज्ज वणस्सई, भू जल वायु मझाररे ॥ जग० ॥ ७ ॥

अनल विगल पज्जतमें, तस भव आयु प्रमाणरे ॥ शुद्ध तत्त्व प्राप्ति विना, भटक्यो नव नव ठाणरे ॥ जग० ॥ ८ ॥

अर्थ.–अपर्याप्ता विकलेंद्रियपणे लागलो संख्याता हजार वरस सुधी भम्यो अने बादर प्रत्येक पर्याप्ता वनस्पति तथा पृथ्वी अप अने वायुमां तथा अग्नि तथा पर्याप्ता विकलेन्द्रियमां ते ते भवना आयु प्रमाणमां शुद्ध देव, शुद्ध गुरु, शुद्ध धर्मनी प्राप्ति विना नवे नवे स्थानके भटक्यो ॥ ८ ॥

साधिक सागर सहस दो, जोगवीयो तस जावेरे ॥ एक सहस साधिक दधी, पचेंद्रि पद दावेरे ॥ जग० ॥ ए ॥

अर्थ --सरवाले बे हजार सागरोपमथी काईक अधिक ते जावने जोगव्यो एक हजार सागरोपमथी काईक अधिक पंचेंद्रियपणामां जन्म्यो

पर परिणति रागीपणे, पर रस रंगे रक्तरे ॥ पर ग्राहक रक्षकपणे, पर जोगे आशक्तरे ॥ जग० ॥ १० ॥

अर्थ --पुद्गल परिणतिना रागीपणे, पुद्गल परिणति रस रींझे रक्त थईने, पुद्गल परिणति ग्रहणताए तथा परपरिणति रक्षण प्रवृत्तिए, परपरिणति जोग जोगववानी आशक्ती लोलुपताए शुद्धात्म तत्त्व दर्युं नहीं तेथी एवा भ्रमण कर्यां ॥ १० ॥

शुध्द स्वजाति तत्त्वने, बहुमाने तल्लीनरे ॥ ते विजाती रसता तजी, स्वस्वरूप रस पीनरे ॥ जग० ॥ ११ ॥

अर्थ --जे पुरुष शुद्ध स्वजाती तत्त्व के० आत्म जातीथी उपन्या जे शुद्ध ज्ञान दर्शन चरण सुख वीर्यादिक सार तत्त्व तेनो रसीउ थई तत्त्वबहुमाने तत्त्वमां लीन थयो ते विजाती के० पुद्गलथी उपन्या वर्ण गंध रस स्पर्श आकार शब्द उद्योत कान्ती छाया प्रभा लोही मांस वीर्य त्वचा रत्न मणि माणेक सुवर्ण रूपुं देव देवी नर नारी तिर्यंच सतान कुटुंब औदारिकशक्ति वैक्रियशक्ति आहारकशक्ति तैजसशक्ति कार्मणशक्ति ए आदि जे जे पुद्गलोथी उपजे छे ते सर्वे पुद्गल जाती एटले आत्माने ए विजाती छे ते सकल विजातीना रस आस्वादने तजे ते पोताना ज्ञान वीर्यादि शुद्ध स्वस्वरूप रसे पुष्ट थाय एटले सकल कर्म अरि नाश करवानी उत्कृष्ट शक्ति पामे अने ज्ञानादि स्वगुणोमा अचल वीर्य रूप परम स्थिरता पामे ॥ ११ ॥

श्री सर्वानुभूति जिनेश्वरू, तारक लायक देवरे ॥ तुज चरणे शरणे रह्यो, टले अनादि कुटेव रे ॥ जग० ॥ १२ ॥

अर्थः—श्री सर्वानुभूति जिनेश्वर तेज भवि जीवोने तारवा लायक देव छे. जे भव्य तमारुं चरण शरण आदरे—स्वभावाचरणमां रहे तेने अनादि कर्मबंधनी माठी टेव टले ॥ १२ ॥

सबला साहिब ओलगे, आतम सबलो थायरे ॥ बाधक परिणति सवि टले, साधक सिद्धि कहायरे ॥ जग० ॥ १३ ॥

अर्थः—बलवंत साहेबने अरज करवाथी अने बलवंत साहेबनी महेरथी आत्मा पण कर्म नाश करवा अने आत्म सत्ताभूमि कबजे करी आत्मीक राज भोगववाने बलवंत थाय एम प्रभु आश्रित वर्त्ते तेने बाधकतानी एटले कर्मबंधनी उत्तर प्रकृति एकसो वीश बाधवानी टेव छे ते टेव टले एटले साधकता पामी सिद्धि पामे ॥ १३ ॥

कारणथी कारज हुवे, ए परतित अनादिरे ॥ माहरा आतम सिद्धिना, निमित हेतु प्रभु सादिरे ॥ जग० ॥ १४ ॥

अर्थः—जे कार्यनुं जे कारण होय ते कारण वडेज ते कार्य थाय ए अनादिनी निःशंक रीत छे माहरा आत्म सिद्धिना निमित्त कारण आजथी प्रभुजी तमेज छो ॥ १४ ॥

अविसंवादन हेतुनी, दृढ सेवा अभ्यासरे ॥ देवचंद्र पद निपजे, पूर्णानंद विलासरे ॥ जग० ॥ १५ ॥

अर्थः—भव्यने संसारथी तारनार प्रभुजी अविसंवाद हेतु छे. जे भव्य तेमनी दृढ सेवा के० आज्ञा दृढ परिणामे सेववानो अभ्यास राखे ते देवमां चंद्रमा समान पूर्णानद पदवीनो विलास पामे ॥ १५

संपूर्ण.

॥ अथ श्री सप्तम श्रीधरजिन स्तवन ॥

॥ रसीयानी देशी ॥

से मुख मुख प्रभुने न मली शक्यो, तो सी वात कहाय॥ ॥ जिणंदजी ॥ निज पर वीतक वात लहो सहु, पण मने किम पतित आय ॥ जिणदजी ॥ से मुख० ॥ १ ॥

अर्थ-श्रीवंत श्रीधरस्वामीने हु पोते सुखे मुख मली शक्यो नहीं तो शी वात कहिये? जो सुखे मुख हु मल्यो होत तो मनमान्या प्रश्नो करी कंखा मोहनीनो उतावलो नाश करतो पोताने अने अनंत अन्य जीवोने वीती वीते छे अने वीतशे ते सर्वे तमे जाणो छो तोपण मने केम पतित थाय के प्रभुजीए माहरी अरज स्वीकारी ? ॥ १ ॥

भव्य अभव्य परित्त अनंत तो, कृष्ण शुकलपक्ष धार ॥ ॥ जि० ॥ आराधक विराधक रीतनो, पूछि करत निरधार ॥ ॥ जि० ॥ से मुख० ॥ २ ॥

अर्थ-भव्यजीवो अने अभव्यजीवो ए बंने अनंता अनंता छे तेमा हु भव्य छु के अभव्य छु ? वली कृष्णपक्षी अने शुक्लपक्षी जीवो तेपण अनंता छे एटले जे चरमपुद्गलपरावर्त्तने वर्ते छे ते शुक्लपक्षी जाणवा अने जे अचरमपुद्गलपरावर्त्तने वर्ते छे ते कृष्णपक्षी कहीए, तेमा हु शुक्लपक्षी छुं के कृष्णपक्षी छुं ? वली जे जिनेश्वरनी आज्ञामा वर्त्ते छे ते मोक्षमार्गना तथा आत्मशुद्धताना आराधक छे अने जे तीर्थंकरोनी आज्ञा बाहिर वर्त्ते छे ते प्रभुआणाना, मोक्षमार्गना अने आत्मशुद्धताना विराधक छे तेमा हु आराधक छुं के विराधक छुं ? ए आदि प्रश्नो पूछी निरधार करत ॥ २ ॥

किण काले कारण केहवे मले, थासे मुजने हो सिद्धि ॥ ॥ जि० ॥ आतम तत्त्व रुची निज रिद्धिनी, लहिशुं सर्वे समृद्धि ॥ जि० ॥ से मुख० ॥ ३ ॥

अर्थः—माहरे कए काले अने कोण कारण मलवाथी सिद्धि थशे? वली क्यारे हुं आत्मतत्त्व रुचीवंत थइ समभाव आदरी सहज आत्मिक सकल साची रिद्धि पामीश? ॥ ३ ॥

एक वचन जिन आगमनो लही, निपाव्यां निज काम ॥ ॥ जि० ॥ इतले आगम कारण संपजे, ढील थई किम आम ॥ जि० ॥ से० ॥ ४ ॥

अर्थः—कोईक पुरुषोए एकज वचन जिनागमनुं पामी जाणी आदरीने आत्मसिद्धिरुप कार्य निपजाव्युं अने माहरा सरखाने एटलां वधां आगम वचन जाण्या छतां पण सिद्धि माटे आम केम ढिल थइ? ॥ ४ ॥

श्रीधर जिन नामे बहु निस्तर्या, अल्प प्रयासे हो जेह ॥ ॥ जि० ॥ मुज सरिखो एतले कारण लहे, न तरे कहो किम तेह ॥ जि० ॥ ५ ॥

अर्थः—श्रीधरस्वामीना नामथी (वचनथी) अल्पप्रयासे पण बहु जीवो संसार निस्तार पाम्या एटले संसारसमुद्रनो सहजे पार पाम्या. जेम अखाडमुनि नाटकणीने घेर रह्या अने नाटक करता छता पण एकत्व अनित्यभावनाए शुद्धात्मतत्त्व विचार करता एटले अल्प प्रयासे केवलज्ञान पाम्या एम भरतादिक अनेक जीवो अल्प प्रयासे केवलज्ञान पामी सिद्धि वर्या छे अने माहरा सरखाने केटलांक वधां कारण मल्यां अने प्रयास करे छे तो पण तरता नथी तेनुं शुं कारण? ॥ ५ ॥

कारण जोग साधे तत्त्वने, नवि समर्थो उपादान ॥ जि० ॥ श्री जिनराज प्रकाशो मुज प्रते, तेहनो कोण निदान ॥ ॥ जि० ॥ से० ॥ ६ ॥

अर्थ.—केटलाक मात्र एकांत कारण जोगप्रवृत्तिए तत्त्व साधवा इच्छे छे पण उपादान संभाळता सुधारता नथी. जेम कोई घट करवानो अर्थी दडवडे चक्र फेरव्या करे एवी कारण प्रवृत्तिनी अनेक क्रिया क्रोडाक्रोडी वरससुधी करया करे पण घटनु उपादान जे मृत्तिका ते माहे पिंड थास कोस पृथु बुध्न ग्रीवादि घटपर्यायना यथायोग्य जेवा घाट छे तेवा मृतिका पिंडमां काढे नहीं अने मात्र बाह्य कारणप्रवृत्ति क्रोडाक्रोडीथी पण अधिककालसुधी करया करे तोपण ते घट नियमा थवानो नथी तेम कोई जीव आत्मसिद्धि अर्थे एकांते कारणप्रवृत्तिनी क्रिया अनंतकालसुधी करे अने उत्सर्गे आत्मअंगमा सम्यक्, विरती, अप्रमादता, अकषायता, थिरता आदि जे जे पर्यायो सिद्धमा छे ते ते पर्यायोनुं आत्मअंगमा सपादान करे नहीं तो कोईकाळे पण आत्मसिद्धि थाय नहीं पण सिद्ध भगवतमा शुद्ध द्रव्यपर्याय अने शुद्ध गुणपर्यायादिनु जेवुं स्वरुप छे तेवु स्वरुप आत्मअंगमा सपादान करे एटले आत्मा आत्म परिणाम वरे आत्म संपदा दान आत्माने एटले पोते पोताने आपे तोज सिद्धि रूप कार्य थाय. ते तो प्रभु वाणीना अजाणने एकांततानो भावरोग सत्तामा रह्यो छे तेथी ते कार्यसिद्धि केम करी शके ? तो हे जिनराज ! मने बतावो के एकांतता रूप भावरोगनुं मूल निदान शुं छे ? ॥ ६ ॥

भाव रोगना वैद्य जिनेश्वरु, भावौषध तुज भक्ति ॥ जि०
देवचंद्रने श्री अरिहंतनो, छे आधारए व्यक्ति ॥जि०॥से० ॥७

अर्थ —हुं तीर्थंकरोनाज वचनथी जाणु छु के एकांतता रुप भावरोग नाश करवा माटे वैद्य ते तो जिनेश्वर छे अने जिनेश्वरनी आज्ञाए वर्त्तवा रूप जिनभक्ति तेज भावरोग नाश करवानो उत्तम ईलाज छे माटे देवचंद्र मुनि कहे छे के माहरे तो अरिहंत देवनोज आधार छे के एमना वचन आश्रित हुं मारा भावरोगने दूर करी आत्मसिद्धि वरूं ए प्रगट छे ॥ ७ ॥

॥ अथ अष्टम श्रीदत्तप्रभु स्तवन ॥

॥ राग धमाल ॥

जिन सेवनथें पाईये हो, शुध्धातम मकरंद ॥ए आंकणी॥
तत्त्व प्रतित वसंत ऋतु प्रगटी, गई सिसिर कुप्रतीत ॥
॥ ललना ॥ दुरमति रजनी लघु भई हो, सदबोध दिवस वदीत ॥ ललना ॥ जिन० ॥ १ ॥

अर्थः—जिनेश्वरनी आज्ञा सेववाथी आत्म शुद्धता सुवास रसस्वाद पामीए जेम भमरो सुगंधी फूलोमांथी रस खेंची सुवास युक्त स्वाद ले छे तेम आत्मामां भोगीपणु छे पण ज्यासुधी पोतानुं शुद्ध स्वरूप जाण्युं नथी त्यांसुधी पुद्गलोमां आपापणुं मानी पुद्गल स्वाद लेतो चउगति कंतारमां परतंत्रताए अनंत दुःख भोगवतो रहे छे पण तेज आत्मा ज्यारे जिनेश्वरनी आज्ञा सेववावालो थाय त्यारेज शुद्धात्म मकरंद के० आत्म शुद्धतानो उत्तम सुवास रस स्वाद लेई शके. ज्यारे जिनेश्वरे प्ररूपेला नवे तत्त्वोनी द्रव्य भाव प्रतित सद्दहणा रूची उपजे तथा तत्त्वोमा संशय, विभ्रम, विमोह रहे नहि त्यारेज जीव सम्यक्दर्शन पामे एटले निःशकतादि आठ गुणो प्रगट थाय ए प्रमाणे तत्त्व प्रतित थवाथी आत्म उपयोग आत्म शुद्धतामां वसवा लाग्यो ते रूप वसंत ऋतु प्रगटी त्यारे तत्त्वोनी अप्रतित रूप शीत काल दूर थयो अने आत्म अनात्म अगर जीवादि नव तत्त्वना भावनी प्रतित थवाथी मिथ्यात्व अंधकारवाली रात्रि पण घटी गई अने सद्बोध रूप उद्योतवालो दिवस पण वृद्धि पाम्यो ॥ १ ॥

साध्य रुचि सुसखा मिलीहो, निज गुण चरचा खेल ॥ल०
वाधक भावकी नंदना हो, बुध मुख गारिको मेल ॥ ल० ॥
जि० ॥ २ ॥

अर्थः—शुद्धात्म साध्य साधवानी रुचीरुप तथा खाति मृदुता ऋजुता निस्पृहता आदि आप आपणी कमी सखीओ मली तथा सम सवेग निर्वेद आस्ता अनुकपादि अनेक मित्रो मल्या अने ते सर्वे शुद्धात्मगुण चर्चारुप खेल खेलवा लाग्या अने होली उपर जेम लोको उघाडी गालो बोले छे तेम बुद्ध पुरुषो बाधक भावनी निंदारुप उघाडी गालो बोलवा लाग्या ॥ २ ॥

प्रभु गुण गान सुछंदसुं हो, वाजित्र अतिशय तान ॥ल०
शुद्ध तत्त्व बहुमानता हो, खेलत प्रभु गुण ध्यान ॥ ल० ॥ जि० ॥ ३ ॥

अर्थ —तीर्थकरोना ज्ञानादिक व्यक्तगुणो निर्चेय सुछंदपणे गावा लाग्या अने अपायापगमन अतिशय, वचनातिशय, ज्ञानातिशय अने पूजातिशयरुप वाजित्रमा अद्भूत तान लाग्यु शुद्धतत्त्वना बहुमानपणे प्रभुगुण ध्यानमा एटले शुद्ध सिद्ध गुण ध्यानमां खेलवा लाग्या एटले अन्य ध्येयमां जतुं चित्त वाळी शुद्ध ध्येयमां थिरताए रमण कर्यु ॥ ३ ॥

गुण बहुमान गुलालसो हो, लाल भए भवि जीव ॥ ल०
राग प्रशस्तकी धूममें हो, विभाव विडारे अतीव ॥ ल० ॥ जिन० ॥ ४ ॥

अर्थ —केवलज्ञानीओना गुणबहुमानरुप गुलालनी लाली सम्यक्दर्शनीओना अगे चढी एटले प्रशस्त रागनी धूम मची तेथी अतिशय विभाव छेदवा लाग्या एटले ज्ञान दर्शन चरणादि गुणोनी उज्वलता अने थिरता वधवा मांडी ॥ ४ ॥

जिन गुण खेलमें खेलते हो, प्रगट्यो निज गुण खेल ॥ ल० ॥ आतम घर आतम रमे हो, समता सुमति के मेल ल० ॥ जि० ॥ ५ ॥

अर्थः—एम भव्यने निज गुण ख्याल खेलतां शुद्धात्मगुण खेल प्रगट थयो त्यारे आत्मा पुद्गल परिणतिरुप परघर छोडी स्वसत्ता भूमिरुप निज घरमां शुद्धात्म परिणतिरुप सुमती साथे सुमतावंत आत्मानो मेलाप थयो ॥ ५ ॥

तत्त्व प्रतित प्याले भरे हो, जिन वाणी रसपान ॥ ल०
निर्मल भक्ति लाली जगी हो, रिंझे एकत्त्वता तान ॥ ल० ॥
जिन० ॥ ६ ॥

अर्थः—त्यारे पूर्ण तत्त्व प्रतितरुप प्यालामां जिनवाणीरुप अमृतरस पान भर्युं अने सुमता समिति आदि सर्वे परिवारे पीधुं एटले जिनेश्वरनी आज्ञा सेववा परम वीर्यरुप लाली आत्मअंगे प्रगट थई पछी शुद्धात्म स्वरुपमां अखंड रीझरुप एकतानुं तान लाग्युं ॥६

भव वैराग अबिरशुं हो, चरण रमण सुमहंत ॥ ल० ॥
समिति गुपति वनिता रमे हो, खेले हो शुद्ध वसंत ॥ ल० ॥
जि० ॥ ७ ॥

अर्थः—वली भवभोग वैरागता रुप अवीर उडाव्युं एटले आत्मा सुमतिसंगे परम रुडा स्वभावाचरणमां लाग्यो ते वेला विनयवती पंच समिति अने त्रण गुप्ति पोताना स्वामी स्वभावाचरणी आत्मापासे खेलवा—रमवा लागी एम सहृदमां एटले आत्म स्वप्रदेश हदमां शुद्ध वसंत ख्याल खेले ॥ ७ ॥

चाचर गुण रसीया लिये हो, निज साधक परिणाम ॥ल०
कर्म प्रकृति अरति गई हो, उलसीत अम्रित उदाम ॥ ल० ॥ जि० ॥ ८ ॥

अर्थ—ते देखी भवि जीवरुप चाचर शुद्धात्मगुण रसी थई आत्म सिद्धि साधवाना परिणामी थया एटले मिथ्यात्वादिक हेतु प्रवृत्तिए निपजाव्यां जे ज्ञानावरणादिक कर्म तेथी अज्ञान मिथ्यात्व कषाय

आदिकनी अरति थई हती ते गई अने ज्ञान दर्शन चरण वीर्यादि निज शुद्ध गुण रुप अमृत प्रगट थयुं-उर्द्धताए आव्यु एटले उलस्यु उल्लास थयु, विजाव सबधे बंधायलु आत्मवीर्य मिथ्यात्वादिकथी छूटी उर्द्धताए आव्युं वधथी छूटी उपर आववुं तेनु नाम उद्दाम कहिए ॥

थिर उपयोग साधन मुखे हो, पिचकारीकी धार ॥ ल० ॥
उपशम रस जरी छांटता हो, गई तताई अपार ॥ ल० ॥
जि० ॥ ए ॥

अर्थ —आत्म शुद्धना मुख्य साधनरुप मुखमा उपयोगनी थिरता रुप पीचकारीनी सुवासित धार समझवी मिथ्यात्व कषायादिना उपशमरुप अमृत रस छांटवे करीने प्रथम जे मिथ्यात्व कषायादिनी तताइ के० असह्य तसी हती ते अपार तसि समी गई अने सम-जावनी शीतल समाधि शांती प्रगट थई ॥ ए ॥

गुण पर्याय विचारतां हो, शक्ति व्यक्ति अनुजूति ॥ ल० ॥
द्रव्यास्तिक अवलंबता हो, ध्यान एकत्त्व प्रसूति ॥ ललना०॥
॥ जि० ॥ १० ॥

अर्थ —स्वपर द्रव्यना गुणपर्याय विचारतां स्वगुण पर्याय स्वद्र-व्यादिकथी जिन्न नथी अने परगुण पर्याय पर द्रव्यादिकथी जिन्न नथी कोई द्रव्यनो गुणपर्याय कोई अन्य द्रव्यमा जतो आवतो नथी, कोई द्रव्यनो गुणपर्याय कोई अन्य द्रव्यने निश्चय नयथी गुण दोष करी शकतो नथी, कोई द्रव्यनो गुणपर्याय कोई अन्य द्रव्यनो नथी एम जे जेनुं ते तेनु जाणता ममतानो अश रहेतो नथी अने कोई द्रव्यनो गुणपर्याय कोई अन्य द्रव्यने काममा आवतो नथी एम जाणवाथी रागाश रहेतो नथी अने कोई द्रव्यनो गुण पर्याय कोई अन्य द्रव्यने हाणी के दोष करी शकतो नथी एम जाणवाथी द्वेषांश पण नाश पामे छे माटे स्वपर द्रव्य

गुण पर्यायने भिन्न विचारतां पोतानी सर्वे शक्ति परतंत्रता विना पोतामांज व्यक्ति एटले प्रगटपणे जणाय छे प्रगटपणे पोतानी ज्ञानादि शक्ति स्वतंत्रताए जणाई एटले तेनो अनुभव आनंद आवे छे एटले विज्ञानरूप विभूती प्रगट थाय छे. आत्म द्रव्यना अनत गुणो आत्मामां अभेदपणे छतीरूप छे ए अवलंबन लेतां पर द्रव्यादिकनु कांई काम नथी तो परद्रव्यादिकनो विचार शा माटे रहे? अर्थात् नज रहे एम एकत्वपणे आत्म शुद्धतामां ध्यान थिर थाय छे एटले शुद्ध ध्यान उपजे छे-जन्मे छे एम जाणवुं ॥ १० ॥

राग प्रशस्त प्रभावनादो, निमित्त करण उपभेद ॥ ल० ॥
निरविकल्प सुसमाधिमें हो, भये हे त्रिगुण अभेद ॥
॥ ल० ॥ जि० ॥ ११ ॥

अर्थः—प्रशस्त राग वडे पर जीवोने जिन आज्ञामां रूची उपजाववी ते निमित्त कारणनो एक भेद छे. दशमा गुणठाणे सज्वलननो राग रहे त्यांसुधी प्रवचननी भक्तिए प्रेर्यो जीव पर जीवने जिन शासनमां लाववानो परिणामी होय छे ते परिणाम पण निमित्तनो एक भेद छे. अने पछी सकल विकल्पो छोडी ज्ञान दर्शन चरणमय एक अभेद आत्म भावमां थीरता पामे छे. एज प्रमाणे साधक जीवोना ज्ञान दर्शन चरणादि गुणो आत्माथी अभेदपणे थया छे एटले निर्विकल्प शुद्ध समाधि पाम्या छे ॥ ११ ॥

ईम श्रीदत्त प्रभु गुणे हो, फाग रमे मतिवंत ॥ ल० ॥
पर परिणति रज धोयके हो, निरमल सिद्धि वसंत ॥ ल० ॥
॥ जि० ॥ १२ ॥

अर्थः—एम मतिवंत पुरुषो श्रीदत्त स्वामीना शुद्ध गुणोमां चित्त रमाववा रूप फाग रमे तेथी अनादिनो परपरिणतिरूप जे मेल लाग्यो

छे ते शुद्ध स्वरूप रमण रूप संवर नीरमां कीलतां कर्म रज रूप मेल धोई निर्मल सिद्ध थई शिवपुरीमां वसे ॥ १२ ॥

कारणथें कारज सधे हो, एह अनादकी चाल ॥ ल० ॥
देवचद्र पद पाईये हो, करत निज भाव सभाल ॥ ल० ॥
॥ जि० ॥ १३ ॥

अर्थ—शुद्ध कारण आदर्यां कार्य सिद्ध थाय छे ए अनादिनी रीत छे. तो श्रीदत्त स्वामीना वचन रूप कारण पामी शुद्धात्म भाव संभालीए आदरीए तो देवमा चद्रमा समान परमात्म पद नीपजे १३

॥ सपूर्ण ॥

॥ अथ नवम श्री दामोदर जिन स्तवन ॥

॥ मोरा साहेब हो श्री शीतल नाथके ॥ ए देशी ॥

सुप्रतीत हो करि थिर उपयोग के, दामोदर जिन वंदीये। अनादिनी हो जे मिथ्या भ्रांतिके, तेह सर्वथा छेदीये ॥ अवि-रती हो जे परिणति दुष्ट के, टाली थिरता साधीए। कषायनी हो कलमलता कापी के, वर समता आराधीए ॥ १ ॥

अर्थ—नवमा श्री दामोदर स्वामीना शुद्ध स्याद्वादामृत रस भर्यां वचन सांभली आत्म अनात्म आदि अनत तत्वोनी रूडी प्रतित करी उपयोग थीर करी दामोदर स्वामीने परमआदरे वंदीये एटले तेमना वचन अने गुणो अति सन्माने आदरिये जीवने अनादिथी विपर्यास वासना रूप मिथ्या भ्रांति छे तेनी विगत—

जीवमा अजीव बुद्धि, अजीव गुणपर्यायमा जीव बुद्धि, शुद्धात्म स्वभावधर्ममा अधर्मबुद्धि, अने पुद्गल क्रिया प्रवृत्तिरूप अधर्ममा धर्म बुद्धि, शुद्ध तत्त्वना जाण समजावी गुरु उपर कुगुरु बुद्धि अने जैन

तत्त्वना अजाण उत्सूत्र भाषी स्वछंदताए चालवावाला जैन भेखधारी, अथवा अन्य भेखधारी उपर सुगुरू बुद्धि, केवलज्ञान केवलदर्शन परमथिरता अचल अनंत वीर्यवंत देव उपर अदेव बुद्धि, मिथ्याज्ञान मिथ्यादर्शन चपलतावंत लब्धिवीर्य हीण उपर देव बुद्धि, अष्टकर्मथी मुक्त थयेलाने अमुक्त जाणवा अने अष्टकर्म बंधन युक्त रागद्वेषवंतने अथवा स्नेहपासमा बंधायेलाने मुक्त जाणवा, ए पंचेने विपरित अथवा सरखा जाणवा तथा स्त्री पुरूष कुटुंबादि विषयो दातारने मित्र जाणवा अने सम्यक्ज्ञान दर्शन चरणात्म वीर्यना दातारने शत्रु प्राय जाणवा, विषय रोगना उपचारने सुख जाणवुं अने शुद्धात्म संयममांहे दुःख जाणवुं, कारणने कार्य जाणवु अने कार्यने कारण जाणवु, अपवादने उत्सर्ग तथा उत्सर्गने अपवाद जाणवो, पुण्य पापरुप शुभाशुभ परिणामने धर्मरुप शुद्ध परिणाम जाणवो तथा शुद्ध भावधर्मने पुण्य पापरुप शुभाशुभ परिणाम जाणवो, उन्मार्गने मार्ग अने शुद्धमार्गने उन्मार्ग, आश्रवने संवर अने संवरने आश्रव, बंधने अबंध अने अबंधने बंध, अकर्त्ताने कर्त्ता अने कर्त्ताने अकर्त्ता, अकारणने कारण अने कारणने अकारण, अकार्यने कार्य अने कार्यने अकार्य, अकारकने कारक तथा कारकने अकारक, अप्रमाणने प्रमाण तथा प्रमाणने अप्रमाण, कुनयने सुनय अने सुनयने कुनय, कुवचनने सुवचन अने सुवचनने कुवचन, समभाषीने विषमभाषी तथा वक्रभाषिने समभाषी, उलटभावने सुलटभाव तथा सुलटभावने उलटभाव ए आदि विपर्यास वासनाना असंख्यात अध्यवसाय (अभिप्राय) छे ते सर्वे जडमूलथी उछेदिए मन वचन काया ए त्रणे जोगो सदा अव्रत अने विषय कषायमां प्रवर्त्ते छे एटले ते रातदिन सर्वे समय पंचविषय, पंचअव्रत तथा चारकषायथी निवर्त्तता नथी एवी दुष्ट एटले आत्माने अनंत दुःख आपनारी अविरति

परिणति अनादिथी लागेली छे ते दुष्ट परिणति टाळ
विषयो अव्रतादिकथी निवृत्ति लेइ शुद्धात्मभावमां परमस्थिरत
साधीए मूल चार कषाय अने कषायना कारणरुप नव नोकषाय तेथ
आत्मअंग अने आत्मगुणो कषाय छे एटले शोपाय छे ते कषा
मेलथी उपजती कसमलता के० कलुषता कापीने वरप्रधान निज आत
द्रव्य क्षेत्र काल भावमा परमशांति अने परमसमाधि अने परमसंत
रुप समता सेविए एटले परद्रव्यादिकमा अनादिथी आपाप
मानेलु छे ते स्वद्रव्य क्षेत्र काल भावमांज आपापणानी बुद्धि थ
त्यारेज परम स्वतंत्र शुद्ध शांति तुष्टि थाय ॥ १ ॥

जंबूने हो भरते जिनराज के, नवमा अतित चोवीशीये
जस नामे हो प्रगटे गुण रासि के, ध्याने शिव सुख विलसीये
अपराधी हो जे तुजथी दूर के, भूरि भ्रमण दु:खना धणी
ते माटे हो तुज सेवा रंग के, होजो ए इच्छा घणी ॥ २ ॥

अर्थ.—आ जंबुद्वीपना दक्षिण भरतमां अतित चोवीशीमा नव
दामोदर स्वामी नामे तीर्थंकर थया जेनुं नाम सांभळतां अने जे
वचन हृदयमां धारतां ज्ञानादिक क्षांत्यादिक अनंत शुद्धात्मगुण ज
प्रगट थाय अने जेना ध्यानथी एटले दामोदर स्वामीए जे ध्य
कह्यु अने जे ध्यान शिवसुख माटे बताव्युं ते ध्यान आदरिये
उपद्रव रहित शाश्वत सहज परमानंद सुखविलास पामीए ताह
आज्ञाथी जे वेगळा रहे छे ने तमारा तथा आत्मशुद्धताना अने
मार्गना अपराधी थइ भवभ्रमण करता भारे अने घणेरा दु:ख भो
ववाना धणी जाणवा ते माटे म्हारे तो तमारी अखंड आज्ञा सेवव
रंग रहेजो एज माहरी परम जिज्ञासा छे ॥ २ ॥

मरुधरमें हो जिम सुरतरु लुंबके, सागरमें प्रवहण स

॥ जवभ्रमतां हो जविजन आधार के, प्रजु दरशन सुख अनुपमो ॥ आतमनी हो जे शक्ति अनंतके, तेह स्वरुप पदे धस्या ॥ परिणामिक हो ज्ञानादिक धर्म के, स्व स्वकार्यपणे वस्या ॥ ३ ॥

अर्थः—मारवाड देशमां कल्पतरुनी लुंबो के० आम्रवृक्षनां झूमखां मलवां दूर्लज तेम आ डुषमकाल पांचमा आरामां ताहरां अनंत ज्ञान अनत न्याय अने परम दयामयी वचन पर्यायोनी लुंबो मलवी घणा लोकोने दूर्लज जाणवी अने हमने प्रजुल्न पुण्य पसाए प्रजुवचननो लाज थयो ते आश्चर्य जेवु जाणी चित्तमां आनद अने उल्लास पामिए ठिए एटले जर समुद्रमां झोलां खाताने जेम दृढ प्रवहण आवी मले तम हमे पण संसार समुद्रमा बूवकीओ खाताने ताहरा स्याद्वाद वचनरुप दृढ जहाज आवी मल्युं ते पण परमानंदनुंज कारण ठे. जवभ्रमण करता जवि जीवोने ताहरोज आधार ठे अथवा ताहरां प्ररुपेलां शुद्ध वचन प्ररुपकनो आधार ठे पण ताहरी जे आज्ञाथी उलटा डुर्मतीओना वचन आधारे वर्त्ते ठे तेने तो जेमां मिथ्यात अज्ञान अने कषाय रुप खारुं पाणी जस्युं ठे एहवा जवसमुद्रमा प्रत्यक्षपणे बूवता देखीए ठीए ताहरी आज्ञामा रहेवुं एज ताहरुं दर्शन तेथी जे सुख पामीए तेने संसारीक उपचरित सुखनी उपमा लागी शके नहीं. प्रजुजी तमे आत्मानी अनंत शक्ति पूर्ण पर्याये स्वस्वरुपपदे धारण करी अने तमे ज्ञानादिक निज आत्म अनत धर्मना परिणामी थया एटले कारकचक्र जे उलटुं फरतु हतुं ते पलटी सुलटयुं एटले ज्ञान दर्शन चरणादिक आत्मीक अनंत गुणो सहज स्वतंत्रताए अन्य कारण विना अने प्रयास विना सर्वे समय धमधोकार आप आपणा कार्यमां लाग्या एटले पर परिणामीकतानो अंश मात्र क्यां रहे? अर्थात् नज रहे ॥ ३ ॥

अविनाशी हो जे आत्मानद के, पूर्ण अखन्ड स्वभावनो ॥
निज गुणनो हो जे वर्त्तन धर्म के, सहज विलासी दावनो ॥
तस भोगी हो तुं जिनवर देव के, त्यागी सर्व विभावनो ॥
श्रुतज्ञानी हो न कही शके सर्व के, महिमा तुज प्रभावनो ॥४

अर्थ.–प्रभुजी अविनाशी अत्यंतीक स्वतंत्रीक परम अने पूर्ण अखंड आत्मीक स्वभावे मग्न छो तमारा सर्वे स्व गुणो आप आपणा कार्य-मा सकल समय वर्त्ते छे ते सहज स्वभाव विलासनो दाव तमारे आव्यो छे ते शुद्ध भावनाज तमे भोगी छो अने सर्व विभावना त्यागी छो आठे कर्मने जीती वरप्रधान ज्ञान दर्शन गुणे देदिप्यमान छो. पूर्ण श्रुतज्ञानी पण तमारा गुणादि प्रभावनो महिमा कहि शके नही ॥ ४ ॥

नि कामी हो निकषाई नायके, साथ होजो नित तुम तणो ॥ तुम आणा हो आराधन शुद्धके, साधुं हुं साधकपणो ॥
वीतरागथी हो जे राग विशुद्धके, तेहीज भवभय वारणो ॥
जिनचन्द्रनी हो जे भक्ति एकत्त्वके, देवचंद्र पद कारणो ॥ ५

अर्थ –प्रभुजी कोईपण पुद्गल वस्तुना कामी नथी एटले कषाय तो शानो होय ? अर्थात् नज होय प्रभुजीनो साथ एटले प्रभुजी प्रमाणे हमे पण परगुण कामना रहित अने कषाय रहित सदा रहिए एहवो सदा हमारे साथ होजो अथवा सिद्धक्षेत्रमां हमारे तमारो नित्य स्थिर साथ होजो हमने शिवमार्गमा प्रेरनारा माटे अमारा नाथ अने प्रभुजी हमने कही गया के शुद्ध सिद्धमा आवो तेज तमारा वचन सफल थजो ए माटे तमारी शुद्ध आणा आराधी शुद्ध साधकपणो साधी आत्मसिद्धता पासु वीतराग देवथी इहलोकादि इछा रहित विशुद्ध राग तेज भवभयथी छोडावनारो छे एहवा सामान्यजिनोमा चंद्रमा समान तीर्थंकर देवनी भक्तिमा एकत्वपणुं तेज देवमा चद्रमा समान सिद्धिपदनु कारण जाणवुं॥५ ॥

संपूर्ण

॥ अथ दशम श्री सुतेज जिन स्तवन ॥

अति रुडी रे (२) जिनजीनी थिरता अति रुडी ॥ ए आंकणी ॥

सकल प्रदेश अनंती, गुण पर्याय शक्ति महंती लाल ॥ अ० ॥ तसु रमणे अनुभववंती, पर रमणे जे न रमती लाल ॥ अति० ॥ १ ॥

अर्थः—दशमा श्री सुतेज स्वामीनी शुद्धात्म स्वभावमां स्वतंत्रताए अकंपना निश्चलता निराकुलता रूप परम थिरता अति रूडी सोहामणी छे सर्वे प्रदेशे सर्व गुणोना पूर्ण पर्यायनी अनंत महंत सत्ता परम अचल वीर्यपणे सर्वे समकाले सकल स्वकार्यपणे वर्त्तवा छतां पण थिरयोग छे. ते ज्ञानादिक स्वगुण अनंत पर्यायमां प्रभुजीनुं रमण तेथी अनुभववती के० ते सर्वे शक्ति सकल समय अनुभव युक्त छे पण पुद्गलादिक परगुणने अनुभवती भोगवतो नथी एटले परगुणमां रमती नथी केमके चेतनामां स्वगुण भोग स्वप्रदेशे अस्तित्वपणे छे अने अन्यक्षेत्री परगुण भोगनो स्वप्रदेशे अभाव तेथी स्वप्रदेशे परगुण भोगनुं नास्तित्व छे ॥ १ ॥

उत्पाद व्यये पलटती, ध्रुव शक्ति त्रीपदी संती लाल ॥ ॥ अ० ॥ उतपादे उतपतमंती, पूरव परिणति व्ययपंती लाल ॥ अ० ॥ २ ॥

अर्थ.—शक्ति उत्पाद् व्ययपणे पलटे छे ते छतां पण ध्रुव छे शक्ति ते उत्पाद् व्यय ध्रुव एम त्रीपदी सहित होय जो उत्पाद् न होय तो नवा नवा समय नवा नवा पर्याय उर्द्धताए आवे तेनुं जाणवा आचरवादि कार्य थाय नही, अने व्यय न होय तो अतितकाल प्रवृत्तिनुं जाणवा देखवादि कार्य वर्त्तमानपणे जणाय पण अतिनपणे न जणाय वली जो ध्रुव न होय तो पर्यायनो उत्पाद् व्यय थतां द्रव्यना छती

पर्यायनी सत्तानो नाश थाय पण द्रव्यना छती पर्यायनोज आवीर्भावपणे अने तिरोभावपणे तथा छतीपणे अने सामर्थ्यपणे तथा अगुरुलघुनी हाणीवृद्धिपणे ए आदि अनेक प्रकारे उत्पाद व्यय थया करे छे पण सत्ता तो सदा सद्भावपणे ध्रुव रहे छे तेज माटे ग्रंथोमा कह्युं छे के—"उत्पाद् व्यय ध्रुव युक्त सत् लक्षण द्रव्य" एटले उत्पाद् व्यय अने ध्रुव तेज द्रव्यनु सत् लक्षण छे. सत् लक्षण विना द्रव्यनी सत्ता शाने कहिये ? जेम सोनानी सत्तावडे मुगट आदि कार्य पर्यायनो उत्पाद् थाय छे अने कुंडळ आदि पूर्व पर्यायनो व्यय थाय छे अने मुगट कुंडल आदि अनेक पर्याय रूप कार्य थवानी सत्ता सुवर्ण द्रव्यमा ध्रुवपणे रहे छे ए प्रमाणे उत्पाद् व्यय ध्रुव जाणवो जो एम न होय तो द्रव्यनु द्रव्यपणु रहे नहीं छती पर्यायोनो जनक द्रव्य छे एटले छती पर्यायोने आवीर्भावपणे द्रव्य जन्म आपे छे (उपजावे छे) एटले एक समयनुं कार्य करी तेज छती पर्यायोने पोतामा तिरोभावपणे समावे छे (डुबे छे) एटले पर्यायोने आवीर्भाव अने तिरोभावपणे उपजाववुं अने राखवु तेज द्रव्यनु द्रव्यस्वपणुं छे ताहरी थिरता नवे पर्याये उत्पत्तीवत छे अने पूर्व पर्याये व्ययवंत छे एटले परिणतिमा परावर्त्तन धर्म छे तेथी पूर्व पूर्व परिणति व्यय थई नवा नवा समय नवि नवि परिणतिए परिणम्या करे एमज सर्वे समय सत्ता उत्पाद् व्यय ध्रुव थया करे एटले कोई समय उत्पादनो पण नाश नथी व्ययनो पण नाश नथी अने ध्रुवतानो पण नाश नथी माटे अणे प्रकारे पण स्वभाव चलायमान नथी पण थिर छे एटले थिरताज पूर्व परिणति रूपथी पलटी नवि परिणति रूप उपजे छे अने सत्ताए ध्रुवज छे माटे थिरतानो उत्पाद् व्यय ध्रुव जाणवो एम तमारूं स्वरूप महा आश्चर्यकारी छे ॥ २ ॥

नव नव उपयोगे नवली, गुण छतिथी ते नित अचली

लाल ॥ अ० ॥ परद्रव्ये जे नवि गमणी, क्षेत्रांतरमांहि न रमणी लाल ॥ अ० ॥ ३ ॥

अर्थ.—एज थिरता नवे समये नवा उपयोगे थाय अथवा नवि परिणतिए परिणमे माटे नवि कहीए पण एज सत्ता गुणवतीपणे नित्य अने अचल कहीए एज थिर सत्ता कोई काले पण स्वक्षेत्र छोमीने परक्षेत्रे कदापी जाय नहीं अने परक्षेत्रे जई परगुण पर्यायमां रमे नहीं पण स्थिरपणे स्वक्षेत्रे रहि स्वकाले स्वज्ञावीक अनंत पर्यायमां रमे जेम लुणनी खाराश लुणना स्वप्रदेश छोमीने अन्य द्रव्य क्षेत्रे जाय नहि तेम जाणवुं ॥ ३ ॥

अतिशय योगे नवि दीपे, परज्ञाव ज्ञणी नवि छीपे लाल ॥ अ० ॥ निज तत्त्व रसे जे लीनी, बीजे किणही नवि कीनी लाल ॥ अ० ॥ ४ ॥

अर्थः—ताहरी शुद्ध अने थिर सत्ता ते स्वप्रज्ञावेज देदिप्यमान छे एटले दीपती दीपावती छे पण अतिशय योगे एटले कांई पुद्गल अतिशय रूप पर योगे दीपती नथी. वली पर ज्ञावना योगे छानी पण रहेती नथी जेम शाकमां घणी जातनो मसालो नांखीए तेमां लुणनी खाराश पर योगे छानी रहेती नथी पण पोतानी व्यक्ति देखामेज छे तेम प्रज्ञुजीनी थिर सत्ता परयोगे पण छुपी रहेती नथी ते सत्ता शुद्धात्म तत्त्वमां लयलीन छे शुद्धात्म तत्त्वथी सदा अज्ञेद छे जूदी पमती नथी. चेतनादिक द्रव्यना अनंत लक्षणनी स्थिरता कोई अन्य पुरुष ब्रह्मादिकनी करेली नथी तेम कोई शंकरादिक अन्य पुरुष विनाश करवा समर्थ नथी वली विष्णु आदि अन्य पुरुष तमारी सत्ताने राखी शके तेम नथी पण तमारी थिर सत्ताना रक्षक ग्राहक व्यापक अने कर्त्ता ज्ञोक्तादि तमे पोतेज छो एटले कोईनी सत्ताना कोई अन्य द्रव्य ग्राहक व्यापक

रक्षक कर्त्ता चोक्तादि नथी एम सम्यक् प्रकारे सत्तानी स्थिरता जाणवी ॥ ४ ॥

संग्रह नयथी जे अनादि, पण एवंभूते सादि लाल ॥ अ० ॥ जेहने बहुमाने प्राणी, पामे निज गुण सहनाणी लाल ॥ अ० ॥ ५ ॥

अर्थ–संग्रह नयथी सत्ता अनादिथी शुद्ध अने थीर छे पण ज्यारे शुद्ध थीरता प्रगट थई त्यारे ते एवंभूतनयथी सादि कहीए. ते थीर शुद्ध सत्तानुं बहुमान जे भवि करे ते पोतानी थीर अने शुद्ध सत्तानुं अहिंनाण (स्थानक) पामे एटले प्रभुजीनी शुद्ध सत्ता ध्यातो भवि पोतानी शुद्ध सत्ता स्थानक पामे ॥ ५ ॥

थिरताथी थिरता वाधे, साधक निज प्रभुता साधे ॥ ॥ लाल ॥ अ० ॥ प्रभु गुणने रंगे रमता, ते पामे अविचल समता ॥ लाल ॥ अ० ॥ ६ ॥

अर्थः–शुद्ध सत्तामां अंतरमुहूर्त्त मात्र उपयोग थीर करीए तो ते सादिअनंत शुद्ध सत्तामा थीरतानु कारण थाय छे जेम घहुंना बीजथी घहुंनी वृद्धि थाय वली अग्नि अंशथी महा अग्नि प्रगट थाय तेम कर्मबीजथी कर्मनी वृद्धि अने राग बीजथी रागनी वृद्धि, ज्ञान अंशथी ज्ञाननी वृद्धि अने दर्शन अंशथी दर्शन वृद्धि अने तेमज थिरताए थीरता अंश वधारवाथी परम थीरता पामीए माटे आत्मशक्ति वडे अशुद्धताना अंश नाश करवा अने शुद्धताना अंशथी पूर्ण शुद्धता वधारी परम शुद्ध थीरता प्रगट करी परम थीरताना अनंत परमानंद विलासी थवु ए उपदेश छे. एमज मोक्षाभिलाषी जीव साधकपणुं आदरी पोतानी परम शुद्ध थीरतानी प्रभुता साधे एम जिनेश्वरना परम शुद्ध थीर गुणोमा पोतानी परिणति रमाववावालो अविचल शुद्ध थीर समता पामी परम सिद्धता पामे ॥ ६ ॥

निज तेजे जेह सुतेजा, जे सेवे धरि बहु हेजा लाल ॥ ॥ अ० ॥ शुक्लालंबन जे प्रज्ञु ध्यावे, ते देवचंद्र पद पावे लाल ॥ अ० ॥ ७ ॥

अर्थः—प्रज्ञुजी पोताने तेजे करी परम तेजवंत छे एहवा प्रज्ञुने जे बहु हितधारी पूर्ण प्रेम प्रतिते सेवे अने शुद्ध आलंबन प्रज्ञुने जे ध्याय ते देवमां चंद्रमा समान परमात्म पद पामे. ॥ ॥ ७ ॥

॥ अथ एकादशम श्री स्वामीप्रज्ञोजिन स्तवन ॥

रहो रहो रहो रहो वालहा ॥ ए देशी ॥

नमि नमि नमि नमि वीनवुं, सुगुणा स्वामी जिणंद नाथरे ॥ ज्ञेय सकल जाणग तुमे, प्रज्ञुजी ज्ञान दिणंद नाथरे ॥ नमि० ॥ १ ॥

अर्थः—हुं निज शुद्ध गुण विरह आतुरताए मोक्षाजिलाषी थई वारंवार श्री सुगुणवान् स्वामीप्रज्ञु नामा अगीआरमा तीर्थंकरने नाम स्थापना द्रव्य अने जाव एम चारे निक्षेपे तथा द्रव्य क्षेत्र काल अने जाव तथा मन वचन काया अने शुद्ध उपयोग परिणामे नमस्कार करीने एटले पर द्रव्यमां अहंपणानुं तथा माहरी बुद्धिनुं अजिमान छोडी अरज करुं हुं के प्रज्ञुजी तमे तो अनंत शुद्धात्म गुण पर्यायना स्वामी छो तेथी परम पुरुष छो अने स्वपर त्रीकालवर्त्ती अनंत ज्ञेयना जाणग पासग छो तेथी ज्ञान दर्शन रूप सूर्य छो ॥ १ ॥

वर्त्तमान ए जीवनी, एहवी परिणति केम नाथरे ॥ जाणुं हेय विज्ञावने, पिण नवि छूटे प्रेम नाथरे ॥ नमि० ॥ २ ॥

अर्थ—हे नाथ ! वर्त्तमान माहरा सरखा जीवोनी एहवी परिणति केम ? हु जाणुं छुं के विजाव महा अपाय, दुःखदाता, जवज्रमण अने परतंत्रता वधारनार अने ज्ञान दर्शनादि अनंत आत्म गुणोनी हाणी

करनार माटे हेय-तजवा लायक छे छतां पण ए उपरथी प्रेम केम छूटतो नथी ? ॥ २ ॥

पर परिणति रस रंगता, पर ग्राहकता भाव नाथरे ॥ पर करता परभोगता, श्यो थयो एह स्वभाव नाथरे ॥ ॥ नमि० ॥ ३ ॥

अर्थ--अथिर परतंत्र अने जगत् जीवोनी एंठ आपणी ईच्छाए वर्त्ते पण नही, आपणी ईच्छाए रहे पण नहीं वली अनेक प्रकारे चपलता करावनारी प्रवृत्ती निंदवा लायक पुद्गल परिणतिमा चित्त रीझे छे-रस लागे छे वली ते परपरिणतिने ग्रहण करवानो वली ते माहे चित्तने व्यापवानो तथा तेने संग्रह करवानो तथा तेने भोगववानो तथा तेने निपजाववा आदि हमारो भाव केम थयो अने केम थाय छे ? ॥३

विषय कषाय अशुध्धता, न घटे ए निरधार नाथरे । तो पण वंछू तेहने, किम तरिए संसार नाथरे ॥ नमि० ॥ ४ ॥

अर्थ --वली विषयो अने कषायो आत्म अंगने, आत्म गुणोने अशुद्ध करवावाला ते माहरे अंशमात्र आदरवा न घटे तो शुं सुख जाणी आदरीए ? वली क्यारे ए दुःख देता नथी के आदरीए ? तो ए आदरवा न घटे ए निरधार छे तो पण माहरा सरखा तेने ईछे छे तो संसारथी केम तरीए ? ॥ ४ ॥

मिथ्या अविरति प्रमुखने, नियमा जाणुं दोष नाथरे ॥ नदूं गरहूं वली वली, पण ते पामे संतोप नाथरे ॥नमि० ॥

अर्थ --वली अज्ञान मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय अने पुद्-गल योग ते निश्चय दोष के० दुःखदाता जाणु छु तेथी तेने नदूं छुं अने वली गुरू समक्षे विशेषे नदूं छु एम छता पण एहवा दुःखदाई परिणामो राखी संतोष मानु छु ए केवी भूल छे ? ॥ ५ ॥

अंतरंग पर रमणता, टलश्ये किश्ये उपाय नाथरे ॥ आणा आराधन विना, किम गुण सिद्धि थाय नाथ रे ॥ नमि० ॥ ६

अर्थः—ए आदि अनेक प्रकारनुं अतरग पर रमण ते कया प्रकारे टलशे ? अने ए अंतरग पर रमण जे न छोडे ते ताहरी आज्ञा अने मोक्षमार्गनो आराधक न थाय अने आणा आराधन विना ज्ञानादिक शुद्धात्म गुणोनी सिद्धि केम थाय ? ॥६॥

हवे जिन वचन प्रसगथी, जाणी साधक नीति नाथ रे ॥ शुद्ध साध्य रुचीपणे, करिए साधन रीति नाथ रे ॥ न० ॥७

अर्थ—हवे प्रभुवचन प्रसंग थयो तेथी साधकता नीति के० न्याय जाण्यो तेथी शुद्ध साध्य रुचिपणे साधनरीतिए प्रवर्त्तिए एटले ज्ञान गुणे करीने शुद्ध साध्य जाणीए, दर्शनगुणे करीने शुद्ध साध्य निश्चय करिए—देखीए, चरणगुणे करी शुद्ध साध्य आचरण सेवीए अने वीर्यगुणे करीने शुद्ध साधकतामां बल फोरवीए, प्रीती शुद्ध साध्यमां अने शुद्ध साध्य दर्शावनारमा करीए, सकल पर कामना तजी शुद्ध साध्य सिद्ध करवाना कामी थईए, सुखनी आशा अने विश्वास शुद्ध साध्य सिद्धिमांज राखीए, शुद्ध साध्य सिद्धि विना सुख नथी एम प्रतित करीए, शुद्ध साध्य शिवाय अन्य वस्तुथी प्रेम छोडी शुद्ध साध्यमांज प्रेम राखीए, बुद्धि मन वचन काया ए सर्वे शुद्ध साध्य सिद्ध करवामां राखीए-वापरीए एम अंतरंग अनेक परपद रमण छे ते छोडी शुद्ध साध्य मांहे रंगे चित्त रसावीए तोज ए अनादि कालनो दुष्ट विभाव शत्रु नाश पामे काचे जरोसे सहज शत्रु पण पाछो हठतो नथी तो अनादि कालनो मोह शत्रु सहजे केम पाछो हठे ? तो विभाव नाश करवामा पूरे पूरुं पुरुष पराक्रम फोरवीए पण पोतानुं पराक्रम शत्रुओना तावे करीए नही अने विभाव नाश करवामांज वापरिए तो कर्मशत्रुथी जय वरिए ॥ ७ ॥

भावन रमण प्रभू गुणे, योग गुणी आधीन नाथरे॥ राग ते जिन गुण रंगमें, प्रभु दीठां रति पीन नाथरे ॥नमि०॥८

अर्थ-परद्रव्यनी भावना छोडी प्रभुना शुद्ध ज्ञानादि गुणनी भावना राखीए, पर परिणति रमण छोडी प्रभुना शुद्धात्म गुण परिणतिमां रमण करीए वली मन वचन काय योग पुद्गल कार्यथी रोकी प्रभु आधिन करीए एटले प्रभुजीए संयम कार्यादिमां योग वापरवा कह्या त्यांज वापरिए. राग पण पुद्गल परिणतिनो छोडी जिन गुण रंगे करिए अने पुद्गलीक विषयोमां अज्ञान वशे रति मानीए छिये ते अज्ञान छोडी प्रभु दिठा पुष्ट रति करीए ॥ ८ ॥

हेतू पलटावी सवे, जोड्या गुणि गुण भक्ति नाथरे ॥ तेह प्रशस्तपणे रम्या, साधे आतम शक्ति नाथरे ॥ नमि०॥ ९॥

अर्थः-इंद्रियो मन वचन काया अने रागादि कर्मबंधना हेतु पलटावीने व्यक्त गुणी अरिहंत देवना चरणकमलमां जोडीए के० स्वभावाचरणमां जोडीए एटले अरिहंतनी आज्ञा सेववी ते गुणभक्तिज छे ते मन वचन बुद्धि रागादि आत्माने अप्रशस्तके० अहितकारी पणे हता ते पलटीने अरिहंतनी आज्ञा सेववामा गुणी गुण भक्तिपणे जोड्या एटले ते सर्वे आत्म हितकारीपणे-प्रशस्तपणे रम्या तेज शुद्धात्म शक्ति साधे ॥ ९ ॥

धन तनु मन वचना सवे, जोड्या स्वामी पाय नाथरे ॥ बाधक कारण वारतां, साधन कारण थाय नाथरे ॥न०॥ १०

अर्थ-धन तन मन वचन बुद्धि आदि सर्वे शक्ति स्वामिना चरण कमलमां अर्पण करीए सोंपीए एटले स्वामीए बतावेला स्वभावा चरणमां जोडीए एम जे जे बाधकताना कारण हता ते वारवाथी साधकताना कारण थाय उक्तच आचारांगे " जे आसवा ते परिसवा जे परिसवा ते आसवा " एटले कर्त्ताने अशुद्ध कार्य परिणामे

जे जे आश्रवनां कारण हतां ते शुद्ध कार्य परिणामी थये संवरनां कारण थाय अने शुद्ध कार्य परिणामे जे जे संवरनां कारण हतां ते अशुद्ध कार्य परिणामी थये आश्रवनां कारण थाय माटे कारण पद कर्त्ताना वशमां छे एम जाणी शुद्ध साध्य सिद्धि कार्ये परिणामी थइ आश्रवनां कारण पलटावी संवरनां कारणो करवां ए उत्तम मार्ग छे १०

आतमता पलटावतां, प्रगटे संवर रूप नाथरे ॥ स्वस्वरूप रसी करे, पुरणानंद अनूप नाथरे ॥ नमि० ॥ ११ ॥

अर्थः—पर परिणतिमां आत्मता मानी छे ते भेदज्ञाने स्वपर लक्षण भिन्न जाणी स्वद्रव्यादिकमां आत्मता मानीए. स्वद्रव्यादिकमां कारण कारक कार्ये जाणवे मानवे आदरवे आश्रव नाश थई संवर रूप प्रगटे. जे जीव शुद्ध सिद्ध सम स्वरूप रसीयो थयो ते स्वरूप रसी पूर्ण अनत अनुपम आनंद प्रगट करे ॥ ११ ॥

विषय कषाय हर टले, अमृत थाये एम नाथरे ॥ जे प्रसिद्ध रूची हुवे, तो प्रभु सेवा धरी प्रेम नाथरे ॥ नमि० १२

अर्थः—एम विषय कषाय रुप हर के० झेर टली अमृत थाय अथवा विषय कषाय रूप हर के० लत–टेव टली संवर रूप अमृत प्रगट थाय. जे प्रसिद्धपणे शुद्ध साध्य सिद्ध करवा रूचिवंत होय ते तीर्थंकरोनी आज्ञा सेववामां प्रेम प्रतित राखे ॥ १२ ॥

कारण रंगी कार्यने, साधे अवसर पामि नाथरे ॥ देवचंद्र जिनराजनी, सेवा शिवसुख धाम नाथरे ॥ नमि० ॥ १३ ॥

अर्थः—आत्म सिद्धनां कारण परमेश्वरना वचनमां जेने रंग लाग्यो ते अवसर पामी अवश्य कार्य सिद्ध करे देवोमां चंद्रमा समान देवाधिदेव स्वामीप्रभुनी आणानु सेवन ते शिवसुखनुं स्थानक छे ॥ १३ ॥ सपूर्ण.

॥ अथ द्वादशम श्री मुनिसुव्रत जिन स्तवन ॥

॥ नमणी खमणी ने मन गमणी ॥ ए देशी ॥

दिठो दरिशण श्री प्रभुजीनो, साचे रागे मनसुं भीनो ॥
जसु रागे निरागी थाये, तेहनी भक्ति कोने न सुहाये॥ १ ॥

अर्थ—केवलज्ञान दर्शनादि अनंत लक्ष्मीवंत अनंत शुद्ध प्रभुताना धणी मुनिसुव्रत स्वामी नामा बारमा तीर्थंकरनुं दर्शन दिठुं के० प्रभुए जीवादि नव पदार्थादि अनेक शुद्ध तत्वो दर्शाव्या छे ते जेने दृढ्यां रूच्या प्रतित थइ तेने दर्शन थयुं कहीए ए दर्शन जेने थयुं ते प्रभु गुणोमां साचा रागे मनथी भीनो जेने रागे वीतराग पद पामीए तेनी भक्ति कोने न गमे ? अलबत् सुज्ञ पुरुषोने तो प्रभु आणा भक्ति गमेज पण प्रभु आज्ञाना फलथी जे अजाण छे ते तो मूढपणामाज मुंझाइ रह्या छे यत. " नाणाईसु गुणेसु, अरिहंताईसु धम्म रूवेसु ॥ धम्मोवगरण साहम्मी, एसु धम्मछ जो य गुण रागो ॥ सो सुपसछो रागो, धम्म संयोग कारणो गुणदो ॥ पढम कायव्वो सो, पत्त गुणे खवई त सव " ॥ १ ॥

पुद्गल आशा रागी अनेरा, तसु पासे कुण खाये फेरा ॥
जसु भगते निर्भय पद लहिए, तहनी सेवामां थिर रहिये॥ २

अर्थ—जे देवपणा विना देव अने गुरूपणा विना गुरू कहेवाय छे अने पुद्गल परिणतिना भीखारी एवा अन्य जीवोनी अने पुद्गल परिणतिनी आशा राखे छे तो ते भीखारी पासे भीख मागनारा तेनी पासे हमेशा वास्ते ? कयुं सुख ? अने कयो गुण लेवा फेरा खाईए ? जेनी भक्तिए निर्भय निराकुल शुद्ध स्वतंत्र शिवपद पामीए तेज वीतरागनी आज्ञा सेवामा थिर रहिए तेमनी आज्ञा अने सेवाथी चलायमान थई वहिरातम भावमा न जईए ॥ २ ॥

रागी सेवकथी जे राचे, बाह्य भक्ति देखीने माचे ॥ जसु गुण दाझे तृष्णा आंचे, तेहनो सुजस चतुर किम वाचे ॥३॥

अर्थः—रागी छता देव तथा गुरू कहेवाता एहवा देव तथा गुरू पोताना सेवकोनी बाह्य भक्ति देखीने तेउं उपर खुशी थाय छे, माचे छे, मग्न थाय छे पण ते कहेवाता देव तथा गुरूना ज्ञानादि क्षांत्यादि गुण रूप धन ते भोग तृष्णाआंचे दाझे छे तेनो जस चतुर पुरुषो केम बोले ? जे पोतेज आत्म धन हीण छे ते बीजा भव्य पुरुषोने आत्म धने धनवंत केम करी शके ? अर्थात् नज करी शके माटे माहरे तो अचिंत्य आत्मीक धननो दातार प्रभु तुंज एक छु ॥ ३ ॥

पूरण ब्रह्मने पूर्णानंदी, दर्शन ज्ञान चरण रस कंदी सकल विभाव प्रसंग अफंदी, तेह देव समरस मकरंदी ॥४

अर्थः—प्रभु अढार हजार भेदे अब्रह्म तजी पूर्ण शुद्ध ब्रह्म रूप सिद्ध पद पाम्या छो तेथी अनंत स्वतत्र पर्याये परम पूर्ण आनद भोगी छो अने दर्शन ज्ञान चरणानंद स्वादना मूल छो अने सकल विभाव प्रसंगथी फंद रहित अफंदी छो माटे हे देव ! तमेज पूर्ण समभाव वडे ज्ञानादि स्वगुणनो रस स्वाद लेवावाला छो ॥ ४ ॥

तेहनी भक्ति भवभय भाजे, निगुण पिण गुण शक्ति गाजे दास भाव प्रभुताने आपे, अंतरंग कलिमल सवि कापे ॥५॥

अर्थ—एहवा देवनी भक्ति भव भयनी कापवावाली छे निश्चयथी प्रभु कोई अन्य द्रव्यने गुण दोष करता नथी पण व्यवहार नयथी शुद्ध नये देशना आपी अनेक भवि जीवोने संसार समुद्रथी पार उतारे छे अने सम्यक्ज्ञान दर्शन चारित्र आपे छे एम अनेक भविने गुण करे छे तेथी गुण करवानी शक्तिए करी गाजे छे एहवा प्रभुनी आज्ञा सेववा रूप दास भाव जे आदरे ते स्वतंत्र आत्म शुद्धता रूप अनंत प्रभुता पामे अने अंतरगमां रह्यो जे कलुषता

उपजावनार अज्ञान मिथ्यात्व अने कषायादि विभावता रूप मेल तेने कापे ॥ ५ ॥

अध्यातम सुख कारण पूरा, स्वस्वभाव अनुभूति सनूरो।
तसु गुण वलगी चेतना कीजे, परम महोदय शुद्ध लहीजे॥६

अर्थ:—श्री मुनिसुव्रत स्वामी आत्म अधिकार राज्य सुख प्राप्तिनु पूर्ण पुष्ट कारण छे शुद्ध आत्म स्वरूप अणजाणता जीव पोतानो आत्मीक अधिकार जाणे नहीं तेथी पुद्गल द्रव्य पर्यायने पोते अने पोताना जाणी मानी तेना अधिकारी पोते थई अथिर अने परतंत्र पुद्गलनु कर्त्ता भोक्ता ग्राहक व्यापक रक्षकपणुं पोतामां मानी बेठा छे ते पुद्गलो आपणा राख्या रहे नहीं, कर्या थाय नहीं वली पर क्षेत्री पदार्थो भोगवी शकाय नहीं वली लेवाय नहीं एम अणहोतु थाय नहि तेथी तेमां खेद करी करी तेना विनाशे पोतानो विनाश आदि विपर्यास वासना थई रहि छे तेथी जन्म मरणादिक अनंत दुःख भोगवे छे पण ज्यारे प्रभु वचने आत्मा पोतानो आत्मीक अधिकार जाणे त्यारेज सकल क्लेशथी मुक्त थाय अने आत्म-अधिकारनुं अत्यंतीक स्वतत्र सहज सुख पामे. तो ते अध्यात्मीक सुखना दातार तो प्रभु अने प्रभु आणाना शुद्ध प्रेरक छे ते सिवाय अन्य कोई नथी माटे परम अने पूर्ण उपकारी प्रभुजी तमेज छो जेम कोई पुरुष परघर परवस्तु पर स्त्री आदिकनो अधिकारी नथी अने परघर स्त्री वस्तु आदिकनो अधिकारी पोताने मानी ते परवस्तुने आदरे तो ते सुखी थाय नहीं अने दुःखी थाय पण ज्यारे पोतानी घर स्त्री आदि वस्तुनो अधिकारी पोताने जाणे माने आदरे त्यारेज दुःख मटे अने सुख थाय तेम आत्मा अन्य वस्तुनो अधिकारी नहीं छता पोताने अन्य वस्तुनो अधिकारी जाणी मानी आदरे तो ते दुःखी रहे पण सुखी थाय नहीं ज्यारे पोतानो अधिकार जेवो छे तेहवो जाणी मानी आदरे तोज सकल दुःखथी निवर्त्ती अने परमा-

नंदनी प्राप्ति थाय अने प्रभुजी तो निज ज्ञानादि रिद्धिना अनुभव भोगमां सदा तृप्त–मग्न छो महा तेजवंत छो. आपणी चेतना प्रभुना ज्ञानादिक निर्मल गुणे वलगी राखीए एटले ज्ञानचेतना प्रगट थाय. चेतना अनादिथी कर्मफलचेतनापणे अने कर्मचेतनापणे परिणमेली वलगेली छे. ज्यांसुधी चेतना कर्मफलचेतनापणे एटले उदय आवेला शुभाशुभ कर्म फलमा राग द्वेषपणे परिणमे छे तथा योग क्रिया प्रवर्त्तींथीज सुख उपजे छे एम जाणी क्रिया परिणाममां कर्मचेतना पणे वर्त्ते छे त्यांसुधी स्वरूप ज्ञानमां लागती वलगती नथी पण ज्यारे प्रभुना परम निर्मल ज्ञानादि गुणे वलगे त्यारे शुद्धात्म स्वभावमां आनद जाणी शुद्धात्म स्वभावमां थिर रहेवा ज्ञानचेतनापणे परिणमे. माटे आपणी चेतना प्रभु गुणे रसीली करीए एटलेज शुद्ध स्वगुण रसी थाय एम परम महोदय के० केवलज्ञानादि अनत स्वगुण निर्मल पूर्ण व्यक्ति पामीए ॥ ६ ॥

मुनिसुव्रत प्रभु प्रभुता लीना, आतम सपत्ति भासन पीना॥ आणा रगे चित्त धरीजे, देवचंद्र पद शीघ्र वरीजे॥७॥

अर्थः—जे जीव मुनिसुव्रत स्वामीनी पूर्ण प्रभुता जाणी आश्चर्य पाम्या के अहो ! प्रभुजीनुं परमज्ञान परमदर्शन परम थिरताए शुद्ध स्वपर्याय रम्यमांहे रमण अने परम अचल स्वतंत्र अबाधित वीर्य. एम अनंत गुणोनी शुद्धतानो परमानंद जाणी चित्त लीन थयुं तेनेज निजात्म शुद्ध संपदानुं पुष्ट भासन थयुं. ए माटे तीर्थंकरोनी आज्ञामां रंगे चित्त थिर करीए तोज देवचंद्र मुनि कहे छे के शुद्धात्मपद उतावळु पामीए ॥ ७ ॥ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ त्रयोदशम श्री सुमतिजिन स्तवन ॥

॥ कान्हैयालाल ए देशी ॥

प्रभुस्यूं इस्यूं विनवुरे लाल, मुज विभाव दुःख रीतरे

साहवियालाल । तिन कालना ज्ञेयनीरे लाल, जाणो छो सहु नीतिरे साहवियालाल ॥ प्रभु० ॥ १ ॥

अर्थ:--तेरमा श्री सुमति जिन प्रभुथी हुं एवी अरज करु छुं के में ताहरां वचन जाण्या आदर्या पहेला पुद्गलोमा आपापणु मानी महा विभाव दृढ परिणाम बांध्या ते परिणामनो वेग ताहरां वचन जाण्या छता आजसुधी मटतो नथी अने तेथी अज्ञान मिथ्यात्व अने कषायादिथी परतन्त्रता विगेरे बहु दु ख भोगवुं छु ने माहरोज आदरेलो विभाव दु ख त्रास आप्यां करे छे अने हे साहेब! तमे तो सकल द्रव्यनी त्रिकाल परिणतिनी नीति जाणो छो एटले पंचास्तिकाय अने काल सकलज्ञेयनी नीति अने रीति जाणो छो ॥ १ ॥

ज्ञेय ज्ञानस्यु नवि मिलेरे लाल, ज्ञान न जाये ए तथ्थरे॥ सा० ॥ प्राप्त अप्राप्तमेयनेरे लाल, जाणो जे जिम जथ्थरे ॥ सा० ॥ प्रभु० ॥ २ ॥

अर्थ --जे जे द्रव्यना जे जे स्वभाव अने जेटला जेटला गुणपर्याय होय ते तेमज रहे वली पर्याय क्रमवर्त्तीए उत्पन्न थाय, आवे वली तेनुं भवितव्य जेम होय तेम थाय अने उद्यम पण भवितव्य प्रमाणे बने अने जे जे काले जे जे योग संभव छे ते तेम बने एम पंच समवाय मल्या कार्य थाय एमा काई शंका नथी एमाथी काई पण एकातता ते मिथ्यात छे ज्ञेय ज्ञान साथे मली एकमेक थाय नहीं, ज्ञान ज्ञेय क्षेत्रे जाय नहीं अने ज्ञेयपण ज्ञान क्षेत्रे आवे नहीं जेम दर्पणमा जे पदार्थो भासे छे ते पदार्थो दर्पण साथे एकमेक थई जता नथी, दर्पण दर्पण रुपे अने पदार्थ पदार्थ रुपे रहे छे तेम ज्ञान ज्ञान रुपे अने ज्ञेय ज्ञेय रुपे रहे छे ए मर्यादा छे प्रभुजी तमे दूर आकाश क्षेत्रे रह्या अप्राप्तमेय ज्ञेयने अने एक आकाश क्षेत्रे रह्या स्वपर प्राप्तमेय ज्ञेयने तथा वर्त्तमान

काले वर्त्तता प्राप्त अप्राप्तमेय ज्ञेयने अने अतित अनागते वर्त्तता अप्राप्तमेय ज्ञेयने क्षेत्रथी अने कालथी दूर अने निकट एटले अ-प्राप्त अने प्राप्तमेय ज्ञेयने जे जेम छे ते तेम समकाले अशेषपणे जाणो छो एटले कोई पण ज्ञेय एहवो नथी के तमारी ज्ञायकतामां न त्रासे ॥ २ ॥

छति परजाय जे ज्ञाननारे लाल, ते तो नवि पलटायरे ॥ सा० ॥ ज्ञेयनी नवनव वर्त्तनारे लाल, सवि जाणे असहायरे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ ३ ॥

अर्थ.—ज्ञानना अविजागी छती पर्यायमांथी कोई पर्याय कोई काले पण नाश थाय नही अने तेज अविजागी छती पर्यायो छतीपणे रहिने सामर्थ्यपणे आवे छे पण अछतीपणे थता नथी एटले छती-पणानो नाश नथी, मात्र तिरो अने आवीर्जावे थया जाय. ज्ञेयोनी नवे नवे समय नवि नवि वर्त्तना थाय ते अन्य ड्व्यनी सहाय विना अने प्रयासविना जणाय देखाय ॥ ३ ॥

धर्मादिक सहु ड्व्यनोरे लाल, प्राप्त जणी सहकार रे ॥ साहि० ॥ रसनादिक गुण वर्त्ततारे लाल, निज क्षेत्रे ते धाररे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ ४ ॥

अर्थ.—धर्मादिक अजीव ड्व्य प्राप्त थयाने सहायकारी छे एटले धर्मास्तिकायना जे प्रदेशमां गति परिणामी जीव पुद्गल आवी प्राप्त थाय तेनेज ते गतिसहाय आपे, अधर्मास्तिकायना जे प्रदेशमा स्थिति परिणामी जीव पुद्गल आवी प्राप्त थाय तेनेज ते स्थिर सहाय आपे, आकाशना जे प्रदेशमां जीव पुद्गल आवी प्राप्त थाय मले तेनेज ते अवकाशदान आपे पण अन्य प्रदेशे रहाने आपे नहीं, वली चार अंश स्निग्ध के रुक्ष व्यक्तिमां जे पुद्गल परमाणु होय ते तेज क्षेत्रमां तेथी बे

अंश न्यून के अधिक स्निग्ध रुक्ष गुण व्यक्तिवाला अन्य पुद्गल परमाणु आवी प्राप्त थाय तो तेनी साथे ते मले पण अन्य आकाश क्षेत्रे रहेला स्निग्ध के रुक्ष बे अंश न्यून अधिक व्यक्तिवाला पुद्गल परमाणु अगर खध साथे मले नहि अने कार्मणादि वर्गणा जीव प्रयोगे परिणमेली जे आकाश क्षेत्रमा होय ते ने आकाश प्रदेशमां रहेली अन्य वर्गणा साथे मले ए प्रमाणे धर्मास्तिकायादि चारे अजीव द्रव्यने अन्य प्रदेशे रहेलाने चलाववु, थीर राखवु, अवकाश आपवुं के मलवु थतुं नथी. चक्षु तथा मन विना रसनादिक चार ईंद्रियोने व्यजनावग्रह छे एटले स्वादवाली वस्तु जीभ प्रदेशने मले अने स्पर्शवाली वस्तु त्वचाने मले अने गंधना पुद्गल नाशीका अंदर घ्राणईंद्रियने मले–स्पर्शे अने शब्दना पुद्गल श्रोतईंद्रियरुप पडदाने मले–स्पर्शे तोज तेनो बोध थाय ए पाचे ईंद्रियो दूर क्षेत्र विषयी कही छे पण रसनादिक चार ईंद्रियोने तो ते विषयोना पुद्गल स्वक्षेत्रमा आवी मले तेनेज स्पर्शे छे अने चक्षु ईंद्रियने तो पुद्गल पदार्थ उपर पडेलु सूर्यादिनुं उद्योत किरण परावर्त्तन थई चक्षुमां आवे त्यारे बोध थाय छे तेथी तेने व्यंजनावग्रह कह्यो नथी पण उद्योत किरण वस्तु उपर पडी परावर्त्तन थई आंखमां आव्या विना तेनो बोध थतो नथी अने प्रभुजीना केवलज्ञानमां तो क्षेत्रे काले दूर निकटना पण रूपी अरूपी सर्वे पदार्थनो समकाले बोध थाय छे ॥ ४ ॥

जाणग अभिलाषी नहिरे लाल, नवि प्रतिबिंबे ज्ञेयरे ॥ सा० ॥ कारक शक्ते जाणवुंरे लाल, भाव अनंत अमेयरे ॥ सा० ॥ प्रभु० ॥ ५ ॥

अर्थ –प्रभु परद्रव्यने जाणवाना अभिलाषी नथी अने अन्य ज्ञेयोनुं प्रतिबिंब पण पोतानी ज्ञायकतामा पडतु नथी पण जीवमां अनंत गुणोना कारक चक्र आप आपणा कार्यपणे दर समय फरे छे

तेमां ज्ञान कारक चक्रमां नवा नवा समयनी नवि नवि ज्ञेय प्रवर्त्ती ज्ञायकतानुं संप्रदान अने पूर्व ज्ञेय प्रवर्त्ती ज्ञायकतानुं अपादान सहज स्वभावे थयां करे अथवा पूर्व ज्ञेय ज्ञायकतानुं अतित ज्ञानपणे परिणमवुं अने वर्त्तमान ज्ञेयनुं वर्त्तमान ज्ञानपणे परिणमवुं तेथी सकल ज्ञेयोनी परिणति वर्त्ती वर्त्ते छे अने वर्त्तशे एम भासे छे तथा ज्ञेयोमा आप आपणा गुण प्रवर्त्तीनुं परावर्त्तन थवुं अने जीव द्रव्यमां ज्ञान दर्शन उपयोग प्रवर्त्तीनुं परावर्त्तन थवु एम सर्वे द्रव्योनुं अगुरुलघु चक्र समकाले फरे छे तेथी जाणग पासगपणुं सकल समय नवि नवि परिणतिए परिणमे छे अने जाणग पासगपणुं नवि नवि परिणतिनुं थाय तो रमण पण नवा नवा पर्यायनुं थाय अने वीर्य पण नवि नवि पर्याय प्रवर्त्तीए थयुं तेथी वीर्य पण नवुं उपज्युं कहेवाय एम अनंता गुणो नवि नवि परिणतिए परिणमे छे तेथी जाणवुं पण कारक शक्ति वडे अनंत भावनुं अमेयपणे (अमाप) पणे छे जेम सूर्यने एहवो अभिप्राय नथी के पृथ्वीना पदार्थो जेम प्रवर्त्ते तेम हु प्रकाश करूं पण सूर्यना उद्योतमा पृथ्वीना सर्वे पदार्थो जेम जेम प्रवर्त्ते तेम तेम भासे छे ते विषे सूर्यने पण प्रयास के अभिलाष नथी पण सहज स्वभावे प्रवर्त्ते छे तेम प्रभुजीना ज्ञानादि गुणो विनाअभिलाषे अने विनाप्रयासे प्रवर्त्ते छे ॥ ५ ॥

तेह ज्ञान सत्ता थकेरे लाल, न जणाये निज तत्त्वरे ॥ ॥ सा० ॥ रुचि पण तेहवि नवि वधेरे लाल, ए भ्रम मोह महत्वरे ॥ सा० ॥ प्रभु० ॥ ५ ॥

अर्थः—एहवाज ज्ञानादिक अनंत गुणो हमारी सत्तामां छे तो पण हमारूं शुद्ध तत्त्व जणातुं नथी अने ते तत्त्व जाणवा माटे पूर्ण रूचि पण वधती नथी ए हमारे मोह अने ममतानु महात्म्य छे ॥ ६ ॥

मुज ज्ञायकता पर रसीरे लाल, पर तणाए तमरे

साहिबि० ॥ ते समता रस अनुभवेरे लाल, सुमति सेवन व्यापसेरे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ ७ ॥

अर्थ—माहरी ज्ञायकता अनादि कालथी पुद्गल परिणतिनी रसीली थयली छे अने ते पुद्गल परिणति अथिर परतत्र विनाशीक तेथी तेनी तृष्णाए तपी रहेली छे अने पुद्गल परिणतिमाज तत्त्व सार मानेलो छे पण माहरी ज्ञायकता माहरा द्रव्य क्षेत्र काल अने भावमा तत्त्व जाणी सतोष अने तृप्ती वाली थाय तो ते समता रस अनुभवे ते तो सुमति जिन स्वामीए सुमति सेववा आदरवानी बतावी तेमा व्यापे तोज बने ॥ ७ ॥

बाधकता पलटाववारे लाल, नाथ भक्ति आधाररे ॥ सा० ॥ प्रभु गुण रगी चेतनारे लाल, एहीज जीवन साररे ॥ सा० ॥ ॥ प्र० ॥ ८ ॥

अर्थ—हमारी अनादिनी बाधक भावे परिणमेली आत्म परिणतिने पलटावी साधक भावमां लाववा तुम सरखा प्रभुतावंतनी आणा सेववी एज हमारे परम पुष्ट आधार छे ए माटे चेतना प्रभु गुण रंगी करवी एज आ वातनु जीवन अने सार छे ॥ ८ ॥

अमृतानुष्टाने रह्योरे लाल, अमृत क्रियाने उपायरे ॥ ॥ सा० ॥ देवचद्र रगे रमेरे लाल, ते सुमति देव पसायरे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ ९ ॥

अर्थ—अमृत अनुष्टानने आश्रये अमृत उपजे देवचंद्र मुनि कहे छे के भव्य जीवो शुद्धात्म तत्त्वमा रमे ते सुमति देवनोज पसाय जाणवो ॥ ९ ॥

सपूर्ण

॥ अथ चउदशम श्री शिवगति जिन स्तवन ॥

थांरा मेहेला उपर मेह झबुके वीझली हो लाल ॥ ए देशी ॥

शिवगति जिनवर देव सेव आ दोहिली हो लाल ॥
॥से० ॥ पर परिणति परित्याग करे तसु सोहिली हो लाल ॥
॥करे० ॥ आश्रव सर्व निवारि जेह संवर वरेहो लाल ॥जेह०
जे जिन आणा लीन पीन सेवन करे हो लाल ॥पीन० ॥ १

अर्थः–शिवगति नामा चौदमा तीर्थंकरनी सेवा ते अति दोहिली छे. हमो संसारी जीव मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय जोगचपलता वशे जे जे मार्गे चालीए छिये ते अशिव मार्ग छे एटले कल्याणकारी मार्ग नथी जे अशिव मार्गे प्रवर्त्ते ते वंछित सुख पामे नहि अने दुःखी रहे पण जेने शिवगती के० शिव चाल छे एहवा जिनवर देवनी आज्ञा सेववी ते परम दूर्लभ छे पण पर परिणतिने जे रूडी रीते त्यागे–दूर करे तेने ए सेवा सुलभ छे. जे जीव सत्तावन्न प्रकारे अथवा तो अनेक प्रकारे आश्रव तजी संवरवंत थाय तेज पुरुष जिन आज्ञामां परम लीन थई पुष्टपणे जिन आज्ञा सेवे अनेक प्रकारे आश्रव कह्यो पण ते परवस्तुना राग रूप एक अशुद्ध उपयोगमांज समाय छे अने द्वेष ते तो राग होय तोज उपजे. उक्तंच " पर दव्व रतो वझ्झई, विरतो मुंचेई अठ कम्मोंहि, एसो जिण उवएसो, समासउ बध मोख्खस्स " ॥ १ ॥

वीतराग गुण राग भक्ति रुची नैगमे होलाल ॥ भ० ॥
यथाप्रवृत्ति भव्य जीव नय संग्रह रमे हो लाल० ॥ नय ॥
अमृत क्रिया विधि युक्त वचन आचारथी होलाल ॥
॥ वचन० ॥ मोक्षार्थी जिन भक्ति करे व्यवहारथी होलाल०
॥ करे० ॥ २ ॥

अर्थ –मोक्षार्थी जीव जिन भक्ति तथा साधन व्यवहार सात नये करी करे ते कहिये छिये

(१) वीतरागना गुणोनो राग अने वीतरागनी आज्ञा सेववानी रूचि ते नैगम नये भक्ति कहीए.

(२) ज्यारे भव्य जीव छेल्लु यथाप्रवृत्तिकरण करे त्यारे संग्रह नये भक्ति कहीए ए करणमां सत्तापणे जिन प्ररूपित तत्त्वनो अभिलाषी जीव छे.

(३) जिन वचनमा जे आचार क्रिया अनुष्टान सेववानुं कह्युं ते विष गरल अने अन्योन्य अनुष्टान त्यागी मोक्षार्थी जीव भेद-ज्ञानादि श्रुत वाचना, पृच्छना, परिअट्टना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथा तथा विनय वैयावच्चादि आत्म शुद्धताने तद्हेतु क्रिया अने शुक्लध्यान रूप अमृत क्रिया विधिने सेवे ते व्यवहार नये भक्ति कहीए ॥ २ ॥

गुण प्राग्भावी कार्य तणे कारणपणे हो लाल ॥ तणे० ॥
रत्नत्रयि परिणाम ते रुजुसूत्रे भणे हो लाल ॥ ते रुजु० ॥
जे गुण प्रगट थयो निज निज कारज करे हो लाल के ॥
निज० ॥ साधक भावे युक्त शब्द नये ते धरे हो लाल ॥
॥ शब्द० ॥ ६ ॥

अर्थ – (४) ज्ञानादि अनंत आत्म गुणो शुद्ध प्रगट करवा रूप कार्यनो परिणामी थयो जीव तेसूख्य शुद्ध ज्ञान दर्शन चरणादिना परिणाम करे ते रूजुसूत्र नये भक्ति कहीए (५) ज्ञानादिक शुद्धात्म गुण जे जे अंशे प्रगट थई आप आपणुं कार्य शुद्ध प्रगटपणे करवा लागे अने सर्वे गुणो पूर्ण प्रगट करवानो साधक भाव आदरे ते शब्द नये सेवा भक्ति कहीए ॥ ३ ॥

पोते गुण पयाय प्रगटपणे कार्यता हो लाल ॥ प्र० ॥

नणे थाए जाव ताव संभिरूढता हो लाल ॥ ताव० ॥
संपुरण निज भाव स्वकारय कीजते हो लाल ॥स्व० ॥
शुध्धातम निज रूप तणे रस लीजते हो लाल ॥ तं० ॥ ४ ॥

अर्थ–(६) केवलज्ञान केवलदर्शन यथाख्यातचारित्र अने परम अचल वीर्यगुणो अने पर्यायो प्रगटपणे आपआपणुं कार्य करे छे त्यांथीज ज्यांसुधी अव्याबाध अक्षयस्थिति अटलअवगाहना अने अगुरुलघु ए चार गुणोना अंशो अघाती कर्म वशे ज्यांसुधी पूर्ण प्रगट कर्या नथी त्यांसुधी समभिरुढ नये सेवा कहिए (७) शैलेसी करणना छेल्ला समय आठे गुणोना सर्व अंश प्रगट निर्मल कर्या अने ते मूल्य आठ गुण शिवाय अनंता गुणोना पूर्ण अंश प्रगट थया अने ते सर्वे गुणो आपआपणुं कार्य पूर्ण पर्याये पूर्ण पदे करवा लाग्या त्यारे एवंभूत नये सेवा थई एटले चौदमा गुणठाणाना चरम समये एवंभूतनये सेवा जाणवी. ए स्थानके पूर्ण आत्म शुद्ध पर्यायनो लाभ ले छे त्यां एवंभूतनये सेवा थई जाणवी सेवानुं फल सेवा साथे मलेज छे पण कालांतरनो वायदो नथी कोई कहेके–सेवानुं फल तो ते भवे अथवा भवांतरे पण फले छे तेने कहीए के शुभ उपयोगवडे शुभ कर्मदल बंधाय ते अनुक्रमे उदय आवे पण अहीआं तो शुद्धतानी वात छे अने शुद्धतामां आत्मगुण प्रगट थयानो आनद ते तो तरतकाल आवे छे अने ऊंचा गुणठाणानुं कारण थाय छे जेम सूर्य उग्यो के तेज वखते अंधकार नाठो अने उद्योत थयो तेनो आनंद तेज वखत आव्यो तेम अहींआं अशुद्धता नाठी अने शुद्धता प्रगट थई ते अशुद्धतानुं दुःख गयुं अने शुद्धतानो आनंद आव्यो एमांहे कालक्रमनुं जोर नथी ॥ ४ ॥

उत्सर्गे एवंभूत ते फलने नीपने हो लाल ॥ ते० ॥
निसंगी परमातम रंगथी ते बने हो लाल के ॥ रं० ॥

सहज अनत अत्यत महंत सुखे भर्या हो लाल ॥म० ॥
अविनाशी अविकार अपार गुणे वर्या हो लाल॥ अ० ॥५

अर्थ —चौदमा गुणठाणाना अते पूर्ण गुणपर्याय प्रगट कर्या अने तेनुं फल लीधुं ते उत्सर्गे एवभूतनये सेवा थई एवा निसंगी परमात्म भावमा रंग राखवाथी ए सेवा बने प्रभुजी सहज स्वभावी अंत रहित अनत सुखे भरपूर महंत छे वली विनाश रहित विकार रहित अथाह गुण वर्या छे ॥ ५ ॥

जे प्रवृत्ति भव मूल छेद उपाय जे हो लाल॥ छे० ॥
प्रभु गुण रागे रक्त थाय शिवदाय ते हो लाल ॥ था० ॥
अश थकि सरवश विशुध्दपणु छवे हो लाल ॥ वि० ॥
शुकल बीज शशि रेह तेह पूरण हुवे हो लाल ॥ तेह० ॥६

अर्थ,—आत्म स्वरुपना अज्ञान अने मिथ्यात्व रागादिकवडे जे प्रवृत्ति ते भवभ्रमणनुं मूल छे अने प्रभुना शुद्ध गुणोमां रागे रक्त थवु तेज भव भ्रमणनु मूल छेदवानो मुख्य उपाय छे तथा सकल उपद्रवनो नाश करनार आखर शिवदायी थाय छे एटले प्रभु गुण राग रुप शुभ उपयोग ते शुद्ध उपयोगनु परम कारण छे अने शुद्ध उपयोगे मुक्ति छे अंश थकी सर्वांश विशुद्धता प्रगटे एटले नैगमनयथी जे वीतरागनी आज्ञा सेववानी रुची कही ते विशुद्धताना अंश छे अने विशुद्धतामा गर्भित शुद्धता छे ते विशुद्धता साथे गर्भित शुद्धता वधते वधते एवंभूतनये पूर्ण शुद्धता प्रगटे जेम बीजनो चंद्रमा उग्या पछी दिने दिने कला वधते वधते पूनमे पूर्ण सोले कलाए प्रगट थाय तेम नैगम सेवाथी विशुद्धता अने गर्भित शुद्धता शरु थई ते ते वधते वधते चौदसे गुणठाणे एवंभूतनये पूर्ण शुद्धता प्रगटे ॥ ६ ॥

तिम प्रभुथी शुचि राग करे वीतरागता हो लाल ॥करे० ॥

गुण एकत्त्वे थाय स्वगुण प्राग्जावता हो लाल ॥ स्वगुण०॥
देवचंद्र जिनचंद्र सेवा मांहि रहो हो लाल ॥ सेवा० ॥
अव्याबाध अगाध आतम सुख संग्रहो हो लाल ॥ आ०॥७

अर्थः—तेम प्रजुथी पवित्र राग ते आखर पूर्ण वीतरागता प्रगट करे. प्रजुना निर्मल गुणनुं एकत्त्व ध्यान करवाथी परिणति आत्म गुणथी एकता पामी पूर्ण गुण प्रगटे. एम देवोमां चंद्रमा समान एवा शिवगति साहेबनी सेवामा रही आत्मिक अनत अव्याबाध अगाध सुखने सादिअनंतकाल सुधी जोगवो—राखो ॥ ७ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ पंचदशम श्री आस्तागजिन स्तवन ॥

॥ मन मोह्युं अमारूं प्रजु गुणे ॥ ए देशी ॥

करो साचा रंग जिनेश्वरू, संसार विरंग सहू अन्यरे ॥
सुरपति नरपति संपदा, ते तो दुरगंधी कदन्नरे ॥ करो० ॥ १

अर्थः—हे ! शाश्वत सुख अजिलाषी जव्यो ! तमो आस्ताग स्वामीना वचने अने आस्ताग स्वामीना गुणोमां साचो रंग करो. ससार विरंग के० संसारना अनेक प्रकारना जे धन विषय सन्मान आयुष्य कुंटुवादि तेमा मिथ्या दशाए रंग लागे ठे पण ते सर्वे विपरित रंग ठे अने आत्मक्षेत्रथी न्यारो विनाशीक जय जरेलो परंतत्र पूर्वापर क्लेश युक्त ठे देवोना पति ईंद्रो अने मनुष्योना पति चक्री राजाउ आदिनी संपदा जे अश्व गज स्त्री आदि ते तो जगत् जीवनी एंठ, दुर्गंधीक अने सडेलां अनाज जेवी, विव्हलता करावनार, पापकारी दीनता युक्त ठे पण तेमां मोह मदिरानी ठाके अंध धुंध थया जीवोने सुख जणाय ठे पण परमार्थे ते रोग अने रोगना उपचार ठे॥१

जिन आस्ताग गुण रस रमी, चल विषय विकार विरूप रे ॥
विण समकित मते अजिलखे, जिणे चाख्यो शुद्ध स्वरूपरे ॥

॥ क० ॥ २ ॥ निज गुण चिंतन रस रम्या, तसु क्रोध अनलनो ताप रे ॥ नवि व्यापे कापे जवस्थिती, जिम शीतने अर्क प्रतापरे ॥ क० ॥ ३ ॥

अर्थ –श्री आस्ताग जिन पोताना ज्ञानादिक अनंत शुद्ध गुणमां रसीआ अने अखंड समय स्वतन्त्रपणे रमण करवावाला छे चलायमान विषय विकार ते आस्ताग स्वामीना गुणथी उलटो दुःख अने क्लेश रूप छे ज्यांसुधी सम्यक्ज्ञान नथी त्यांसुधी मूढ जीव एहवा विषयरूप दुर्गुणोनो अजिलाषी होय पण जेणे शुद्ध गुण स्वरूपनो स्वाद चाख्यो ते तो निज शुद्धात्म गुण चिंतन रस जलमा रम्या, तेने क्रोधादिक कषाय अग्निनो ताप कदापि व्यापे नहि पण ते जवस्थितीने कापे जेम सूर्यनो प्रताप शीत कापे छे तेम जाणवु ॥ २ ॥ ३ ॥

जिन गुण रंगी चेतना, नवि बांधे अजिनव कर्मरे ॥ गुण रमणे निज गुण उलसे, ते आस्वादे निज धर्मरे ॥ क० ॥ ४

अर्थ –जे जीव जिन गुणोमां रंगी थयो ते नवा कर्म बंध करे नहीं. जिन गुण रमणे पोताना आत्मिक शुद्ध गुण उल्लास पामे–प्रगट थाय तेज पोताना ज्ञान दर्शन चरणादिक धर्मनो स्वतंत्र आनंद ले ४

पर त्यागी सगुण एकत्वता, रमता ज्ञानादिक जावरे ॥ स्वस्वरुप ध्याता थई, पामे शुचि खायक जावरे ॥ करो०॥५

अर्थ –जे पुरुष पुद्गल परिणतिनु कर्त्तापणुं जोक्तापणुं रक्षकपणुं ग्राहकपणु व्यापकपणु तथा राग द्वेष अने ममता त्यागी स्वस्वरुप ध्याने एकत्व रही ज्ञानादिक रम्य[illegible] करे ते पूर्ण स्वस्वरूपनो ध्याता थई पवित्र अक्षय [illegible] ॥ ५ ॥

गुण करणे [illegible] गुण [illegible] थीती छेद रे॥ संक्रमणे उद[illegible] ॥६॥

अर्थः—ज्ञानगुणना अविभागी छती पर्याय रूप करणे वधतो वधतो अने नवो नवो ज्ञान गुण निर्मल प्रगट थाय तेम दर्शन चरणादि सर्वे गुणोना छती पर्याय रूप करणे दर्शन चरणादिक गुणो पूर्ण पर्याये निर्मल प्रगटे अने सत्तागते ज्ञानावरण दर्शनावरण अने मोहनीय आदिना रस (अनुभाग) अने स्थिति दल सहित छेदे अने प्रदेश उदयथी संक्रमण करी निर्झरा करे अने अज्ञान मिथ्यात्व कषाय तथा जन्म मरण भय शोकादिनो खेद टाळे ॥ ६ ॥

सहज स्वरूप प्रकाशथी, थाए पूर्णानंद विलासरे ॥
देवचंद्र जिनराजनी, करज्यो सेवा सुख वासरे ॥ करो० ॥ ७॥

अर्थ.—सहज शुद्धात्म स्वरूप प्रकाश थवाथी स्वतंत्र असंतिक पूर्णानंद विलास प्रगट थाय माटे देवचंद्र मुनि कहे छे जिनराजनी सेवामां रही शुद्ध आत्म सत्ताभूमिमां स्वतंत्र सुखे वास करज्यो ॥ ७

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ षोडशम श्री नमिश्वर स्वामी जिन स्वतन ॥

॥ हो पीउ पंखीडा ॥ ए देशी ॥

जगत दिवाकर श्री नमिश्वर स्वामजो, तुज मुख दीठे नाठी भूल अनादिनीरे लो ॥ जाग्यो सम्यग ज्ञान सुधारस धामजो, भांगी दुर्जय मिथ्यानींद प्रमादनीरे लो ॥ ज० ॥ १

अर्थः—जगतमा ज्ञानरूप दिवाकर, अज्ञान अने मिथ्यात्व रूप अंधकार नाश करवावाला तथा सकल द्रव्यनी शुद्ध सत्ता प्रकाशवावाला श्री नमिश्वर स्वामी तमारूं मुख दीठे एटले तमारा वदन कमलमांथी मेघ ध्वनी पेठे गर्जारव करती शुद्ध स्याद्वाद नयनी देशना सांभलवाथी हमारी अनादिनी भूल नाठी अने सम्यक्ज्ञान रूप अमृतनुं घर उघडयुं—जणायुं. के जेमांथी अनंत प्रकारनुं अमृत

हमे पीए एटले हमारा अनादिना मिथ्यात्वादि असाध्य रोगो जाय
अने ज्ञान अने अचल स्वतंत्र वीर्यादिनी परम पुष्टि थाय अने तेथी
हमारी दुःखे तजाय एवी मिथ्यात्व अने प्रमादनी निंद्रा हती ते
हमे छोडी ॥ १ ॥

सहजे प्रगट्यो निज पर भाव विवेक जो, अंतर आतम
ठहर्यो साधन साधवेरे लो ॥ साध्यालंबी थई ज्ञायकता छेक
जो, निज शुध परिणति थिर निज धर्म रसे ठवेरे लो ॥ज० २

अर्थ – शुद्ध नये अमृत समान तमारी वाणी जाणी आत्म लक्षण
अनात्म लक्षण भिन्न भिन्न जाणी सहजे निज परभाव विवेक प्रगट
थयो अने बध मार्ग मोक्ष मार्ग संवर मार्ग अने आश्रव मार्ग ए
आदि मार्ग साक्षात् जाण्या हे प्रभुजी ! तमारा वचनथी उलटा
...ने दूर रहेवावाला कुमतिपणे चालनार अने चलावनारना भव भ्रमण
...रतां केवा हवाल थशे ? ते विचारतां चित्तमा धुजारो आवे छे वली
कुमतिओ, उपकारीना हितकारी वचनोथी दूर रहे अने मोक्ष
...र्गमा प्रेरता उलटा कोप करे छे तेने शुं करीए ? पण हमारो
...तर आत्मा तमारा परम ज्ञान परम न्याय परम दया भर्या वचन
...नली शुद्ध साध्य जाणी साधन साधवामा ठेर्यो ए प्रभुनो परम
...कार छे हमारी ज्ञायकता परालंबन तजी शुद्ध साध्य आलंबने
वलगी एटले प्रभुनी आणा आलंबनमा पण टकी तेथी निज
...णति निज ज्ञानादिक शुद्ध स्वभाविक आनंदमा मग्न थई-रमवा
...ी रही ॥ २ ॥

...त्यागीने सवि पर परिणति रस रीझ जो, जागी छे निज
...न अनुभव इष्टतारे लो ॥ सहजे छुटी आश्रव भावनी
...जो, चालम ए प्रगटी संवर शिष्टतारे लो ॥ज० ॥ ३ ॥

अर्थः—सकल पुद्गल परिणति रस रीक त्यागीने आत्म गुण अनुभव अभ्यासमां ईष्टपणु जाग्युं तेथी सहजे अनादिनी आश्रव भावनी चाल–टेव हती ते त्रुटी एवी महा जोरावर संवर भावनी शिष्टता के० उत्तम चाल प्रगट थई ॥ ३ ॥

बंधना हेतु जे छे पाप स्थानजो, ते प्रभु भगते पाम्या पुष्ट प्रशस्ततारे लोल॥ ध्येय गुणे वलग्यो पूरण उपयोग जो, तेहथी पामे ध्याता ध्येय समस्ततारे लोल ॥ ज० ॥ ४ ॥

अर्थः—बंध हेतु जे जे पापनां स्थानक हतां ते प्रभु भक्तिए पलटी शुद्धात्म पुष्ट प्रशस्तपणे थया ते नीचे प्रमाणे—

(१) प्राणातिपातपणे जे परिणाम हतो ते पलटी द्रव्य भाव दया परिणामे परिणम्यो.

(२) अनृत वचन परिणाम हतो ते सत्य अमृषा परिणामे परिणम्यो

(३) अदत्त ग्रहणपणे परिणाम ते शुद्धात्म तत्त्व ग्राहकपणे परिणम्यो

(४) पुद्गल द्रव्य गुण पर्याय मथन रूप कुशिल परिणाम ते स्वगुण पर्याय समाधि कामी सहजानंद रमणी थयो.

(५) पर ग्रहण रूप परिग्रह परिणाम ते शुद्ध स्वगुण पर्याय ग्राही थयो.

(६) क्रोध परिणाम पलटी परम क्षमा रूप थयो.

(७) मान परिणाम मृदुता रूप थयो.

(८) माया परिणाम आर्यव रूप थयो

(९) लोभ परिणाम मुत्ति संतोष रूप थयो.

(१०) राग परिणाम वीतरागता रूप थयो

(११) द्वेष परिणाम अद्वेष रूप थयो.

(१२) क्लेश परिणाम अकलुष समाधि रूप थयो.
(१३) अभ्याख्यान परिणाम गुणापित थयो.
(१४) पैशुन्य परिणाम मिथ्यात्वादिक दूर्गुणोना छिद्र मर्म जाणवा देखाडवावाळो थयो.
(१५) परपरिणतिमां रति अरति परिणाम हतो ते विरति निवृत्ति रूप थयो.
(१६) पर जीवना अपवाद बोलवा रूपपरिणाम हतो ते विभाव अपवाद बोलवा रूप परिणाम थयो.
(१७) माया मृषा परिणाम—ते अमाय सत्य रूप थयो.
(१८) मिथ्यात्व शल्य परिणाम हतो—ते सम्यक्त्व निःशल्य परिणाम थयो

एम अढारे पाप स्थानक पलटी निस्पाप अवधस्थानी थयां. अशुद्ध उपयोग निर्मल थई अनत गुण पज्जवमयी सहज शुद्धात्म ध्येयमा पूर्ण अखंडपदे लाग्यो—थिर थयो तेथी ध्याता ध्येयनी पूर्ण समाधि पाम्यो ॥ ४ ॥

जे अति दुस्तर जलधि समो संसारजो, ते गोपद सम कीधो प्रभु अवलंबनेरे लोल ॥ जिन आलंबनी निरालंबता पामे जो; तेणे हम रमशुं निज गुण शुद्ध नंदनवनेरे लोल ॥ ज० ॥ ५ ॥

अर्थ—संसार समुद्र तरवो अति दुस्तर हतो ते जेम गायना पगलाथी पृथ्वी उपर पडेला खाडमां भरायेलु पाणी सहजे ठलघी जवाय तेम ते भवसमुद्र प्रभु आलंबने तरवो अति सुगम थयो एम प्रभुना आलंबने जे वर्ते ते निरालंबपणुं पामे एटले ते पुरुषने कोई अन्य पुरुष के अन्य वस्तुनुं आलंबन लेवानी कदापी (जरूर) रहे

नहीं. ते माटे हमे प्रभु अवलंबने निरालंबता पामी ,ए नंदनवनमां आनंदे रमीशुं ॥ ५ ॥

साध्यादि निज प्रभुताने एकत्त्वजो, निज रत्नत्रयीरे लोल ॥ प्रत्याहारी धारे धारणा शुद्ध जो, तत्त्वानंदी पूर्ण समाधि लये मईरे लोल ॥ ज० ॥ ६ ॥

अर्थः—शुद्ध साध्य आदि निज प्रभुतामां एकत्त्व परिणामे रमे एटले शुद्ध साध्य जाणी सिद्धि करवामां शुद्ध साधनाए निज प्रभुता के० निज शक्तिमां एकत्त्वपणे थिर उपयोगे प्रवर्त्ते तेने पोताना केवलज्ञान केवलदर्शन अने केवल चरणरमण क्षायकभावे थाय. परभावथी परिणाम पाछो वाली एटले प्रत्याहार करी शुद्ध ध्येयमां धैर्यपणे धारणा राखे, वीर्य अचल राखी अक्षोभ रहे ते तत्त्वानंदी जीव पूर्ण समाधिमां लयलीन थाय एटले विकल्पे व्यापेलो उपयोग शुद्ध अचल निज रूपमां लय पामी परम अचल समाधिमय रहे ॥ ६

अव्याबाध स्वगुणनी पूरण रीत जो, कर्त्ता भोक्ता भावे रमणपणे धरेरे लोल ॥ सहज अकृत्रिम निर्मल ज्ञानानंदजो, देवचंद्र एकत्त्वे सेवनथी वरेरे लोल ॥ ज० ॥ ७ ॥

अर्थ.—अनंता गुणो अव्याबाधपणे राखवानी एज पूर्ण रीत छे के स्वगुण कर्त्ता भोक्तापणामां पोताना परिणामनुं रमण अखंड समय एकत्त्वपणे धारे—राखे एटले देवमां चंद्रमा समान नमिश्वर स्वामीनी सेवामां परिणाम एकत्त्वपणे राखवाथीज सहज स्वभाविक निर्मल अनुपचरित ज्ञानानंद पामीए ॥ ७ ॥ ॥ समाप्त ॥

॥ सप्तदशम श्री अनीलजिन स्तवन ॥

देखो गति दैवनीरे ॥ ए देशी ॥

स्वारथ विन उपगारता रे, अद्भुत अतिशय रिद्धि ॥ आत्म स्वरूप प्रकाशता रे, पूरण सहज समृद्धि ॥ अनील जिन सेवीएरे ॥ नाथ तुमारी जोडि न को त्रिहु लोकमेंरे, प्रभुजी परम आधार अछो भवि थोकनेरे ॥ १ ॥

अर्थ --हे अनीलनाथ स्वामी ! सत्तरमा तीर्थपति तमे पोतानो स्वार्थ तो सिद्ध कर्यो छे हवे हमाराथी तमारे काई पण स्वार्थ नथी ते छतां पण तमे हमारा सरखा भव्य जीवो उपर परोपकार करो छो वली अद्भूत अतिशयवंत छो. एटले तमारा अपायापगमन अतिशय वडे हमारा पाप दुरित दु ख नाश थाय छे वली तमारा वचनातिशय वडे हमे हमारी भाषामां तमारां वचन सहजे समजीए छिये वली तमारा परम ज्ञानातिशय पसाये हमोने अनात्मथी भिन्न शुद्धात्म स्वरूपनु ज्ञान थाय छे वली तमारा पूजातिशय पसाये हमे हमारा पूज्य परमपदने पामीए एवी तमारी अतिशयादिक तथा अष्ट महा प्रातिहार्यादि तथा अंतरग केवलज्ञान दर्शनादिकनी भाव लक्ष्मी छे वली तमे शुद्धात्म स्वरूपना प्रकाश करवावाला पूर्ण सहज समृद्धिवत छो माटे हमे अनील प्रभु तमोने सेवीए तमे हमोने ससार दु खथी छोडाववावाला हमारा नाथ छो त्रिलोकमा त्रण काले तमारी जोडीनो कोई अन्य हेतु के० उपगारी नथी तेथी प्रभुजी तमे थोक बध भवि जीवोने परम आधार छो ॥ १ ॥

परकारज करता नहिरे, सेव्या पार न हेत ॥ जे सेवे तनमय थईरे, ते लहे शीव संकेत ॥ अ० ॥ २ ॥

अर्थ --प्रभुजी तमे पर जीव तथा पर पुद्गल कार्यना कर्त्ता नथी

अने तमने सेवनार भविने निश्चयथी तमे पालवावाला के राखवावाला के पार पमाडवावाला नथी पण तमने जे तन्मय थई सेवे छे तेने तमे जाणे समझ्या वंध सलाहवंध शिव आपो एम जणाय छे पण तेनी सेवानुं तेज पुरुष शिवसुख फल पामे छे एमा कांई शंका नथी ॥ २ ॥

करता निज गुण वृत्तितारे, गुण परिणति उपभोग ॥
निप्रयास गुण वर्त्ततारे, नित्य सकल उपयोग ॥ अनील० ३

अर्थः—प्रभुजी तमे तो सकल समय विना प्रयासे निज गुण प्रवृत्तिना कर्त्ता छो अने तमारे स्वगुण परिणतिनोज सकल समय उपभोग छे, नि प्रयासे सहजे गुण वर्त्ते छे अने तेनो उपयोग पण तमारे सकल-समय अखंड छे ॥ ३ ॥

सेव भक्ति भोगी नहीं रे, न करे परनो सहाय ॥ तुज गुण रंगी भक्तनारे, सहजे कारज थाय ॥ अनील० ॥ ४ ॥

अर्थः—तमारी आज्ञा सेववावाला तमारी सेवा भक्ति करे तेना तमे भोगी नथी अने तमे परनी सहाय करवावाला पण नथी पण ताहरा ज्ञानादिक गुणोमां रंगी थई तमारी आज्ञा सेवे ते भक्तोनां सहजे कार्य थाय ॥ ४ ॥

किरिया कारण कार्यतारे, एक समय स्वाधीन ॥ वर्त्ते प्रति गुण सर्वदारे, तसु अनुभव लयलीन ॥ अनील० ॥ ५

अर्थ—तमारे अनेक गुणोना कार्यनी क्रिया कारण अने कार्यपणुं प्रति गुणोनुं दरेक समयमां समकाले तमारे पोताने स्वाधीन छे ते अनुभव रस स्वादमा तमे लयलीन छो ॥ ५ ॥

ज्ञायक लोकालोकनारे, अनील प्रभु जिनराय ॥ नित्यानंद मयी सदारे, देवचंद्र सुखदाय ॥ अनील० ॥ ६ ॥

अर्थः—देवचंद्र मुनि कहे छे के अनील प्रभु अगीआरमा बारमा अने तेरमा गुणठाणाना सामान्य जिनोमां राजा अने लोक

शुं ? पोताना दास रूप फलनु दासपणुं कर्युं एटले स्वामीनुं दासपणुं न रह्युं माटे कामना रहित सेवा करवी ॥ १ ॥

भक्ति नहि ते तो भाडायत, जे सेवा फल जाचे ॥ दास तिके जे घन भरि निरखी, केकईनी परे माचे ॥ सेवा० ॥ २

अर्थ –जे सेवाना फलने ईच्छी सेवा करे ते भक्तिवत नथी पण भाडायत छे दास तेनेज कहीए जे सदा स्वामीना हित समुदायमां राजी रहे–वर्त्ते, स्वामीने गुण थाय एम जूए वली स्वामीनी ईच्छाए वर्त्ते जेम केकई राणी पोताना दशरथ स्वामीनी भक्तिमा अत्यंत रची मची रहेती हती तेम फलकामना रहित प्रभुनी आज्ञाए वर्त्ते ते साचो सेवक जाणशो ॥ २ ॥

सारी विधि सेवा सारंतां, आण न कांइ भाजे ॥ हूकम हाजर खिजमति करतां , सहजे नाथ निवाजे ॥ सेवा ० ॥ ३

अर्थ –सकल प्रकारे रूडी विधिए आणा सेवीए अने कांई पण आणा विराधीए नहीं वली प्रभुना हूकममा हाजर रही खीजमत करीए तो सहजे स्वामीनी मेहेरबानी फले ॥ ३ ॥

साहिब जाणो छो सहु वाते, शु कहीए तुम आगे ॥ साहिब सनमुख अमे मागणनि, वात कारमी लागे ॥से०॥४

अर्थ –साहेब पोते केवलज्ञाने करीने सर्वे जाणो छो के जे सेवामा हाजर छे ते परमानंदना कामी छे तो हमे तुम आगे शु कहीए ? पण साहेब सन्मूख हमे मागण कांई मागवा रूप वात करीए तो ते वात असोहामणी लागे माटे जाणीए छिये के जे प्रभुनी अखरू आणा सेवशे ते अगम अचिंत्य फल पामशे ॥ ४ ॥

स्वामि कृतारथ तो पण तुमथी, आश सहुको राखे ॥ नाथ विना सेवकनी चिंता, कोण करे विणु दाखे ॥ सेवा० ॥ ५ ॥

अर्थ –शुभ क्रियानो स्वामी ते शुभ फल पामे अने शुद्ध स्वभाव

प्रवर्त्तीनो स्वामी शुद्धात्म संपदा पामे ए निश्चय ठे पण प्रभुजी जेवा परम दयालनी आशा तो सर्वे राखे. माहरा जेवा रंक पुरुषोने मोक्ष मार्गमां प्रेरवावाला नाथ विना हमारी चिंता कोण मिटावे ? एटले हमारूं चिंतित देखाड्या विना कोण हमारी चिता करे ? वली हमारूं चिंतित प्रभुजी तमे जाणोज ठो पण बालकनी पेठे महारेथी बोल्या विना न रहेवाय तेथी कहुं हुं ॥ ५ ॥

तुज सेवा फल माग्यो देतां, देवपणो थाये काचो ॥ विण माग्यां वंछित फल आपे, तिणे देवचंद्र पद साचो ॥से० ॥६

अर्थ.—जेणे तमने सेव्या तेनुं फल तमे तेने माग्युं आपो तो तमे सेवाना अर्थी अथवा रागी कहेवाउ तेथी तमारूं देवपणुं काचुं गणाय पण माग्या विना वंछित फल आपो ठो तेथी तमारू देवमां चंद्रमा समान परम देवपद साचुंज ठे ॥ ६ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ विंशतिम श्री धर्मीश्वर जिन स्तवन॥

॥ अखीयां हरखन लागी हमारी अखीयां ॥ ए देशी ॥ राग प्रभाती ॥

हुं तो प्रभु वारि हुं तुम मुखनी, हुं तो जिन बलिहारी तुम मुखनी ॥ समता अमृतमय सुप्रसननी, तरेय नही राग रूखनी ॥ हुं० ॥ १ ॥

अर्थ —हे जिनेश्वर ! तमारा मुखनी हु वारी जाउ—बलिहारी जाउ हु एटले हे जिनेश्वर ! तमारा मुख कमलनी जे वाणी वरसे ठे ते सकल जीवोना पाप मेलने धोवावाली ठे. जीवो स्वपर द्रव्य अने भाव प्राणनी हाणी करी व्यवहार अने निश्चयथी स्वपर सुखनो हाणी करे ठे पण प्रभुजी माहणतानो उपदेश करी सकल जीवना द्रव्य भाव प्राणनी हाणी थती अटकावे ठे ते द्रव्य प्राण—इंद्रियो

(५) बल (३) श्वासोश्वास (१) आयुष्य (१) एम मूल चार छे अने तेना उत्तर भेद दश छे अने भाव प्राण ज्ञान दर्शन चरण अने वीर्य ए मूख्य चार छे तेना उत्तर भेद अनेक अथवा अनत पण छे द्रव्यप्राणे करीने जीव व्यवहारीक सुख भोगवे छे अने ते द्रव्य प्राणनी हाणी करवाथी बे प्रकारनुं दुःख थाय छे जेम स्पर्श इंद्रियनी हाणी करवाथी ते स्पर्श इंद्रियनु छेदन भेदन थाय तेनुं दुःख उपजे छे अने स्पर्श इंद्रिय वडे जे जे सुख लेतो भोगवतो होय ते सुख जाय तेनु दुःख पण जीव भोगवे छे तेमज रसना इंद्रियने छेदवाथी ते छेदन भेदननु दुःख उपजे छे अने रसनाए करीने विविध प्रकारना स्वाद लेतो होय ते जाय तेनुं दुःख उपजे छे एमज पाचे इंद्रियोमा पण जाणवु वली कायबलनो नाश करवाथी दुःख उपजे छे अने कायबल वडे जे सुख लेतो होय ते जाय तेनुं दुःख थाय छे एम वचनबलमा अने मनबलमा पण जाणवुं वली श्वासोश्वासनी हाणी करवाथी श्वासोश्वास रोकायानु दुःख उपजे छे अने श्वासोश्वास वडे जे सुख लेतो हतो ते सुख जाय तेनु दुःख थाय छे अने आयुष्यनी हाणी करवाथी आयुष्य हाणीनु दुःख उपजे छे अने आयुष्य वडे जे सुख लेतो हतो ते सुख जाय तेनु दुःख उत्पन्न थाय छे एम ए दशे द्रव्य प्राणनी हाणीथी वेदना, भय, शोक, कषायादि दुःख उपजे छे अने अवेदना निर्भय अशोक अकषायनु सुख नाश थाय ते दुःख उपजे छे वली ए द्रव्यप्राणनी हाणी करता जीव एक एकथी वैर विरोध बांधी वैर विरोधनी परंपरा वधारी प्राये अनतकाल सुधी दुःखी थाय छे वली ए द्रव्यप्राणनी हाणी ते स्वपर भावप्राणनी हाणीनु कारण पण थाय छे तेथी ज्ञानावरणादिक आठे कर्म पोते बांधी अने बीजाने पण कर्मबंधना कारण थई अनंत काल संसारमां रूले रूलावे छे हवे भावप्राणमा अज्ञान आदरी

अज्ञान पमाडी जूठा विकल्पो करी करावी पोताना निश्चय ज्ञान आनदनी हाणी करे छे अने बीजा जीवोना पण निश्चय ज्ञानानंदनी हाणी करावे छे एम ज्ञानानंद निश्चय सुखनो नाश करवो अने अज्ञान दु:ख खडु करवु ए पण बंने प्रकारे दु ख जाणवुं वली अशुद्ध निश्चय करी पोते मिथ्यात्व आदरीए अने बीजाने मिथ्यात्वनो आदर करावीए तेथी सम्यक्भाव निश्चय सुखनो नाश अने मिथ्यात्व भाव दु खनी उत्पत्ति ए पण बंने प्रकारनुं दु ख जाणवुं वली विषय कषायाचरणे शुद्ध स्वभावाचरण थिरता रूप निश्चय सुखनो नाश करीए अने एम अन्य जीवने पण विषय कषायाचरण करावी शुद्ध स्वभावाचरण निश्चय सुखनो नाश करावीए तो शुद्ध स्वभावाचरण निश्चय सुखनो नाश अने विषय कषायातुरता दु ख अग्निनुं उपजवुं थाय छे ए पण बने प्रकारे दु ख जाणवुं वली भावलब्धि आत्म वीर्य चलायमान करी करण इंद्रियोमां वीर्य बाल बाधक भावे फोरवी अने बीजा पासे फोरवाववाथी भावलब्धि निश्चय सुखनो नाश अने करण वीर्य बन्धे बाधकताए प्रवर्त्ताव्ये दु:खनुं उपजवुं थाय छे ए पण बंन्ने प्रकारे दु.ख जाणवुं एम स्वपर द्रव्य भाव प्राणनी हाणी ते स्वपर जीवने अनेक सुख नाशनुं अने अनेक दु:ख उत्पत्तिनुं कारण छे वली स्वपर जीवने दु ख उपजाववुं ते ज्ञान नहि अने स्वपर सुखनी हाणी करवी लूंटवु ते न्याय पण नथी अने दया पण नथी एम जाणी अनंत ज्ञान न्याय अने दयावंत प्रभुजी तमे माहण-तानो उपदेश कर्यो तेथी तमारा मुखकमलनी बलिहारी छे तमारा शिवाय बोद्ध साख्यादि अन्य अनेक अशुद्ध अभिप्रायवाला तेनाज कहेला शास्त्रोथी ते पोते ज्ञान न्याय दया रहित जणाय छे माटे हे प्रभुजी ! तमारा वचननी शोभा आगल सकल कुमतिउंनुं बल हारी थाकी जाय छे. आ भाव अहिंआं संक्षेपथी लख्यो छे पण सिद्धांतोमां

ए विषे घणो अधिकार छे ते सुज्ञ पुरुषो विशेषथी विचारी लेशे. तमारी वाणी समता रूप अमृत रसे भरेली छे वली चित्तने तथा आत्माने सुप्रसन्न करवावाली अने अज्ञान मिथ्यात्व कषाय अग्निने बुझाववावाली अने शांति आपवावाली छे वली रागादि विभावना पक्ष रहित छे अने विभावना पक्षथी पाछी वालववावाली छे पण विभाव सन्मूख जवावाली नथी ॥ १ ॥

भ्रमर अधर सिम धनु हर कमल दल, कीर हीर पुन्यम शशीनी ॥ शोभा तुछ प्रभु देखत याकी, कायर हाथे जिम असिनी ॥ हुं० ॥ २ ॥

अर्थः-प्रभुना भ्रमर आदिकनी शोभा देखता कमल दल कीर हीर पूनम शशि आदिकनी सर्वे शोभा ते तुच्छ देखाय छे उपमेय आगल जे जे उपमा कही ते सर्वे कायर हाथे तरवार सरखी जाणवी एटले प्रभुना रूपने अन्य उपमा संभवेज नहीं माटे अनुपम रूप छे॥२

मन मोहन तुम सनमुख निरखत, आंख न तृपति अम्हची ॥ मोह तिमिर रवि हरख चंद्र छवी, मुरत ए उपसमची ॥ हु० ॥ ३ ॥

अर्थ -हे मनने प्रमोद आपवावाला ! तमारा सन्मूख जोता हमारी आख तृप्ती पामती नथी एटले वेगली खसवा चाहाती नथी वली प्रभुनी छबी मोहतिमिरने हरवा सूर्य समान अने हरख उपजाववाने पूनमना चद्रमा सरखी उपशम रसे भरी उपशम रस वरसावती आनंद आपनारी छे ॥ ३ ॥

मननी चिंता मटी प्रभु ध्यावत, मुख देखतां तुम जिनजी॥ इंद्रि तृषा गई जिनेश्वर सेवता, गुण गाता वचननी॥ हु०॥४

अर्थः–प्रभुना निर्मल ज्ञानादिक गुण ध्यातां अने प्रभु मुखथी शुद्ध नय स्याद्वाद अमृत मय वचन सांभली प्रभु रूप देखतां हमारूं रूप सिद्ध समान जाणी मननी चिंता मटी गई जिनेश्वर सेवतां अने वचने करी प्रभु गुण गातां इंद्रिय विषयोनी तृष्णा समी गई ॥४

मीन चकोर मोर मतंगज, जल शशी घन नीचनथी ॥
तिम मो प्रति साहिब सुरतथी, ओर न चाहुं मनथी ॥हुं०॥५

अर्थ –मत्स्य जेम पाणीथी, चकोरपंखी चद्रमा देखीने, मोर मेघ देखीने अने हाथी तलाव आदि नीरवाली ठंडाण जग्याथी जेम मग्न रहे छे तेम मने साहेबनी सूरत देखी परम आह्लाद उपजे छे तेथी प्रभुनी प्रभुता शिवाय हु अन्य पदार्थो कुदेव कुवचनादि चाहातो नथी ॥ ५ ॥

ज्ञानानंदन जाया नंदन, आस दास नीयतनी ॥ देवचंद्र
सेवनमें अहनिश, रमज्यो परिणति चित्तनी ॥ हुं० ॥ ६ ॥

अर्थः–हे, ज्ञानानंद दातार ! जाया माताना नंदन, जाया माताने आनंद आपनार, दासनी निश्चय शुद्ध स्वरुपनी आशा पूरो देवचंद्र मुनि कहे छे के हमारा चित्तनी परिणति प्रभु आज्ञा सेवामां अहनिश रमज्यो ॥ ६ ॥ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ एकविंशतिम श्री शुद्धमती जिन स्तवन ॥

श्री जिन प्रतिमा हो जिन सरखी कही ॥ ए देशी ॥

श्री शुद्ध मति हो जिनवर पूरवो, एह मनोरथ माल ॥
सेवक जाणी हो महेरबानी करी, भव संकटथी टाल ॥श्री०॥१

अर्थ—श्री शुद्धमती जिनेश्वर हमारी मनोरथ माला पूरी करो मने तमारो सेवक जाणी महेरबानी करी जव संकटथी उगारो ॥१॥

पतित उद्धारण हो तारण वछलुं, करे अपणायत एह ॥
नित्य निरागी हो निस्पृह ज्ञाननी, शुद्ध अवस्था देह ॥श्री०॥२

अर्थ—जेने ताहरा वचननी सम्यक् प्रकारे रुचि पतित छे तेने तु ससार समुद्रथी उद्धारवावालो अने वात्सल्यता राखी तारवावालो छु तो हमने पोताना जाणी अपणायत कर. प्रभु तु नित्य निरागी पर जन परवस्तुनी स्पृहा रहित ज्ञानमय शुद्ध अवस्थावंत छुं अने ताहरो शुद्ध ज्ञायक देह छे ॥ २ ॥

परमानदि हो तुं परमातमा, अविनाशी तुज रीत ॥ ए
गुण जाणी हो तुम वाणी थकी, ठहराणी मुज प्रीत ॥श्री०॥३

अर्थ—प्रभु उत्कृष्ट आनदवत परमात्मा छो आत्मा तो जीव मात्र कहेवाय छे पण ते पोते पोताना परमभाव जोगी नथी पण प्रभु अखेरु समय परम स्वतंत्र भाव भोगी माटे परमात्मा छो. तमे जे स्वभाव आणद लेवानी रीत ग्रही ते ताहरी रीत अविनाशी छे ए गुण तमारी वाणीथी में जाणी अन्यथी प्रीत तोडी तुमथी प्रीत जोडी छे ॥ ३ ॥

शुद्ध स्वरुपी हो ज्ञानानदनी, अव्याबाध स्वरूप ॥ भव-
जल निधि हो तारक जिनेश्वरु, परम महोदय भूप ॥श्री०॥४

अर्थ—प्रभु स्वद्रव्य क्षेत्र काल अने भावे पूर्ण शुद्ध स्वरुपी ज्ञानानंदमय ज्ञानानंदी छो, सकल समय अव्याबाधमयी छो, हे, जिनेश्वर ! तमे भवदरियेथी भव्यने तारवावाला छो अने पूर्ण सिद्धि पद रुप परम महोदय पदवीना राजा छो ॥ ४ ॥

निरमम निसंगी हो निरभय अविकारता, निरमल सहज
समृद्धि ॥ अष्ट करम हो वन दाहथी, प्रगटी अन्वय रिद्धि ॥५

अर्थः-तमारे कोई परद्रव्य गुणपर्यायनुं ममत्व नथी तेम तेनो संग पण नथी तेथी भय अने कोई प्रकारनो विकार पण नथी अने तमारे ससाम्य राजरिद्धि अनंती सहज स्वतंत्र निर्मल छे अष्टकर्मरुप वन ध्यानाग्नि धमी प्रजाल्युं तेथी तमारे ज्ञानादि अखूट निर्मल रिद्धि प्रगट थई छे ते अनंत कालसुधी खरच्यां पण खूटे नहि५

आज अनादिनी हो अनंत अक्षता, अक्षर अनक्षर रूप ॥ अचल अकल हो अमल अगमनुं, चिदानंद चिद्रुप ॥ श्री० ॥ ५ ॥

अर्थः-प्रभुजी आज तमारे अनादिनी सत्तागते अक्षयपणे रहेली अनंत रिद्धि अने शक्ति व्यक्त थई छे ते अक्षर अने अनक्षर रूप के० वचन अक्षरपणे अनंती कही शकाय एवी अक्षर रिद्धि अने तेथी अनंत गुणी वचन आलापमां न आवे एवी अनक्षर रिद्धि स्वतंत्र प्रगट थई छे तेथी तमे अचल तथा अगम के०छद्मस्थ जीवोने तमारा स्वरूपनी छद्मस्थज्ञाने पूर्ण गम न पडे तथा छद्मस्थ मतिए करी तमारू रूप रिद्धि अने आनंद कली शकाय नहि तथा तमारूं रूप रिद्धि पुद्गलीक अन्य पदार्थो भेगुं मली जाय नहीं तेथी तमे अमल एवा ज्ञानानंदमय ज्ञान रूप छो ॥ ६ ॥

अनंत ज्ञानी हो अनंत दर्शनी, अनाकारी अविरूद्ध ॥ लोकालोक हो ज्ञायक सुहंकरू, अनाहारी स्वयं बुद्ध ॥श्री० ७

अर्थः-तमे अनंत ज्ञानी अने अनंत दर्शनवंत छो तथा आकार रहित स्वपर जीवथी अविरूद्ध लोकालोकना ज्ञाता द्रष्टा सकल जीवोने सुखना कारण छो तमारे कांई पण आहारनी जरूर रहेती नथी तेथी अनाहारी छो पोते पोताथीज बोध पामेला माटे स्वयबुद्ध छो ॥ ७ ॥

जे निज पासे हो ते शुं मागीए, देवचंद्र जिनराय ॥ तो पण मुजने हो शिवपुर साधता, होजो सदा सुसहाय॥ श्री०८

अर्थः—ज्ञानानंदादि अनत कार्योनी सत्ता हमारी हमारा पासेज छे तो प्रभुजी पासे शुं मागीए ? पण देवोमा चद्रमा समान हे जिनराज ! हमने मोक्षमार्ग साधता सदाए तमे सुसहाय थजो ॥ ८ ॥

॥ सपूर्ण ॥

॥ अथ द्वाविंशतिम श्री शिवकर जिन स्तवन ॥

शिवकर जिनवर देव, सेव मनमा रमे हो लाल सेव मनमां रमे ॥ तन्मयताए ध्याय, तेह भव भय वमे हो लाल तेह०॥ त्रिपदी प्ररूपी सार, जगत जन तारवा हो लाल जगत० ॥ द्रव्य अनंत प्रजाय, प्रमेय विचारवा हो लाल प्रमेय० ॥१॥

अर्थ—सकल अशिव दूर करी सर्वे प्रकारे शिव करवावाला एहवा शिवकर नामे गत चोविशीमां वाविशमा तीर्थपति केवलज्ञान दर्शनादि गुणे देदिप्यमान देवनी आणानु सेववुं ते माहरा मनमा रमे छे अथवा भविजीवोना मनमा रमो के, जेनी आणा सेववाथी आत्मा शिवपद पामेछे पण ए प्रभुनी सेवा तन्मयताए ध्यायके० प्रभुजी जेम राग द्वेष छोडी शुद्ध थिर सम परिणामे ज्ञान दर्शन चरणादि आत्मगुणोमा रम्या तेज प्रमाणे भविजीव पण राग द्वेष छोडी सम परिणामी थई मूख्य दर्शन ज्ञान चरणमय आत्म स्वभावमां थिर योगे रमे तो सकल भवभय वमे एटले भव करवानो भय तेने रहे नहि अने निर्वाणपद पामे करुणा भंडार जिनेश्वरे जगत् जीवोने तारवा माटे प्रथम सार त्रिपदी प्ररुपी अने सर्वे तीर्थंकरो अनादिथी प्रथम त्रिपदीज प्ररुपे छे के जेथी भवि जीव आत्म अनात्म स्वरुप भिन्न

जाणी पोतानो उपयोग आत्म शुद्धतामां थिर करी शके छे ज्यांसुधी शुद्धात्म स्वरुपनुं ज्ञान न होय त्यांसुधी पुद्गलादि परद्रव्यनी ममता अने मिथ्यात्व अविरति आदि कर्मबंधनां कारणो शरु रही आठे प्रकारे कर्मबंध थया करे छे पण ज्यारे भिन्न भिन्न द्रव्यनी उत्पाद् व्यय अने ध्रुवतारुप परिणति भिन्न भिन्न जाणे त्यारे परद्रव्य उपर ममता शानी रहे ? अने परद्रव्यमां आपणुं कार्य केम मनाय ? अने परद्रव्यमा आपणु कार्य मनाय नहि त्यारे राग द्वेष अने शुभाशुभ संकल्पो पण उपजे नहि एटले जीव शुक्लध्यान पामी प्रथम घाती कर्मनो नाश करी आखर सिद्धि पामे. त्रिपदी एटले पचास्ति द्रव्य सकल समय आप आपणा पूर्व पर्यायनो व्यय, नौतन पर्यायनो उत्पाद् अने सत्तानुं ध्रुव राखवु करे छे एटले नवे नवे समय नवि नवि परिणति करे छे अने मूल गुणे ध्रुव रहे छे कोई द्रव्य कोई अन्य द्रव्यना पूर्व पर्यायनो व्यय, नौतन पर्यायनो उत्पाद् अने तेनी सत्तानुं ध्रुव राखवुं करी शकतो नथी तेथी सर्वे द्रव्यनी सामान्य विशेष शक्ति साक्षात्कार भिन्न जणाय छे त्यारे भवि जीवने ममता टली जाय छे अने ममताविना राग द्वेष रहेता नथी एटले सुखे संजम साधी सिद्धि पामे छे. द्रव्य विषे भगवंते कह्युं " उपनेवा, विगमेवा, ध्रुवेवा " एटला उपरथी गणधरो एक मूहूर्त्तमां द्वादशांगनी रचना करे छे अने द्वादश अंगवडे जगतमां बोधनो विस्तार कराय छे आपणे पण वस्तुनी त्रिपदी संभालीए तो परद्रव्यनुं ममत्व टली उपयोग आत्म शुद्धतामां थिर थाय छे माटे त्रिपदीनो अर्थ विचारी परद्रव्यथी भिन्न आत्म शुद्धता जाणी आत्म शुद्धताना कामी थई सिद्धि सुख साधवुं प्रभुजीए तीर्थंकर नामकर्मना उदयवडे भवि जीवोने तारवा त्रिपदी प्ररुपी तो आपणे तेमनो परम उपकार सन्मानी तेमनी आणा समय मात्र पण न चूकतां सेववी त्रिपदीनो पूर्ण भावार्थ तो केवली पोताना केवलज्ञानमां जाणे छे अने आदेश

वगे श्रुतज्ञानी पण पूर्ण जावार्थ श्रद्धा गोचर जाणे छे अने द्रव्य थकी द्रष्टिवाद आगमा कह्या प्रमाणे अर्थ छे पण आहिंआं संक्षेपथी लखीए छिये के पंचास्ति द्रव्यना प्रति प्रदेशे स्वस्व कार्य करवाना करण रुपे अस्तिपणे छति पर्याय तीरोजावे (गुप्तपणे) अनंता अनता, छे जेम जीव द्रव्यना असख्याता प्रदेश छे ते दरेक प्रदेशे जाणवा रूप कार्य करवाना छति पर्याय अनंता, देखवा रुप कार्य करवाना छति पर्याय अनंता, आचरण रमण रुप कार्य करवाना छति पर्याय अनंता, वीर्य अचल राखवा रूप कार्य करवाना छति पर्याय अनता तेम दान देवा रूप, लाज लेवा रूप, जोग उपजोग जोगववा रूप सुख आनदादि अनंत कार्य धर्मना छति पर्यायो प्रति प्रदेशे अनंता अनता अस्तिपणे छे ते छति पर्यायोमाथी समय पामीने अनंता पर्यायो स्वकार्य करवाने आवीर्जावे उपजे अने प्रथम समय जे पर्यायो आवीर्जावे आवेला होय ते आवीर्जावथी विणसी तीरोजावे जाय अने तीरोजावे रहेला पर्यायोमांथी केटला आवी-र्जावे उपजी कार्य करे. उक्तच " उत्पाद् व्यय ध्रुव युक्तं सत् लक्षणं द्रव्यं " एटले नवा पर्यायनु जवन अने पूर्व पर्यायना व्यय विना कोई पण कार्य थई शकतुं नथी उत्पाद् व्यय थई कार्यनु करवुं, एज द्रव्यनी सत्ता छे पण पर पर्यायनु जवन, व्यय कोई अन्य द्रव्य करी शकतो नथी एम जाण्या पछी आपणुं कार्य पर द्रव्यमां जासे नहि तो पर द्रव्य उपर राग रोष पण रहे नहि, ए उत्पाद् व्यय खद् गुणी हाणीवृद्धिपणे थाय छे ते बीजा ग्रथोथी जाणी लेजो. त्रिपदी वडेज अनत द्रव्यना अनंत पर्यायना प्रमेयनो बोध थाय छे माटे परम उपकारी प्रज्ञुजीए त्रिपदी प्ररूपी ए समान बीजो उपकार नथी ॥ १ ॥

जगमा द्रव्य अनत, उतपती व्यय ध्रुव रहे हो लाल. उत० ॥ जे जे जेहना ते तेहना, तेह माही लहे हो लाल

तेह० ॥ जाणी भेदे विभाव, अनंतने जे नरा हो लाल
अनंत० ॥ पामे पूर्णानंद, आतम संपति धरा हो लाल
आतम ० ॥ २ ॥

अर्थः—जगत्मां एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, एक आकाश, अनंता जीव तथा अनंत पुद्गल ए पंच प्रकारे अनंत अस्ति द्रव्य छे अने काल ते पंचास्तिनो वर्त्तना पर्याय रूप अनत द्रव्य उपचारथी छे अने धर्मास्ति कायादि पचे अस्ति द्रव्य सर्वे समय आप आपणा उत्पाद् व्यय ध्रुव सहित रहे छे.

जेना अंदर उत्पाद् व्यय ध्रुव समकाले होय तेने सत्य द्रव्य कहीए. पोत पोतानु उत्पाद् व्यय ध्रुवपणु पोतामां सकल समय रहे पण ए उत्पाद् व्यय ध्रुवपणुं कोई समय अन्य द्रव्यमा जाय आवे नहि एम जेनो उत्पाद् व्यय तेनो तेनामां समकित द्रष्टि जाणे. कोई द्रव्यनो उत्पाद् व्यय अने ध्रुवपणुं कोई अन्य द्रव्यमां जतुं आवतुं नथी एम जाणी समकिती जीव अनंत विभाव भेदे ते पुरुष केवलज्ञानादि आत्म संपदानी धरा के० सत्ताभूमिने जाणी पूर्णानद पामे ॥ २ ॥

उत्पति व्यय ध्रुव धर्म, अनंता द्रव्यना हो लाल अनंता०॥
लखे त्रिकालीक भाव, टले मति भर्मना हो लाल टले० ॥
द्विविध लह्यो उत्पाद प्रयोगज विश्रशा हो लाल प्रयोगज० ॥
गइ ममता तस दूर, लही आतम रसा हो लाल लही ०॥३

अर्थः—जे जीव पंचास्ति द्रव्यना उत्पत्ति व्यय अने ध्रुव धर्म जाणे तेणे अनंता द्रव्यना त्रिकालीक भाव जाण्या अने तेने कोइ प्रकारनी मिथ्या भाव रुप मतिभर्मना रहे नहि. प्रयोगसा अने विश्रसा एम बे प्रकारे उत्पाद् व्यय छे जीव-प्रयोगे पुद्गलोमां जे जे उत्पाद् व्यय थाय ते प्रयोगसा उत्पाद् व्यय कहिए अने पंचास्तिमां

स्वय स्वभावे जे जे उत्पाद् व्यय थाय ते विश्रसा उत्पाद् व्यय कहिए जे जीवने पर उत्पाद् व्ययनी ममता गइ ते ज्ञान दर्शन चरणादि अनत स्वगुणनु स्थानक एवी आतम शुद्धता भूमि पाम्यो, पामे छे अने पामशे ॥ ३ ॥

उत्पति व्यय ध्रुव शक्ति, सर्वमा सहु समे हो लाल सर्वमा० ॥ जे जन जाणे शुध्ध, मिथ्यामती ते वमे हो लाल मिथ्या ० ॥ अस्तिपणे छे पच, द्रव्य जग शाश्वता हो लाल द्रव्य० ॥ निज निज धर्मे अस्ति, रहे पर नास्तिता हो लाल रहे ० ॥ ४ ॥

अर्थ.–सर्व द्रव्यमा उत्पत्ति व्यय ध्रुव शक्ति सकल समय छे एम जे शुद्ध रीते नि शकपणे जाणे अने जे जेनी ते तेनामा माने तेने मिथ्यामति रहे नहि अने परिणामथी मिथ्यात्व गया पछी सत्तामा पण रहेला मिथ्यातनां दलीआ ते पण क्षय जाय जगत्मां पचास्ति द्रव्य स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव अस्तिपणे शाश्वता छे तेमा पर द्रव्यादिक रूपे न थवानो स्वभाव पण अस्तिपणे छे तेने नास्ति स्वभाव कहीए एटले स्वधर्मे छता रहे पण परधर्म रूपे थाय नहि ए द्रव्यनुं अस्तिपणुं ते प्रथम सामान्य स्वभाव जाणवो ॥ ४ ॥

निज निज वस्तु स्वभाव, न छंडे को कदा हो लाल न छंडे० ॥ द्रवे निज पर्याय, रुके नहि को कदा हो लाल रुके० ॥ सहज प्रमेय प्रमाण, सदा सहु परिणमे हो लाल सदा० ॥ अगुरुलघु परजाय, स्वकार्यमा सहु समे हो लाल स्वकार्यमा० ॥५

अर्थ –(१)सर्वे द्रव्य आप आपणो वस्तु स्वभाव कोई पण कदापी छोडे नहि ते वस्तुत्व कहीए

(२) द्रव्य माही जनक स्वभाव छे ते सकल समय छती

पर्यायोने सामर्थ्यपणे उपजावे अने सामर्थ्य पर्यायने पोतामांज तीरोजावे दर्वे (समावे) एम छती अने सामर्थ्य वे जेदे पर्यायनी उत्पत्ति व्यय प्रवृत्ति कोई समय पण कोई रीते रोकाय नहि ते द्रव्यत्त्व स्वजाव कहीए

(४) द्रव्यना सर्वे स्वजावो सर्वे समय आप आपणा प्रमेय प्रमाणे परिणमे छे कोई द्रव्यनो एक स्वगुण ते बीजा स्वगुणनुं कार्य करे नहि अने पर द्रव्यना कोई गुणनुं कार्य पण करे नहि ने स्वकार्य विना कोई समये खाली पण रहे नहि आप आपणी मर्यादा मूके नहि तेथीज सकल द्रव्य गुण पर्यायनुं प्रमाण ज्ञान वडे करी शकाय छे ए प्रमेयत्त्व स्वजाव जाणवो

(५) गुणोना छती पर्यायो प्रदेशे प्रदेशे अनंता अनंता छे ते खट् गुण हाणीवृद्धि पणे आवीर्जावे तीरोजावे सर्वे प्रदेशे सर्वे समय थयां करे छे तेथी कोई द्रव्य हलको अगर जारे थाय नहि एहवो अगुरुलघुत्व स्वजाव जाणवो.

विगमे पुरव प्रजाय, नऊतन उपजे हो लाल नऊतन०॥
पण ध्रुव शक्ति सदाय, सत्त्व लक्षण जजे हो लाल सत्त्व०॥
ए सामान्य स्वजाव, ते जेहना तेहमां हो लाल ते जेहना० ॥ वलि
विशेष स्वजाव, ते जेहना जेहमां हो लाल ते जेहना० ॥ ६

अर्थ—(६) पूर्व पर्याय विणसतां अने नवा पर्याय उपजता द्रव्य आप आपणुं कार्य करता छतां पण सत्ताने छोडतो नथी ते सत्त्व लक्षण छे. यत—" अर्थ क्रिया कारित्व द्रव्यं " जो द्रव्य सर्वे समय आप आपणुं कार्य न करे तो सत्त्व लक्षण केम रहे ?

एम सर्वे द्रव्यना छ मूल सामान्य स्वजाव तथा उत्तर सामान्य स्वजाव तथा अनंत विशेष स्वजाव जे जेना ते तेनामां जाणवा मानवा. कोई द्रव्यनो सामान्य अथवा विशेष स्वजाव कोई अन्य

द्रव्यमा जाय आवे नहि एम जाणवाथी निर्विकल्प बोध प्रगट थाय छे ॥ ६ ॥

लक्षण लक्ष्य अभेद, त्रिकालपणे रहे हो लाल त्रिकाल० ॥ एम जाणी नर बुधने ममता नवि रहे हो लाल ने ममता० ॥ आत्म ज्ञान विण ममत, ममतथी मिथ्यात छे हो लाल ममतथी० ॥ एहथी अविरति होय, प्रमाद कषाय छे हो लाल प्रमाद० ॥ ७ ॥

अर्थ.–लक्ष्य के० द्रव्य अने तेना अनंत पर्याय रूप लक्षणो ते द्रव्यथी त्रिकाले अभेदपणे होय एम जे पंडित जाणे तेने परद्रव्य गुण पर्यायनी ममता रहे नहि एटले तेने परद्रव्यादिनो राग व्यतीत थाय ज्यासुधी आत्म शुध्धतानु ज्ञान नथी त्यासुधी परद्रव्यादिनी ममता रहे अने ममता होय त्यांसुधी मिथ्यात्व रहे अने तेथी अविरति प्रमाद कषायादि दोषो उपजे ज्यारे आत्म शुद्धतानुं ज्ञान थाय त्यारे ममता अने मिथ्यात्व टले त्यार पछी अविरति प्रमाद कषायादि सर्वे दोषो नाश पामे माटे आत्म सिद्धतानु मूल आत्म शुद्धतानु ज्ञान छे ए विना एकाते साध्य शून्य क्रिया विटंबना रूप छे ॥ ७ ॥

जोग चपलता करि निज, वीरज चल करे हो लालके वीरज० ॥ बंधे आठे कर्म, गहन भव वन फरे हो लाल गहन० ॥ बाल बाधक थयु वीर्य, साधकता नवि लही हो लाल साधकता ० ॥ शिवकर देव हृदयमां, करुणा लह लही हो लालके करुणा ० ॥ ८ ॥

अर्थ –अविरति प्रमाद कषायादिके जोग चपलता थाय छे अने जोग चपलता वमे आत्मवीर्य पण चलायमान थई ज्ञानावरणादि

आठे कर्मनो बंध करी जीव ग्हेरा जव वनमां फरतो स्वतंत्रता विना असह्य दुःख जोगवे छे उक्तंच–जगवई अंगे "चलई फंदई" आत्म शुद्धतानुं पूर्ण ज्ञान थयापछी जीवने परद्रव्यनी स्पृहा इच्छा कामना मनोरथ थतो नथी माटे त्रणे योग पूर्ण थिरता पामे छे आत्मवीर्य अचल थाय छे जे जे अशे आत्मवीर्यनुं चलपणुं ते ते अशे कर्मबंध छे जे जे अंशे आत्मवीर्यनुं अचलपणुं थयु ते ते अंशे पूर्व कर्मबंध विलय जाय अने नविन बंध करे नहि, आत्मवीर्यनी पूर्ण स्थिरता वडे पूर्ण सिद्धि प्राप्त थाय माटे शुद्धात्म ज्ञानमां लयलीन थवुं एज श्रेय छे कोई कहेशे के हुं आत्मज्ञानी छुं पण ते राग द्वेषमा वर्त्ततो होय तो तेने पूर्ण आत्मज्ञानी जाणवो नहि पण जे जे अंशे राग गयो ते ते अशे आत्मशुद्धता प्रगट थाय छे अने तेटलुज आत्मज्ञान जाणवुं अने ज्या आत्मशुद्धता पूर्ण प्रगट थई त्यां रागनो अश मात्र रहेतो नथी. पूर्ण क्षायक वितरागता प्रगट थई एटले मोहनीय कर्मनो नाश थयो अने बारमा गुणठाणाना छेल्ला बे समयमां ज्ञानावरण दर्शना- वरण अने अंतरायनो नाश थाय छे अने बाकीनां चार अघातीकर्म रह्यां ते स्थितिए नाश थाय छे एम जीवने परमानंद प्राप्त थाय छे माटे ज्ञाने करी आत्मशुद्धता वधारवी एज मोक्ष मार्ग छे. आत्माना ज्ञान दर्शन चरणादि आत्माथी अभेदपणे रहेला गुणोने निर्मल करवा ते आत्म शुद्धता कहीए अने तेज मोक्षमार्ग छे. जे जे अंशथी राग रूपनी उपाधि गई ते ते अंशे ज्ञान दर्शन चरणरूप आत्मगुणना अंशो प्रगट थया एम जाणवुं आत्मज्ञान विना परद्रव्यनी ममताए आत्मवीर्य बाल बाधकभावने पाम्यु करणवीर्यपणे प्रवर्त्युं साधकता जाणी नहि अने साध्य जाण्यो नहि. साध्य जाण्या विना शु साधे? साधकता जाण्या विना केवी रीते साधना करे? मात्र साध्य शून्य क्रिया करी शुभाशुभ परिणामे जव भ्रमण करे. एम जाणी शिवकर

देवना हृदयमा करुणारस ऊजरायो तेथी नविजीवोने तारवा अर्थे त्रिपदी प्ररूपी ॥ ८ ॥

शुद्ध अखंमित धार, अमृत घन वरसता हो लाल अमृत० ॥
प्रजुजी मेघ समान, नव्य जग दरसता हो लाल नव्य० ॥
पूजो श्री प्रजु अंग, सुरंगे ऊमही हो लाल सुरंगे० ॥
दरशन ज्ञान चारित्र, सवीर्य मयी सही हो लाल सवीर्य०॥ ए

अर्थ—मेघरूप प्रजुजी शुद्ध स्याद्वादनी देशनारूप अखंम अमृतघन धारा वरसावता नवि जीवोना अज्ञान मिथ्यात्व कषायादि नवदव ताप समावता शुद्धात्म नावमा थिरता करावता नवि समकितीनी दृष्टिमा अमृत मेघ सरखा देखाय ठे प्रजुजीनु अंग पूजो एटले ज्ञान दर्शन चरण वीर्यादि अनंत शुद्ध गुणमय प्रजुजीना अरूपी अंगने परम आदरे मनने सुरंगे ए सम शुद्ध ध्येय जाणी आनंद सहित पूजो तथा देशनानुं कारण एहवा प्रजुजीना औदारिक अंग—(१) चरणांगुष्ट (२) जानु (३) कर (४) नूजास्कंध (५) शिर (६) नाल स्थल (७) कंठ (८) हृदय (९) नाजि एम नव मूख्य तथा ते सिवाय नयण वदनादिक प्रजुनां सर्वे अंग सुगंधी द्रव्ये पूजवा लायक ठे एम जाणवु ए अंगवमेज देश विदेश फरी शुक्लध्यान करी केवलज्ञान उपजावी आपणने शुद्ध साध्यनी देशना आपे ठे माटे प्रजुना सर्वे अंग बहु सन्माने बहु विधे पूजवा लायक ठे ॥ ए॥

जाणे त्रीपदी शुद्ध ते ध्यान शुकल लहे हो लाल ते० ॥
घाती करम क्षय जाय अनंत चतुक लहे हो लाल अनंत० ॥
ए विण धर्म न शुक्ल लहे नहि नर कदा हो लाल लहे० ॥
ते माटे लहि त्रीपदी सुशिव साधो मुदा हो लाल सु० ॥ १० ॥

अर्थ—जे नवि शुद्ध रीते त्रिपदीना नाव जाणे तेज शुक्लध्यान

पामे अने शुक्लध्याननो बीजो पायो ध्याता चारे घनघाती कर्मनो नाश करे अने अनत चतुष्क पामे. एम द्रव्यना उत्पाद् व्यय ध्रुवादि त्रिपदीना भाव जाण्याविना जीव धर्मध्यान अने शुक्लध्यान कदापी पामे नहि ते माटे सिद्धांतमाथी त्रिपदीना मूख्य भाव जाणी सदाए आनंद सहित कर्मथकी मूकावा रूप रूडो मोक्ष- मार्ग साधवो ॥ १० ॥

अंग पूजा करि एम, आणा आराधीए हो लाल आणा० ॥
लहि निज शुद्ध स्वरूप, मोक्षमग साधीए हो लाल मोक्ष० ॥
महागोप महामाहण, शिव सथ्थवाह छे हो लाल शिव० ॥
निर्यामिकमहावैद्य, परम जग नाह छे हो लाल परम० ॥ ११ ॥

अर्थ.—उपर प्रमाणे जिनेश्वरना दुविध अंगनी विविध प्रकारे पूजा सन्मान करी आज्ञा आराधीए अने पोतानुं शुद्धात्म स्वरूप जाणी पुरुषार्थ पराक्रम करी वीर्य अचल राखी मोक्षमार्ग साधीए. हे प्रभुजी ! तमे भवि जीव रूपी गायोने सम्यक्त बोध रूप संजीवनी चारो चरावी आत्म जीवनमां सचेत करी निर्विघ्नपणे मुक्ति रूप नगरे पहोंचाडो छो माटे महागोप छो वली तमे खट्कायाना जीवोने कोईपण जीव कोई प्रकारे हाणी करे नहि अने तेमना द्रव्य प्राण तथा भाव प्राणनुं रखोपुं करे एहवो माहणतानो उपदेश करो छो अने गणधर आचार्यादि मारफते पण माहणताना उपदेशनी प्रेरणा करावो छो माटे तमे पोतेज महामाहण छो वली तमे उपद्रव रहित शिव स्थानके पहोंचाडवा माटे शिवमार्ग के० मार्गमां क्रोध मोहा- दिक चोरटा कांई हरकत करी शके नहि अने कुगुरु आदि दुष्ट जनो उन्मार्गमा पाडी शके नहि एहवा उपद्रव रहित मार्गे स्याद्वादमय शुद्धनये शुद्धात्म स्वरूप जणावी निर्विघ्नपणे लई जाउ छो माटे मोक्ष नगरना सार्थवाह छो वली तमे ज्यां राग द्वेष मिथ्यात्व अज्ञान रूप

खारुं करयुं फेरी जल जरेलुं छे अने कपायो रूप श्वापदोनु जारे जोर छे तथा ज्या अथाह विकल्पोना कल्लोलो उछली रह्या छे तथा ज्या काम वरुवानल लागी रह्यो छे एहवा जव दरियामां चूमेला जीवोने शुद्ध संजम जहाजमा लई आत्म सत्तायल आनंदपुरी नगरीमां पहोंचाम्रो छो माटे निर्यामक छो वली जगवासी जीवोने लागेला अज्ञान मिथ्यात्व अविरति आदि दु साध्य रागोने नाश करवा ज्ञान दर्शन चरण रमण मिथिल उदासिनता रूप मृगांक पुमीनु सेवन करावी उतावळे ते रोगोने मटावो छे माटे अमोघ परमवैद्य छो वली अशरण अनाथ उन्मार्गे परुेला एहवा जगवासी जीवोने सारण वारण चोयणा पडिचोयणा करी करावी निर्जय सुख स्थानमा लावो छो माटे तमे जगत्‌ना नाथ छो ॥ ११ ॥

चरण वदन कर नयण, परम जिनराजनां हो लाल परम० ॥
जवि जनने होय साज, आतम सुख काजमां हो लाल आतम० ॥
नाथ कृपाल विशाल, महा शुद्ध बोधथी हो लाल महा० ॥
जवि जन पामे सिद्धि, तत्त्व निज शोधथी हो लाल तत्त्व० ॥ १ ॥

अर्थ —प्रजुजी तमारा परम चरणवडे देश विदेश विहार करी जविजीवोने सम्यक्‌ज्ञान चारित्र रूप फल आपो छो तेथी तमे जगम कल्पवृक्ष समान छो वली तमे तमारा वदन कमल वडे द्वादशांगनी देशना आपी शुद्ध साध्य साधन बतावी उपकार करो छो वली तमारा परम कर कमले करी दिक्षा शिक्षा आपी उपकार करो छो वली तमारा परम नयण कमल वमे जवि जीवो उपर अमृतमय दृष्टिए देखी जविजीवोनी दृष्टि शुद्धातम सन्मूल करावो छो एम तमारां सर्वे अंग अने सर्वे पुण्य अतिशय जविजीवोने परम उपकार परम समाधिना कारण छे वली तमारा अतरग आत्मिक गुणो अने अगमा रहेला पुण्य अतिशयना गुणो आगल मणिमय मुगट कुंडलादिकनी शोचानुं

तो इमे शुं वखाण करीए ? मणि रत्न आदिना मुगट कुंडलादि आजूषणो तो ससारी विषयो चक्रवर्ती इंद्रादि घणा पेहेरे छे तो एहवा अजीव अने अथिर पदार्थनी शी शोजा ? एटले तमारा अंतरंग अने बाह्य सर्वे उत्तम लक्षणो जविजीवोने आत्म सुख काजमां पुष्ट सहायकारी कारणो छे. नाथनुं महाविशाल कृपालपणुं शुद्ध बोधथी इमने जणाय छे पण जे जवि जीव तमारा परम शुद्ध बोधने अति सन्माने—आदरे अने तन्मय थई आत्म तत्त्वनी शुद्धता करे ते सिद्धि पामे ॥ १२ ॥

पामे आतम ज्ञान दोष दुःख सहु टले हो लाल दोष० ॥
सीझे आतम काज अचल कमला मले हो लाल अचल० ॥
पूज्यनी पूजा आपे शिवघर वासने हो लालके शिव० ॥
देवचंद्रमुनि मनसूख सहज विलासने हो लालके सहज०॥१३

अर्थः—तमारी आज्ञा सेवी जे जीव आत्म बोध पामे तेना सर्वे दोषो अने दुःखो टले अने आत्म कार्य सिद्धि थाय वली केवल-ज्ञानादि अक्षय अचल लक्ष्मी मले एहवा त्रिजुवन पूज्य शिवकर स्वामिनी सेवा शिवघर वास आपवावाली छे देवमा चंद्रमा समान शिवकर स्वामी मुनिउना राजाने मनसुख उमंगे करी सेवतां सहज आत्मिक विलास पामे ॥ १३ ॥ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ त्रयोविंशतिम श्री स्यदन जिन स्तवन ॥

॥ शांति जिनेश्वर केसर अर्चित जग धणीरे अ० ॥ ए देशी ॥

स्यंदन जिनवर परम दयाल कृपालुओरे ॥ जग सोहन जवि बोहन देव मयालुओरे ॥ दे० ॥ ए आंकणी ॥ परपद ग्रहणे जगजन बांधे कर्मनेरे, अथिर पदारथ ध्यातां किम लहे

धर्मनेरे कि० ॥जमचल जगनी एठ ठे पुद्गल परिणतिरे, ध्यातां वीरज कंपे आप लहे न सगुण रतीरे ॥ लहे० ॥२॥

अर्थ –गत चोविशीना तेविशम्म तीर्थंकर श्री स्यंदन जिनेश्वर परमदयाल अने परमकृपाल ठे. जगत्मा जे जे लोको शुद्धमार्गना अजाण दया अने कृपा करे ठे ते दया थोडा दिनने माटे अने आखर आयु पर्यंत कोईकले बाह्य हितकारी पण थइ शके ठे पण आखरे ते दयानु हित विणसी जाय ठे केमके पुद्गलीक दया अथिर ठे अने एकांतिक सुखनु कारण नथी वली ते पुद्गलीक सुख भय भरेलु ठे अने स्यंदन स्वामीनी दयाथी जे आत्मिक गुणो अने आत्मिक स्वतंत्र सुख प्रगट थाय ते तो सादिअनंतकालसुधी निर्भय निराकुल अचल परम स्वतंत्र सुखनु कारण ठे माटे प्रभु परम कृपाल ठे प्रभुजी त्रणे जगत्मा शोभा पामेला ठे के पाताल मनुष्य अने स्वर्गोमा भुवनपतिओ मनुष्यो व्यंतरो विद्याधरो गणधरो मुनिओ वैमानिको अने नरनारीओना थोक जेना गुणोनी स्तवना शोभा हमेशा कर्या करे ठे भविजीवोने शुद्ध बोधना दातार ठे, केवलज्ञान केवलदर्शने करी देदिप्यमान देव सर्व जीवोना खेदज्ञ परम मयालु ठे संसारी जीवो पुद्गल गुण पर्यायरूप परपद ग्रहण करवाथी एटले परिग्रह वशे कर्म बांधे ठे ते परिग्रह तो निश्चयथी परवस्तुने अहपणे ग्रहवु ते एक अभेदपणे जाणवो अने व्यवहारथी बाह्य परिग्रह नवविधे तथा अंतर परिग्रह चौद विधे ठे पुद्गलिक अथिर पदार्थने ध्यातां चित्त थिरता पामतुं नथी अने चलचित्तवालो, सुथिरआत्मिक धर्मने पामी शकतो नथी पुद्गल परिणति पोते जम एटले अचेतन ठे अने चलके० उत्कृष्टि असंख्यात समयथी वधारे स्थितिवाली नथी वली अनंता जीवोए अनंता पुद्गल द्रव्यने अनंती वार लीधा अने विष्टा मूत्र रस रुधिर मांस मेद अस्थि मज्जा वीर्यादिकपणे परिणमाव्या अने वारवार मृतकपणे ठो

द्या तो एवी अथिर परिणतिना पाछल जे जीवो लाग्या ते केम थिरता पामे? अने तेनुं मन वचन काया निवृत्ति पामे नहि तो ते आत्मधर्म अने ते धर्मनुं निवृत्तिरूप सुख केम पामे? एवी अथिर पुद्गल परिणति पाछल जे लागे तेनुं वीर्य कंपायमान थाय अने शुद्धात्म गुणमां रति थिरता समाधि पामे नहि ॥ १ ॥

निरमल दर्शन ज्ञान चरणमय आतमारे॥ निजपद रमणे प्रगटे पद परमातमारे ॥ पद० ॥ मोहादिकमां तल्लीन तन्मय ते कह्योरे ॥ शुद्ध ब्रह्ममां तल्लीन तिण शिवपद लह्योरे ॥ तिण० ॥ २ ॥

अर्थः—जो आत्मा पुद्गल द्रव्यनी ममता छोमी पोतानुं स्वरूप जूवे तो निर्मल ज्ञान दर्शन चरणमय पोतेज छे, एम जाणी पररमण छोमी शुद्ध स्वरूप रमण करे तो पोतानुं परमात्मपद प्रगट थाय. जे जीव मोहादिक जे जे विजाव अगर स्वजावमा जे समय तल्लीन छे ते समय तन्मयके० ते मय तेने कहीए जेम क्रोधमां तल्लीन थएलो क्रोधमय कहीए, काममा तल्लीन थएलो कामी—काममय कहीए अने शुद्ध धर्ममा तल्लीन थएलो शुद्ध धर्ममय कहीए यत.—"परिणमदि जेण दव्व, तक्कालं तम्मयत्ति पणत्त, तह्मा धम्मं परिणदो, आदा धम्मो मुणेयव्वे " ते माटे शुद्धात्म ब्रह्म स्वरूपमां तल्लीन थएलो आत्मा शुद्ध ब्रह्मरूप थाय एटले तेज आत्मा शिवपद पाम्यो कहीए ॥ २ ॥

पुद्गल परिणति जिन्न आत्मथी जे सदारे ॥ छोमी तास विकल्प रहो निजगुण मुदारे ॥ रहो० ॥ तप संजम मय सहज जाव निज ध्याईए रे ॥ निर्मल ज्ञानानंद परम पद पाईए रे परम० ॥ ३ ॥

अर्थ.–पुद्गल परिणति सर्वे काले आत्माथी भिन्नज छे आत्मानां अने पुद्गल परिणतिनां भिन्न लक्षण जाणी पुद्गल परिणति संबंधीनो शुभाशुभ विकल्प तथा तेना शुभाशुभपणाना आलाप तथा ते अर्थे शुभाशुभ क्रिया छोडी निजात्म गुणमांहे प्रमोदित रहो आत्मा निर्मल निज स्वरुप जाणी पुद्गल ममता छोडे तो पुद्गल भोगोनी ईच्छा न थाय अने पोताना ज्ञान दर्शन चरणमय स्वरुपमा तृप्त रहे तो ते आत्मा तप रूपज छे अने पोताना शुद्ध स्वरूपने सदा अखंड उपयोगमा राखे तो आत्मा पोतेज संजम रूप छे एहवो तप संजममय उपाधि रहित आत्मिक सहज भाव अखंड समय ध्याईए तेथी निर्मल ज्ञानानंदमय पोतानुं स्वतंत्र परम पद पामीए ॥ ३ ॥

स्याद्वादमय शुद्ध प्रभु मुख देशनारे ॥ सन्माने ते करे विभाव प्रवेश ना रे ॥ विभाव० ॥ जिनवाणी सन्मान विना भव वास छे रे ॥ पर परिणति सन्मान कर्म अभ्र पास छे रे ॥ कर्म० ॥ ४ ॥

अर्थ –प्रभु मुखनी स्याद्वादमय शुद्ध देशना छे के जेथी शुद्ध साध्य अने साधना साक्षात्कार जणाई शके छे ते आज्ञाने जे भवि बहु सन्माने आदरे ते वर्णादि रागादि विभावमां प्रवेश करे नहि ज्यासुधी जिन वचननुं सन्मान आव्युं नथी त्यासुधी दुःखे भरेलो भववास कायम छे अने परपरिणति सन्माने एटले परग्रहणेज आठे कर्मनो पास छे ॥ ४ ॥

आतम शक्ति स्वतंत्र लखो जिन वाणथीरे ॥ साधो शिव मग शुद्ध शुक्ल दढ ध्यानथीरे ॥ शुक्ल० ॥ शुद्ध नये लखि द्रव्यने निस्पृह अन्यथीरे ॥ समभावे निज ध्याय तसु भव भय नथीरे ॥ तसु० ॥ ५ ॥

अर्थः—आत्म शक्ति परतंत्र नथी पण पोते आत्म शक्ति जाणी नथी त्यांसुधी पुद्गल ममत्व वशे पोते अनंत परतंत्रता जोगवे छे हवे अवसर मल्यो माटे जिनेश्वरना स्याद्वाद उपदेशथी आत्मशक्ति स्वतंत्रपणे जाणो अने शुद्ध शिवमार्ग दृढ शुक्लध्याने साधो शुद्ध नये स्वपर द्रव्यने जिन्न जाणी अन्य द्रव्यथी निस्पृह थई समजावे निज शुद्धात्म पद ध्याय तेने जव जय नथी ॥ ५ ॥

पंच महाव्रत पंचाचार श्री जिन वदेरे ॥ पंच समिति त्रण गुप्ति समजावे सधेरे ॥ सम० ॥ ज्ञान ध्यान किरिया साची समजावथीरे ॥ साध्य शून्य किरिया कष्टे शिवपद नथीरे ॥ कष्टे० ॥ ६ ॥

अर्थः—जिनेश्वरे पंच महाव्रत अने ज्ञानाचारादि पच विधे आचार कह्यो छे तथा पंच समिति अने त्रण गुप्ति प्ररूपी छे ते सर्वे पूर्ण समजाव अर्थे छे अने राग द्वेष तजी समजाव राखी व्रत आचार समिति गुप्ति साधीए तोज सधाय वली ज्ञान ध्यान अने किरिया समजाव सहित होय तोज साचां जाणवा राग द्वेष सहित जाणवु ते ज्ञान नथी, राग द्वेष सहित ध्यान ते शुद्धध्यान नथी, राग द्वेष सहित क्रिया ते उत्तम क्रिया नथी पण राग द्वेष विना समजाव सहित ज्ञान ध्यान अने क्रिया तेज साचां मोक्ष हेतु छे; ज्ञान दर्शन चरणनुं विषमपणुं टाली सम अने थिरपणुं साधवुं छे एवो शुद्ध साध्य जाण्या विनानी शून्य क्रिया कष्टथी मोक्षपद नथी अने समजाव तो परग्रहण बुद्धि तजवाथी आवे माटे, परग्रहण बुद्धि तजी परद्रव्यादिथी निस्पृह थई मुक्तिगुण राखीए तोज समजाव आवे अने सकल कार्य सिद्ध थाय एम स्यंदनजिन देवे परम उपकार बुद्धिए उपदेश्युं ते हमारा सरखा जविउं उपर तेमनो परम उपकार छे ॥ ६ ॥

शुध्द साध्य सापेक्ष सुनय वाणी लखोरे ॥ समभावे शुध्धातम अनुभव रस चखोरे ॥ अनुभव० ॥ देवचंद्र प्रभु वचनामृत रस पानमांरे । मनसुख शिवघर वासे सूख अमानमारे ॥ सूख० ॥ ७ ॥

अर्थ:—तीर्थंकरोनी वाणी शुद्ध साध्य सापेक्षताए होय छे तो परमेश्वरनी वाणी शुद्ध साध्य सापेक्षताए सुनये जाणो एटले एकांत नयनी खेंच विना हृदयमा धारो अने परद्रव्य उपरनो राग द्वेष छोडी ज्ञान दर्शन चरणादिकमां सम एटले सुधो राग द्वेषनी मरोड अने चपलता वगरनो स्थिर भाव राखी आत्म शुद्धतानो अनुभव रस चाखो. आत्म शुद्धतानो स्वाद चाखवानो—रस लेवानो अभ्यास वधारवो ते अनुभव कहीए ज्यांसुधी पुद्गलीक स्वादनो अनुभव करीए त्यांसुधी शुद्धात्म अनुभव आवे नहि माटे पुद्गलीक अनुभव अथिर अहितकारी जाणी तजी आत्म शुद्धता रस लेवानो अनुभव अभ्यास करो साध्य निरपेक्षपणे जे जे वचनो होय ते तीर्थंकरोना अथवा तो ज्ञानीओना नथी माटे तीर्थंकरोना वचन परखवा साध्य सापेक्षतानो विचार हृदयथी चूकवो नहीं देवोमां चंद्रमा समान स्वदन जिनेश्वरना वचनामृत रस पाननी उत्तम सेवा मनसुखे आदरे ते शिवप्रियनो स्वामी थाय अने तेने कोई प्रकारनी उणता रहे नहि अने अमाप सुखमां शाश्वत घरवास करे ॥ ७ ॥

॥ अथ चतुर्विंशतिम संप्रति जिन स्तवन ॥

संप्रति जिनवर पद नमी भवि ध्यावोरे ॥ साधो शुध्द निज साध्य परम पद पावोरे ॥ अतित समय चोवीशमा ॥ ॥ भ० ॥ प्रभु सम हो निरुपाध्य ॥ प० ॥ १ ॥

अर्थः—गत चोविशीना चोविशमा तीर्थंकर संप्रति जिनवरना पद कमलमां नमस्कार करी हे जवि जीवो! तमे सिद्ध समान निज शुद्ध साध्य ध्याओ, साधना कारक प्रवृत्तिए करीने शुद्ध साध्य साधो—सिद्ध करो मन वचन काय त्रणे योग थिर करी स्वपरिणति शुद्ध साध्यमां एकत्वपणे लयलीन करी निर्मल ध्याने शुद्ध साध्य ध्याओ के जेथी शाश्वत परमात्म पद पामो एटले प्रजुजी समान उपाधि रहित थाओ॥१

शुद्ध साध्य जाण्याविना जवि०॥ साध्या साध्य अनेक ॥
॥ प० ॥ आणा विण निज छंदथी जवि०॥सुख पाम्यो नहि छेक ॥ प० ॥ २ ॥

अर्थः—शुद्ध साध्य जाण्याविना असाध्य एहवी पुद्गल परिणति जे स्त्री, पुरुष, संतान, लोही, वीर्य, हाड, मांस, धन आदि साधवाने अनेक प्रकारे श्रम कर्या मन वचन बल बुद्धि प्रवर्त्तावी पण ते पुद्गल परिणति आपणे वश थई नहि तेथी कर्म बंध करी चार गति संसार कंतारमां जम्यो दुःख सह्यां अने मोक्ष साधवा स्वछंदताए अने जिन वचन अजाण पुरुषोना कह्या प्रमाणे घणांए क्रिया कष्ट कर्यां अने जिन मार्गमां कह्या प्रमाणे पण साध्य शून्य एकांते क्रिया साधी तेथी केवल संसार सधायो अने निवृत्ति रूप साचुं सुख लेश पण पाम्यो नहि ॥ १ ॥

स्याद्वाद प्रजु वचनथी जवि० ॥ लहि शुद्धातम साध्य॥
॥ परम० ॥ शुद्ध साधना सेवतां जवि० ॥ नाशे सर्व उपाध॥
॥ परम० ॥ ३ ॥

अर्थ.—प्रजुजीनां स्याद्वादमय वचन सांजली शुद्धात्म साध्य जाणी शुद्ध साधना सेवीए—साधीए तो सकल कर्म उपाधि नाशे ॥३॥

॥ निर्मल साध्य स्वरूप ए जवि० ॥ मुज सत्तागत एम

॥ परम० ॥ शुद्ध ध्येय निज जाणिने ॥ भवि० ॥ ध्यातां शिवपद क्षेम ॥ परम० ॥ ४ ॥

अर्थ—जेवु प्रभुजीनु शुद्ध स्वरूप छे तेवुज म्हारुं निर्मल साध्य माह्हरी सत्तागते छे ते साधि प्रगट व्यक्ति भावमां लाववु एज उमेद करो पोतानो शुद्ध ध्येय जाणीने यथार्थ साधकतापणे ध्याईए तो क्षेमकुशले शिवपद पामीए ॥ ४ ॥

॥ ए विण अवर न साध्य छे ॥ भ० ॥ सुखकारण जगमांहि ॥ परम० ॥ शुद्ध ध्येय निज साधवा ॥ भवि० ॥ साधन शुद्ध उमांहि ॥ परम० ॥ ५ ॥

अर्थ—सिद्ध समान निर्मल आत्म साध्य शिवाय परम स्वतंत्र सुखनुं कारण जगत्मां बीजुं कांई साध्य नथी अने मोह दृष्टिए जगत्मां जे जे रुपी साध्यो जणाय छे ते सर्वे परतंत्रता अनिवृत्ति चपलता सजयता आदि दुःखनां कारण छे एम जाणवु निज शुद्ध ध्येय साधवा आत्मवीर्यें करीने शुद्ध साधनामां मने उच्छाह छे अने सर्वे भव्यो पण एम उच्छाह उमंग राखो ॥ ५ ॥

॥ रत्नत्रयी विणु साधना ॥ भवि० ॥ निष्फल जाण सदाय ॥ परम० ॥ रत्नत्रयी शिव साधना ॥ भवि० ॥ साधि भवि शिव पाय ॥ परम० ॥ ६ ॥

अर्थ.—आत्मज्ञान आत्मदर्शन आत्म स्वभावाचरण ए त्रणेने रत्नत्रय कहीए एथी भिन्न अन्य साधना सदाय निष्फल जाणवी जेम खसवाले खजोलीने सुख मानी लोधु पण एणे कांई सुख साध्यु नथी आत्माना आत्माथी अभेदपणे रहेला ज्ञानदर्शनचरण गुणो ते अज्ञान मिथ्यात्व अने मोह वशे मलिन थएला छे ते अनिचार टाली ज्ञानदर्शन चरण आराधी निर्मल करवा एज रत्नत्रय मोक्ष साधना साधि भविजीवो मोक्ष पामे छे ॥ ६ ॥

शुद्धातम जाएया विना ॥ जवि० ॥ परपद ममत उपाय ॥ परम० ॥ रागादिक वश जीव ए ॥ जवि० ॥ कीधा अनेक अपाय ॥ परम० ॥ ७ ॥

अर्थ—ज्यांसुधी आत्म शुद्धता जाणी नथी त्यांसुधी परपदमां ममत उपजे छे तेथी राग द्वेष मोहादि वश थई जीवे पोताने अनंत दुःख उपजे एहवा अपाय खरा कस्या ॥ ७ ॥

तुज वाणीथी में लह्या ॥ जवि० ॥ निज गुण द्रव्य प्रजाय ॥ ॥ परम० ॥ पर गुण द्रव्य प्रजायनुं ॥ जवि० ॥ ममत तजे सुख थाय ॥ परम० ॥ ८ ॥

अर्थ.—तमारी वाणी वमे पर द्रव्य गुण पर्यायथी जिन्न निज द्रव्य गुण पर्याय जाएया तेथी जाणुं छुं के पर द्रव्य गुण पर्यायनुं ममत तजवाथीज सर्वे दुष्ट अपायो नाश थई स्वतंत्र सुख प्रगट थशे॥८

जाएयुं आत्म स्वरूप में ॥ जवि० ॥ वलि कीधुं निरधार ॥ ॥ परम० ॥ चरणे निज गुण रमणमां ॥ जवि० ॥ तजि पररमण प्रचार ॥ परम० ॥ ए ॥

अर्थ.—में आत्मस्वरूप जाएयुं अने सिद्धांत, नयो, प्रमाणो अने माहरी बुद्धिवमे निरधार कर्खुं हवे पर रमणनो चालो तजी शुद्ध स्वजावाचरणे निज गुण रमण करुं ए माहरी इच्छा छे ॥ ए ॥

धीर वीर निज वीर्यने ॥ जवि० ॥ राखी अचल गुण ठाम परम० ॥ परसंगे चल नवि करूं ॥ जवि० ॥ नहि परथी निज काम ॥ परम० ॥ १० ॥

अर्थः—धीर वीर थई निजात्म वीर्यने स्वस्वजावमां स्थिर राखी एटले ज्ञान दर्शनादि निज गुण स्थानकमां वीर्य अचलपणे राखी पुद्गलादि परसंगे वीर्य चलायमान करुं नहीं केमके माहरे परद्रव्य-

थी कांई काम नथी हे मोक्षाभिलाषी जव्यो! तमे सर्वे एज प्रमाणे शुद्ध साध्य साधो. धीर पुरुषोनो एज मार्ग छे विषय कषायादिके धैर्य राखी शकता नथी ते शिवमार्ग शी रीते साधी शके? माटे वीर्य अचल राखवु एज श्रेय छे ॥ १० ॥

पुद्गल खल संगे कयुं ॥ जवि० ॥ आत्म वीर्य चल रूप ॥ परम० ॥ जड संगे दुःखीउं थयो ॥ जवि० ॥ अइ बेठो जड नूप ॥ परम० ॥ ११ ॥

अर्थ.—जीवोए अचेतन जड एहवा खल पुद्गल संगे आत्म वीर्य चल कर्युं तेथी जड पुद्गलोमां मली जडतावत् जड थई बेठो तेथी अन अधिकारी छता जड पदार्थोनो अधिकारी—नूप राजा थई बेठो तेथी महान् दुःखीउं थयो ॥ ११ ॥

दरशन ज्ञान चरण सदा ॥ जवि० ॥ आराधो तजि दोष ॥ परम० ॥ आतम शुद्ध अजेदथी ॥ जवि० ॥ लहिये गुण गण पोष ॥ परम० ॥ १२ ॥

अर्थ.—दरशन ज्ञान अने चारित्रने ए त्रणेना आठ आठ दोष अने प्रमाद तजी सदा आराधो आत्मअंगना अने आत्मगुणना व्यवहारथी ज्ञान दर्शन चारित्र एहवा मूख्य त्रण जेद छे अने निश्चयथी आत्मा रत्नत्रयथी अजेदपणे एकज छे एम त्रणे गुणो आत्माथी अजेदपणे ध्याईए तोज निर्विकल्प ध्यान अने अनंत निर्मल गुणोनो पुष्ट आनंद आवे ॥ १२ ॥

दरशन ज्ञान विराधना ॥ जवि० ॥ तेहिज जव जय मूल ॥ परम० ॥ निज शुद्ध गुण आराधना ॥ जवि० ॥ ए शीव पद अनुकूल ॥ परम० ॥ १३ ॥

अर्थ.—दरशन ज्ञान चरणमय आत्मगुण विराधना तेज कर्मबंधनुं

कारण अने भव भयनु मूल छे, आत्मार्थी प्रतिकुल छे, पूर्वापर हितकारी नथी अने दरशन ज्ञान चरण आदि शुद्धात्म गुणनुं आराधवुं एज शिवमार्ग अनुकूल छे तो मूख्य ए भाव हृदयमां धारो, एज साध्य जाणी एनी प्रशस्तताए क्रिया आदरवी अने ए साध्यथी अप्रशस्त पणे जे क्रिया होय ते तजवी ॥ १३ ॥

शुद्ध स्फटिक सम साध्य निज ॥ भवि० ॥ साधे राग रहित ॥ परम० ॥ साध्य अपेक्षा विणु क्रिया ॥ भवि० ॥ कष्ट कस्ये नहि हित ॥ परम० ॥ १४ ॥

अर्थः—शुद्ध स्फटिक मणि समान सत्तागते रहेलो शुद्धात्म स्वभाव साध्य छे अने रागादिके थएली अशुद्धता वडे दवी जे आत्म शुद्धता ते रागादिक अशुद्धता जेम जेम तजीए तेम तेम शुद्धताना अंश प्रगट थता जाय, रागादिक सकल विभाव पूर्ण तजेथी पूर्ण शुद्धता प्रगट थाय तेज सिद्धि जाणवी तो राग रहित थई समभावे शुद्धता साधवी प्रथम सिद्ध स्वरुप रुप शुद्धता ध्येय ध्यानमां राखी ते शुद्धताने प्रशस्तपणे उपयोग थिर राखवामां दृढता वधारवी जे जे अप्रशस्त भावोथी उपयोग चलायमान थतो होय ते ते अप्रशस्त भावो तजवा एम सिद्धि थाय पण साध्य निरपेक्ष क्रिया कष्ट करवाथी कांई हित थाय नहि पण उलटुं भव भ्रमणादि अहित वधे ॥ १४ ॥

परम दयाल कृपालुआ ॥ भवि० ॥ देवचद्र शिव रूप ॥ ॥ परम० ॥ शिव कमला मनसुख लहे ॥ भवि० ॥ शाश्वत आत्म स्वरूप ॥ परम० ॥ १५ ॥

अर्थ.—परम दया अने कृपावंत देवमां चंद्रमा समान संप्रति जिनवर पोते शिवरुप छे तेमनी आज्ञा मनमां सुखे करी सेवतां शिवलक्ष्मी पामीए एम शाश्वत आत्म स्वरुप पामीए ॥ १५ ॥ ॥ संपूर्ण ॥

॥ कलश ॥ हरिगीत छंद ॥

गत समयना चोवीश जिननी स्तवन चोवीशी करी । मुनि देवचंद महंत हितकर सार जश कीरती वरी ॥ द्रव्यानुयोग गंभीर एहनो अर्थ जन सुगुरा लहे । मतिमंद न लहे अरथ एहनो साध्य शून्य किया चहे ॥ १ ॥ में तनुमती इह अर्थ कीधो यथाशक्ति प्रमाणमां ॥ बहु सूत्र ग्रंथ प्रमाण जोई भव्य लेजो ध्यानमा । उत्सूत्र दोष दुरे करीने स्यादवाद सुनय रसे । जे आदरे जिन वचन ते निज आत्म अनुभव रस वसे ॥ २ ॥ एकवीश स्तवनो हाथ लाध्या तीन स्तवन मल्यां नहीं । बावीशमा शिवकर श्रीजिनथी स्तवन मे रचिया सही। शुध नय निक्षेप प्रमाण युक्ते अर्थ एह विचारिये । उपयोग शुद्धे थीर बुद्धे दुष्ट परिणति वारिये ॥ ३ ॥ शुद्धात्म परिणति आदरी उपयोग थिरता राखिये ॥ निज ज्ञान दरशन चरण वीरज सुमति अनुभव चाखिये । उंगणीश पासठ फाल्गुणे सुदि पुनम इंदु निरमलो । मन रंगशुं एअर्थ करतां आत्मगुण लह्यो उजलो ॥ ४ ॥ जिन आणसंगी तत्त्व रंगी भव्यना आग्रह वके । दाहोद नगरे अर्थ कीधो भव्य धर्म रसे चके ॥ द्रव्यानुयोग दुरे करे सवि पाप ताप संतापने । शिव अंग "मनसुख" रंग विलसे लही आप प्रतापने ॥ ५ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ ॐ परम गुरुभ्यों नमः ॥

॥ श्री जिनागममां कहेली श्रुतधरने सोल उपमानी ढालो ॥

॥ श्रीमान् मनसुखलाल हरिलाल कृत ॥

॥ ढाल (१) ॥ पहेली ॥ धन्य धन्य वीर वाणी ॥ ए राग ॥

बहु सुतने जिनवर कहीरे । सोल उपमा सार ॥ बहु सन्माने सेवतोरे जवि । लहे जग जयजयकार ॥ साहेली हितकर बहुसुत सेव । शासन नायक देव । साहेली० ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ उज्ज्वल शंखे डुधे नर्खोरे । बहिरंतर शोजाय । शुद्ध समण गुण ऊजलोरे । कीरतीवतो मुनिराय ॥ साहेली० ॥ २ ॥ रहे गुरुकुल वासमां रे । उज्ज्वल सुत पय पूर । शुद्ध समाचारी धरेरे नीत । सम शीव मग वर सूर ॥ साहेली० ॥ ३ ॥ अश्वे कंबोज सुदेशनोरे । वेगवंत गुणवंत ॥ शत्रुथी जे नवि हठेरे । जेहना बलनुं तेज अत्यंत ॥ साहेली० ॥ ४ ॥ जिन शासन शुज देशमारे । उत्तम कुल उत्पन्न ॥ मोक्ष मार्गमा चालतोरे मुनि । महा बलिउ तप धन्न ॥ साहेली० ॥ ५ ॥ कुमत शत्रुथी नवि हठेरे । स्यादवाद नय पूर ॥ कुमति मान मद जजतोरे करे । कुमत सकल चकचूर ॥ साहेली० ॥ ६ ॥ द्वादशांग निर्घोषनारे । नंदी घोष वाजीत ॥ साध्य सिद्ध दर्शावतारे मुनि । जग तारक जग मीत ॥ साहेली० ॥ ७ ॥ क्षमा विनय आदिक गुणेरे । धीर वीर गंजीर ॥ निस्पृही निरालंबनीरे मुनि । शीघ्र लहे जवतीर ॥ साहेली० ॥ ८ ॥ संवेगे रगे रमेरे । रम्य शुधातम मांह्य ॥ राग रोष वरजित सदारे मुनि ॥ शिवमग मांहि उठांह ॥ साहेली० ॥ ए ॥ स्यादवाद प्राक्रम वरेरे । त्रासे कुमति वृंद ॥ जिन जयपडह वजावतोरे साधु । सुतधर विद्या अमंद ॥ साहेली० ॥ १० ॥ सुगुण कनोजी अश्वमारे वेगवंत गुणवंत ॥ उत्तम शील सुसंजमीरे वर । शास्त्र सुलक्षणवंत ॥ साहेली० ॥ ११ ॥ स्वामि इच्छाए चालतोरे । लखि स्वामी अजि-

प्राय ॥ पाषाणादिक शब्दथीरे नाव । त्रासी पाछो जाय ॥ साहेली० ॥ १२ ॥ शस्त्रादिकथी नवि हठेरे। अतिवेगी सम मार्ग ॥ राजादिकने मानीतोरे एवो । कंथक तुरग सोजाग ॥ साहेली० ॥ १३ ॥ तेम प्रधान बहुसुत मुनीरे । ज्ञान क्रिया व्रत धार ॥ निर्भय परवादी थकीरे साधु । सहुवो जग जयकार ॥ साहेली० ॥ १४ ॥ सम्यक चरण बिराजतोरे । सहुने वल्लभ होय ॥ जिन शासन कीर्त्ती करुरे मुनि । बहुसुत वदू सोय ॥ साहेली० ॥ १५ ॥ शंख अश्वनी उपमारे । कहि प्रथम हितकार ॥ उपमा चौद आगल कहुंरे मन· सुख बहुसुत जयकार ॥ साहेली० ॥ १६ ॥

ढाल बीजी (२) ॥ वेनी मोरी चालो सुगुरुजीने वंदीये ॥ ए देशी ॥

सजनी शूरवीर अश्वे चड्यो । अपडिहय बलवंत हो अलबेली हेली । सजनी जीती शके नहीं अन्य को । विद्या अचल अमंद हो अलबेली हेली।सजनी सेवो सुतधर चरणने। धरि हृदये सनमान हो अलबेली हेली ॥ सजनी सेवो सुतधर० ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ सजनी नंदि घोष चउ बाजुए, द्वादशाग तूरनाद हो अलबेली हेली। सजनी बदोजनो बोले बहु । मगल आशीरवाद हो अलबेली हेली ॥ सजनी सेवो० ॥ २ ॥ सजनी प्रवचन अश्वारुढ मुनी। वर प्राक्रमी अति सूर हो अलबेली हेली ॥ सजनी परवादी बहु जूथथी । जीत वरे जय पूर हो अलबेली० ॥ सजनी सेवो० ॥ ३ ॥ सजनी नंदि घोष स्वाध्यायनो । पचनो अहनीश नाद हो अलबेली हेली । सजनी शिष्य सुगुण स्वाध्यायनो । शोभे प्रवचन वाद हो अलबेली हेली ॥ सजनी सेवो० ॥ ४ ॥ सजनी जीवो जीवो बहुसुत सदा । प्रवचन दीपक शुरू हो अलबेली हेली ॥ सजनी ए आदि बिरुदावली । बोले जति मुनि बुरू हो अलबेली हेली ॥ सजनी सेवो० ॥ ५ ॥ सजनी जीतो कुमतीना वृदने । स्यादवाद बलवंत हो अलबेली हेली । सजनी तुम

आगे नवि टकि शके। परवादी मतीमंद हो अलवेली हेली ॥ सजनी सेवो० ॥ ६ ॥ सजनी नाग नागणी जुथ्थनो । स्वामी गंज वलवंत हो अलवेली० । सजनी परमत गजथी नवि हठे। साठ वरस वयवंत हो अलवेली हेली ॥ सजनी सेवो० ॥ ७ ॥ सजनी परजुथ्थ पती मद माननो । जंग करे ततकाल हो अलवेली हेली ॥ सजनी अप्रतिहत गज वलधरु । द्रढ तन बल सुविशाल हो अलवेली हेली ॥ सजनी सेवो० ॥ ८ ॥ सजनी तेम सुतधर वलीउं मुनी । समण समणी गणधार हो अलवेली० ॥ सजनी श्रावक श्राविका जुथ्थनो । सत्य सदा आधार हो अलवेली हेली॥ सजनी सेवो० ॥९॥ सजनी उत्पातादिक बुद्धिथी । विद्या बृद्धि विवेक हो अलवेली हेली ॥ सजनी शुद्ध नये सुत अनुजवी । शिव मगनी द्रढ टेक हो अलवेली हेली ॥ सजनी सेवो० ॥१०॥ सजनी तीक्ष्ण शींगनो वृषज जे। खंध पुष्ट बल पुर हो अलवेली हेली ॥ सजनी बहु गज जुथ्थ तणो पती । रोग रहित अति शूर हो अलवेली हेली ॥ सजनी सेवो० ॥ ११ ॥ सजनी एणि पेरे शोजे वृषज शो । तेम बहुश्रुत मुनिराय हो अलवेली हेली ॥ सजनी न्याय सुतीक्ष्ण शींगथी । जेदे कुमत कुन्याय हो अलवेली हेली ॥ ॥सजनी सेवो० ॥ १२ ॥ सजनी संजम रथने चलाववा । बुद्धि खंध द्रढ पुष्ट हो अलवेली हेली ॥ सजनी जे जारंड पेरे सदा । अप्रतिहत अदुष्ट हो अलवेली हेली ॥ सजनी सेवो० ॥ १३ ॥ सजनी उपमा तीन इहां कही । वलि कहिशु अगीयार हो अलवेली हेली॥ सजनी शिव सपति मनसुख लहे । बहुसुत जग जयकार हो अलवेली हेली ॥ सजनी सेवो० ॥ १४ ॥

ढाल त्रीजी (३) ॥ हे जी शियल सुरंगी चूनडी ॥ ए राग ॥

हेजी तीक्ष्ण दाढा हो शोजती । हेजी केशरीसिंह वलवंत हो ॥ हेजी राजा मृग पशु आदिनो । हेजी न शके पराजवी जंत हो ॥ हेजी बहसुत जिन शासन जयो । हे[illegible] मत वल सहजानंद हो ॥

हेजी बहु० ॥ १ ॥ ए आकणी ॥ हेजी सत नये तिक्षण दाढ छे। हेजी भेदे कुमतीना मर्म हो ॥ हेजी कुमति पराजवी नवि शके। हेजी जेणे ग्रह्यो ऊढ जिन धर्म हो ॥ हेजी बहु० ॥ २ ॥ हेजी जिन शासन मुनि सिंहनुं। हेजी परमती नवि सहे तेज हो ॥ हेजी शुद्धातम अनुभव रसे। हेजी विलसे सुमती स्हेज हो ॥ हेजी बहु० ॥ ३ ॥ हेजी शंख चक्र गदा धरू। हेजी अप्रतिहत वासुदेव हो ॥ हेजी जोद्धो वर बल जय वरू । हेजी तेम बहुसुत मुनि एव हो ॥ हेजी बहु० ॥ ४ ॥ हेजी परवादीने जीततो । हेजी परशुं गज्यो न जाय हो ॥ हेजी देखत परमत वृंदना । हेजी हृदय मान क्षीण थाय हो ॥ हेजी बहु० ॥ ५ ॥ हेजी दर्शन उज्वल शंख छे । हेजी ज्ञान सुदर्शन चक्र हो ॥ हेजी बहु० ॥ ६ ॥ हेजी रागादिक अंतर अरी। हेजी बाह्य कुवादी सर्व हो ॥ हेजी वासुदेव पेरे प्रबल जे । हेजी हणता कुमतीनो गर्व हो ॥ हेजी बहु० ॥ ७ ॥ हेजी चतुरंगी सेना सजी । हेजी मह रिद्धि चउ दश रत्न हो ॥ हेजी चक्री नरपती राजतो । हेजी चौद पुरव मुनि रत्न हो ॥ हेजी बहु० ॥ ८ ॥ हेजी आतम द्रव्यादिक भली । हेजी ऊढ सेना चतुरंग हो ॥ हेजी दर्शन ज्ञान चरण तपे । हेजी एम चउरंग अभंग हो ॥ हेजी बहु० ॥ ९ ॥ हेजी अथवा दान शीयल तप । हेजी भाव सहित चउ चंग हो ॥ हेजी सेना मुनिने शोजती । हेजी दाखी श्रीजिन अंग हो ॥ हेजी बहु० ॥ १० ॥ हेजी ज्ञानावरणादिक तथा । हेजी रागादिक अरि सर्व हो ॥ हेजी हणता प्राक्रम फोरीने । हेजी चूरे कुमतीना गर्व हो ॥ हेजी बहु० ॥ ११ ॥ हेजी आमोसही पमुहा महा । हेजी रिद्धि-धर मुनिराय हो ॥ हेजी ज्ञान रिद्धि अतिशय भर्या । हेजी सुत-धर चक्री सोहाय हो ॥ हेजी बहु० ॥ १२ ॥ हेजी सिंह वासुदेवने चक्रीनी । हेजी त्रण उपमा कही एह हो ॥ हेजी वलि कहुं आगली ढालमां । हेजी मनसुख बहुसुत लेह हो ॥ हेजी बहु० ॥ १३ ॥

ढाल चोथी (४) वाडीना जमरा डाख मोठीरे चांपानेरनी॥ ए देशी॥

जीरे शक्र देवींद्र सदेवनो। जीरे सहस्र नेत्र सुररायरे॥ आतम गुण जोगी बहुसुत सेव सोहामणी। जीरे वज्रायुध दृढ कर धरे। जीरे दैत्यपुरी हणनाररे। शासनना धोरी बहुसुत इंद्र हृदय वस्या॥ १॥ ए आंकणी॥ जीरे अवर पुरंदर नाम छे। जीरे द्युति कान्ति ज्योतीवंतरे। आतम०॥ जीरे रिद्धि अधिक सहु देवथी। जीरे जश बल अतुल अत्यंतरे॥ शासन०॥ २॥ जीरे दश दिशि तेज प्रकाशतो। जीरे तेम सुत्तधर मुनिरायरे॥ आतम०॥ जीरे विमल सूत्र सहस्र नेत्र छे। जीरे निरमल तेज सोहायरे॥ शासन०॥ ३॥ जीरे आतम विद्यायुध वके। जीरे करे कर्म अरी चुररे॥ आतम०॥ जीरे तप तेजे ततखिण दहे। जीरे मोहादि रिपुना पुररे॥ शासन०॥ ४॥ जीरे सुत शुद्ध दृष्टे देखता। जीरे रुपी अरुपी जावरे॥ आतम०॥ जीरे श्रमण देवोना अधिपती। जीरे बहुसुत परम प्रजावरे॥ शासन०॥ ५॥ जीरे सारण वारण चोयणा। जीरे पडिचोयण करनाररे॥ आतम०॥ जीरे सकल साधु गुणधर्मनी। जीरे करे रक्षा पटधाररे॥ शासन०॥ ६॥ जीरे जेहनी रक्षा देवो करे। जीरे हरिकेशी मुनि पेरे साररे॥ आतम०॥ जीरे चार निकायी देवी देवता। जीरे करे नित रक्षा ऊदाररे॥ शासन०॥ ७॥ जीरे जलहल ज्योति प्रकाशतो। जीरे बहुसुत रविकर तेजरे॥ आतम०॥ जीरे मिथ्या तिमिर नसावतो। जीरे हरे अज्ञान मुनि हेजरे॥ शासन०॥ ८॥ जीरे जवि हृदयकमले करे। जीरे जाव धर्म सुऊल्लासरे॥ आतम०॥ जीरे रुपी अरुपी नव तत्त्वना। जीरे नय निक्षेप प्रकाशरे॥ शासन०॥ ए॥ जीरे शुद्ध साध्य वलि साधना। जीरे करता सुमग प्रकाशरे॥ आतम०॥ जीरे दिनकर पेरे ऊंचो चके। जीरे शिव मग करे ऊजासरे॥ शासन०॥ १०॥ जीरे जा-

ज्वल्यमान ज्ञाने करे । जीरे शीत विजाव विनाशरे ॥ आतम० ॥ जीरे ते मुनि अप्रमत्त जावमा । जीरे जागृत करे उल्लास ॥ शासन० ॥ ११ ॥ जीरे खट्खट् विध तप तेजथी । जीरे ड्रव्य जाव विधि दोयरे ॥ आतम० ॥ जीरे जेहनु तेज सहे नही । जीरे कुमत उलुक जेह होयरे ॥ शासन० ॥ १२ ॥ जीरे सोल कला पूरण शेशी । जीरे सारद पुनम सोहायरे ॥ आतम० ॥ जीरे ग्रह तारा नक्षत्रना । जीरे बहु समूहे दीपायरे ॥ शासन० ॥ १३ ॥ जीरे देत आह्लाद जन-मन जणी । जीरे करे आतम गुण शुद्धरे ॥ आतम० ॥ जीरे तेम सुतधर शुज सघने । जीरे परम समाधि दीये बुद्धरे ॥ शासन० ॥ १४ ॥ जीरे सम्यक सोल कला जस्यो । जीरे ताप कषाय बूजायरे ॥ आतम० ॥ जीरे ते सुतधर मुनि सेवता । जीरे सहज समाधि निपायरे ॥ शासन० ॥ १५ ॥ जीरे इंड्र सूरज ने चड्रनी । जीरे बहु-सुतने उपमायरे ॥ आतम० ॥ जीरे उपमा अवर आगे कहुं । जीरे मनसुख शीव सदायरे ॥ शासन० ॥ १६ ॥

ढाल पांचमी (५) हरिवर हरिवर शु करो ॥ ए देशी ॥

जेम उत्तम कोगरमां । विणसे न धान्य लगार ॥ चोर चुवानोरे जय नहीं । न सले दले विकार ॥ बहुसुत ज्ञान कोठोर ठे, आतम विद्या जकार । बहुसुत० ॥ १ ॥ ए आकणी ॥ बहुसुत हृदय कोठा-रमा । बहु पद धान्य प्रकार ॥ कुमत प्रमाद आदि थकी । विणसे नाहि लगार ॥ बहुसुत० ॥ २ ॥ कण रहे अंग उपांगना । सुतधर कोठेरे शुद्ध ॥ सघ चतुर विधिनु सदा । करे रखोपुरे बुद्ध ॥ बहुसुत० ॥ ३ ॥ सुदर्शन जंबुतरु । वृक्ष समुहमारे जेम ॥ वींट्यो जंबु सुद्धि-पने । अतिशय शोजे ठे एम ॥ बहुसुत जंबूरे शोजतो ॥ ४ ॥ तेम मुनिमा बहुसुतधरु । शोजे अतिशयवत ॥ वींट्यो चउ विधि सं-घने । धीर वीर वड संत ॥ बहुसुत जंबू० ॥ ५ ॥ अधिष्टाता जबूरे ऋिपना । देवोनुं शुज स्थान ॥ तेम जिन शासन सघलुं । बहुसुत

जाणो मंझाण ॥ बहुसुत जंबू० ॥ ६ ॥ मह रिद्धिवत मुनिश्वरु। उपद्रव टालेरे सर्व ॥ मधुर अरथ सुत फल दीये। कुमतीनो हरे गर्व बहुसुत० ॥ ७ ॥ बहु सरितौं मांहे शोभती। बहु परिवार समेत ॥ महासागरमांहे जई भले । तेम बहुसुत शिव खेत ॥ बहुसुत० ॥ ८ ॥ सुनय अनंत तरंग छे। शांत सुधा जलपूर। आतम ज्ञानेरे शोभता। करे करम रज दूर ॥ बहुसुत० ॥ ए ॥ नीलवंत परवत थकी। सीता सरी उत्पन्न ॥ तेम मुनि उत्तम कुल थकी । उपना तेहनेरे धन्न ॥ बहुसुत० ॥ १० ॥ विनय उदार गंभीरता । आदि गुण पय पूर ॥ सीता सरी सुतधर पदे। नित थिर रहो हजूर ॥ बहुसुत० ॥ ११ ॥ जंबूवृक्ष कोठारनी। सीतासरिता ए तीन ॥ उपमा दाखी आ ढालमां । मनसुख आगे नवीन ॥ बहुसुत० ॥ १२ ॥

ढाल छठी (६) पर्वतमां उत्तम कह्योरे, मंदरगिरि गुणवंत ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ बहु ओपधिओ शोभतोरे, दिव्यमान दरसंत ॥ मनडो हसी रह्यो ॥१॥ भावसुत बहु ओपधीरे, सहित दिपे मुनिराय ॥ दीलडे वसी रह्यो भाव रोग हरता सदारे, सारे भविजन काज ॥ मनडो हसी रह्यो ॥२॥ सल्य विसल्य संगरोहणीरे, सजीवनी चित्रावेलिरे ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ विपहर शस्त्रनिवारणीरे, अहीभूत दमणी वेलिरे ॥ मनडो हसी रह्यो ॥ ३ ॥ बहु लब्धी ओपधी भर्योरे, सुतधर मेरु राज ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ दुःख दावानल रुज हरे रे, देत शांति शिव राज ॥ मनडो हसी रह्यो ॥ ४ ॥ प्रवल प्रवर मुनि गण विपेरे, संजम पुष्टि काज ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ दृढ शुद्धातम भावमारे, बहुसुत शासन राज ॥ मनडो हसी रह्यो ॥ ५ ॥ मिथ्या अज्ञान कपायनेरे, ततखिण हरतो संत ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ वयरमुनी आदिक पेरेरे, बहुसुत मेरु महंत ॥ मनडो हसी रह्यो ॥६॥ विविध रत्नभर पूरियोरे, चरमजलधि जलपूर ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥बहु अतिशय रत्ने भर्योरे, दीपे बहुसुत नूर ॥ मनडो हसी रह्यो ॥७॥ शांती जल गंभीर ज्यारे, नय अनंत

कल्लोल ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ आतम अनुभव रस भर्योरे, आसंय जास अतोल मनडो हसी रह्यो ॥ ८ ॥ क्षांत्यादिक ज्ञानादिकेरे, जल गंभीर अखूट ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ परिसहथी क्षोभे नहींरे, सजस भाव अतूट ॥ मनडो० ॥९॥ शात सिद्धांत रसे भर्यारे, गण रक्षक मुनिराज ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ कर्म खपावे आपणांरे, सारे निज पर काज ॥ मनडो हसी रह्यो ॥१०॥ ते माटे नित नित करोरे, शुध नये सूत्र अध्येन ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ सकल विभाव जीती लहोरे, आतम संपति अेने मनडो हसी रह्यो ॥ ११ ॥ उत्तम अर्थ गवेषिनेरे, तजि पर ममता राग ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ तारो निज पर जीवनेरे, धरि संवेगे लाग मनडो हसी रह्यो ॥ १२ ॥ चार अश्वपर अेकलोरे, शूरो थइ असवार ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ चतुरंगी सेना सजीरे, लहे बहुसुत जयकार मनडो हसी रह्यो ॥ १३ ॥ इत उत द्रष्टि निवारिनेरे, चाले सम शिव पंथ । दीलडे वसी रह्यो ॥ शुद्ध साध्य द्रग थापिनेरे, थिर परिणति निग्रंथ । मनडो हसी रह्यो ॥ १४ ॥ मेरु चरमजलधी तणी रे, मलि उपमा थइ सोल ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ "मनसुख" शिव सगे लहेरे, सहजानंद झकल्लोल ॥ मनडो हसी रह्यो ॥१५॥ जेठ शुकल त्रयोदशी रे, "शा गीरधर हेमचद" ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ आग्रहथी "दोहदे" रच्यारे । बहुश्रुत गुणना वद ॥ मनडो हसी रह्यो ॥ १६ ॥

॥ संपूर्ण ॥

---

(१) अभिप्राय (२) अखंड

॥ ॐ श्री परम गुरून्यो नमः ॥

॥ ॐ श्रीमान् मनसुखलाल हरिलाल कृत ॥

॥ श्री विषय परिहारनी ढालो ॥

॥ ज्जुजंगी छंद ॥

नमो वीर आणंद अत्यत दाता । सदा शीव शांती सुत्राता विख्याता ॥ जित्या कर्म आठे सरम्ये रमीने । करुं वोध साचो प्रज्जूने स्तवीने ॥ १ ॥

॥ मालिनी छंद ॥

रिखव अजित वंदी, आपणुं वीर्य धारी । विषय विष निवारी, ज्रव्यने शांति कारी ॥ ज्रव तरण सुहेते, वोध साचो विचारी । करिश सरस रंगे, सूत्रमांथी उध्धारी ॥ १ ॥

॥ ढाल पहेली (१) ॥ सहजानंदीरे आतमा ॥ ए राग ॥

चेतन चेतोरे चेतना, आतम तत्त्व विचार ॥ वश करि ईंद्रिय चोरने, जिम लहिये शीव सार ॥ चेतन चेतोरे चेतना ॥ १ ॥ पूरो शूरो ते मुनि कह्यो, चरण रयण धन जास ॥ लूटे न ईंद्रिय चोरटा, निज गुण रमण विलास ॥ चेतन० ॥ २ ॥ ईंद्रिय वश जे नवि हुवे, पंडित पण कह्यो तेह ॥ रंक सदा रहे ते नरा, विषय वश होय जेह ॥ ॥ चेतन० ॥ ३ ॥ सत्य प्रशसारे तेहनी, नहि विषये वश जेह ॥ ज्ञानादिक निज गुण विषे, मग्न रहे मुनि तेह ॥ चेतन० ॥ ४ ॥ ईंद्रिय चपल तुरंग छे, दुरगति मार्गेरे जाय ॥ वांधी ज्ञाननी राशथी, वश करे मुनी अमाय ॥ चेतन० ॥ ५ ॥ जावो ज्रव स्वरूपने, ए संसार असार ॥ पर परजाय अनित्य छे, अशरण जीव सदाय ॥ चेतन० ॥६॥ आवे जावेरे एकलो, सुख दु ख जोगेरे एक ॥ चेतन द्रव्य अखंड छे, ए थिर राखो विवेक ॥ चेतन० ॥ ७ ॥ चेतनता वीण सर्व जे, आपणु

कोई ना होय ॥ पुद्गल स्नेह मूरख करे, तुं निज ज्ञानेरे जोय ॥ ॥ चेतन० ॥ ७ ॥ देह अशुचि जरपूर छे, विषय अशुचीनी खाण ॥ नरकादिक डुःख आकरां, तु केम थाय अजाण ॥ चेतन० ॥ ए ॥ ईंडिय धुत्तोने वश पड्यो, क्षिण विषय सुख हेत ॥ काल अनंतोरे डुःख सहे, जटकी चवगत खेत ॥ चेतन० ॥ १० ॥ तिल तुस मात्र ईंडिय विषे, वधवा मति देरे मित्र ॥ प्रसस्या विषय प्रणाममां, जव डुःख देशे विचित्र ॥ चेतन० ॥ ११ ॥ निर्मल चारित्र तेहनुं, विषय कीमे न खवाय ॥ चूक्यो क्षिण सुख कारणे, कोटि वरस डुःख पाय॥ ॥ चेतन० ॥ १२ ॥ कीडा लाग्या जे काष्टमा, ते होय काष्ट निसार ॥ विषय कीमा लागे जिहा, चारित्र तास असार ॥ चेतन० ॥ १३ ॥ यत्न करो दृढ प्राणियां, विषय जीतण काज ॥ ज्ञानादिक प्रगट हुवे, लहिये शिवपुर राज ॥ चेतन० ॥ १४ ॥ काचनी कांगणी कारणे, हारे रत्न जो कोड ॥ चरण हणे विषय रसे, ते महा मूरख जोड ॥ चे०॥१५ तिलमित सूख विषय तणुं, फल डुःख मेरू समान ॥ जेह लुपाणेरे प्राणिया, ते नवि कहिये सुजाण ॥ चेतन० ॥ १६ ॥ थोडो पण रस विषयनो, क्रोडो जव डुःख देत ॥ तेणे नवि थाजे विषयरसी, ईच्छो आतम हेत ॥ चेतन० ॥ १७ ॥ जोगवतां मधुरा लगे, अति कमवा छे विपाक ॥ किंविपाकना फल समो, राखो विषयनी धाक ॥ चेतन०॥१८ खणता कंमुरे वतने, लागे छे अती मीष्ट ॥ पछी जलनादिक वेदना, उपजे अतीसे अनिष्ट ॥ चेतन० ॥ १९ ॥ जोग थकी अतीसे वधे, तृष्णा दाहनुं जोर ॥ मृगतृष्णा जल जाकुवे, शांति लहे नहीं ढोर ॥ चेतन० ॥ २० ॥ बहु बहु योनी कुजन्मनी, आपे विषय सदाय ॥ जगमा वैरी न ए समो, मनसुख उमो अपाय ॥ चेतन० ॥ २१ ॥

ढाल बीजी (२) विषय विष परिहरो प्राणीआ ॥ ए देशी ॥

॥ अग्नि बूजी शके जलथकी, बूजे नहि कामनी आगरे ॥ क्रोम

१ बलतरा

समूद्रना जल थकी, डुष्ट अति मदननो रागरे ॥ विषय विष परिहरो चेतना ॥ १ ॥ काल अनंत लगे वलि वलि । जोगव्या विषय विकाररे ॥ तो पण तृप्ति पाम्या नहीं, विषय डुःखदाइ असाररे ॥ विषय० ॥ २ ॥ जीव हिंसा विषय वश करे, आदरे जूठ अदत्तरे ॥ कुशील परिग्रह आदरे, करी करी अधिक ममत्तरे ॥ विषय० ॥ ३ ॥ सकल कषाय होय एहथी, पापनां स्थान अढाररे ॥ जव जंजाल एहथी वधे, लहे न शुद्धातम साररे ॥ विषय० ॥ ४ ॥ विषय परिणाम जेणे जीतिया, मुगति सुख तेहने गोदरे ॥ मनुष्य जव लहि जवी आदरो, जिन वचन निर्मल बोधरे ॥ विषय० ॥ ५ ॥ विषय मदपाने उन्मत्त थयो, नवि लहे योग्य अयोग्यरे ॥ कृत्य अकृत्य पण नवि गणे, चाह एक विषय विष जोगरे ॥ विषय० ॥ ६ ॥ आवि विपाक हाजर हुवे, दीन परवश लहे क्लेशरे ॥ नरक निगोद गतिमां पड्यो, जिहां नहीं सूखनो लेशरे ॥ विषय० ॥ ७ ॥ कीडा विष्टाना विष्टा विषे, लींव कीडा लिंव मांहिरे ॥ तेम विषयी विषय विष विषे, मानि सुख मग्न रहे तांहिरे ॥ विषय० ॥ ८ ॥ क्षणिक चपल परतंत्र जे, राख्या पण नवि रहे जेहरे ॥ विषय नर नारिना जाणिए, मूकिये एह पर स्नेहरे ॥ विषय० ॥ ए ॥ जेम जेम अग्नि इधन अती, नांखतां तृप्त नवि होयरे ॥ तेम ए विषयीने विषयथी, तृप्ति रति होय नवि कोयरे ॥ विषय० ॥ १० ॥ देव मनुष्य तीर्यचना, जोग सहु अथिर परतंत्ररे ॥ जोगतां तेहथी नवि लह्या, निज गुण सहज स्वतंत्ररे ॥ विषय० ॥ ११ ॥ जोगता रम्य मनने लगे. परिणमे कटुक विपाकरे ॥ गीत विलाप सम जाणिए, नृत्य विटंवना याकरे ॥ विषय० ॥ १२ ॥ जूषण जार उपामवो, इंद्र नरींद्रना जोगरे ॥ ए जवचक्र जमता लह्यो, वलि वलि एहनो योगरे ॥ विषय० ॥ १३ ॥ तो पण तृपती नवि रही, आतम धर्म अजाणरे ॥ चार पुद्गलपरिअट्टमां, तें लह्यां दुःख अ-

(१) द्रव्य क्षेत्र काल अने भावथी एम चार प्रकारे

मानरे ॥ विषय० ॥ १४ ॥ ॥ आहार नीहार ग्रहि छंडिया, पुद्गल अनत अनंतरे ॥ तो पण थीर सुख नवि लह्यो, अमल सुख सहज स्वतंत्ररे ॥ विषय० ॥ १५ ॥ जोगि जव जोगना स्नेहथी, पुद्गल माहि लपटायरे ॥ जोगनो स्नेह जे नर तजे, ते नरा शिवसुख पायरे ॥ विषय० ॥ १६ ॥ गोलो ओलो जेम माटीनो, लागशे ञीं-तने जेमरे ॥ तिम नरा जोगना स्नेहथी, कर्म रज ग्रहि रहे एमरे ॥ ॥ विषय० ॥ १७ ॥ सूको गोलो जेम ञींतने, नवि लगे ते कोई वाररे ॥ जोगनो स्नेह जेहने नहीं, ते लहे शिवपद साररे ॥ विषय० ॥१८॥ सरिता असंख्यनी आवथी, सागर जेम न पूरायरे ॥ काम अनंतना जोगथी, मुग्ध नर तृप्ति नवि पायरे ॥ विषय० ॥ १९ ॥ देव नर जोग बहु जोगवी, वलि लहे नरकना दुःखरे ॥ कलकलित अग्नि तपाविचु, ताम्र रस पान नहीं सूखरे ॥ विषय० ॥ २०॥ कोण हणायो नहीं लो-जथी, नारिथी कोण न ठगायरे ॥ मृत्युए कोण जीव नवि ग्रह्यो, कोण विषय गृद्ध नवि थायरे ॥ विषय० ॥ २१ ॥ ज्ञान शुद्धातम तत्त्वनुं, लहि नर धन्य कहायरे ॥ मनसुख चेति चित्तमा सदा, तुं विषय वश नवि थायरे ॥ विषय० ॥ २२ ॥

ढाल त्रीजी (३) मोरा प्रीतमजी तुं सुण एक मोरी शीख वालमजी ॥ ए देशी ॥

मारा चेतनजी मारा वालमजी, वलि वलि हुं तुज शु कहुं ॥ चतुर न जाग्यो चित्त चेतनजी, न लह्यु ते निज हीत चेतनजी ॥ वलि० ॥ १ ॥ कामग्रह अति आकरो, सकल कुग्रह शिरदार चेतनजी ॥ दुःख दिए मूरख जीवने, जे एहना थया यार चेतनजी ॥ वलि० ॥ २ ॥ नर इंद्रादिक जग सहू, ब्रह्मा विष्णु महेश चेतनजी ॥ वश करि राख्या केदमां, सहेता विविध कलेश चेतनजी ॥ वलि० ॥ ३ ॥ थावर जगम विषयकी, सिह सरपने आग चेतनजी ॥ जेह दुःख

(१) ञीलो

उपजे न जीवने, कामथी दुःख अथाग चेतनजी ॥ वलि० ॥ ४ ॥ इच्छेथी दुःख ऊपजे, जोगे विविध असूख चेतनजी ॥ छिण छिण कामना वेगीने, नही निवृत्तिनुं सूख चेतनजी ॥ वलि० ॥ ५ ॥ काम प्रणाम जिहां रहे, एहीज आश्रव आय चेतनजी ॥ कर्म रजे रस पूरमां, आतम समूद्र जराय चेतनजी ॥ वलि० ॥ ६ ॥ भव अनंत भमतां करे, दुःख आक्रंद अनंत चेतनजी ॥ पण जेह निज गुण जोगमां, मग्न रहे मुनि सत चेतनजी ॥ वलि० ॥ ७ ॥ जोर न रंक अनंगनुं, नवि चले कोइ प्रकार चेतनजी ॥ पंच विषयनी कामना जे तजशे नरनार चेतनजी ॥ वलि० ॥ ८ ॥ पुरुषपणुं धन्य तेहनुं, प्राक्रमवंत महत चेतनजी ॥ लघु काले शिवपद लही, काम तज्यो जेणे संत चेतनजी ॥ वलि० ॥ ९ ॥ तजे अपेक्षा विषयनी, विघ्न रहित शिव पाय चेतनजी ॥ लघु काले संसारथी, सहज निवृत्ति थाय चेतनजी ॥ वलि० ॥ १० ॥ प्रवचन सार एहिज लहो, ए विण नाण, अनाण चेतनजी ॥ जीहां राग तिहां विषय छे, राग तिहां नहीं ज्ञान चेतनजी ॥ वलि० ॥ ११ ॥ ज्ञानीने राग होवे नहीं, राग विण विषय न होय चेतनजी ॥ सार सिद्धांतनो ए लही, विषय तजो सहु कोय चेतनजी ॥ वलि० ॥ १२ ॥ सकल शत्रुमां शत्रु ए, सकल झेरमां झेर चेतनजी ॥ सकल दुष्टमा दुष्ट ए, विषये कर्यो जग जेर चेतनजी ॥ वलि० ॥ १३ ॥ सवि प्रतिबंध छे विषयथी, ए विण नहीं प्रतिबंध चेतनजी ॥ प्रतिबंधे बंधन महा, एह तजिए कूबंध चेतनजी ॥ वलि० ॥ १४ ॥ विषय थकी निरपेक्षने, गोपद सम संसार चेतनजी ॥ तरवो सुगम सूत्रे कह्यो, जिनवर जगदाधार चेतनजी ॥ वलि० ॥ रत्नादेवी वश पड्या, तेणे द्वीप बंधव दोय चेतनजी ॥ चेती त्यांथी जागीया, शरण मल्यो देव कोय चेतनजी ॥ वलि० ॥ १६ ॥ देवे कह्युं अव मत चले, चलतां छोडिश तुज चेतनजी ॥ रत्नाए आवी चलावीओ, देवे छोड्यो अबूज चेतनजी ॥ वलि० ॥ १७ ॥ वलि तोहा वीजो बंधव

गयो, करि आव्यो देवने शरण चेतनजी ॥ रत्ना चलाव्यो नवि चल्यो, करि शकी देवी न हरण चेतनजी ॥ वलि० ॥ १८ ॥ देवे सिंधु उतारीने, मूक्यो तेहने खेत चेतनजी ॥ विषय कुलटथी नवि चले, तेह लहे शिव हेत चेतनजी ॥ वलि० ॥ १९ ॥ जे भमे भव कतारमा, तेहनु विषय छे मूल चेतनजी ॥ विषयनुं मूल अज्ञान छे, ज्ञान आतम अनुकूल चेतनजी ॥ वलि० ॥ २० ॥ विषय विशेष आशक्तने, सुशील पाख छेदाय चेतनजी ॥ पांख रहित जेम पक्षीथी, नवि आकाश तराय चेतनजी ॥ वलि० ॥ २१ ॥ द्रव्य भाव दोय शीलनी, होय पाख दृढ जास चेतनजी ॥ तरे ससार कतारथी, पामे सिद्धि विलास चेतनजी ॥ वलि० ॥ २२ ॥ सूका अस्थी चावतो, श्वान माने जेम सुख चेतनजी ॥ गाल तालु छेदन तणु, नतक्षण पामे दुःख चेतनजी ॥ वलि० ॥ २३ ॥ तेम विषयी विषय रसे, करि निज वीर्यनी हाण चेतनजी ॥ तनु मन गत बहु रोगनी, मूढ खोले दुःख खाण चेतनजी ॥ वलि० ॥ २४ ॥ सहेत लीपटि अ सी चाटता, प्रथम लहे मन स्वाद चेतनजी॥ जीभ कटे दुःखवेदना, होय अति वीखवाद चेतनजी ॥ वलि० ॥ २५ ॥ मोह मदीरा मद तजो, करि जिन वच सुधापान चेतनजी ॥ रोग शोग भवभय टले, रहे मनसुख शिव थान चेतनजी ॥ वलि० ॥ २६ ॥

॥ ढाल चोथी (४) ॥ राग पद्धरी छंद ॥

अशुची भर नर नारी शरीर, भर मोह वशे लागे रुचीर ॥ नवि देखे दुःखने खेद थाक, सदगुरुनी पण नवि माने हाक ॥ १ ॥ कदली तरु माहि न काइ सार, तेम नर नारी तन अति असार॥ नारी नदि यौवन जल भरेल, शृंगार रूप बहु आवे वेल ॥ २ ॥ जल भ्रमर विलास विलोकि कोय, तिहा बूडे नवि जे ज्ञानि होय ॥ नारी नदि शोक जले भरेल, अति क्रूर कपटनी गुहिर वेल ॥ ३ ॥ अति वैर

क्लेश वन्हि उपाय, नारी अरणी जाणो सदाय ॥ महिला दुःख खाणी सुख नशाय, ईहां सुख जाणी नर चंपल थाय ॥ ४ ॥ दुर्गंधि वहे दश दोय द्वार, वश काम मूर्ख मन एहिज सार ॥ पर नारि मिले अति हरख होय, दुरदशा आवि नहि मूर्ख जोय॥५॥ नारी पर पुरुषथी धरत प्यार, नहि मदन विना जग कोइ सार॥ जाण्यो नहि तत्त्व अतत्त्व मर्म, ते किम पामे निज धर्म शर्म ॥ ६ ॥ ते किम रहेशे थइ धीर वीर, नारी तन देखी जल गंभीर ॥ नवि लहि मन शक्ति निज कदाय, त्रिय नेत्र बाणथी नवि नसाय ॥ ७ ॥ देखी विषधर सहु भागि जाय, त्रिय नागणि देखी हरख थाय॥ ए वरु अचंब मुज मन सदाय, एह मोह महीपतिनो उपाय ॥ ८॥ दृष्टीविषथी पण अधिक एह, शुध चरण प्राण पण हणत जेह ॥ माटे तज नारी साथ वात, असंजमती ए जाण मात ॥ ए॥ श्रुतधर दृढ चित्त जितेंद्रि कोय, युवती पिशाचणी जीति सोय ॥ नवनीत तपे जिम अग्नि संग, मुनि संजम गलत हे, त्रिय प्रसंग ॥ १० ॥ एह विषय विना रहे तनु निरोग, सुख होय न आवे दुःख वियोग ॥ शुभ शीलथि वंछित सिद्धि होय, सन्मुख नवि देखे वयरि कोय ॥ ११ ॥ जख प्रेत पिशाचनुं विघन जाय, देवादिक पण तसु सेवे पाय ॥ शुध शीलवतने सुख सदाय, मंत्रादिक नवनिधि सिद्धि थाय ॥ १२ ॥ जेणे ठग्या क्षीणसा महत धीर, एहने जीते ते परम वीर ॥ नारी नदि जन तृण खेंचि जाय, तस रसिया भवसिंधु समाय ॥ १३ ॥ एम जाणी धुरथी तजि सनेह, मनमा नवि चितो नारि नेह ॥ जग धन्य धन्य ते धीर वीर, लहुं आत्म रमण संसार तीर ॥ १४ ॥ सिंह गुफा वासि मुनि तप सुधीर, बहु मास तपे सोस्युं शरीर ॥ घर धन कुटुंब तजि देह राग, धार्यो तो संजम योग याग ॥ ॥ १५ ॥ क्षिणमां खोयुं जेणे चरण रत्न, जो नवि कीधु नारीथि यत्न॥ माटे तजिए भवि काम नेह, मोटो शत्रु जग जाणि एह ॥ १६ ॥ सहु काले विषये जल भराय, तव आतम सर अति मलिन थाय ॥ संव-

रता प्रगटे विमल रूप, करि निर्जरणा होय शांति जूप ॥ १७ ॥ करो शुद्ध रमण थिरथोज आप, विषये विष उतरे जाय पाप ॥ मनसुख आतम गुण मग्न होय, शाश्वत शिव संगे अचल सोय ॥ १८ ॥

ढाल पाचमी (५) प्यारा प्राण थकी मुनिराज ॥ ए राग ॥

दुविध परिग्रह राग तज्यो जेणे, विषय राग नवि रोपजी ॥ ज्ञानादिक निज गुणमा तृप्ति, लह्यो शांति रस पोष ॥ धन्य नर तेहोजी, धीर वीर गंभीर गुणना गेहोजी ॥ ए आंकणी ॥ १ ॥ लहे निर्वाण शाश्वत सुख पुरण, परमानंद विलासोजी ॥ इन्द्र चक्री धनवंत नरो पण, तरुणीना थया दासो ॥ धन्य० ॥ २ ॥ सहज शुधातम तत्त्व विचारी, नरभव सफलो कीजेजी ॥ सार सिद्धांतनो रहस्य एह छे, विषय विकार तजीजे ॥ धन्य० ॥ ३ ॥ श्लेषम लिपटी जे मक्षीका, उडवा समरथ नांहिजी ॥ विषय श्लेषम जे लेपाया, तेह रह्या भव माहि ॥ धन्य० ॥४॥ लेश मात्र पण कामे वश जे, ते नहि मूक्ति समथ्थजी ॥ काम तज्यो जेणे तेणे शिव साध्यो, अटल वीरज परमथ्थ ॥ धन्य० ॥ ५ ॥ जे सुख विलसे छे वितरागी, ते सुख तेहिज जाणेजी ॥ विष्टा कर्दममा नित रहेतो, भुंड महा सुख माने ॥ धन्य० ॥६॥ इडोनु सुख भुंड न जाणे, तेम विषयी सुख शिवनुजी ॥ विषय तजि शिव सुख अभ्यासो, कारज सिद्ध जीवनुं ॥ धन्य० ॥ ७ ॥ छे प्रतिबंध विषयनो अवलो, मोह उलंग्यो न जायजी ॥ तजि विषय निज गुण अवलबे, मोह समुद्र तराय ॥ धन्य० ॥८॥ कामे अंध थया छे जे नर, धरत न भव भय शंकाजी ॥ विषय तजी जिन वचने लीना, ते भव भीरु अवंका ॥ धन्य० ॥९॥ मुत्र पुरीष वलि पित श्लेषम, चरबी हाड ने सूजोजी ॥ मेद मासने वमन करंडक, नरनारी तन बूजो ॥ धन्य० ॥ १० ॥ लाल वहे मुख होष्ट दुगधी, नाके अशूची वहेतीजी ॥ चर्म मंडित तन प्यारी नारी, मनथी मूको वहेती ॥ धन्य० ॥ ११ ॥ कीरम कीट बहु रोगनु स्थानक, कूड कपटनी खा-

णीजी ॥ हीण मती होय एहना रसिया, एह डुर्गतिनी निशानी ॥ धन्य० ॥ १२ ॥ चउ पग जीवने उपरी खेचर, पास पिंजर बंधायाजी ॥ युवती पास पिंजरमां पडना, डुर्गति सनमुख धाया ॥ धन्य० ॥ १३ ॥ प्रत्यक्ष क्षिण क्षिण डुःख अनुनवतो, मोह वशे पण जाण्युंजी । पण नवि ठोडे एह वड अचरिज, किम विषये मन मान्युं ॥ धन्य० ॥ १४ ॥ युवती ससर्गी नर जे जे, बहु विध डुःख संसर्गेजी ॥ काल अनंत संसार कंतारे, नमि लहे नवी अपवर्गे ॥ धन्य० ॥ १५ ॥ बिल्ली संसर्गे उंदरने, नहि सुपने सुख साचुंजी ॥ नारी संगे तिम जगमां सुख, न कह्युं एह नवि काचुं ॥ धन्य० ॥ १६ ॥ वासुदेव शिवने वलि ब्रह्मा, कार्त्तिक इंद्र ने चंद्रोजी । देव विद्याधर ने बहु बलिया, तेम नरींद्र सुरींदो ॥ धन्य० ॥१७॥ जगमां बहु मोटा कहेवाया, पण ते विषय वश व्यसनेजी । नारीना किंकर हुइ रहिया, धिक्क अनीव एह रसने ॥ धन्य० ॥१८॥ परिसह ताप सहे ठे बहु जन. बहु विध तप करि कीरियाजी ॥ अविवेकी ए विषय न त्यागे, प्राण रावण परिहरिया ॥ धन्य० ॥ १९ ॥ इलाची निज कुटुंबने त्यागी, विवेक राखि न शकीयोजी ॥ जेणे निज आतम गुण न संजाल्यो, तेह विषयमां ठकीयो ॥ धन्य० ॥ २० ॥ नारी देखी मुनि अणचलतो, देखि इलाची बूझ्योजी ॥ विषय विकार असार लहीने, निरमल शिवमग सूझ्यो ॥ धन्य० ॥ २१ ॥ पाप चरित्र बहु नरनां सुणि पण, जे जन विषय न त्यागेजी॥ जिनवर वचन हृदय नवि धार्या, तस किम अनुजव जागे ॥ धन्य० ॥ २२ ॥ चपल जिवित जल बिंदु सम ठे, यौवन संध्या रंगोजी ॥ सरिता पूर समान ठे लच्ठी, तजिये विषय अनंगो ॥ धन्य० ॥ २३ ॥ कर्दममां खूतो जिम नागो, सर तीर देखे किनारेजी ॥ पण खूतो आपे थयो परवश, होइ शके नहि न्यारो ॥ धन्य० ॥ २४ ॥ विषय कर्दममां जे खूता, परवशता डुःख वेदेजी ॥श्री जिन धर्म कांइक पण जाण्यो, पण नहीं वीर्य उमेदे ॥ धन्य० ॥ २५ ॥ श्री जिन वचन सुधारस पीतां

निज गुणमा लय लागी जी॥परम निवृत्ती पदवी मनसुख,लहशे तेह सोलागी ॥ धन्य ॥ १६ ॥

॥ ढाल छठी ॥ (६)

॥ श्री श्री मंदिर साहेब सुणजो नरत क्षेत्रनी वातो रे ॥ ए राह ॥

विषय रसे आशक्त थयो जेह, उद्भट वेष करीनेजी ॥ नव नव नव नाटक नाचे, पुद्गल रूप धरीनेजी॥ श्री जिनवचन सुधारस पीजे, सहज सधर्मे रमीजेजी ॥ श्री जि० ॥ १ ॥ दश दृष्टाते दुर्लन्न नरनव, काल अनंते आव्योजी ॥ रत्नी थकी पणी अधिक धर्मनो, योग प्रमादे गमाव्योजी ॥ श्री जिन० ॥ २ ॥ विषय कागके जगजन ठगिया, रत्न चिंतामणि हरियुंजी ॥ पण मूरख मनमां नवि चेत्यो, चरण रयण न समरियुंजी ॥ श्री जिन० ॥ ३ ॥ चित्रसाधु बधव विषये वश, अशुन्न नियाणु धाल्युंजी ॥ ब्रह्मदत्त चक्री पद पामी, सजम सार विसाख्युजी ॥ श्री जिन० ॥ ४ ॥ नरके परवशताए बहु दुःख, आक्रंद करत विलापोजी ॥ तेम विषये वश सजम चूके, ते सहे नवदव तापोजी ॥ श्री जिन० ॥ ५ ॥ चित्र मुनि सजम रस लीनो, रग रसे शिव लहियुजी ॥ ते देखी मुज अधिक उमाहे, संजम मन गहगहियुंजी ॥ श्री जिन० ॥ ६ ॥ विषय मद्यपाने जे परवश, धिक धिक ते नरनारीजी ॥ नरकादिक दुःख आप स्विकारे, सजम सार विसारीजी ॥ श्री जिन० ॥ ७ ॥ श्री जिनवचन अमृत रस त्यागी, तिव्र विषय मद्य पीवेजी ॥ चउगति काल अनत नमे ते, परवश दुःखनर जीवेजी ॥ श्री जिन० ॥ ८ ॥ ईंद्रिय बल धातु जस अतिशय, मरण निकट पण जाणेजी ॥ बहु नारीथी विषय जाचता, दुरचल विण सनमानेजी ॥ श्री जिन० ॥ ए ॥ जेहनुं महातम ईन्द्र न खंमे, जगमा किरती जेहनीजी ॥ एवा पण स्त्रीए वश कीधा, तो मति रूकि न तेहनीजी ॥ श्री जिन० ॥ १० ॥ राजुल देखि रथ-

नेमी चलियो, संजम चित्त विसारयुंजी ॥ राजुल वचन अंकूशे वूझ्यो, संजममां चित्त वाल्युजी ॥ श्री जिन० ॥ ११ ॥ धिक धिक विषय विकारज एह्वो, शिवतरु मूल नसावेजी ॥ एम जाणी मतिवंत चेतिने, विषय सामो न जावेजी ॥ श्री जिन० ॥ १२ ॥ मेरु सम द्रढ धीर पुरुषने, काम मदने चलाव्याजी ॥ एम मन करिने जे दुर रहेता, ते संजम घर आव्याजी ॥ श्री जिन० ॥ १३ ॥ सर्प सिंह गजने कोइ जीते, वलवत्तो धीर वीरजी ॥ तोपण तेणे कदर्प न जीत्यो, जीते अनुजवी वीरजी ॥ श्री जिन० ॥ १४ ॥ प्यास अनादि विषम विषयनी, ए संसरण स्वजावजी ॥ चंपल ईंद्री मनने जीते, रमत शुद्धातम जावजी ॥ श्री जिन० ॥ १५ ॥ कामे तापित जे नर होवे, कलमल अरती जूखजी ॥ दाह व्याधि मरण वहुविध दुःख, इष्ट वियोग असूखजी ॥ श्री जिन० ॥ १६ ॥ काम तजे तस दूःख जाय सव, तन होये विमल निरोगजी ॥ इष्ट संजोग मले वहु विधथी ॥ सुगुरु मित्र सयोगजी ॥ श्री जिन० ॥ १७ ॥ पंच ईंदि त्रण योग सवर करी गले कातर मत वाहोजी ॥ आठे कर्म निर्जरणा करवा, लीजे नरजव लाहोजी ॥ श्री जिन० ॥ १८ ॥ रे जीव ! तुं शु अध थयो छे, के धत्तूरो पीधोजी ॥ के सन्निपातनो चालो छे तुज, संजम लाज्ञ न लीधोजी ॥ श्री जिन० ॥ १९ ॥ अमृत सम जिन धर्म ते विषवत, विषय विष अमृत मान्योजी ॥ तो तुंहिज पोतानो दुश्मन, निज हित कांइ न जाण्योजी ॥ श्री जिन० ॥ २० ॥ ज्ञान विज्ञानने किरती तारी, पोते किम विणसावेजी ॥ छोरु उतावलथी सहु विषयो, सद्गुरु तुज समजावेजी ॥ श्री जिन० ॥ २१ ॥ ज्ञायकता निज थिर उपयोगे, धर्म शुकल द्रढ धारीजी ॥ आतम सपति लहिने मनसुख, होवे शिव अधिकारीजी ॥ श्री जिन० ॥ २२ ॥

॥ ढाल (७) सातमी ॥

चेतन ए तन कारमु ॥ तुमे ध्यावोने ॥ विषय तजी जिन धर्म ॥ नविक नीत ध्यावोने ॥ अनत काले नरनव लह्यो ॥ तुमे० ॥ प्रगट करो शिव शर्म ॥ नविक० ॥ १ ॥ चिंतामणी सम ए लही ॥ तुमे० ॥ धर्म योगता सार ॥ नविक० ॥ विषय विकार वशे रही ॥ तुमे० ॥ नवि करो तेह असार ॥ नविक० ॥ २ ॥ सूकी जस्मने कारणे ॥ तुमे० ॥ बाले चंदन कोय ॥ नविक० ॥ गज ठोडि वकरो ग्रहे ॥ तुमे० ॥ ते महा मूरख होय ॥ नविक० ॥ ३ ॥ धतूर वावे आगणे ॥ तुमे० ॥ उखेडि कल्पवृक्ष ॥ नविक० ॥ मूर्ख शिरोमणी ते कह्यो ॥ तुमे० ॥ कोण कहे तस दक्ष ॥ नविक० ॥४॥ आयु चपलथी चेतिने ॥ तुमे० ॥ तजि प्रमाद थइ सूर ॥ नविक० ॥ आतम सत्ता निरमली ॥ तुमे० ॥ चिदानद रस पूर ॥ नविक० ॥ ५ ॥ जीती डुर्जय विषयने ॥ तुमे० ॥ दर्शन ज्ञान चरित्त ॥ नविक० ॥ सम नावे रंगे रमो ॥ तुमे० ॥ पवा चारे मित्त ॥ नविक० ॥ ६ ॥ अणगमता गमता बहु ॥ तुमे० ॥ विषयो पंच प्रकार ॥ नविक० ॥ रमण तजि सवि एहनुं ॥ तुमे० ॥ चित्त चपलता वार ॥ नविक० ॥७॥ शब्द सुणी मन अति चले ॥ तुमे० ॥ इष्ट अनिष्टे जाय ॥नविक०॥ रुप देखी तेम जाणिए ॥तुमे०॥ थिर चित्त क्षण न रहाय ॥नविक०॥८॥ गधनो धधमा मन चले ॥तुमे०॥ चूके ध्याननी ताल ॥नविक०॥ रस विषयथो एम बहु ॥तुमे०॥ आवे खोटा ख्याल ॥नविक० ॥९॥ फरस विषय रस जस लग्यो ॥ तुमे० ॥ नव जंजालनु मूल ॥ नविक० ॥ तेम ए पंचे जाणिए ॥ तुमे० ॥ जीवने नहि अनुकूल ॥ नविक० ॥१०॥ ए पुद्गल परजाय छे ॥ तुमे० ॥ अथिर चपल परतंत्र ॥ नविक० ॥ शाश्वत तु ज्ञायक सदा ॥ तुमे० ॥ सहजानद स्वतत्र ॥ नविक० ॥११॥ काम न एहशुं ताहरे ॥ तुमे० ॥ पुद्गल जग नटकाय ॥नविक०॥ काम सहजातम स्वनावमा ॥ तुमे० ॥ अविचल विमल सदाय ॥ नविक० ॥ १२ ॥ आतम अंग विचारिए ॥ तुमे० ॥ अमर अजर अकलंक

॥ जविक० ॥ कास वाम शीत जित नहीं ॥ तुमे० ॥ निर्जय अटल निशंक ॥ जविक० ॥ १३ ॥ छेदन चेदन वेदना ॥ तुमे० ॥ जूख न प्यास न दाह ॥ जविक० ॥ इत्यादिक दूषण विना ॥ तुमे० ॥ आतम अमल अगाह ॥ जविक० ॥ १४ ॥ शांति समाधी मय सदा ॥ तुमे० ॥ अव्याबाध अनंत ॥ जविक० ॥ गुण अनंतनो नाथ ए ॥ तुमे० ॥ वीरज परम अत्यंत ॥ जविक० ॥ १५ ॥ पूरण सुखमय आतमा ॥ तुमे० ॥ ठोडी पुद्गल आश ॥ जविक० ॥ समय न चूको चित्तथी ॥ तुमे० ॥ अनुजव लील विलास ॥ जविक० ॥ १६ ॥ विषय तजी निजगुण रम्या ॥ तुमे० ॥ डुःखथि निवर्त्या तेह ॥ जविक० ॥ आठ करम दल ठेदिने ॥ तुमे० ॥ विलसे शिव निज गेह ॥ जविक० ॥ १७ ॥ लेश मात्र ए विषयनो ॥ तुमे० ॥ मति करजो विश्वास ॥ जविक० ॥ (गहेर) घेर गंलिर समूद्रमां ॥ तुमे० ॥ पग धरि शी सुख आश ॥ जविक० ॥ १८ ॥ डुःख समूद्रमा ते पड्या ॥ तुमे० ॥ क्लेश अथाह निवास ॥ जविक० ॥ विषय थकी रही वेगला ॥ तुमे० ॥ करो गुण ज्ञान विलास ॥ जविक० ॥ १० ॥ लागती आग बुजावतां ॥ तुमे० ॥ होवे न कांई विनाश ॥ जविक० ॥ जोर वधे जब आगनु ॥ तुमे० ॥ वस्तुनी किम रहे आश ॥ जविक० ॥ २० ॥ देवु रोग अग्नि प्रते ॥ तुमे० ॥ वधवा न दीजे मित्त ॥ जविक० ॥ सावधान समये रही ॥ तुमे० ॥ लखि सुत जाव अमित्त ॥ जविक० ॥ २१ ॥ समय प्रमाद तजी करो ॥ तुमे० ॥ संजम रंग अजंग ॥ जविक० ॥ मनसुख मुक्ति पुरे रहो ॥ तुमे० ॥ शिव प्रिय रंग सुचंग ॥ जविक० ॥ २२ ॥

ढाल (८) आठमी ॥ वीर कहे गौतम सुणो ॥ ए देशी ॥

वीर वचन हृदये धरो, जवदधि तारक जेहरे ॥ विषय विकार निवारतां, प्रगटे निज गुण गेहरे ॥ वीर० ॥ १ ॥ मूल शील विज्ञानने, वलि वैरागने चूकीरे ॥ बहु नर जवदधिमां पड्या, विषयथी लाजने मूकीरे ॥ वीर० ॥ २ ॥ रोग सकल प्रतिकारने, विषयी नर सुख मा-

नेरे ॥ आतम गुणनी विराधना, होय तेह नवि जाणेरे ॥ वीर० ॥३॥ उद्भट वेषे नारीने, देखी दुरमती चूक्योरे ॥ जेणे जिन वचन हृदय धर्यां, राग प्रथमथी मूक्योरे ॥ वीर० ॥ ४ ॥ सुख शाश्वत जे मुक्तिनुं, उज्ज्वल जश जेम इंदूरे ॥ ठंकि मोही उपचारथी, सूख विषय मधुबिंदूरे ॥ वीर० ॥ ५ ॥ प्रजलित विषय अग्नि थकी, चारित्र सारने बालीरे ॥ सम्यक दर्श विराधीने, अनंत संसारमां घालीरे ॥ वीर० ॥ ६ ॥ मूरख आपही आपने, होय महादुःख दातारे ॥ विषय थकी जे दुर रहे, तेहने कोइ न अशातारे ॥ संसार अरण्य विहामणो, विषय तृष्णाए नचाव्यारे ॥ चौद पूरवधर मुनिवरा, श्रेणि चूकि निगोदमा आव्यारे ॥ वीर० ॥७॥ हा हा विषय ए विषम छे, प्रतिषधी दुःख पाम्यारे ॥ इंद्र जाल पेरे चपल ए, ठंक्या तेणे दुःख वाम्यारे ॥ वीर० ॥ ए ॥ फरस वर्ण रस गंध छे, शब्द संस्थान प्रजायरे ॥ पुद्गलना सहु जाणिये, क्षिण क्षिणमा बदलायरे ॥ वी० ॥ ॥ १० ॥ क्षिणमां लागे मनोज्ञ ए, क्षिणमां होय अणगमतारे ॥ ठगणी पुद्गल परिणति, मूढ ए संगे रमतारे ॥ वीर० ॥ ११ ॥ ए सगे रंगे रम्या, तेहने सुखनो न ठायारे ॥ जेह तजे एने मूलथी, ते सुख सिंधु समायारे ॥ वीर० ॥ १२ ॥ चपल विषय इंद्रधनुष्यने, विजली सम छे रूपरे ॥ अधकार समारमा, मूझी पडे जड चूपरे ॥ ॥ वीर० ॥ १३ ॥ राग द्वेष दोय कोपता, आपे जेटलुं दुःखरे ॥ विष शत्रु पिशाचथी, अग्निथी एहवु न दूःखरे ॥ वीर० ॥ १४॥ रागादिक वश जे थया, दुःख सघला छे तेहनेरे ॥ रागादिकने वश नहीं, सवि सुख होवे एहनेरे ॥ वीर० ॥१५॥ क्लेशनो हेतु संसार छे, एहनो हेतु छे क्लेशरे ॥ ज्ञानी क्लेश रहित सदा, नहि जस राग आवेशरे ॥ वीर० ॥ १६ ॥ राग आश्रवनुं मूल छे, दुविध कर्मनी आयरे ॥ त्यागी राग संवर करे, आठ करम क्षय थायरे ॥ वीर० ॥ १७ ॥ मोह थई त्रिया रूपमा, जेरामा माही छे जावरे ॥ ईंद्रादिक त्रिय वश पड्या, अनादि

जरमनी धाखरे ॥ वीर० ॥ १८ ॥ विषय भुजंगे मंखीया, तृष्णा अ-
ग्निमां जलतारे ॥ लक्ष चोराशी योनीमां, जमता दुःखे कलकलतारे ॥
॥ वीर० ॥ १९ ॥ ग्रीष्म काल संसारमां, विषय उष्ण अति वायुरे ॥
हित अहित अजाण ते, दुःख सहे चउ गति आयुरे ॥ वीर० ॥ २० ॥
इंद्रिय अश्व चपल घणा, उन्मत उन्मग गामीरे ॥ अणशिख्या
एह अश्वना, उपर बेठा थइ स्वामीरे ॥ वीर० ॥ २१ ॥ तेहने सूख
किहां थकी, अश्व इच्छाए चालेरे ॥ पण सुखिया ज्ञानी सदा, जेह
सम शेरी निहाले रे ॥ वीर० ॥ २२ ॥ उदाशीनता मार्गथी, सहजे शिव
घर लहियेरे ॥ मनसुख आप स्वतंत्रथी, सुमति रंगे रमि रहियेरे ॥
॥ वीर० ॥ २३ ॥

ढाल नवमी (९) पंथमो निहालुंरे बीजा जिन तणो रे ॥ ए देशी ॥

विषय पिपासीत नारिना जे हुवारे, जब वन सर कीच मांह्य ॥
लोटे पण तृप्ती पामे नहींरे, खुति रह्या दुःखि त्यांह्य ॥ विषय निवा-
रोरे वेगे चेतिनेरे, जेम लहो पद निरवाण ॥ विषय० ॥ १ ॥ धृति
रसी करि बांधे इंद्रिय अश्वनेरे, राखे आप स्वतंत्र ॥ अश्व रक्षक
बांधे जेम अश्वनेरे, तो उधमात तजंत ॥ विषय० ॥ २ ॥ धृति रज्जु
बांधी इंद्रिय वश करीरे, चाले सम शिव पंथ ॥ इंद्रिय सर्व लगावे
संयम काममांरे, ते साचो निर्ग्रंथ ॥ विषय० ॥ ३ ॥ मन वच काय
योग त्रण वश विनारे, संयम जागे अशुद्ध ॥ उन्मत गज वश विण
तोडे बागनेरे, चल योगे शील अशुद्ध ॥ वि० ॥ ४ ॥ तेथी थिर
कीजे त्रण योगनेरे, होय न चरणनी हाण ॥ दरशन ज्ञान चरण
व्यक्ति होवेरे, होशे परम कल्याण ॥ वि० ॥ ५ ॥ विषयथी जेम जेम
होये विरामतारे, तेम तेम दोषनी हाण ॥ निर्मल गुण जे जे अंशे
थयारे, ते होय मोक्ष निदान ॥ वि० ॥६॥ तेणे दुक्कर कारज कर्युं मानि-
येरे, तरुणपणे धरि धीर ॥ विषय सैन्या हणि जे निर्जय थयोरे, ते
जगमां वडवीर ॥ विषय० ॥ ७ ॥ धर्म शुक्ल शुभ तेहने परिणमेरे,

त्रिय नयणे न हयाय ॥ अंतर दृष्टि धरे शुद्धात्ममांरे, परमातम पद पाय ॥ वि० ॥ ८ ॥ नमो नमो हुं शुद्ध संजमधरारे, शील न चूक्या जेह ॥ हु सेवक हु निशदिन तेहनो रे, पाम्या परम पद तेह ॥ वि० ॥ रे जीव अधिकुं शुं तुज शुं कहुंरे, चाहे जो शिव आरोग्य ॥ छंडि विषय सेवी उदासीनतारे, लहेशो निज गुण जोग ॥ वि० ॥ १० ॥ विणू विषय कषाय होवे नहींरे, तेम वलि जाय प्रमाद ॥ विरती रती आवे चेतन घरेरे, थिर योगे जाय विषाद ॥ वि० ॥ ११ ॥ विषय मूल कह्यु ससारनुंरे, तेहनुं ममतारे मूल ॥ तेहनु मूल अज्ञान छेदिनेरे, लहो शिवपद अनुकूल ॥ वि० ॥ १२ ॥ चतुर न चूको चित्तथी चेतनारे, दरश ज्ञान उपयोग ॥ वीर्य अनत ते रम्य सरूपमांरे, चरण रमण रस जोग ॥ वि० ॥ १३ ॥ अव्याबाध अनंत स्वतंत छे रे, आतम अंग अजग । अमर अजर निरूंध नीकल सदारे, जो लहो निज गुण रग ॥ वि० ॥ १४ ॥ सद्गुरु संगे रगे नित्य रहीरे, कीजे श्रुत अभ्यास ॥ विषय रमण तजि आतम स्वजावमांरे, करो अनुजव सुविलास ॥ वि० ॥ १५ ॥ कालादिक अतिचार नीवारीनेरे, परम विनय सन्मान ॥ करि श्रुत सद्गुरु पासे शीखियेरे, होय श्रुतज्ञान सुध्यान ॥ वि० ॥ १६ ॥ आतम अनातम लखी सहु तत्त्वनेरे, नय निक्षेप प्रमाण ॥ ममता नासे जासे सहज शुद्धात्मतारे, विषय गये सुख ठाण ॥ १७ ॥ उदासीन सम्यक् मृगाकनीरे, सेवि पुनी नरनार ॥ वीर्य अनत् अचल शाश्वत लहीरे, होवे शिव जरतार ॥ वि० ॥ १८ ॥ मतीधर "गीरधर" आग्रहथी रच्योरे, सुखकर एह प्रबंध ॥ "दाहोद" नगरे जवि हित कारणे रे, साधर्मीशु संबंध ॥ वि० ॥ १९ ॥ ओगणीश पासठ शुज परिणामथीरे, स्यादवाद नय सार ॥ श्री जिन आगम अरथ विचारतांरे, कीधो सार उद्धार ॥ वि० ॥ २० ॥ शुकल पुनम श्रावण रवी दिन रच्योरे, विषय विषहर तंत्र ॥ नव ढाले नव निधि लहो रगशु रे, विषनाशक महामंत्र ॥ वि० ॥ "मनसुख" शिव सुख होशे शाश्वतु रे, तजजो विषय विकार ॥ दर्शन ज्ञान चरण निर्मल करी रे, जीव लहो जयकार ॥ वि० ॥ २२ ॥

॥ ॐ श्री वर्द्धमानाय नमः ॐ श्री परमगुरुभ्यो नमः ॥

॥ ॐ श्रीमान् मनसुखलाल हरिलाल कृत ॥

॥ ममत्व परिहार विषय ॥

॥ छंदो, दोहा, चोपाई, ढाल विगेरे रागोमां ॥

(१) ॥ द्रुतविलंबित छंद ॥

। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ

विमल आतम धर्म सुदायकं, अचल मोक्ष सुखं शिव नायकं ॥ नमिय आदिश्वरं शिव दायकं, सुख शुधातम जोगत ज्ञायकं ॥१॥ सुख न आतम धर्म विना कदा, अचल आतम ज्ञान सुसंपदा ॥ विण शुधातम सूख न कोइ हे, थिर शुधातम तारक होइ हे ॥ २ ॥ हित न ज्ञान विना दुःख आपदा, लहत ज्ञानि सदा निज संपदा ॥ दुःख न राग विना जगमां कदा, ममत आतम ज्ञान न हे तदा ॥ ३ ॥ सधत राग विरोध ममत्तथी, ममत ज्या नहि राग तिहां नथी ॥ सधत सूख शुधातम बोधथी, रहत एक अमंद प्रमोदथी ॥ ४ ॥ भजत आत्म स्वभाव सुचेनथी, दुरित दोहगनो तस ज्ये नथी ॥ अकल राग विना अप्रतंत्र छे, सकल सिद्धि तणो वर मंत्र छे ॥ ५ ॥ परम पावन आतम भावमा, रहित राग नरा शिव दावमा ॥ सहित आत्म सुधारस पावना, लहत केवल एक सुभावना ॥ ६ ॥ सुनय आत्म स्वभाव सदा लखे, विगत राग शुधातम ए चखे ॥ समय साधि लहो निज संपदा, कुनय त्याग हरे भव आपदा ॥ ७ ॥ सुनय साधन सेवत जे नरा, परम आतम पावन ते खरा ॥ कुमग त्यागि रहे नहि दुःखमां, सुमग सेवि रहे मनसूखमा ॥ ८ ॥

(२) ॥ चोपाई ॥

मंगल आतम धर्म सदाई, ए विण पर परिणति दुःखदाई ॥ आतम ज्ञान विनु ममता आवे, जोर महामल मोहनु फावे ॥ १ ॥ अविरति नारि करे अति चाला, होय प्रमाद कषाय विशाला ॥ खिण खिण जोग चपलता होवे, आतम संपति आप न जोवे ॥ २ ॥ आतम ज्ञाने ममता नाशे, मोह मिथ्यात न आवे पासे। अविरति दासी दूरे नाशे, तब न प्रमाद कषाय विकाशे ॥ ३ ॥ जोग सुथिरता पूरण आवे, आतम परमातम पद पावे ॥ आतम बोधे राग न होई, सुखियो जन्म जरा भय खोई ॥ ४ ॥ राग विना काइ दू ख न दीसे, विगत राग सुखियो निशदीशे ॥ ते कारण गुरु चरण हजूरे, रहि लहिये आतम गुण पूरे ॥ ५ ॥ प्रगटे निज सपति भरपूरं, दिन दिन वधते सहज सनूर ॥ जूठ विकल्प व्यथा सहु खोई, निज गुण पज्जाव ज्ञाता होई ॥ ६ ॥ परगुण पज्जाव ममता त्यागी, निज द्रव्यादिकमां रहो जागी ॥ निज पद भूली जे भव भमता, समता विण परवश दु.ख खमता ॥७॥ आतम ज्ञाने समता आवे, आतम ज्ञानी राम रमावे ॥ ते निज आतम सपति लीना, परमानद रसे नित भीना ॥ ८ ॥ सहज सतंत अत्यंतानंदी, दरशन ज्ञान चरण रस कंदी ॥ ते न रहे परसंगे फंदी, निज रमणे जस बुद्धि असंदी ॥ ९ ॥ स्नेहनु बंधन जेह उछेदे, ते पूर्णातम संपति वेदे ॥ आतम बोध विणु नहि दुःख अत, ज्ञानी नर लहे सूख स्वतत ॥ १० ॥ सकल दोष दु ख ज्ञाने नाशे, परम महोदय प्रगट विलासे ॥ सुगुरु सदागम सेवो भावे, शिव कमला मनसुख घर आवे ॥ ११ ॥

(३) ॥ द्रुतविलंबित छद ॥

। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ

सलिप द्रव्य सवे गुण पज्जवा, शुकल शुद्ध लही निरभे हुआ ॥
ममत जाय शुभातम ज्ञानथी, सुमति होय तिहा दु:ख को नथी ॥१॥

कुमत होय तिहां जव वास छे, सुमत संग रहे न विनाश छे ॥ ममत जावत आवत हे समं, ममत नाशत इंद्रियको दमं ॥ २ ॥ गति न चार करे ममता विना, शिव न कोइ लहे समता विना ॥ निफल ज्ञान क्रिया समता विना, अफल साधुपणो समता विना ॥ ३ ॥ तप न दे फल मोह विकारिने, सुमत सेव तुं एह विचारिने ॥ तिरथ शेवक जे ममता तजे, तिरथ शेवक ते समता जजे ॥४॥ दरश ज्ञान चरित्त सुतीर्थ छे, अवर जेद अनेक विचित्र छे ॥ ममत होवत त्यां व्रतको नहीं, ममत ज्यां नहि त्यां व्रत हे सही ॥५॥ सुमत राखत श्रीजिन आणको, सुमत देवत हे निरवाणको ॥ सुमत आतम ज्ञान विना नहीं, ममत नाशत कर्म रहे नहीं ॥ ६ ॥ लख न लक्षण ओरकुं संग्रहे, दरव लक्षण आप स्वयं ग्रहे ॥ अवर काज न साज न कोइ हे, निज सकारण कारज होइ हे ॥ ७ ॥ चरण होय न आत्म अज्ञानिने, चरण आवत निर्मम ज्ञानिने ॥ विमल ज्ञान तिहां नहि राग छे, सुमत त्यां ममता नहि लाग छे ॥ ८ ॥ ममत दोष अनंतनि माय छे, विमल बोधथि दोष नसाय छे ॥ तिक्षण जेद विज्ञान सुवाणथी, हरिय मोह महादल ता नथी ॥ ९ ॥ तजि प्रमाद सदा उपयोगमां, लजिय आत्म सुधारस जोगमां ॥ अचल जे थिर ध्यान सदा धरे, मनसुखे शिव सुंदरि ते वरे ॥

(४) ॥ ललित छंद ॥

सकल शास्त्रनो सार ए सही, सुनय सेविने आत्मता लही ॥ ममत त्यागिने जागिए सदा, परम आत्मनो लाज ल्यो मुदा ॥ १ ॥ धरम ते खरो छीधिथे दया, जरम त्यागिने राखिए सया॥ शुकल ध्यानमा ध्याइ आतमा, सकल आपणी पाइए रमा ॥२॥ अचल योगथी शुद्धता लहो, सहज जावनी शांतिमा रहो ॥ तजि प्रमादने लागिए सदा, विमल ध्यानमा एकता मुदा ॥३ ॥ जगत जीवथी वैर ना करो, सम स्वजावमां थीरता धरो ॥ विमल मंत्र ए ज्ञान हुं सदा, सुथिर धारणा राखिए मुदा ॥४॥ सम सजावमां साध्य सिद्धि छे, सम सजावमां सर्व रिद्धि छे॥

विषमता तजो राग द्वेषनी, विपति नाशशें बध क्लेशनी ॥४॥ ममत त्यागथी आत्म सिद्धि छे , गुण अनंतनो जोग सिद्धि छे ॥ ममत ना करे आत्म शुद्ध तो, सुमति आदरे आत्म बुद्ध तो ॥६॥ विमल देवनी सार प्रेरणा, सुमति प्रेरिये शुद्ध हेरणा ॥ डग न चूकिशे वीर्य राखिए, अटल ध्यानमां शांति चाखिए ॥७॥ कटत मोह तो आत्म ध्यानथी, झटक कर्मकुं ब्रह्म बाणथी ॥ पटक क्रोधकुं खाति पानसें, हणि मिथ्यातकु ज्ञान जाणसें ॥ ८ ॥ पुरुष आपणी शुद्धता ग्रहे, सवि वि भावनो जोर ना रहे ॥ रिखवदेवनी हो कृपा सदा, मनसुखें लहो आत्म संपदा ॥ ९ ॥

(५) ॥ राग चोपाई ॥

उत्तम नरभव लाहो लीजे, आतम अनुभव प्याला पीजे ॥ आल पंपाल जजाल निवारी, शुद्धातम पदमां मति धारी ॥ १ ॥ समय प्रमाद न कीजे भाई, पुद्गल चिंता सर्व मिटाई ॥ सिद्ध समान शुद्धातम ध्यावो, परम महोदय पूरण पावो ॥ २ ॥ श्वेत दिगंबर मेरे नांही, ए जड पर परिणति पर छांही ॥ ते कारण मत भेद न कीजे, ज्ञायक ज्ञान सुधारस लीजे ॥ ३ ॥ ज्ञाता दरशन निरमल कीजे, ज्ञायक चरण रमण रस लीजे ॥ चेतन वीर्य अचल करि राखो, अजर अमर अबाधित चाखो ॥४॥ निज गुण पजाव अखय अखूट, निज धन सहज अनंत अतूट ॥ अजय निराकुल आतम ध्यावो, तजि ममत दु ख पाप गमावो ॥ ५ ॥ वचन आलाप विकार निवारो, दुष्ट विकल्प न मनमां धारो ॥ देह चपलता कांइ न कीजे, सकल समय अनुभव रस लीजे ॥ ६ ॥ वेद किताब पुराण न जाणुं, सुमता संगे मुज मन मान्यु ॥ व्याकरण वद किहा शीखीजे, मनसुख शिव कमला रस लीजे ॥ ७ ॥

---

१ दोष.

(६) ॥ अडिल्ल छंद ॥

चरण कमल कमला वसे श्री जिन पासने, तसु आणाधर जेह लहे शिव वासने ॥ आतम ज्ञाने आतम लखे निज संपदा, प्रगटे सम्यक बोध मिटे सहु आपदा ॥ १ ॥ नाशे अविरति रोग विरति रति अति लहे, मीटे दुष्ट प्रमाद जोग थीरता रहे ॥ पुद्गलसें नहि काम आराम शुद्धातममां, सकल समय निज कार्य सधाम महातममां ॥ २ ॥ ते कारण निज शुद्ध स्वभाव सदा लखो, सकल समय परमाद तजी अमृत चखो ॥ परपरिणति निज मानी मिथ्यामति अति बनी, आवी अविरति नारि ते दुःख देती घणी ॥३॥ रागादिक कषाय अनेक ते ऊपज्या, चउ गति भ्रमण प्रतंत्र शत्रु सम ते बन्या ॥ सद्गुरु विण जग जीव न जाणे आतमता, कुगुरु वशे षटकाय दूःख लहे अणछता ॥ ४ ॥ नय अनंतनी युक्ति न जाणे बापका, कुगुरुनुं फाव्युं जोर ठगे चही दोकका॥ विधि उद्यम नय वर्णोत्सर्ग अपवाद छे, उभय मली श्रे सातनो आगम वाद छे ॥ ५ ॥ ते नवि समजे बाल मुंझाया नित रहे, करि करुणा गुरुराज शुधातमता कहे ॥ जाणि शुधातम स्वरूपने ममता परिहरो, सवि दुःख दोष विलाय सासय संपति वरो ॥ ६ ॥ लखतां आतम स्वरूप आनंद अनंत छे, सकल दोष दूःख नाश ससूख स्वतंत्र छे ॥ द्रव्य सकलना जाणि विशेष स्वभावने, भेद विज्ञाने भेदि ग्रहो निज दावने ॥ ७ ॥ कर्त्ता अन्यनो नाहीं होवे कोइ कदा, शाश्वत द्रव्य स्वभाव रहे छे थिर सदा ॥ इह विधि निश्चय खायक सम्यक पद लहो, मनसुख शिव सद्वास परम सूखमां रहो ॥ ८ ॥

(७) ॥ मंदाक्रांता छंद ॥

ज्ञानानंदं ममत विण तुं, एक अत्यंत छेक ॥ कर्त्ता भोक्ता पर दरवनो, तुं नथी ए विवेक ॥ व्यापे व्यापे स सस दरवे, कोइ व्यापे न केमां ॥ ग्राह्यो ग्राहे सवि दरव तो, जेहना तेह तेमां ॥ १ ॥ क्षेत्रे आपे

रहत सरवे, अन्य क्षेत्रे न जावे, जोगादि तो निज निज सदा, आपणा आप पावे ॥त्यागो मिथ्या जरम परनो, शुद्ध बीवेक धारी, साची वाणी विमल जिननी, सेविये सिद्धिकारी ॥ २ ॥

(८) ॥ स्रग्धरा छंद ॥

में तो सेव्या जिणंदा वर विमल सदा मुक्तिना हेतु जाणी, नित्ये ध्याने रमावुं सकल समयमा चित्त आनंद आणी ॥ राग रोष निवारी ममत परिहरी शुद्ध आनद लीजे, जाणी सत्ता सतती मनसुख सुखमां आपणा काज. कीजे ॥ १ ॥

(९) ॥ शालिनी छंद ॥

ज्ञाने नाशे मोहनु जोर जारी, ध्याने आवे थीरता सिद्धिकारी ॥ माटे त्यागो पुद्गलोनो प्रसंग, तो ते पामो शुद्ध जावे सुरंग ॥ १ ॥

(१०) ॥ शार्दूलविक्रीडित छंद ॥

हुं नित्ये अमलान ज्ञान रवि छु, म्हारे न को आपदा। जे जे पुद्गलनी परीणति सवे, म्हारी न जाणु कदा ॥ म्हारे काम नहीं कदा पर तणु, म्हारे महा सपदा । जूल्यो जेह स्वरूप शुद्ध अपनु, मोहे मुझायो तदा ॥ १ ॥ को केनो नवि होय द्रव्य कबहू, सत्ता सदा शाश्वती । जोगी आप सदा ससपति तणो जोगेज जाणे छती ॥ जूल्या भर्म वशे रहे जन सदा, सेवी अनाणी गुरू । ना जूले नर तेह जे विमल छे, सेव्या सदा सद्गुरू ॥ २ ॥ सेवे जे समये शुधातम सदा, पावे महानदने । जाचे ना विषयो विकार कबहू, छोडे द्विधा बंधने ॥ सेवो श्री जिन वाणि उज्वल महाआनद दाई सदा एकांते नवि जोइए तव महा, जागे सुज्योती मुदा ॥ ३ ॥ सतोषे सुख छे महान जगमां, ते तो सुज्ञाने मले।ईद्रोने पण सूख ए सम न छे, एतो सकाले चले ॥ ज्ञाने छे वर शाति साचि जिवने, शक्ती लखे आपणी । जागे जे परमाद छोडि समर्मे, पामे रमा ते घणी ॥ ४ ॥

(११) ॥ वसंततिलका छंद ॥

जे छे विकल्प विधि ते सवि कर्म जाणो, ज्ञाता सदा थिर रहे निज शुद्ध ध्यानो। त्यागी ममत्व न करे खिण राग रोषं, आपा लखे शिव सदा सुख शांति पोषं ॥ १ ॥ कर्त्ता कह्यो जिव करे विविधे विकल्प, तेथी तजो दुर सवे कुविकल्प जल्प ॥ हुं ए मने सकल छे बहु राग मूल, सारु बुरू सुख दुख नहि सानुकूल ॥ २ ॥ आत्मा लखे निज सदा शुध रूप ज्यारे, संचे न कर्म दल ते कदि को प्रकारे ॥ तेथी जजो सुगुरुने श्रुतज्ञान आवे, ध्याइ लहो निज जली निधि सिद्धि थावे ॥ ३ ॥ संतोष तृप्ति सगुणे महानंद आपे, साचो शुधात्म अनुजौ सवि बंध कापे ॥ सेवे नरो थिर थई श्रि जिनंद वाणी, लावे तदा मनसुखे घर रिद्धि खाणी ॥ ४ ॥

(१२) ॥ मालिनी छंद ॥

ममत तजि सुज्ञाने ध्याइए शुद्ध रूपं, सकल विपति नाशे सेवता आत्म जूपं ॥ विगत मद कषाया शुद्ध स्याद्वाद वाणी, सकल भ्रम नशावे सेविए हेत आणी ॥ १ ॥ कुमत मद हटावे शुद्ध स्याद्वाद जावे, पुरण अचल रिद्धी आत्मनी आत्म पावे ॥ पर परिणति त्यागी आप आपे रमावे, सकल दुरित नाशे फेर संसार नावे ॥ २ ॥ जरम वश जुलीने पुद्गले आप मानी, नवि लहि निज रिद्धी राग रोषे अनाणी ॥ जमत जवदधोमां दूःख जोगे अतंत, समय निज न जाणे जेद जाणे न तंत ॥३॥ मनुज जव लहीने शुद्धस्याद्वाद जाणो, परिणति समजावे सेविये शुक्ल ध्यानो। न रति अरति कीजे त्यागिए अन्य संग, मनसुख शिव संगे होय सिद्धी सुरग ॥ ४ ॥ हरत तिमिर मोहं शुद्ध स्याद्वाद जान, व्यय उतपति ध्रुवं द्रव्य सर्वे विनाणं ॥ सकल दरव जिन्न जे लखे शुद्ध ज्ञाने, ममत तस न होवे वर्त्तते शुक्ल

ध्याने ॥ ५ ॥ निज निज परिणामे द्रव्य कर्त्ता सदाए, न करत पर काम जाणिए शुद्ध न्याये ॥ करिय ममत जूठ्यो काज ए छे हमारु, विण लखि निज काज सूख साचु न धारुं ॥ ६ ॥ सजर जर चख्यो छे द्रव्य सर्वे प्रदेशे, सकल समय सत्ता कोइ केनी न खेसे ॥ अखय अकल आतमा शुद्ध निश्चे सदाए, विमल सुथिर जोता मोहनो नाश थाए ॥ ७ ॥ नवि फुरत असत्ता रोकशे कोण शक्ती, विपरित मति त्यागो जागशे ज्ञान व्यक्ती ॥ बहिर जबलगे जे राखशे आत्म द्रष्टी, तब लग न लहे ते आत्म आनद पूष्टी ॥ ८ ॥ सदरवथि अजेदे सर्व वर्त्ते प्रजाये, न पर दरवमा ते जाय आवे कदाये ॥ इम लखि निज सत्ता शुद्ध आनद लीजे, मनसुख शिव सगे रंगमां अंग जीजे ॥ ९ ॥

(१३) ॥ शिखरणी छंद ॥

सम ज्ञानादीमा निज पद अहुं हुं निरमलुं, कदा रागे रोपे पर परिणतीमां नवि जलु ॥ छतो ज्ञाता हुं तो ममत पर द्रव्ये किम करू, लही शिक्षा साची सुगुरु वचनोने न विसरूं ॥ १ ॥ तरे ते तो साधू अप्रमत सजावे अनुसरे, जूल्या ते जे मूढा परिणति पराई मन धरे ॥ कहुं वारे अगे सुमुनि सगुणोमा थिर रहे, वसे धर्मे शुक्ले अहट डुहटे तो नवि रहे ॥ २ ॥ उदासिन्ने चाले परम सम शेरी सरल छे, सदा जे ए मार्गे तस न जय होवे विमल छे ॥ लहे साचो ज्ञाता सुथिर मन जेनुं विनित छे, रहे जे आणामा जव भ्रमणथी जे निरुत छे ॥ ३ ॥ न सेवुं हिंसा हु निज पर कदाए डुविधथी, सदा यत्ना राखु डुविध सवि प्राणोनि विधिथी ॥ क्षमादी धर्मोने सकल समये हु द्रढ धरू, रहु शुद्धात्मामा मनसुख सजावे शिव वरू ॥ ४ ॥

(१४) ॥ हरिणी छद ॥

पर परिणती त्यागी आपे रहे समजावमा, जिव तब लगे बंधे नाही कदापि विजावमा । जब लग करे रागं रोष फसे पर जावमां,

जिव सुख दुःखं माने छे ज्यां शुभाशुभ भावमां ॥ १ ॥ जिव तव लगे संचे कर्म रहे न सद्भावमां, ममत तजिने ते माटे तुं भुले म विभावमां गुण परजयो जे द्रव्योना नहीं परमां भले, सनिज निजमा व्यापे छे ते कदापि नवी टले ॥ २ ॥ पर दरवमां भोगो नाहीं मिथ्यामति मानि ले, निज दरवमां भोगो साचा सुजाण ते जाणि ले ॥ चपल परमां ध्याने थाउं निधी निज चूकिने, विकल्प तजो भव्यो सर्वे मिथ्या मति मूकिने ॥ ३ ॥ नरभव लह्यो छे पून्ये तो सदागम सेवजो, निज पर जुदा भावे भेदी अनूभवने भजो ॥ जिन समयमां जे जे भाख्युं यथार्थ पणे ग्रहो, मनसुख सुखे रिद्धी सिद्धी सदा शिवमां रहो ॥४

॥ ढाल (१) पहेली ॥ नव तत्त्व विकल्प अधिकार ॥

॥ भविजन सेवज्योरे ॥ ए देशी ॥

विकल्पधर संसारि जेरे, आस्रवधारी जीव। निर्विकल्प ज्ञानी तथा रे, सिद्ध अनंत सदीव ॥ १ ॥ तत्त्व विचारणारे, शुधनय सार विचार, भवदुःख वारणारे ॥ ए आंकणी ॥ जस विकल्प शक्ति नहींरे, ते जड जाण अजीव। शुभ विकल्पथी पुण्य छेरे, अशुभथी पाप सदीव ॥ तत्त्व० ॥ २ ॥ खिण खिण विकल्प जे करे रे, तेतो आस्रव चाल ॥ रोके विकल्प संवरीरे, बांधी आस्रवपाल ॥ तत्त्व० ॥ ३ ॥ पुद्गल भोग इहा तजे रे, देश विकल्प विनाश ॥ शुद्धातम तृप्ती लहीरे, करे निर्जरा खास ॥ तत्त्व० ॥ ४ ॥ विकल्प विधि दृढ धारणारे, बंध कह्यो जिनराज ॥ अडविध बांधे कर्म ते रे, चार प्रकार अकाज ॥ तत्त्व० ॥ ५ ॥ सर्व विकल्प विनाशथीरे, पूरण मोक्ष स्वरूप ॥ इम जाणी नव तत्त्वनेरे, भवि मूदो भव कूप ॥ तत्त्व० ॥ ६ ॥

ढाल (२) बीजी ॥ नव तत्त्व कर्त्ता पद अधिकार ॥

॥ क्यु जाणुं क्युं बनी आवशे ॥ ए देशी ॥

शुजाशुज परिणामनो, कर्त्ता ममतावत हो विनीत । ते संसारी जीव वे, जाखे श्री जगवत हो विनीत ॥ १ ॥ तत्त्व विचार सुधारसी, सेवो श्री जिन आण हो विनीत ॥ जव डुःख दोहगता टले, करता तत्त्व प्रतीत हो० । तत्त्व विचार सुधारसी ॥ ए आंकणी ॥ ज्ञानी ने वली सिद्ध ते, नहीं करम करतार हो० । शुद्ध परिणामीकता तणा, सकल समय करतार हो० ॥ तत्त्व० ॥ २ ॥ होय अचेतन ड्रव्य ते, नहि परना करतार हो० । निज गुण पज्जवना कह्या, सकल समय करतार हो० ॥ तत्त्व० ॥ ३ ॥ शुज परिणामे पुण्यने, करे सुगुण नर कोय हो० । अशुज करम पापी करे, मूढ पुरुष जे होय हो० ॥ तत्त्व० ॥ ४ ॥ शुजाशुज किरियारसी, कर्त्ता आस्रववत हो० । शुजाशुज तजतो सदा, संवरवत महत हो० ॥ तत्त्व० ॥ ५ ॥ पुद्गल जोग इहा तजी, निज गुण जोगे लीन हो० । निझरणा करता कह्यो, आतम ज्ञाने पीन हो० ॥ तत्त्व० ॥६॥ पुद्गल परिणति ऊपरे, करे राग रस बध हो० । करता जावित कर्मनो, ते अज्ञानी अंध हो० ॥ तत्त्व० ॥ ७ ॥ पर परिणति रस त्यागिने, शुद्धातम ड्ढ होय हो० । ममता त्यागी मूलथी, करे मोक्षपद सोय हो० ॥ तत्त्व० ॥ ८ ॥

॥ ढाल (३) त्रीजी ॥ नव तत्त्व जोक्ता पद अधिकार ॥

॥ प्रथम गोवाल तणे जवेजी ॥ ए देशी ॥

शुजाशुज परिणामनोजी, जोगी ते जगजीव । जोगी ज्ञानादिक तणाजो, ज्ञानी सिद्ध सदीव ॥ १ ॥ सुगुण नर धारो तत्त्व विचार, ए जिन शासन सार जविक जन धारो तत्त्व विचार ॥ ए आंकणी ॥ जोगदशा जरु ड्रव्यमाजी, होय नहीं त्रिहु काल ॥ विषय कषाय कुजोगतेंजी, बाधे पाप कराल ॥ सुगुण नर० ॥ २ ॥ संजम दान दया-

दिमांजी, जोगे रागानंद ॥ पुण्यबंध तेथी करेजी, करुणा रसीयो संत ॥ सुगुण नर० ॥ ३ ॥ मिथ्या अविरतिने वलीजी, ग्रहे अज्ञान कषाय । धरी प्रमादने जोगवेजी, पुद्गल जाव सदाय ॥ सुगुण० ॥४॥ रागादिक युत जोगवेजी, योग क्रिया मन लाय । आस्रवधारी ते कह्योजी, सूत्रे श्री जिनराय ॥ सुगुण० ॥ ५ ॥ पर परिणति रस त्यागतोजी, मग्न शुधातम मांह्य । निज गुण संवर जोगमांजी, शिवपद साधे उछांह ॥ सुगुण० ॥ ६ ॥ इंद्रिय जोग इह्। तजीजी, विलसे निज गुण जोग । तेह निर्जरावत ठे जी, तजतो कार्य अयोग ॥ सुगुण० ॥ ७ ॥ ममत करे पर द्रव्यमांजी, जोगे राग विरोध । द्रढ बंधन ते तो करेजी, लह्यो न आतम बोध ॥ सुगुण० ॥ ८ ॥ पर वस्तु ममता तजेजी, न करे राग विरोध । शुद्धातम अनुजव करेजी, मोक्ष होय अविरोध ॥ सुगुण० ॥९॥ पुद्गल जोग तजी सवेजी, जोगे शुद्ध स्वजाव । थिर अनुजव अच्यासथीजी, प्रगट मोक्ष सद्भाव ॥ सुगुण० ॥ १० ॥

ढाल (४) चोथी ॥ नव तत्त्व ग्राहकता अधिकार ॥

॥ श्री युगमंधर विनवुरे ॥ ए राग ॥

तन धन आदि वस्तु बहु हो लाल, पर परिणति अनंत हो चेतनजी लाल । ममता जावे जे ग्रहे हो लाल, ते संसारी जंत हो जीवणजी लाल । श्री जिन वचन विचारिए हो लाल ॥१॥ ए आंकणी ॥ शुद्ध रूप निज नवि लख्युं हो लाल, ठाणे राग विरोध हो चेतनजी लाल ॥ ग्राहक तेहं विजावनो हो लाल, मिथ्या मती जे अबोध हो जीवणजी लाल ॥ श्री जिन० ॥ २ ॥ पुरण शुद्धता आत्मनी हो लाल, सहज अनंत प्रजाय ॥ हो चेतनजी लाल ॥ शुध परिणामीकता ग्रहे हो लाल, ज्ञानी सिद्ध सदाय हो जीवणजी लाल ॥ श्री० ॥३॥ जड निज गुण पजाव ग्रहे हो लाल, ग्रहे न अन्य स्वजाव हो चेतनजी लाल ॥ तेह अचेतन द्रव्यनो हो लाल, शा-

श्रत एह स्वजाव हो जीवणजी लाल ॥ श्री० ॥ ४ ॥ संजम दान दयादिके हो लाल, ग्रहतो शुज परिणाम हो चेतनजी लाल ॥ पुण्यवंत ते जाणिए हो लाल, करतो उत्तम काम हो जीवणजी लाल ॥ श्री० ॥ ५ ॥ विषय कषाय अशुद्धता हो लाल, ग्रहे मिथ्यात अनाण ॥ हो चेतनजी लाल पापी जीवनी परिणती हो लाल, आतम स्वरूप अजाण हो जीवणजी लाल ॥ श्री० ॥ ६ ॥ शुजाशुज परिणामने हो लाल, ग्रहे ते आस्रववंत हो चेतनजी लाल ॥ आतम शुद्धता जे ग्रहे हो लाल, संवरवंत महंत ॥ हो जीवणजी लाल ॥ श्री० ॥ ७ ॥ ईंडि विषय रस नवि ग्रहे हो लाल, ग्रहे शुद्धातम जाव ॥ हो चेतनजी लाल ॥ विविध विजाव वहावतो हो लाल, निर्जरवंत स्वजाव हो जीवणजी लाल ॥ श्री० ॥ ८ ॥ ग्राहक पर परजायनो हो लाल, रागी अनाणी जीव हो चेतनजी लाल ॥ मिथ्या अविरति आदिथी हो लाल ॥ करतो बंध सदीव हो जीवणजी लाल ॥ श्री० ॥ ए ॥ शुद्ध अखंड स्वजावनो हो लाल, ग्राहक पूर्ण प्रजाय हो चेतनजी लाल ॥ शुद्धातम अनुजव करे हो लाल, लहे मोक्ष असहाय होजीवणजी लाल ॥ श्री० ॥ १० ॥

॥ ढाल पांचमी (५) ॥ नव तत्त्व व्यापकता अधिकार ॥

॥ नमि नमि नमि नमि वीनवु ॥ ए देशी ॥

व्यापे पर परिणती विषे, रागादिकमा जीव लालरे ॥ वलि मिथ्या अज्ञानमा, ठे संसारी सदीव लालरे ॥ पर पद व्यापकता तजो, लहि आतम अधिकार लालरे ॥ पर पद० ॥ १ ॥ ए आकणी ॥ जे परमां व्यापे नहीं, गुण पज्जवथी अजेद लालरे ॥ व्यापे निज निज पज्जवे, ज्ञानी सिद्ध अलेद लालरे ॥ परपद० ॥ २ ॥ वर्णादि पज्जव विषे, व्यापे पुद्गल दर्व लालरे ॥ धर्म अधर्म आकाश ते, अजीव प्रजाये सर्व लालरे ॥ परपद० ॥ ३ ॥ व्यापे शुज परिणाममा, पुण्यवत जे होय लालरे ॥ व्या-

पे अशुभ परिणाममां, पापवंत ते जोय लालरे ॥ परपद० ॥ ४ ॥ व्यापे राग विरोधमां, ते तो आस्रववंत लालरे ॥ व्यापे शुद्ध स्वभावमां, संवरवंत महंत लालरे ॥ परपद० ॥ ५ ॥ निज गुण भोगे व्यापतो, इच्छे नहीं परभोग लालरे ॥ तेह निर्जरावंत छे, दुविध दया थिर योग लालरे ॥ परपद० ॥ ६ ॥ व्यापे पुद्गल परिणते, दृढ मिथ्या अज्ञान लालरे ॥ अव्रत प्रमाद कषायथी, बंध करे दुःख खाण लालरे ॥ परपद० ॥ ७ ॥ निरमल निज गुण पज्जवे, व्यापे थइ थिर थोभ लालरे ॥ चले न शुद्ध स्वभावथी, मोक्ष अकंप अक्षोभ लालरे ॥ परपद० ॥ ८ ॥

॥ ढाल (६) छठी ॥ नव तत्त्व रक्षकता अधिकार ॥

॥ झांझरिया मुनिवर ॥ ए राग ॥

वर्णादि रागादिनोरे, रक्षक ते जग जीव ॥ रक्षक शुद्ध स्वभावनोरे, ज्ञानी सिद्ध सदीव ॥ सुन्यायी अप्पा कीजे तत्त्व विचार, जेम लहिए भवपार सुन्यायी अप्पा कीजे तत्त्व विचार ॥ १ ॥ जे पर गुण राखे नहींरे, जड धर्मादि अजीव ॥ रक्षक निज गुण पज्जवारे, पुद्गल आदि सदीव ॥ सुन्यायी० ॥ २ ॥ रक्षक शुभ परिणामनोरे, पुण्यवंत नर होय ॥ राखे अशुभ परिणाम जेरे, ते पापी सुख खोय ॥ ॥ सुन्यायी० ॥ ३ ॥ राग द्वेष रक्षक सदारे, ते तो आस्रववंत ॥ रक्षक निज गुण शुद्धतारे, संवरवंत महंत ॥ सुन्यायी० ॥ ४ ॥ रक्षक निज गुण भोगनोरे, चहे न इंद्रिय भोग ॥ धर्म शुकल करि निर्जरारे, रक्षक संजम योग ॥ सुन्यायी० ॥ ५ ॥ ममता पुद्गल आदिनी रे, राखे नर अज्ञान ॥ राग द्वेष राखे सदारे, साधे बंध विधान ॥ ॥ सुन्यायी० ॥ ६ ॥ राखे निज गुण पज्जवारे, राखे न राग विरोध ॥ शुद्धातम अनुभव करेरे, लहे मोक्ष अविरोध ॥ सुन्यायी० ॥ ७ ॥

॥ ढाल (७) सातमी ॥ नव तत्त्व रमणता अधिकार ॥

॥ हवेरे राणी पद्मावती ॥ ए राग ॥

वर्णादि रागादिमां, रमण करे जग जीव । रम्य रमण शुद्धातममां,

ज्ञानी सिद्ध अतीव ॥ वचनामृत रस सेवीए, स्याद्वाद सुखकार, शुद्ध नये जिनराजना, दीठ मांहे उदार ॥ वचनामृत० ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ रमण स्वजाव न जेहमां, तत्त्व अजीव कहाय ॥ रमे सदा शुज जावमा, पुण्य करि सूख पाय ॥ वचनामृत० ॥ २ ॥ अडदश स्थानक पापमां, रमे अशुज परिणाम ॥ पापवंत ते जाणीए, दुःखी महा दुःखधाम ॥ वचनामृत० ॥ ३ ॥ मिथ्या अविरतिमा रमे, धरि अज्ञान कषाय ॥ जोग क्रिया परमादमां, रमता आस्रव थाय ॥ ॥ वचनामृत० ॥ ४ ॥ रमण तजी परजावनु, रमे शुद्धातम मांह ॥ संवरधारी ते कह्यो, शिवपद माही उछांह ॥ वचनामृत० ॥ ५ ॥ विषय रमण नवि आदरे, निज रमणे संतोष ॥ करे निर्जरा कर्मनी, लहे शुद्धता पोष ॥ वचनामृत० ॥ ६ ॥ पुद्गल परिणतिमां रमे, मिछ अविरति अनाण ॥ लहे न आतम शुद्धता, बंधे कर्म अमान ॥ ॥ वचनामृत० ॥ ७ ॥ रमण शुद्धातम जावमा, धर्म शुकल थीर होय ॥ अचल अकंप सदा रहे, मोक्ष लहे नर सोय ॥ वचनामृत० ॥ ८ ॥

ढाल आठमी (८) ॥ नव तत्त्व दान विषे अधिकार ॥

॥ आ संसार असाररे जीवमा आ० ॥ ए देशी ॥

जे निज परने नित दियेरे, इंद्रि विषयनु दान ॥ ते संसारी जीव छेरे, आतम तत्त्व अजाणरे प्राणी धारो तत्त्व विचार ॥ ए संसार असार रे प्राणी धारो० ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ आतम संपत्ति सुख दियेरे, ज्ञानी सिद्ध सदाय ॥ दाता पद जेहमा नहींरे, तत्त्व अजीव कहायरे ॥ प्राणी० ॥ २ ॥ दायक शुज परिणामनोरे, निज परने जे होय ॥ पुण्यवंत ते जाणियेरे, उपचारे सुखी सोयरे ॥ प्राणी० ॥३॥ देत अशुज परिणाम जेरे, ते दुःखदाय अजाण ॥ ते पापी जग जीव छेरे, शील स्वजाव अजाणरे ॥ प्राणी० ॥ ४ ॥ शुजाशुज परिणामथी रे, सुख दुःखनो दातार ॥ आस्रववंत ते जाणियेरे, ते न लहे जवपा-

रे ॥ प्राणी० ॥ ५ ॥ तजि शुभाशुभ कल्पनारे, दाता संवर भाव ॥ रोके आस्रव आवनेरे, सहजातम सद्भावरे ॥ प्राणी० ॥ ६ ॥ इंद्रिय भोग लिये नहींरे, नवि दे इंद्रिय भोग ॥ देत शुधातम भोग जेरे, निर्जरणा थिर योगरे ॥ प्राणी० ॥ ७ ॥ राग विरोध तणो सदारे, निज परने दातार ॥ वलि अज्ञान मिथ्यातनोरे, कर्मबंध करताररे ॥ प्राणी० ॥ ८ ॥ आतम संपत दान देरे, त्यागी ममता भाव ॥ सकल समय स्व प्रजायनोरे, अनुभव मोक्ष स्वभावरे ॥ प्राणी० ॥ ९

ढाल नवमी (९) नव तत्त्व लाभ विषे अधिकार ॥

॥ कहे साहुणी सुण कन्यकारे धन्या० ॥ ए देशी ॥

पुद्गल वस्तु लाभ लेरे अप्पा, कर्मबंधनो तेम ॥ विषय कषाय कुलाभ लेरे ॥ अप्पा ॥ संसारी जीव एम सुज्ञानीअप्पा सेवो सुतत्त्व विचार ॥ तजि मिथ्या उपचार सुमग सेवो दुष्ट प्रमाद निवार ॥१॥ ए आंकणी ॥ निज शक्ति व्यक्ति तणोरे ॥ अप्पा ॥ लेवे लाभ सदाय ॥ ज्ञानी ने वलि सिद्धजीरे ॥ अप्पा ॥ सकल समय सुखदाय ॥ सुज्ञानी० ॥ २ ॥ लेइ न जाणे लाभनेरे ॥ अप्पा ॥ तेह अचेतन दर्वं[१] ॥ लाभ लीए शुभ भावनोरे ॥ अप्पा ॥ पुण्यवत तजि गर्व ॥ सुज्ञानी० ॥ ३ ॥ दुःख कषाय अज्ञाननोरे ॥ अप्पा ॥ मिछ प्रमाद अपाय ॥ आदि लाभ लीए सदारे ॥ अप्पा ॥ पापी जीव कहाय ॥ सुज्ञानी० ॥ ४ ॥ लाभ शुभाशुभनो लीयेरे ॥ अप्पा ॥ अध्यवसाय असंख ॥ दुविध कर्मनी आयमांरे ॥ अप्पा ॥ आस्रवधारी रंक ॥ सुज्ञानी० ॥५ ॥ आतम शुद्धता लाभ लेरे ॥ अप्पा ॥ रोके आस्रव आव ॥ तजि ममता निज संवरेरे ॥ अप्पा ॥ राखे शुद्ध स्वभाव ॥ सुज्ञानी० ॥६॥ इंद्रिय भोग त्यागी लीयेरे ॥ अप्पा ॥ निज गुण भोग सुलाभ ॥ शुद्ध निजातम भोगतांरे ॥ अप्पा ॥ कर्म निर्जरा लाभ ॥ सुज्ञानी० ॥ ७ ॥ मिथ्या अज्ञान कषायनोरे ॥ अप्पा ॥ लाभ

१ द्रव्य

अविरति लेत॥ बंधे आठे कर्मनेरे ॥ अप्पा॥ जरू सम जेह अचेत ॥ सुज्ञानी० ॥ ७ ॥ ममता छेदी मूलथीरे ॥ अप्पा ॥ राग द्वेष जरू नाश ॥ लाज शुद्धातम जावनोरे ॥ अप्पा ॥ अनुजव मोक्ष विलास ॥ सुज्ञानी० ॥ ए ॥

ढाल दशमी (१०) नव तत्त्व उपजोग विषे अधिकार ॥

॥ सहजानदीरे आतमा ॥ ए देशी ॥

पुद्गल गुण उपजोगमा, वरते ममतारे वंत ॥ राग द्वेष विषये रसी, ते संसारीरे जंत ॥ तत्त्वामृत रस अनुजवो, दुष्ट विजाव पलाय । आतम परमातम लहे, शिव संपति सुख पाय ॥ तत्त्वा० ॥ १॥ ॥ ए आकणी ॥ ज्ञानादिक उपजोगमां, ज्ञानी सिद्ध महंत ॥ निज परिणति रस मगनता । अक्षय काल अनंत॥ तत्त्वा०॥२॥ जस उपजोग शक्ति नहीं। ते जरू जाण अजीव ॥शुजपरिणति उपजोगतो। पुण्यवंत ते जीव ॥ तत्त्वा० ॥ ३ ॥ खिण खिण होय अशुजनो । पापीने उपजोग ॥ तेम होय आस्रववंतने । शुजाशुज उपजोग ॥ तत्त्वा० ॥ ४ ॥ संवरवंत शुद्धातममा । करि निज गुण उपजोग ॥ पर परिणति रस रोकिने। साधे संयम योग ॥ तत्त्वा० ॥ ५ ॥ शुध निज गुण उपजोगमां। करे निर्जरा शुद्ध ॥ तजि परगुण उपजोगने । संयम राखेरे बुद्ध ॥ तत्त्वा० ॥ ६ ॥ पुद्गल गुण उपजोगमां । रहे सदा लयलीन ॥ कर्म बंध तेहिज करे । ज्ञान विना मति हीन ॥ तत्त्वा० ॥ ७ ॥ आतम गुण उपजोगमा । अनुजववंत सदाय ॥ मुक्त होय अरु कर्मथी। परमातम पद पाय ॥ तत्त्वा० ॥ ८ ॥

ढाल अगीआरमी (११) नव तत्त्व वीर्य विषे अधिकार ॥

॥ रुषज जिनेश्वर प्रीतम माहरोरे ॥ ए देशी ॥

करण वीर्य फोरे जगजन सदारे । बाधक जावे चाल ॥ आतम वीरज परमा फोरतारे । कर्मबंधनी चाल ॥ आतम वीरज सजालो

परवडूरे। प्रगटे अन्वय सिद्धि॥ चल वीरजे सवि उपाधि थईरे। थिर वीरजे होय सिद्धि ॥ १॥ ए. आंकणी ॥ तनु मन वच इंद्रिय विषय विषेरे। फोरे वीर्य सदाय॥ तनु आदि चल पुद्गल दल विषे रे। वीर्य चले दुःख पाय ॥ आत्म० ॥ २ ॥ फोरे वीर्य असंयम कार्यमांरे। ते ससारी जीव ॥ स्वगुण पज्जवमां वीरज फोरवेरे। ज्ञानी सिद्ध सदीव ॥ आत्म० ॥ ३ ॥ निज पर करता थइ नवि फोरवेरे। वीर्य रहित ते अजीव ॥ शुभयोगे फोरे वीरज सदारे ॥ पुण्यवंत ते जीव ॥ आत्म० ॥ ४ ॥ पाप कार्यमां अहनिश फोरवेरे। करण वीरज चित्त चाह ॥ पापवंत जन तेहने जिन कहेरे। लखे न न्याय अन्याय ॥ आत्म० ॥ ५ ॥ शुभाशुभ परिणामे फोरवेरे। करण वीरज धरि राग ॥ आस्रवधारी मंद ते जाणिएरे। पुद्गल रंगे लाग ॥ आत्म० ॥६॥ संवरी संयम योगे फोरवेरे। लब्धि वीरज निज शुद्ध ॥ प्राण हणे नहि दुविधे जीवनारे। रहे निज पद अविरुद्ध ॥ आत्म० ॥ ७ ॥ निज गुण योगे जोगे फोरवेरे। लब्धि वीरज मतिवंत ॥ चलमल पुद्गल जोग इहा तजेरे। करे निर्जरा संत ॥ आत्म० ॥ ८ ॥ मिच्छ अविरति प्रमाद कषायमांरे। तिम वलि जोगे जेह ॥ करण वीरज चल करि फोरे नरा रे। बंध करे अम तेह ॥ आत्म० ॥ ए ॥ शुद्ध निज गुण पज्जव स्वतंतमां रे। अचल वीरज थिर योग ॥ पामे मोक्ष अकंप सभावथीरे। लहे परम पद जोग ॥ आत्म० ॥ १० ॥ ढाल अगियार मांहे नव तत्त्वनारे। दाख्या भाव उदार ॥ जाणी तजशे जेह विभावनेरे। सेवि उपादेय सार ॥ आत्म० ॥ ११ ॥ निज गुण पज्जव थिरता रमणमां रे। धरशे जे शुभ ध्यान ॥ शिव संगे रंगे मनसुख रहेरे लहेशे परम कल्याण ॥ आत्म० ॥ १२ ॥ संपूर्ण ॥

॥ मदाक्रांता छंद ॥

॥ बांध्या कर्मों ममत करिने देह पंचे प्रकारे ॥ इंद्री पचे मन वच तनू बंध व्यक्ती विकारे ॥ आवे ते तो ममत सहिते एक काले उदे

ते ॥ जाणे जीवो पुदगल क्रिया काज कीधुं हमे ए ॥ १ ॥ माटे त्यागो ममत मलने आतमता शुद्ध जासे ॥ छेद भेदं पुदगल विषे आतम शांती प्रकाशे ॥ मिथ्या त्यागी अचल सुखमां शुद्ध आनद लीजे ॥ सिद्धी पामे निज पर लखी आतम ध्याने रमीजे ॥ २ ॥ जोगे कीधु ममत वशथी मे कर्युं मूढ माने ॥ जोगोने जे दु ख सुख सदा छे मने एम जाणे ॥ आठे कर्मो तणि विधि सवी द्रव्य जावे विचारी ॥ साथे आवे उदय दुविधे जव्य लेजो विचारी ॥ ३ ॥ आपा आपे सकल समये आपमां आप मानो ॥ जे छे जेना गुण परजयो तेहना त्यां वखाणो ॥ साची सत्ता लखि समयमां शुद्ध आनंद लीजे ॥ त्यागी हिंसा स्वपर दुविधे धर्म शुक्ले रमीजे ॥ ४ ॥ धर्मो राखो स्वपर जिवना जाव हाणी न कीजे ॥ प्राणो राखो चित धरि दया द्रव्य हिंसा तजीजे ॥ राखे साची चटक चितमां संयमे काज सीधे ॥ चूके ते तो धरि प्रमतता पुद्गली रंग लीधे ॥ ५ ॥ आ काले छे मदद सुतनी जव्यने शाति दाई ॥ माटे सेवो मन वच तने आतममां हेत लाई ॥ सेवो साचा समदरशि जे शुद्ध बोधाधिकारी ॥ वेगे पामो मनसुख सुखे आत्म संपत्ति जारी ॥ ६ ॥

॥ अडिल्ल छंद ॥

॥ जोगोथी जे थाय तेह कहे में कर्युं । ममत ग्रही मिथ्यात शुद्ध पद वीसर्युं ॥ जोगने जे जे थाय थयुं ते मुज प्रते । एम माने अज्ञानी ममत मिथ्या मते ॥ १ ॥ मन वच काय त्रियोग पुरवला बध छे । क्रिया अनुक्रम उदय हुवे परतंत्र छे ॥ जीवे बांध्यु ममत्व मोहनीय कर्मथी । समकाले ते उदय होय लहे जर्मथी ॥ २ ॥ जोग क्रियानु काम कर्युं में मानतो । ज्ञानादिक निज काजनो रहे अजाणतो ॥ सुख स्वरूप शुद्धात्म लख्या विण दुःखि रह्यो। पुद्गलमां लखि सूख आठ करमे ग्रह्यो ॥ ३ ॥ अष्ट करम दल बध अशुद्ध उपयोग जे ।

समकाले विपाक उदय होय जुगपदे ॥ समकाले दो विधथी उदय पिछाणिये । तजि ममता अड कर्मनी शक्ति जाणिए ॥ ४ ॥ पुद्गल जड चल पंठ सदा परतंत्र ठे । रहे न राख्या कोइ ग्रहे मतिअध जे ॥ क्रिया क्लेश करि चाहे सूख पुद्गल विषे । कर्मबंध वश उपजे चउगति दश दिशे ॥ ५ ॥ आतम अफरसी किम फरसे पुद्गल प्रते। ममता वश पर मानी निज मिथ्या मते ॥ पर परिणति किरियानी ममता परिहरो । सुख निधान शुद्धात्म अनुभव अनुसरो ॥ ६ ॥ पुद्गल अथिर असारने ममताथी ग्रहे । मिछ अनाण कषाय अविरति पण रहे ॥ वधे प्रमादज दोष अनंता एहथी । बांधे कर्म अनंत सूख तेहने नथी ॥ ७ ॥ अध्यवसाय असख्यनुं ममता मूल ठे। तेहनुं मूल अज्ञान आतम प्रतिकूल ठे ॥ भेदज्ञान लहि शुद्ध ममत्व निवारिये । आतमता लखि शुद्ध विमल मति धारिये ॥ ८ ॥ जड अचेतन चेतन आतम स्वभाव ठे । चेतनताथी भिन्न सकल परभाव ठे ॥ उदासीनता धारी रागादि परिहरो । मोह अरि दल भेदि कर्म अड क्षय करो ॥ ए ॥ ज्ञायकता ठे ज्ञप्ति क्रिया शुद्ध आपणी । ज्ञेयारथ परिणाम तजो जे पापणी ॥ दरशन ज्ञान चरित्त वीरज थिर भावमां। मनसुख शिव विश्राम लहे दृढ दावमां ॥ १० ॥

॥ आघा आम पधारो पूज्य अम घर वहेरण वेला ॥ ए राग ॥

ए हुं हुं ए एम अज्ञानी मिथ्या मतधर मानेजी ॥ में बीजाने बीजे मुजने कर्युं माने अभिमाने ॥ मोह निवारोजी ॥ लही शुद्ध भेद विज्ञान निजातम तारोजी ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ हुं बीजानो बीजो म्हारो करता एम निरधारीजी ॥ हु तेह माटे ते मुज माटे दुरमति एम निरधारी ॥ मोह० ॥ २ ॥ म्हारूं कारज परथी होवे मुजथी परनुं होवेजी ॥ धन कुटुंब देहादिक सर्वे मुजथी ठे एम जोवे ॥ मोह० ॥ धन कुटुब देहादिक पुद्गलने पोतानु मानेजी ॥ हुं माता पिता पत्नी-

नो देहादिकनो जाणे ॥ मोह० ॥ ४ ॥ हुं तुं वर्णादिकमां एकज वर्णादिक सहु मुजमांजी ॥ श्री जिन वचन लह्या विण मूरख सहतो दुःख अरूजमा ॥ मोह० ॥ ५ ॥ वस्तु सकल चउ भेदे जाणे जे जेहना ते तेहनाजी ॥ कोइना परमां जाय न आवे शुद्ध न्याय लहो एहना ॥ मोह० ॥ ६ ॥ द्रव्य क्षेत्रने काल भाव चउ वस्तुना वस्तुमाजी ॥ अनंत प्रजाय त्रिकाल एकमां द्रवे जेहना तेहमा ॥ मोह० ॥ ॥ ७ ॥ प्रथम द्रव्य स्वभाव एह ते होय त्रिकाल अखंडजी ॥ निज प्रदेश स्वसत्ता राखे अनत प्रजाय प्रचड ॥ मोह० ॥ ८ ॥ उपजे विणसे स्व स्वकाले गुण पज्जवनी व्यक्तीजी ॥ विशेषपणे निज निज पज्जवनी भावे निज निज शक्ती ॥ मोह० ॥ ए॥ द्रव्यादिक ए चार सद्रव्ये अस्ति परनी नास्तिजी ॥ आठ पहला सात सात एम भागा अस्ति नास्ति ॥ मोह० ॥ १० ॥ निज निज चार निक्षेप द्रव्यना होय अभेद स्वभावेजी ॥ द्रव्य गुण परजाय आपणा ते किम परमा जावे ॥ मोह० ॥ ११ ॥ अनुभव ज्ञान प्रमाणे निजपर भेदि स्व द्रव्ये रहियेजी ॥ ममता मारी समता धारी मनसुख शिवसुख लहिये ॥ मोह० ॥ १२ ॥

॥ हरिगीत छंद ॥

शुद्ध आतमता अज्ञानथी नर ममत करि पुद्गल तणुं । करि राग रोष विमोह अतिशय कर्म बंधन करि घणुं ॥ दुःख ताप बहु संताप सहतो उपजि चउदे राजमा । बहु जन्म मरण कलेश भोगे रहे न निज सुख काजमा ॥ १ ॥ शुद्धात्म ज्ञाने ममत नाशे सहज निज संपति लहे। सवि राग द्वेष विमोह नाशे कर्म क्षय करि शिव रहे ॥ शुद्ध ज्ञान विण पुद्गल क्रियाथी होय सुख इम जाणिने ॥ रस रोष किरिया मांहि करतो काज आपणु मानिने ॥ २ ॥ करि में कराव्यु कस्यु तेणे ठीक करुं करावुं ते करे । हुं करिश पोते वलि करावीश तेह करशे चित्त धरे ॥ मन वचन काय त्रियोग एना भेद सत्तावीशथी ।

शुभ अशुभ कर्मथी जीव बंधे शांति निवृत्ति तस नथी ॥ ३ ॥ प्रथम अंगे वीर जिनवर एम भाखे जाणिने । सुख पुरण अरथे आतम स्थिरता सेविए सनमानिने ॥ अज्ञान विण नहि ममत्त परनुं ए विना न मिथ्यात छे । अविरति प्रमाद कषाय दोषो सर्वनो ए तात छे ॥ ४ ॥ माटे लहि शुध आत्म ज्ञानने दरश चरण विमल करो । तजि राग दोष विमोह दूषण उदासिन समपद वरो ॥ अज्ञान विण नहि दुःख जगमा ज्ञान विण सुख को नहीं । शुध ज्ञान दरशन चरण सेवी पामिये वर शिव मही ॥ ५ ॥ द्वादशांगनो सार एह छे ममत तजिए वेगथी । मनसूख अमला शीवकमला लहे सहज संवेगथी ॥ ओगणीश पांसठ चैत्र पूनम दोहदे मन रंगथी । स्वपर हितकर पर ममतहर रच्यो छंद उमंगथी ॥ ६ ॥

(संपूर्ण)

॥ ॐ परमगुरूभ्योनमः ॥

॥ श्री सूत्र तत्त्वार्थ सार विचारनी ढालो लिख्यते ॥

॥ दोहरा ॥

ब्रह्माणी वंदी वदू । स्याद्वाद शुचि बोध ॥ तत्त्व अधिगम सूत्रथी । निर्मल आतम शोध ॥ १ ॥ वंदू वीर जिनेंद्रने । तीर्थपती जिनराज ॥ आतम वीर्य अचल लहुं । सिद्धे वंछित काज ॥ २ ॥ गोयम गणधर पद नमुं । द्वादशांग करतार ॥ तसु लब्धि सुपसायथी । लखुं परम श्रुत सार ॥ ३ ॥

॥ ढाल (१) पेहेली ॥ प्राणी एकत्व भावना भाव ॥ ए राग ॥

सम्यक दर्शन ज्ञाननुंरे । शुद्ध स्वभाव चरित्त ॥ मारग भाख्यो मोक्षनोरे । आदरिये दृढ चित्तरे ॥ प्राणी आतम शक्ति संभाल । मोहाधिनता वाररे ॥ प्राणी० ॥ ए आंकणी ॥ १ ॥ दर्शन ज्ञान चारित्र

लेरे । निश्चय श्रातम श्रनेद ॥ नेद रत्नत्रयी साधतारे । लहिये मोक्ष श्रखेदरे ॥ प्राणी० ॥ २ ॥ ए त्रण गुण निरमल करोरे । टालि सकल श्रतिचार ॥ ए त्रणमा एक न्यूनथीरे, केम लहिये नवपाररे ॥ प्राणी० ॥ ३ ॥ जिन देशित सत्त तत्त्वनीरे, श्रद्धा रुची प्रतित ॥ निर्मल होवे जेहनेरे, समकित कहिये मित्तरे ॥ प्राणी० ॥ ४ ॥ नय निक्षेप प्रमाणथीरे, श्राठ पक्ष शुचि शोध ॥ होवे जीवादिक तणोरे, यथा सूत्र अविरोधरे ॥ प्राणी० ॥५॥ सम सवेग निरवेद लेरे, श्रास्ता श्रनुकपा होय ॥ शकादि दूषण विनारे, निशंकादि श्रम जोयरे ॥ प्राणी० ॥ ६ ॥ निसर्ग ने श्रधिगम थकीरे ॥ च्यार गतीमा धार ॥ नव्य सन्नि समकित लहेरे, लहि जिन शासन साररे ॥ प्राणी० ॥ ७ ॥ जीवाजीवास्त्रव बंध लेरे, सवर निर्जर मुक्त ॥ उपयोगवत ते जीव नेरे, द्वीविध चेतना युक्तरे ॥ प्राणी० ॥ ८ ॥ धर्म श्रधर्म आकाश लेरे, पुद्गलने वलि काल ॥ पंच श्रजीव ए जाणियेरे, ड्रव्य श्रचेतन नालरे ॥ प्राणी० ॥ ९ ॥ काल विना खट ड्रव्यमारे, श्रस्ति ड्रव्य ले पंच ॥ काल ड्रव्य उपचारथीरे, एम खटनो होय सचरे ॥ प्राणी० ॥ १० ॥ पर रमणे श्रास्तव कह्योरे, रागादिकनी श्राय ॥ श्रष्ट कर्मदल वर्गणारे, श्रात्म समूह नरायरे ॥ प्राणी० ॥ ११ ॥ नेद बेंतालीश तेहनारे, पच इंद्रि चार कषाय ॥ पंच श्रव्रत त्रण जोग लेरे, क्रिया पच्चीश मिलायरे ॥ प्राणी० ॥ १२ ॥ पयइ तिइ रस प्रदेश लेरे, बंधना चार प्रकार ॥ श्रातम बंधे कर्मथीरे, ड्रव्य नाव विधि धाररे ॥ प्राणी० ॥१३॥ तजि श्रास्त्रव शुद्धातममारे, थिर उपयोग सुरंग ॥ सिद्ध समो निज ध्यावतारे, प्रगटे सवर श्रंगरे ॥ प्राणी० ॥ १४ ॥ नेद सत्तावन्न तेहनारे, पच समिति गुप्ति तीन ॥ परिसह बाविश जीततारे, क्षात्यादि दश गुण लीनरे ॥ प्राणी० ॥ १५ ॥ बार नावना नावियेरे, चारित्र पंच प्रकार ॥ सम सवर जे श्रादरेरे, तेह तरे ससाररे ॥ प्राणी० ॥ १६ ॥ खट खट बाह्य श्रभ्यंतररे, तप तपि निर्जरा थाय ॥ श्रातम रमणे श्रात

मारे, सहजानंद उपायरे ॥ प्राणी० ॥ १७ ॥ शुक्ल ध्यान धरि आतमारे, क्षय करि अष्टे कर्म ॥ पूर्ण व्यक्ति स्व प्रजायनीरे, करि विलसे शिवश र्मरे ॥ प्राणी० ॥ १८ ॥ सात तत्त्व एणि पेरे कह्यारे, नव अर्थांतर माह्य पुण्य पाप दोय बंधथीरे, कह्या विशेषे त्यांह्यरे ॥ प्राणी० ॥ १९ ॥ नय-आदिक कांइ वर्णवुंरे, संक्षेप तत्त्व विचार ॥ मनसुख सम्यक् दर्शथीरे, लहिये शिवपद साररे ॥ प्राणी० ॥ २० ॥

॥ दोहरा ॥

वस्तु अनंत धरम मयी । समकाले न कहाय ॥ नय वचने जो उच्चरे । तो कांइ विरुद्ध न थाय ॥ १ ॥ पज्जाव गौण दरव मूखे । द्रव्यार्थिक ए जाण ॥ द्रव्य गौण पज्जाव मूखे । पज्जाव अर्थ वखाण ॥ ॥ २ ॥ नैगम संग्रह व्यवहारने, रूजुसूत्र ए चार ॥ द्रव्यार्थिक नय जाणिए । धारो एह विचार ॥ ३ ॥ शब्द समभिरूढने । एवंभूत ए तीन ॥ पज्जाव नय मन धारतां । पडित होय प्रवीण ॥ ४ ॥

॥ ढाल (२) बीजी ॥ श्री सुपार्श्व जिन वंदिये ॥ ए राग ॥

सकल वस्तुने जाणीए । चार निक्षेप समेत ललना ॥ न्यास कह्या ए वस्तुना । द्रव्य प्रजाय अभेद ललना, तत्त्व द्रष्टि द्रढ राखीए ॥ ॥ ए आंकणी ॥ १ ॥ नाम स्थापना द्रव्यने । भाव सहित होय च्यार ललना ॥ वस्तुना वस्तु विषे । शुद्ध निक्षेप विचार ललना ॥ तत्त्व० ॥ ॥२॥ उपचारे पण वस्तुना । दाख्या चार निक्षेप ललना ॥ सूत्रे विशेषे वर्णव्या । इहां दाख्युं संक्षेप ललना ॥ तत्त्व० ॥३॥ चार निक्षेपे वस्तुनो । भिन्न भिन्न होय बोध ललना ॥ न्यास जे जेहना ते तेहमां । जाणो सदा अविरोध ललना ॥ तत्त्व० ॥ ४ ॥ नित्यानित्य वस्तु सवि । तेम वलि एक अनेक ललना ॥ सत्य असत्य पणे सदा । वक्त अव-क्तव लेख ललना ॥ तत्त्व० ॥ ५ ॥ आठे पक्षे जाणीए । भिन्न भिन्न सप्तभंग ललना ॥ स्यादवाद एम जाणतां । लहिये समकित रंग

ललना ॥ तत्त्व० ॥ ६ ॥ स्यादवाद परिणाममां । परिणमे वस्तु सदाय ललना ॥ आपे आप स्वरूपमां । वर्त्ते विण पर सहाय ललना ॥ ॥ तत्त्व० ॥ ७ ॥ दोय प्रकार प्रमाण छे । प्रत्यक्ष परोक्ष ते जाण ललना ॥ प्रत्यक्ष दोय प्रकारनुं । सर्वने देश वखाण ललना ॥ तत्त्व० ॥ ॥ ८ ॥ केवल सर्व प्रत्यक्ष छे । देश अवधि मननाण ललना ॥ मति सुत परोक्ष वखाणीए । प्रमेय मापे प्रमाण ललना ॥ तत्त्व० ॥ ए बीजां चार प्रमाण छे । प्रत्यक्ष अनुमान वचन्न ललना ॥ चोथुं उपमान जाणीए । ए चउ धारो मन्न ललना ॥ तत्त्व० ॥ १० ॥ सकल वस्तु प्रमेयने । जे मापे ते ज्ञान ललना ॥ ज्ञान प्रमाण हृदय धरो । जेम नाशे दुर्ध्यान ललना ॥ तत्त्व० ॥ ११ ॥ सकल तत्त्व निर्देशने । वलि स्वामित्व विचार ललना ॥ साधन अधिकरण जाणीए । स्थिति विधान खट धार ललना ॥ तत्त्व० ॥ १२ ॥ ए अनुयोगे आतमनुं । दर्शन निर्मल होय ललना ॥ थिरता आवे चरणमां । आतम तत्त्व विलोय ललना ॥ तत्त्व० ॥ १३ ॥ सत संख्या क्षेत्र फरसना । कालने अंतर भाग ललना ॥ भाव ने अल्पबहुत्वए । नव अनुयोगनो लाग ललना ॥ तत्त्व० ॥ १४ ॥ चउदश मार्गणामां करो । सम्यक तत्त्व विचार ललना ॥ निर्मल सुतरस ऊपजे । लहिये दर्शन सार ललना ॥ तत्त्व० ॥ १५ ॥ एम अनुयोगने अनुगमे । प्रगटे सम्यक बोध ललना ॥ मनसुख शिवसंपति लहे । सहजातम अविरोध ललना ॥ तत्त्व० ॥ १६ ॥

॥ दोहरा ॥

दर्शन पद वर्णन कसु । हवे कहु ज्ञान स्वरूप ॥ आत्म ज्ञान निर्मल लही । भवि मूदो भव कूप ॥ १ ॥

॥ ढाल (३) त्रीजी ॥ भविका सिद्ध चक पद वंदो ॥ ए राग ॥

पच प्रकार छे ज्ञाननारे । मति श्रुत अवधि सार ॥ मन पज्जव केवल चउ रे । सेवि लहो भव पाररे प्राणी वीर वचन चित्त धरिये ।

नवदधि वेगथी तरियेरे प्राणी०॥वीर० ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ ज्ञान प्रमाण छे सर्वनुंरे । मापे सकल प्रमेय ॥ आप रहे निज रूपमांरे । ज्ञानानंद अमेयरे ॥ प्राणी० ॥ २ ॥ पंच इंद्रि एक मन वळेरे । नेद अठाविश सार ॥ मन नयन विण चारनारे । व्यजनावग्रह चाररे ॥ ॥ प्राणी० ॥ ३ ॥ अथ्था ईहा अवाय छेरे । चोथो धारणा नेद ॥ पच ईंद्रि एक मन तणारे । चोविश नेद अखेदरे ॥ प्राणी० ॥ ४ ॥ वहु अवहु वहूविधेरे । अवहूविधे जणाय ॥ क्षिप्र अक्षिप्रपणे लखेरे । निश्रित अनिश्रित लखायेरे ॥ प्राणी० ॥ ५ ॥ युक्त अयुक्त पणे लखेरे । ध्रुव अध्रुव होय लक्ष ॥ वार अठाविशथी गुणोरे । तिसय छत्तिश नेद दक्षरे ॥ प्राणी० ॥ ६ ॥ उत्पात विनयकी कामिआरे । चोथी परिणामीआ बुद्धि ॥ त्रणशें चालीश नेद एरे ॥ मतिना जाणो शुद्धिरे ॥ ॥ प्राणी० ॥ ७ ॥ मति स्मृती संज्ञा कहीरे । चिंता आनिनिवोधी ॥ पंच नाम मतिनां कह्यारे । ते जाणो अविरोधिरे ॥ प्राणी० ॥ ८ ॥ अक्षर अनक्षर कह्युंरे । सन्नी असन्नी दोय ॥ सम्यक मिथ्या सुत तथारे । सादि अनादि होयरे ॥ प्राणी० ॥ ए ॥ सपज्जवसित कह्युंरे । वलि अपज्जवसित ॥ गमिक अगमिक जाणिएरे । अंग अंगवाह मित्तरे ॥ प्राणी० ॥ १० ॥ चौद नेद एम श्रुतनारे । वलि छे वीश प्रकार ॥ पज्जव अक्षर पद तथारे । चोथो संघात विचाररे ॥ प्राणी० ॥ ११ ॥ पडिवत्ती अनुयोग छेरे । पाहुड पाहुड सत्त ॥ आठमो पाहुड जाणिएरे । नवमो वथ्थु पयत्तरे ॥ प्राणी० ॥ १२ ॥ पूर्व नेद दशमो कह्योरे । वलि ए दशना समास ॥ मिलतां वीश नेदे हुवेरे । जाणो सुत विलासरे ॥ प्राणी० ॥ १३ ॥ वार नेद वार अंगथीरे । द्रव्य नाव दोय नेद ॥ एम सुत नेद अनेक छेरे । करो अन्यास उमेदरे ॥ ॥ प्राणी० ॥ १४ ॥ खट विध अवधि ज्ञान छेरे । प्रथम कह्यो अनुगामी ॥ अननुगामी वीजो कह्योरे । त्रीजो वर्द्धमान नामीरे ॥ प्राणी० ॥ १५ ॥ हेयमान चोथो कह्योरे । पंचम छे प्रतिपाती ॥ आव्युं न

जावे तेहि जेरे । छठो अप्रतिपातीरे ॥ प्राणी० ॥ १६ ॥ जवप्रत्य नारक देवनेरे । तिर्य मनुज गुणप्रत्य ॥ जेद विशेष असंख्य छेरे । सूत्रे जाणो सत्यरे ॥ प्राणी० ॥ १७ ॥ रुजु विपुल दोय जेदथीरे। कह्युं मनपज्जव नाण ॥ केवल एक अजेद छेरे । निर्मल जलहल जाणरे ॥ प्राणी० ॥ १८ ॥ रुजुमतिथी विपुलमतीरे। विशुद्ध अपडिवायी ॥ मनपज्जवथी उंहिनारे । जाव सुणो अधिकाइरे ॥ प्राणी० ॥ १९ ॥ द्रव्य क्षेत्र काल जावथीरे । अधिक तथा विशुद्ध ॥ मनपज्जवथी ओहिनोरे । स्वामी जाणो बुद्धरे ॥ प्राणी० ॥ २० ॥ मुनि अप्रमादीने हुवेरे । मनपज्जव दोय सार ॥ चउ गति क्षयउपशम गुणेरे । उपजे ओहि उदाररे ॥ प्राणी० ॥ २१ ॥ सर्व एकावन्न जेद छेरे । ज्ञानना चित्तमां धारो ॥ शुद्ध ज्ञान आराधतारे । लहिये जव जल पारोरे ॥ प्राणी० ॥ २२ ॥ रूपी अरूपी विषय छेरे ॥ मति श्रुतज्ञाननो जाणो ॥ असंख्य समयमा ए लखेरे । निज निज विषय प्रमाणोरे ॥ प्राणी० ॥ २३ ॥ रूपि विषय अवधि तणोरे । पुद्गलनो ए ज्ञाता ॥ मनपज्जव सञ्ञीतणारे । मन जाव जाणे विख्यातारे ॥ प्राणी० ॥ २४ ॥ केवल रूपी अरूपिनारे । अनतानंत प्रजाय ॥ एक समय त्रिहुंकालनारे । जाणे पुरण असहायरे ॥ प्राणी० ॥ २५ ॥ विप्रयास पण जाणिएरे। कुमति कुसुत विजंग ॥ होय मिथ्याती जीवनेरे । समकित ज्ञान सुचंगरे ॥ प्राणी० ॥ २६ ॥ एक समय एक जीवनेरे। मइ सुय ओहि मन होय मइ॥ सुय ओहि त्रिय कोइनेरे । मइ सुय मन त्रिय जोयरे॥ प्राणी० ॥ २७ ॥ मति सुत दो होय कोइनेरे ॥ कोइने केवल एक ॥ एक समय त्रिहु कालनारे। जाणे जाव अशेखरे ॥ ॥ प्राणी० ॥ २८ ॥ जाग अनंत ओहीथकीरे । विषय छे मनपज्जवनो ॥ अनत विषय केवल तणोरे। आनंद निज अनुजवनोरे ॥ प्राणी० ॥ ॥ २९ ॥ ज्ञान अज्ञान केवल विनारे । क्षयउपशमथी सात ॥ छद्मस्थ जावे होयछेरे । केवल अव्याघातरे ॥ प्राणी० ॥ ३० ॥

निर्मल ज्ञान आराधतांरे । होय समाधि स्वतंत ॥ मनसुख शिवसंगे सदारे । विलसे सूख अत्यंतरे ॥ प्राणी० ॥ ३१ ॥

॥ दोहरा ॥

कह्यो ज्ञान अधिकार ए । कहुं कलु जीव स्वजाव ॥ लखो शुद्ध स्वरुप निज । नाशे जेम विजाव ॥ १ ॥ दर्श ज्ञानमयी चेतना । उपयोगी गुणवंत ॥ कर्त्ता जोक्ता आदि निज । गुण अरूपि अनत ॥ २ ॥ चार प्राणयुत जीवतो । जीवे ठे वियमान ॥ आगे पण एम जीवशे । स्वपर वस्तुनो जाण ॥ ३ ॥ इंडिय बल आणपान ठे । चोथो आयु प्राण ॥ ठे ससारी जीवने । उत्तर दशविध जाण ॥ ४ ॥ दर्शन ज्ञान चारित्रने । वीर्य प्राणयुत चार ॥ जावप्राण ए सिद्धना । अमल अचल सुखकार ॥ ५ ॥ आठकर्म आवरणथी । जमे चतुर्गति माह्य ॥ निज गुण सर्व मलिन हुवा । निज पद शुद्धि न कांय ॥ ६ ॥ पंच जाव संसारीने । खायक परिणामीक सिद्ध ॥ खायक परिणामीक लह्यो । ते पाम्यो नव निद्ध ॥ ७ ॥

॥ ढाल (४) चोथी ॥ अमिल्ल ठंद ॥

दोय जाव उपशमिक, प्रथम मिथ्यातनो ॥ बीजो उपशम चरण, मोहनी जातनो ॥ क्षायिकसमकित क्षायिकचरण ते जाणिये ॥ केवल दर्शन ज्ञान ए, क्षायिक मानिए ॥१॥ दान लाज ने जोगोपजोग लब्धि कही ॥ अनंत वीरज लब्धि, ए नव क्षायिक सही ॥ केवल विण चउ ज्ञानने, दर्शन तीन ठे॥ तिन अज्ञान ने लब्धि, पंचे जिन्न ठे ॥ २ ॥ वेदकसमकित ने वलि, चरण सराग ठे ॥ संजमासंजम मलि अढदशनो लाग ठे ॥ क्षयउपशमथी जीवना, जाव अढार ठे ॥ कर्मक्षय करि क्षायिक, वरवुं सार ठे ॥ ३ ॥ चउगति चार कषाय, लिंगत्रय जाणिये ॥ मिथ्यादर्शनने अज्ञान प्रमाणिये ॥ असंजम असिद्धत्वने खट लेश्या कही ॥ जेद उदयना एकवीश जाणो सही ॥ जीव जव्य अजव्य

परिणामीक त्रण कह्या ॥ सौ मली त्रेपन नेद सूत्रमांथी लह्या ॥ द्विविध कह्यो उपयोग नेद तस बार ठे॥ ज्ञान अज्ञान ए आठ ने दर्शन चार ठे ॥ ५ ॥ ज्ञान पंच अज्ञान तीन साकार ठे ॥ चउ दर्शन सामान्यथी नीराकार ठे ॥ उपयोगवत ते जीव संसारीने सिद्ध ठे ॥ संज्ञी असंज्ञी नववासी द्वीविध ठे ॥ ६ ॥ थावर त्रस संसारी दोय प्रकारना ॥ पृथ्वि आदि पंच ते थावर धारणा ॥ बी ती चउ पचेंद्रि त्रस विचारिये ॥ इंद्रि पचने दोय प्रकारे धारिये ॥ ७ ॥ निवृत्ती उपकरण ते द्रव्य इंद्रि कही ॥ लब्धि ने उपयोग ते नाव इंद्रि सही ॥ फरस विषय ठे आठ पच रसना तणा ॥ घ्राणना दोय प्रकार पंच [१]दृगना जणया ॥ ८ ॥ संचित अचित ने मिश्रशब्द त्रय श्रोतना ॥ विषय त्रेविश प्रकार तजो थई शुन्नमना ॥ सुतगोचर जे विषय ते मननो जाणिये ॥ विषय राग तजि कर्मनी सत्ता जानिए ॥ ए ॥ थावर पंचने एकज फरस इंद्रि कही ॥ बि ति चउ पंचेंद्रि एक एक वधती लही ॥ पुद्गल विण नहीं नेद सिद्ध शुद्ध जीवमां ॥ सहजानंद स्वतंत्र ते विलसे शीवमां ॥ १० ॥ कर्मयोग कोइ जीवने, विग्रहगति कही ॥ शुद्ध जीव होय सिद्ध ते अविग्रह गति लहि । जीव परमाणुनु सम श्रेणीमां गमन ठे ॥ पुद्गल योगे जीवनुं चउगति भ्रमण ठे ॥ ११ ॥ गत्यातर जातां कोइ विग्रहगति करे ॥ बीजे त्रीजे चोथे समये [२]आहरे॥ एक दो तिन विग्रहथी चोथा समयमा ॥ नौतन धरे प्रजाय करम कृत्य उदयमा ॥ १२ ॥ अविग्रहि अनाहारी एकज समयनो ॥ विग्रहवत अनाहारी बे त्रण समयनो ॥ समूर्छिम गर्भज उतपातकी तीन ए ॥ जन्म कह्या एम निन्न निन्न जगजीवने ॥ १३ ॥ देव नरकने जन्म सदा उतपातथी॥ मनुष्य तिर्यचने गर्भ समूर्छिम जातथी ॥ अंडज पोतज जरायुज त्रण जानना ॥ ए विध गर्भ प्रकार जूइ जूइ जातना ॥१४॥ नव प्रकारनी योनि कही ते जाणिए ॥ सचित अचितने शीत उष्ण परमाणिए ॥ संवृत ने विवृत ए खट विध धारीए ॥ सचित अ-

१ चक्षु २ आहारले

चित्त मिश्र सतमी विचारीए ॥ १५ ॥ उष्ण शीत मिश्रनी आठमी जाणीए ॥ संवृत विवृत मिश्र ए नवमी मानीए ॥ चुलसी लाख विशेष जीवा योनी कही ॥ तजिए ममता सर्व विमल शक्ति ग्रही ॥ १६ ॥ उदारिक वैक्रिय आहारक तेजस तथा ॥ पंचमुं कार्मण नाम शरिर होये यथा ॥ एक एकथी सूक्ष्म अनुक्रमे जाणीये ॥ अनतानंत प्रदेशी कार्मण मानीये ॥ १७ ॥ तेथी अनंतमे जाग प्रदेश तैजस कह्युं । तेथी अनंतमे जाग आहारक तनु लह्यु ॥ आगे ओछा ओछा प्रदेश छे थूलमां । जेम सूक्ष्म तेम अधिक प्रदेशी मूलमा ॥ १८ ॥ तेजस कार्मण दोय ए अप्रतिघातीने । वज्रादिक नवि रोके ए दोय जातीने ॥ ए न करे प्रतिघात जगतमां कोईने । तत्त्व विचारो सार सिद्धातमां जोईने ॥ १९ ॥ कार्मण तेजस जीव संवध अनादिनो । नव नव ग्रहणे होये संबंध ते सादिनो ॥ एक समय कोइ जीवने चारे देह छे । उदारिक वैक्रिय तेजस कम्म एह छे ॥ २० ॥ आहार उदारिक तेजस कार्मण पण कदा । बाकी सर्व ससारी त्री शरिरी सदा । विग्रहगतिमां तैजस कार्मण जाणिये । नित्य निगोदमां तोन्न शरीर प्रमाणिये ॥ २१ ॥ तैजस कार्मण दोय ते निरूपजोग छे । उदारिक वैक्रिय आहारकथी जोग छे ॥ गर्ज समूर्छिमने मूल तीनज देह छे । उदारिक तैजस कार्मण जाणो एह छे ॥ २२ ॥ उत्पातिकने वैक्रिय आदिक त्रण कह्या ॥ लब्धिवत अधिके वैक्रिय आहारक लह्या ॥ तैजस लब्धिवंत करे तैजस कदा । एक मुहुरत स्थिति आहारक अधिकी नहि कदा ॥ २३॥ चौद पुरवधर आहारक शक्ति लही करी । आहारक करतो आवे प्रमाद गुणे फरी ॥ अव्याघातने शुज विशुध आहारक कह्युं । चुकि उंचेथी छठ्ठम गुणठाणु लह्युं ॥ २४ ॥ समूर्छिमने नारक सवि नपुंसक कह्या । स्त्री पुरुष दोय वेद देव मांहे लह्या ॥ गर्जज मनुष्यने तिर्यंचने त्रण वेद छे । सिद्ध जीव निरवेद अचल निरज्ञेद छे ॥ २५ ॥ असंख्य वर्ष जे आयु युगलियादिकमां । निरूपक्रम छे आयु नरकने

देवमा । सोपक्रम पण आयु चरम तनुनुं सुएयुं ॥ निरूपक्रम विशेष प्रथातरथी सुएयु ॥ २६ ॥ चरम शरिरीनुं आयु डुविधथी जाणीए । प्राये निरूपक्रम सूत्रथी मानीये ॥ त्यागी सकल विजाव निरायु पद लहो । मनसुख विमल स्वजाव लहि शिवघर रहो ॥ २७ ॥

॥ दोहरा ॥

पंच जाव आदि गणुं, वर्णन कीधु सार । नरकादिक कहु वर्णवु, स्थानक आदि विचार ॥ १ ॥

॥ ढाल (५) पाचमी ॥ वीर जिनेश्वर वदन वचन आदर जवि प्राणी ॥ ए राग ॥

रत्न शर्करा वालुप्रजा पंक धुम्र जेह, ठठी तम-प्रजा कही तम-तम सप्त एह ॥ सप्त गोत्र पुढवीय नाम धम्मा वशा शेला ठे, अंजना अरीष्टा तथा मघा माववई ए ॥ १ ॥ अनुक्रमे नाम ए सात नरक जीव वास तिहां ठे, कर्मनां फल ठे पापनां परवश डुःख सहे ठे ॥ रत्नप्रजादि सात ए अधो अधो जागे, तीन वलयथी वींटी पहेलो घनोदधि लागे ॥२॥ घनवात वलय बिजो त्रिजो तनुवात वलय ठे । चोथो आधार आकाश आकाशने अवर नहीं ठे ॥ एक लाख एशीहजार जोयण रत्नप्रजा नामे । त्रण जाग तेहना करो त्रीजा जागने ठामे ॥ ३ ॥ जोयण सोल हजारनो ते उपर खर जाग । चित्रा वज्रा वैडूर्य आदि सोल पृथ्वी लाग ॥ सहस्त्र सहस्त्र जोयण कही नीचे उपरनी टालो । मध्यनी चौदे पुढवीमा देव निवास निहालो ॥ ४ ॥ किन्नर किंपुरूष महोरग गधर्व यक्ष । जूत व्यंतर देव रहे ठे तिहां पिशाच सयुत ॥ नाग विद्युत सुपर्ण ते अग्नि वायुकुमार । स्तनित उदधि द्विप दीग ए नव जाती धार ॥ ५ ॥ जुवनवासी नव एहना निवासना स्थान । खरजाग नीचे मध्यलो सहस्त्र चोराशी मान ॥ जोयणनो पंक जाग ठे असुर राक्षस वास । पंक जाग हेठे कह्यो एशीहजारनो खास ॥६॥

अबहुल जोयणनो कह्यो तिहां नारकी जाणो। नीचे राज एक अंतरे बीजी शर्करा मानो ॥ एक एक राजने अंतरे सातमी क्रमे जाणो। तमतमः प्रभा कही महादुःख ठाणो ॥ ७ ॥ नरकावास लक्ष त्रीश छे रत्नप्रभा मांहे। लाख पच्चीश निवास कह्या शर्करा मांहे ॥ पदर लाख वालुप्रभा दश पंकमां धारो। धुम्रप्रभा त्रण लाख छे नेरइया विचारो ॥ ॥ ८ ॥ पंच ओछा लख वास छे तमः प्रभानी मांहे। पंच वास सतमी विषे तमतमः ज्यां हे ॥ साते नरकना वास कह्या छे लक्ष चोराशी। नारकी जीव वसे तिहा भोगवे दुःख राशी ॥ ९ ॥ अशुभ लेश्याना स्वामि तथा अशुभ परिणामी। देह विक्रिया अशुभ वली अशुभना स्वामी ॥ खेत्र तनु मन वेदना परमाधामी कृत्य। अन्योअन्य उदीरतां पूरव फल अकृत्य ॥ १० ॥ पंच प्रकारनी वेदना मुख्ये तिहां भाखी। पण छे विविध प्रकारनी ग्रंथोमां साखी ॥ पहेलोथी त्रीजी लगे परमाधामी जाए। चार पांच छ सातमी परमाधामी न जाए ॥ ११॥ एक तीन सत दश कह्युं सत्तर बावीश । तेत्रीशसागरनुं कह्यु आयु जगदीश ॥ अनुक्रमे उत्कृष्ट आयु छे सातमी लगे जाणो। दश सहस्र एक सागर तीन सागर मानो ॥ १२ ॥ सात सागर दश सागर सागर सत्तर प्रमाण। बावीश सागर सातमे जघन्य आयु जाण ॥ अनुक्रमे साते नरकनुं जघन्य आयु दाख्यु। जेणे जिन वचन न आदर्या तेणे ए फल चाख्यु ॥ १३ ॥ पहेलेथी सातमी लगे दुःख अधिक अधिक छे, असंज्ञी जीव प्रथम लगे सरिससर्प बीजे ॥ पक्षि पहेलेथी त्रीत्रिमां चोथि लग सिंह जाय। विषधर सर्प पंचमी लगे छठि लगे स्त्री जाय ॥ १४ ॥ मनुष्य मत्स्य सातमी लगे एह रीत सदाय। नारकी मरि नवि नरकमां नवि देवमां जाय ॥ जैन धर्म जेणे आदर्यो तेने दुरगती नाहीं। शुद्धातमता भावतो मनसुख शिव मांही ॥ १५ ॥

॥ दोहरा ॥

कह्यो नरक अधिकार ए, हवे कहुं क्षेत्र विचार । शुद्ध स्वजावे आतमा, ध्याता जवजल पार ॥ १ ॥

॥ ढाल (६) छठी ॥ नगरि महाण कुंभमां वसेरे ॥ ए राग ॥

जबु आदिक द्वीप छे रे लाला समूद्र लवणादिक । शुज नामे ते जाणिए रे लाला एक एकथी ठीकरे लाला एक एकथी ठीक ॥ १ ॥ एक एकथी डुगूणा कह्या रे लाला वलियाकारे जाण । समुद्रे वींट्यो द्वीप छे रे लाला द्विपे समूद्र वखाण रे लाला ॥ द्वीपे० ॥ २ ॥ जबूथी बमणो कह्यो रे लाला लवणसमूद्र विचार । लवणथी दूणो धातकी रे लाला डुगुण कालोदधि धार रे लाला ॥ डुगुण० ॥ ३ ॥ पुष्कर बमणो तेहथी रे लाला डुगुण अनुक्रमे जाण । स्वयजूरमण लगे गणोरे लाला डुगुण डुगुणनुं मान रे लाला ॥ डुगुण० ॥ ४ ॥ मध्ये जबूद्वीप छे रे लाला लवणे वींट्यो तेह । लवणने वींट्यो धातकी रे लाला कालोदधि ए तेह रे लाला ॥ कालो० ॥ ५ ॥ ते वींट्यो पुष्करारधे रे लाला तेणे पुष्कर समूद्र । स्वयजूरमण लगे रे लाला द्वीप असरय समूद्र रे लाला ॥ द्वीप० ॥ ॥ ६ ॥ जबु मध्ये मेरु छे रे लाला तनमा नाजी जेम । जबु गोलाकार छे रे लाला लख जोयननो एम रे लाला ॥ लख० ॥ ७ ॥ लंबो चोडो लाख छे रे लाला परधि जोयण त्रण लाख । सोल हजार छे उपरे रे लाला वशो सत्तावीश जाख रे लाला ॥ वशो० ॥ ८ ॥ योजन एटला जाणीए रे लाला त्रण कोश उपर जाण । एकशो सत्तावीश धनुषने रे लाला साडातेर अगुल मान रे लाला ॥ साडातेर० ॥ ए ॥ तेथी काइ अधिक छे रे लाला जबू परधी एह । बे हजार कोशनुं कह्युं रे लाला जोयन मानो तेह रे लाला ॥ जोयन० ॥ १० ॥ सात खेत्र जबू विषे रे लाला जरत हेमवत जाण । हरिविदेह रम्यक तथा रे

लाला हैरण्यवत खट मान रे लाला ॥ हैरण्य० ॥ ११ ॥ ऐरावत छे सातमो रे लाला जेहथी थाय विजाग । तेवा खट पर्वत कह्या रे लाला ते सुणजो धरी लाग रे लाला ॥ ते० ॥ १२ ॥ हीमवान पहेलो कह्यो रे लाला द्वुतीय महाहीमवान । निषध त्रीजो जाणीए रे लाला चोथो नील वखाण रे लाला ॥ चोथो० ॥ १३ ॥ रुक्मी पर्वत पंचमो र लाला छठो शिखरी जोय । ए खट पर्वतथी सवि रे लाला क्षेत्र विजागज होय रे लाला ॥ क्षेत्र०॥१४॥ जरतहेमवंत वीचे रे लाला छे पर्वत हीमवान । एम दो दो खेत्रो वीचे रे लाला एक एक पर्वत जाण रे लाला ॥ एक० ॥ १५ ॥ सुवर्णमय हीमवान छे रे लाला रजत महाहीमवान । तपत हीम सम निषध छे रे लाला नील मयुर सम जाण रे लाला ॥ नील० ॥ १६ ॥ रुक्मी रूपामय कह्यो रे लाला शिखरी सोना वर्ण । ए खट पर्वत जाणीए रे लाला जिन्न जिन्न जू वर्ण रे लाला ॥ जिन्न० ॥ १७ ॥ नीचे उपर तेहनो रे लाला दाख्यो सम विस्तार । ते उपर खट द्रह कह्या रे लाला नाम कहु तस सार रे लाला ॥ नाम० ॥ १८ ॥ पद्म तथा महापद्म छे रे लाला तीगच केशरि नाम । महापुंमरिक तीम जाणीए रे लाला पुंडरिक खट नाम रे लाला ॥ पुंमरिक० ॥ १९ ॥ सहस्र जोयण पद्मद्रह छे रे लाला पूरव पश्चिम लंब । अरधो उत्तर दक्षिणे रे लाला चोको दीशे रम्य रे लाला ॥ चोको० ॥ २० ॥ दश जोजन ऊंडो कह्यो रे लाला पद्म जोयननु होय । रत्नमयी ते जाणजो रे लाला श्रीदेवि रहे सोय रे लाला ॥ श्री० ॥ २१ ॥ द्वुगुण द्वुगुण छे तेहथी रे लाला महापद्म द्रहपद्म । अनुक्रमे एह प्रमाणथी रे लाला तीगंच लगे द्रहपद्म रे लाला ॥ तीगंच०॥ २२ ॥ पद्मद्रह अने पद्मथी रे लाला द्वुगुण महापद्म द्रहपद्म । तीगचपद्म तेथी द्वुणो रे लाला ए सम केशरीपद्म रे लाला ॥ ए०,॥२३॥ केशरियी अर्धो कह्यो रे लाला महापुंडरीक द्रहपद्म। तेथी

अर्धो जाणीए रे लाला पुंडरिकद्रह ने पद्म रे लाला ॥ पुंडरिक० ॥२४॥ तीन पहेला तीन पाछलारे लाला द्रह अने पद्म समान ॥ चढता उतरता मापथीरे लाला तत्त्वार्थे छे व खाण रे लाला ॥ तत्त्वार्थे० ॥२५॥ द्रह कमल ए शाश्वता रे लाला निगन सूत्रथी जाण ॥ तिहा देवी स्थानक कह्या रे लाला । ग्रथथी जाणो सुजाण रे लाला ॥ ग्रथथी० ॥ ॥२६॥ श्री ह्री धृति कीर्त्ति कही रे लाला बुद्धि लक्ष्मी जाण ॥ पल्योपम आयु कह्युं रे लाला कांती द्युती अमान रे लाला ॥ कांती० ॥ २७ ॥ बहु परिवार ते देविनो रे लाला धारयो सूत्र मोजार ॥ पंचेद्रि सुखभोगमा रे लाला क्रीडा करत अपार रे लाला ॥ क्रीडा० ॥ २८ ॥ रत्नमयी ते कमलनी रे लाला किरणीकामा सार ॥ उज्ज्वल भवन तिहां कह्या रे लाला तिहा देवी परिवार रे लाला ॥ तिहां० ॥ २९ ॥ परिषद सामानीक तिहां रे लाला दे अनेक निवास ॥ दिव्य भोग तिहा भोगवे रे लाला करता लील विलास रे लाला ॥ करता० ॥ ॥ ३० ॥ मध्य कमल चउ ओरमा रे लाला बीजा कमल अनेक ॥ ते सवि सूत्रथी जाणजो रे लाला राखी हृदय विवेक रे लाला ॥ ॥ राखी० ॥ ३१ ॥ स्थानक एम अनेकमा रे लाला जीव अनती वार ॥ आतम तत्त्व लह्या विना रे लाला भमियो ए ससार रे लाला ॥ ॥ भमियो० ॥ ३२ ॥ दर्शन ज्ञान चरणमयी रे लाला जाणी आतम स्वरूप । लहे मनसुख समजावथी रे लाला सिद्ध समाधि अनूप रे लाला ॥ सिद्ध० ॥ ३३ ॥

॥ दोहरा ॥

देव भवन आदि कह्यां । कहु सरितादि विचार ॥ आतम तत्त्व अजाणतो । भम्यो जीव ससार ॥ १ ॥

॥ ढाल (७) सातमी ॥ धणरा ढोला ॥ ए देशी ॥

साते क्षेत्र मांहे कही रे हां । दो दो नदि गंभीर मोह निवारिये ।

सव मलि चौद महा नदीरेहा। जिहां वहे निरमल नीर जवदुःख वारिये ॥१॥ गंगा सिंधु रोहितैरेहां। रोहितांस्याए नाम ॥ मोह० ॥ हरीतं हरिकांतां सीतारेहा। वली सीतोदां नाम ॥ जव० ॥ २ ॥ नारी नरंकान्ता तथा रेहा। सुवर्ण रूप्यकुलाय ॥ मोह० ॥ रक्तां रक्तोदां कहो रेहा। सरिता वल अतुलाय ॥ जव० ॥ ३ ॥ खेत्र खेत्र दो दो नदीरेहा। सहु मलि चौदे होय ॥ मोह० ॥ बहु परिवारे परिवरी रेहा। खेत्रे वहेती सोय ॥ जव० ॥ ४ ॥ सात युगल नदिना कह्यां रेहां। प्रथम पुरवदधि जाय ॥ मोह० ॥ शेष साते पश्चिम दिशे रेहां। सिंधु माहि समाय ॥ जव० ॥ ५ ॥ इहां ए मूख्य नदी कही रेहां। बत्रीश विजयनो ओर ॥ मोह० ॥ एम अनेक सरिता कहो रेहां। वहती निज निज ठोर ॥ जव० ॥ ६ ॥ जंबुद्वीप एक लाखनो रेहां। जरत क्षेत्र ए मांह्य ॥ मोह० ॥ एक शत नेवु जागमां रेहां। विस्तारे सुत मांह्य ॥ जव० ॥ ७ ॥ पांचशे छवीश जोजने रेहां। अधिक कला खट जाण ॥ मोह० ॥ तेथी डुगुण डुगुण पणे रेहां। विदेह लगे परमाण ॥ जव० ॥ ८ ॥ उत्सर्पिणी अवसर्पिणि रेहां। जरत ऐरवत जोय ॥ मोह० ॥ आयु काय जोगादिके रेहां। वधतुं घटतु होय ॥ जव० ॥ ए ॥ दश कोडाकोडि सागरू रेहा। उत्सर्पिणिनो काल ॥ मोह० ॥ अवसर्पिणि पण ए समो रेहा। मलि कालचक्रनी चाल ॥ जव० ॥ १० ॥ विजयनी पुढवी पांचमा रेहा। उत् अवसर्पिणि नाहि ॥ मोह० ॥ चोथा आरा सम सदा रेहा। वर्त्ते विदेहनी माहि ॥ जव० ॥ ११ ॥ जुगलिआनु जाणिए रेहां। एक वी तीय पल्य आय ॥ मोह० ॥ गर्भजतिरी मनुष्यनु रेहा। वर्त्ते त्याय सदाय ॥ जव० ॥ १२ ॥ पंच मेरु सवधिया रेहा। दाख्या पंच विदेह ॥ मोह० ॥ आयु वर्ष संख्यातनुं रेहा। गन्जय पणेदी जेह ॥ जव० ॥ १३ ॥ धातकी खंड माहे कह्या रेहा। दो दो जरत ऐरवत ॥ मोह० ॥ एम पुष्कलार्ध द्वीपमा रेहा। वे वे ऐरवत जर्त्त ॥ जव० ॥ १४ ॥ सोल लाख जोजन

कह्युं रेहा । पुष्करद्वीप प्रमाण ॥ मोह० ॥ मनुषोत्तर पर्वत तिहां रेहा । मध्ये जाण सुजाण ॥ जव० ॥ १५ ॥ जोयण एक सहस्रने रेहा । वाविशनु छे मान ॥ मोह० ॥ मनुषोत्तर लग जाणिये रेहा । मनुष्य तणु रहेठाण ॥ जव० ॥ १६ ॥ गमनागमन मनुष्यनु रेहा । द्वीप अढीमां थाय ॥ मोह० ॥ मनुषोत्तर बाहिर कोइ रेहा । मनुष्य कदाय न जाय ॥ जव० ॥ १७ ॥ छप्पन अतर द्वीपना रेहा । मनुष्य कह्या छे जेह ॥ मोह० ॥ अढी द्वीपमा ते रह्या रेहा । बाहिर नहि कोइ एह ॥ जव० ॥ १८ ॥ पंच पच जर्त ऐरवत छे रेहा । जाख्या पाच विदेह ॥ मोह० ॥ कर्मजूमी एह जाणिये रेहा । पंदर दाखी एह ॥ जव० ॥१९॥ मुहूर्त्त दोय घडिनु कह्यु रेहा । अदरनो जे काल ॥ मोह० ॥ अतर्मुहूरत जाणिये रेहा । तत्त्वारथनी जाल ॥ जव० ॥ २० ॥ आयु तिर्यंच मनुष्यनु रेहां । तीन पल्य उक्कोस ॥ मोह० ॥ जघन्य अतर मुहूर्त्तनुं रेहा । एम जाणो निरदोष ॥ जव० ॥ २१ ॥ द्वीप समुद्र असख्यमां रेहा । नदि जल पर्वत ठाण ॥ मोह० ॥ श्री जिन वचन अजाणतां रेहां । जीव जम्यो एह ठाण ॥ जव० ॥२२॥ सुहुम इयर एकेंद्रि दो रेहां । विगल त्रीय वलि जाण । मोह० ॥ सन्नि असन्नि पणइंदि छे रेहां । सात पज्जता मान ॥जव०॥२३॥ अपजत्ता पण सात छे रे हा । चउ दश जेद विचार ॥ मोह० ॥ कह्या सूत्रे सक्षेपथी रे हा । ए जीय ठाण विचार ॥ जव० ॥२४॥ जीव ठाण चौद कह्या रे हा । सक्षेपे मन धार ॥ मोह० ॥ पाचसे त्रेसठ जेद छे रे हा । काइ विशेषे विचार ॥ जव० ॥ २५ ॥ सकल जीवठाणे जम्यो रे हा । विण समकित मति हीण ॥ मोह० ॥ परवशताए दुःख सह्यां रे हा । निशदिन दुःखियो दीन ॥ जव० ॥ २६ ॥ इंद्रि विषय विष सेवता रे हा । केम आवे जव पार ॥ मोह० ॥ तजे विषय विष इंद्रिना रे हा । ते तरशे संसार ॥ जव० ॥ २७ ॥ उत्तम नर जव पामिने रे हां । करि नित श्रुत अभ्यास ॥ मोह० ॥ आतम गुण निरमल करी रे हां । पामो शिवपुर वास ॥ जव० ॥ २८ ॥ पर रमण

तजि आदरे रे हां । आतम रमण गुण गेह ॥ मोह० ॥ शिव संपति मनसुख लहे रे हा । इहां नाहि को संदेह ॥ जव० ॥ १९ ॥

॥ दोहरा ॥

देवो चार निकायना । जुवनपती दश जाण ॥ व्यंतर आठ प्रकारना । जोइस पंच प्रमाण ॥ १ ॥ द्वादश कल्प विमानी छे । नव ग्रैवेक वखाण ॥ पंच अनुत्तर वासिना । कल्पातीत सुजाण ॥ २ ॥

ढाल (८) आठमी ॥ राग मारु ॥ निशदिन जोउ तारी वाटडी घर आवोने ढोला ॥ ए देशी ॥

जुवनवासी व्यतर विषे, आदि लेश्या चार॥ हांहा रे० ॥ ज्योतीषीमां एकली, तेजु लेश्या धार॥ हांहा रे तेजु० ॥१॥ चार प्रकारना देवमां, जेद तो दश दाख्या ॥ हां० ॥ इंद्र सामानीक ने वली, त्रायत्रिंशक जाख्या ॥ हांहां रे त्राय० ॥ २ ॥ पारिसद आतंसरक्षक, लोकपाल ते जाणो ॥ हां० ॥ अनीक प्रकीर्णक जाणिये, आजीयोगीक मानो ॥ ॥ हां० ॥ ३ ॥ किल्विष तीन प्रकारना, एम दशविध कहिये ॥ हां० तत्त्वारथ टीका थकी, अरथ एह लहिये ॥ हां० ॥ ४ ॥ अणिमा महिमा आदिक, रिद्धि बहु जेने ॥ हां० ॥ आज्ञा करतो स्वामी ए, कह्यो इंद्र ते तेने ॥ हां० ॥ ५ ॥ इंद्र समो रिद्धि खरी, पण इंद्र न जेह ॥ हा० ॥ आयु वीर्य जोगादिके, सरखा छे तेह ॥ हा० ॥ ६ ॥ सामानिक तेह जाणिये, इंद्र सम परिवार ॥ हा० ॥ हेतु मित्र जे इंद्रना, त्रायत्रिंशक धार ॥ हा० ॥ ७ ॥ बाह्य अभ्यंतर मध्यनी, सजा त्रण प्रकार ॥ हां० ॥ वेसे इंद्र सजा विषे, पारीसद धार ॥ हा० ॥८॥ इंद्र अंग रक्षण करे, धारी हथियार ॥ हां० ॥ आतमरक्षक जाणिये, जेद पंचमो सार ॥ हा० ॥ ९ ॥ कोटवाल सम जे रहे, लोकपाल छे तेह ॥ हा० ॥ सैन्या रुपे जे हुवे, अनीक कह्या एह ॥ हा ॥ १० ॥ प्रजा जे छे इंद्रनी, प्रकीर्णक जाणो ॥ हां० ॥ इंद्र हुकम हाजर सदा,

आभियोगीक मानो ॥ हां० ॥ ११ ॥ इन्द्रादिकथी दुर रहे, जस नहि सनमान ॥ हां० ॥ हीण आदर छे जेहनो, किल्विषक जाण ॥ हां० ॥ ॥ १२ ॥ त्रायत्रिंशक लोकपाल विण, व्यंतर ज्योतिषमां ॥ हां० ॥ आठ प्रकारे देव तो, भाख्या सूत्रोमा ॥ हां० ॥ १३ ॥ भुवनपती विश इन्द्र छे, व्यतर सोल जाणो ॥ हां० ॥ सोल छे व्याणवंतर तणा, ज्योतिषी दोय मानो ॥ हां० ॥ १४ ॥ बार देवलोकना पती, इन्द्रो दश कहिये ॥ हां० ॥ सौ मली चोसठ इन्द्र तो, सूत्रोमा लहिये ॥ हां० ॥ ॥ १५ ॥ नव ग्रैवेक माहे नहीं, कोइ इन्द्र अनेरा ॥ हां० ॥ आपे आपहि इंद्र छे, निज निज घर केरा ॥ हां० ॥ १६ ॥ अनुत्तर पंच विमानमा, अहमेंद्र सवे छे ॥ हां० ॥ हूकम नहि कोई अन्यनो, स्वतत्र रहे छे ॥ हां० ॥ १७ ॥ भुवनपतीथी जाणिये. जाव देव इशान ॥ हां० ॥ देव देवी मैथुननो, भोग मनुष्य समान ॥ हां० ॥ १८ ॥ फरस रूप ने शब्दनो, मन चिंतन भोग ॥ हां० ॥ अच्युत देव लगे जाणिये, यथावत योग ॥ हां० ॥ १९ ॥ सनतकुमारथी मांडीने, बाकी दश देवलोग ॥ हां० ॥ मैथुन भोग एहमा नहीं, नहि रोग ने शोग ॥ हां० ॥ २० ॥ पुद्गल भोग इहा तजो, जेम शिवसुख लहिये ॥ हां० ॥ शिवसुंदरी मनसुख धरे, आनदे रहिये ॥ हां० ॥ २१ ॥

॥ दोहरा ॥

इन्द्रादिक वर्णन कह्यु, देव नाम कहु सार ॥ जूदि जूदि निकायना, दाखुं तेह उदार ॥ १ ॥

ढाल (९) नवमी ॥ राग मारु ॥ गिरि वैताढ्यने ऊपरे चक्काका नयरी लो ॥ ए देशी ॥

असुर नाग विद्युत छे, सूपर्ण कहिजे हो ॥ अहो सूपर्ण० ॥ अग्नि वात स्तनितने, उदधि लहिजे हो ॥ अहो उदधि० ॥ १ ॥ द्वीप दीग मली सवे, कूमर दश धारो हो ॥ अहो० ॥ भुवनवासीना

जाणीए, एह नाम विचारो हो ॥ अहो० ॥ २ ॥ किन्नर कीं पूरुप कह्या, महोरग गंधर्व हो ॥ अहो० ॥ यक्ष राक्षस जाणिये, जूत पीशाच सर्व हो अहो० ॥ ३ ॥ जेद आठ व्यंतर तणा, अरु व्याणव्यंतरना हो ॥ अहो० ॥ पंच ज्योतिष चल जाणिये, पंच थिर ज्योतिषना हो ॥ अहो० ॥ ४ ॥ सूर्य चंद नक्षत्र बे, ग्रह तारा कहिए हो ॥ अहो० ॥ चल थिर मलि दश जेद ए, सूत्रोथी लहिए हो ॥ अहो० ॥ ५ ॥ चल ज्योतिष मेरु तणी, प्रदक्षिणा करता हो ॥ अहो० ॥ काल विजाग ठे एहथी, गगने विचरता हो ॥ अहो० ॥ ६ ॥ थिर ज्योतिष पंच जाणिये, अढी द्वीपथी बहारे हो ॥ ॥ अहो० ॥ सव मलि ज्योतिष जेद तो, जाख्या विस्तारे हो ॥ अहो० ॥ ७ ॥ सौधर्म ईशान ठे, सनत महेन्द्र हो ॥ अहो० ॥ ब्रह्मदेव लांतक तथा, महाशुक्र सुरींद्र हो ॥ अहो० ॥ ८ ॥ सहस्रार आणत जाणिए, प्राणत विचारो हो ॥ अहो० ॥ आरण्य अच्युत जेद ए, बारे प्रकारो हो ॥ अहो० ॥ ए ॥ नव ग्रैवेकना जाणिए, अनुत्तर पंच कहिए हो ॥ अहो० ॥ विजय विजयंत जयंत ठे, अपराजीत लहिए हो ॥ अहो० ॥ १० ॥ सर्वारथ वीमान ठे, अनुत्तर एह जाणो हो ॥ अहो० ॥ पूरण सुख ईहां देवनां, विलसे मनमानो हो ॥ अहो० ॥ ११ ॥ अच्युत देवना ऊपरे, ग्रैवेक ते नव ठे हो ॥ अहो० ॥ ते ऊपर अनुत्तर कह्यां, ईक ईक अनुक्रम ठे हो ॥ अहो० ॥ १२ ॥ लोकांतिक आलय कह्यां, ब्रह्मदेवना अंते हो ॥ अहो० ॥ सारस्वत आदित्य ठे, त्रिजो वन्हि संत हो अहो० ॥ १३ ॥ चोथो अरुण ए नामनो, पचम गर्दतोय हो ॥ अहो० ॥ ठठो तुपित जाणिए, अव्याबाध जोय हो ॥ अहो० ॥ १४ ॥ आठमो आज्ञेय जाणिए, नवम अरिष्ट जाणो हो ॥ अहो० ॥ अंग पुरवधर सुत्तरसी, आवे एह ठाणो हो ॥ अहो० ॥ १५ ॥ आठ सागरनु आयु ठे, सहु लोकांतिक मान हो ॥ अहो० ॥ श्रुत बोध हृदये रह्यो, चार पुरवना जाण हो ॥ अहो०

॥ १६ ॥तीरथपती दिक्षा समे, लोकांतिक आवे हो ॥ अहो० ॥ दिक्षा अवसर जाणिने, प्रजुने चेतावे हो अहो० ॥ १७ ॥ सुधर्म देवथी जाणिए, स्थिति आयु प्रजाव हो ॥ अहो० ॥ सुख द्युति लेश्या विशुद्धता, ईंद्रि विषयना जाव हो ॥ अहो० ॥ १८ ॥ अधिक विषय अवधि तणो, सर्वारथ सिद्ध जाव हो ॥ अहो० ॥ सुधर्मदेवथी अनुक्रमे, अधिका ए जाव हो ॥ अहो० ॥ १९ ॥ सर्वारथ सिद्धि लगे न्यूनता हवे धारो हो ॥ अहो० ॥ गमन शरीरनी ऊंचता, मूर्छा मान विचारो हो ॥ अहो० ॥ २० ॥ सुधर्मदेवथी जाणिए, जाव सर्वारथ सिद्ध हो अहो० ॥ अनुक्रमे चार ए न्यून छे, दाखी छे प्रसिद्ध हो ॥ अहो० ॥ २१ ॥ सुधर्मने ईशानमा, तेजुलेश्या कहिए हो ॥ अहो० ॥ सनत महेंद्रने ब्रह्ममां, पद्म लेश्या लहिए हो ॥ अहो० ॥ २२ ॥ बाकी सात विमाननां, लेश्या शुक्ल कही छे हो ॥ अहो० ॥ अनुक्रमे लेश्या विशुद्ध छे, सूत्रोथी लहिए हो ॥ अहो० ॥ २३ ॥ विजयादि चार विमानमा, कोइ बे जव नरना हो ॥ अहो० ॥ करी मोक्षपद पामता, जोगी शिव घरना हो॥ अहो० ॥ २४ ॥ विजयादि चार विमानना, कोइ नरजव पामी हो ॥ अहो० ॥ ते जवमा सिद्धि वरे, होय शिव वधु स्वामी हो ॥ अहो० ॥ २५ ॥ सर्व विमानीक देवना, कोइ नर जव पामी हो ॥ अहो० ॥ आतम संपती पद वरे, होवे शिव गामी हो ॥ अहो० ॥२६॥ सर्वारथ विमानना, नरजव लही सिद्ध हो ॥ अहो० ॥ मनसुख शुद्ध स्वजावनो आनद रस लीधे हो ॥ अहो० ॥ २७ ॥

॥ दोहरा ॥

नामादिक कह्या देवना । वलि कहु कांइ विशेष ॥ देव जेद आदिक सुणो । सूत्र तणो काइ लेश ॥ १ ॥

॥ढाल (१०) दशमी॥ एक दिन गंगाके बीचे सूर साथ वहोरा॥ए राग॥

सवि मली देवना जेद छे, इगसय अट्ठाणु ॥ हांहां रे इगसय०॥ जुवनपती दश जाणिये, व्यंतर अड मानुं ॥ हांहा रे व्यंतर० ॥ १ ॥

व्याणव्यतरना आठ छे, चल-जोइस-पंच ॥हांहां॥ थिर जोइस पण पच छे, किलविष तीन सच ॥ हां० ॥२॥ पंदर परमाधामी छे, तिर्यक जृंवक दश छे हा० ॥ नव नेद लोकांतिकना, जेने अति श्रुत रस छे॥ हां० ॥३ ॥ कल्पवासी वैमानिना, नेद बार प्रकारो ॥ हां० ॥ नव ग्रैवेकना नव कह्या, तेह मनमां धारो ॥ हां० ॥ ४ ॥ अनुत्तर पंच विमान छे, पण नामे लहिये ॥ हां० ॥ नवाणु पज्जत्त नेद ए, चित्तमां सद्दहिए ॥ हा० ॥ ५ ॥ अपज्जत्ता एहना नवाणु नेद हा० ॥ एक सत अट्ठाणु थया ते जाणो अखेद ॥ हां० ॥ ६ ॥ छप्पन अंतर द्वीपना अकम्म नू त्रीश ॥ हां० ॥ पंदर कर्मनूमितणा सय एक जगीश ॥ हां० ॥७॥ पज्जत्ता अपजत्ता मली, दो सयने दोय ॥ हां० ॥ समूर्छिम एकसत एक मली तीनसय तीन होय ॥ हा० ॥ ८ ॥ एणिपेरे नेद मनुष्यना चित्तमांहि विचारो हां० ॥ पज्ज अपज्जत नारकी सतना चौद धारो ॥ हां० ॥ ९ ॥ पण पण सूक्ष्म बादर प्रत्येक तरु छे ॥ हां० ॥ एकेंद्री अगिआरना नेद एकादश ए हा० ॥ १० ॥ विगल इंद्रिना त्रण कह्या नेद ए चउदश छे ॥ हां० ॥ जलचर थलचर खेचरा उरपरि नुजपरि छे ॥ हा० ॥११॥ समूर्छिम गर्जज मली दश नेद ए लहिए हां० ॥ अपजत्ता पज्जत्ता मली अमतालीश कहीए हा० ॥ १२ ॥ पणसय त्रेसठ नेदमां ससारी जीव ॥ हां० ॥ सिद्ध अनेद आणदमां लहु शाश्वत शीव ॥ हा० ॥ १३ ॥ आत्म अनेद गुणे रमे थिरता त्रण योगे ॥ हां० ॥ मनसुख शिवसंगे सदा शाश्वत सुख नोगे हा० ॥ १४ ॥

॥ दोहरा ॥

देवादिक वर्णन कर्यु । हवे कहुं तत्त्व स्वरूप ॥ जीवादिक खट द्रव्यनु । सुणजो वचन अनूप ॥ १ ॥

॥ ढाल (११) अगिआरमी ॥ राग चोपाई ॥

धर्माधर्म पुद्गल नन सार । नाख्या अस्ति अजीव ए चार ॥ बहुप्रदेशी अचेतन एह । असंख्यप्रदेशी जीवास्ति जेह ॥ १ ॥

अस्ति द्रव्य ए पंच वखाण । खटम काल उपचारे जाण ॥ निजगुण पज्जवमय तिहु काल । द्रव्य स्वरुपनी जाणो चाल ॥ २ ॥ वचमां नवि बदलाये जेह । उत्पति व्यय ध्रुव सत्तज एह ॥ अनत गुण पज्जवनो पिंम । द्रव्य स्वरुप ते जाणो अखंड ॥ ३ ॥ द्रव्यार्थिक नय नित्य सदाय । पज्जव नये अनित्य कहाय । द्रव्यार्थिक नय एक स्वरूप । पज्जव नयथी अनेक अनूप ॥४॥ द्रव्यार्थिक एक रूप अजेद । पज्जव नय जेहमां बहु भेद ॥ सीय वक्तव्य अवक्तव्य होय । लक्षण लक्ष्य अभेदे सोय ॥ ५ ॥ निज द्रव्यादिक अस्ति स्वरूप । पर द्रव्यादिके नास्ति रूप ॥ नित्य अवस्थित निज निज रूप। द्रव्य ग्रहे नहि अन्य स्वरूप ॥ ६ ॥ रुपी द्रव्य ते पुद्गल होय । फरस वरण रस गंधी सोय । शब्दादिक जिहा बहु परजाय। पुद्गल पुद्गल मलता थाय॥७॥ धर्माधर्म नभ एक एक होय । पुद्गल जीव अनंता जोय । अनत समय दाख्यो छे काल । पंचास्ति परावर्त्तन चाल ॥ ८ ॥ पचास्ति वर्त्तना परिणाम । अगुरुलघुथी काल ए नाम । नव नव किरिया जे पलटाय । काल भिन्नता एहथी थाय ॥ ९ ॥ मंदगती पुद्गल अणु जाय । क्षेत्रथी बीजे प्रदेशे आय । समय अणु ए सूक्ष्म काल । आवलि आदि स्थूल निहाल ॥ १० ॥ प्रयोग विश्रसा मिश्रसा जेह । क्रिया तीन प्रकारे एह । प्रत्वा प्रत्वे काल स्वरूप । तत्त्वारथ जोइ लेजो अनूप ॥ ११ ॥ तीन वरस वलि कहिए सात । प्रत्वा प्रत्वे काल विख्यात ॥ पहोर डुपहोर ने तीसरो काल । ए पण प्रत्वा प्रत्वनी चाल ॥ १२ ॥ धर्माधर्म नभ अक्रिय जाण । पुद्गल सक्रिय रूप वखाण ॥ सक्रिय भ्रे ससारी जीव । अक्रिय जाणो सिद्ध सदीव ॥ १३ ॥ धर्म अधर्म अने जीव जेह । असख्य प्रदेशी दाख्या तेह ॥ अनंत प्रदेशी सर्व आकाश । असख्य प्रदेशी लोकाकाश ॥ १४ ॥ अप्रदेशी कह्यो छे काल । अस्तिकाया नांहि निहाल ॥ पुद्गल संख्य असंख्य अनत। प्र-

देशी जाख्यो जगवंत ॥ १५ ॥ नांहि प्रदेश परमाणु मांह्य । प्रदेश थवानी सत्ता त्याह्य ॥ परशुं मलतां होय प्रदेश । पण पोते नहि कोइ-नो देश ॥ १६ ॥ पच अत्थि लोकमांहि रह्या । अलोकाकाशे नवि कह्या ॥ अलोके एकज आकाश । त्यां नहि अवर द्रव्यनो वास ॥१७॥ जिहां द्रव्य गुण पज्जव होय । लक्षण विविधे देखिए कोय ॥ ते तुम जाणो द्रव्य स्वरूप । जेह त्रिकाले एक अनूप ॥ १८ ॥ पज्जवथी पलटाये जेह । तोपण द्रव्य अखंडित एह ॥ गुण पज्जव नवि काल-मां होय । द्रव्य उपचारे कह्यो सोय ॥ १९ ॥ अवकाश दान दिये आकाश । क्षेत्र कह्यो ते आपे वास ॥ रहे खेत्रमां खेत्री तेह । धर्मा-धर्म पुद्गल जीव जेह ॥ २० ॥ काल सहित ए खेत्री पंच । नजने अवर खेत्र नहि रच ॥ धर्म अधर्म आकाश सदाय । अचल प्रदेशी नित्य कहाय ॥ २१ ॥ तेम अचल ठे सिद्ध प्रदेश । कर्मवंत जीव सचल हमेश ॥ पुद्गल सचल सदाय कहाय । पूरणगलण तेमाहे थाय ॥ २२ ॥ सरूण पहूण विध्वसण रूप । एम बहु विध पुद्गलनुं रूप ॥ शब्द बंध ठाया तम जेह । उद्योत प्रजा कान्ति तप देह ॥ २३ ॥ इत्यादिक उपाधि कही । पुद्गल गुण पज्जवनी सही ॥ फरस आठ रस पंच वखाण । दोय गंध पंच वर्ण तु जाण ॥ २४ ॥ स्थुल पुद्गलमां वीश गुण एह । ठंडे चार फरस सोल तेह ॥ सूक्ष्म पुद्गलमा ए लह्या । परमाणु गुण पंचज रह्या ॥ २५ ॥ दोय फरस रस एक एक गंध । एक वर्ण एम पच प्रबंध ॥ कर्त्ता एक द्रव्य बे जीव, कारण बीजा पंच अजीव ॥ २६ ॥ जीव कारण निज आपे हो-य । निश्चे कारण अवर न कोय ॥ रहे स्वक्षेत्रे आपहि आप । जिहा नहीं अन्य द्रव्यनो व्याप ॥२७ ॥ कर्त्ता शुद्ध स्वजावनो सिद्ध । सं-सारी करे कर्म दुविध ॥ द्रव्यकर्म कर्त्ता व्यवहार । अशुद्ध निश्चय रागा-दिककार ॥ २८ ॥ शुधनय जोक्ता शुद्ध स्वजाव । अशुद्धे रागादि वि जाव ॥ अज्ञाने पर ग्रहणे लाग । ज्ञाने सगुण ग्रहे पर त्याग ॥ २९ ॥

मिथ्याते व्यापे पर माह्य । ज्ञाने व्यापकता निज मांह्य ॥ आत्म ज्ञान विण परमां रमे । विषय वश पुद्गल गुण गमे ॥ ३० ॥ जब जाणे निज शुद्ध स्वभाव । निज गुण रमतो त्यागे विभाव ॥ पुद्गल विषयनो दानी होय । बाधे कर्म अनंता सोय ॥ ३१ ॥ शुद्ध स्वरूप ज्ञान निज लहे । ज्ञानादिक निज दानी रहे ॥ पुद्गल लाभ लिये अज्ञानि । शुध गुण लाभ लिये शुध ज्ञानि ॥ ३२ क्षिण क्षिण चाहे पर उपभोग । कर्मबंध अज्ञाने रोग । निरमल आतम गुण उपभोग । ज्ञानीने शिव संपत्ति योग ॥ ३३ ॥ पुद्गल वीरज फोरे जेह । बंधे अष्ट कर्मदल तेह ॥ भाव वीरज फोरे जो दक्ष । शुध गुण प्रगटे पूर्ण प्रत्यक्ष ॥ ३४ ॥ इत्यादिक जीव गुण अनंत । श्री-मुख भाख्या श्री अरिहंत ॥ सर्वगत दाख्यो आकाश । पच देशगत लोकाकाश ॥ ३५ ॥ कह्यो सर्वगत चेतनज्ञान । भावनयेथी एह व-खाण ॥ लोक खेत्र पंच अध्यि रहे । परगुण पज्जव कोइ नवि ग्रहे ॥ ३६ ॥ लक्षण गुण परजाय अनत । सकल द्रव्यमां सहज स्वतंत ॥ निश्चय परसहायी नहि कोय । गुरु सहाय व्यवहारे होय ॥ ३७ ॥ व्यवहार क्षेत्र छे लोकाकाश । असंख्य प्रदेशे होय निवास ॥ जूदा जूदा पचे दर्व । निश्चे निज खेत्रे छे सर्व ॥ ३८ ॥ व्यवहारे परखेत्री पच । निश्चे न कोइ परक्षेत्रे रंच ॥ निश्चे परिणामी सहु दर्व । निज निज गुण पज्जवना सर्व ॥ ३९ ॥ व्यवहारे जीव पुद्गल दोय । परि-णामी छे अवर न कोय ॥ काल विना पचास्ति स्वभाव । काल विना पंच द्रव्यत्व भाव ॥४०॥ वस्तु काल विना छे पंच । प्रमेय द्रव्य सकल मा संच ॥ काल विना होय पचे सत्त्व । द्रव्य सर्वमा अगुरुलघुत्त्व ॥ ४१ ॥ पुद्गल खंध गुरु लघु होय । शुद्ध द्रव्य अगुरुलघु जोय ॥ काल द्रव्य उपचारे जाण । तस गुण उपचारे मन आण ॥ ४२ ॥ द्रव्य गुण परजाय विविध । पंचास्तिमा होवे सिद्ध ॥ द्रव्य गुण प-ज्जव एक समे । उत्पात व्यय ध्रुवता परिणमे ॥ ४३ ॥ समकाले सा-

मान्य विशेष । तेहिज द्रव्य कह्यो श्री जिनेश ॥ द्रव्य गुण पज्जाव जिहां नांही । व्यय उत्पत्ति स्थिति पण नांही ॥ ४४ ॥ सामान्य विशेष जेहमां नहीं । तेह द्रव्य उपचारे सही । परमाणु खेत्र प्रमाण प्रदेश । पंच द्रव्यना जाण विशेष ॥ ४५ ॥ लोकाकाश असंख्य प्रदेश, प्रति प्रदेशे जाण विशेष । धर्म अधर्म एक एक प्रदेश । पुद्गल जीव अनत प्रदेश ॥ ४६ ॥ गति स्थिति कारण धर्म अधर्म । अवकाश कारण ते नन मर्म ॥ कारण प्राण पर्यातिनुं होय । ते तो पुद्गल जाणो सोय ॥ ४७ ॥ पुद्गल सुख दुःख कारण कह्युं । रागादिक निश्चे सद्दह्युं ॥ जीव जीवनुं कारण होय । ज्ञान अज्ञान तणुं पण कोय ॥ ४८ ॥ निश्चे कारण द्रव्यहि आप । बाकी व्यवहारे आलाप ॥ सकल द्रव्यमां चार प्रकार । दाख्या ते जाणो सुखकार ॥४९॥ द्रव्य क्षेत्र काल भाव ए चार । आप आपणा सहुमां धार ॥ जे जेहनां ते तेहना कह्या । कोइना कोइ मांही नहि रह्या ॥ ५० ॥ अनंत परमाणु वूटा होय । द्व्यणुक खंध अनंता जोय ॥ त्र्यणुक खंध पण होय अनंत । संख्यातिक एम खंध अनंत ॥ ५१ ॥ असंख्यातिक खंध अनंत, अनंताणुक पण खंध अनंत ॥ अणु अणु मलतां होय संघात । पुद्गल खंध तणो उत्पाद ॥ ५२ ॥ मली खंध बहु इक खंध थाय । भागी खंध विविध खध थाय ॥ फरसो चाखो सुंघो जेह । देखो सुणो सवि पुद्गल एह ॥ ५३ ॥ सूक्ष्म पुद्गल नवि देखिये । पण गुण पज्जावथी लेखिये ॥ एम पुद्गल परिणमन अनंत । वचने केम कहि शकिए तंत ॥ ५४ ॥ तद्भावथी नवि विणसे जेह । अव्यय नित्य कहीजे तेह ॥ सकल समय निज रूपे रहे । अवर भाव कोइ समय न ग्रहे ॥ ५५ ॥ तेहिज जाणो नित्य स्वभाव । अवयपणुं एम लखिये दाव ॥ द्रव्य अनंत धर्ममय एक । एक वचने केम कहिये ठेक ॥ ५६ ॥ नय वचने करि कहिए जेह । अरपित भाव कहावे तेह ॥ प्रयोजन विण नावे कहिए जेह । गौण भाव अनर्पित एह ॥ ५७ ॥ अभिलाप्य धर्म जे होय । वचनद्वारे

कहि शकिए सोय ॥ अनभिलाप्य धर्म जे होय । वचने कही शके नहि कोय ॥ ५८ ॥ केवली जाणे पण न कहाय, अनभिलाप्य धर्म कहेवाय ॥ एणिपेरे वस्तु धर्म अनंत, दाख्या श्री केवली जगवंत ॥५९॥ अभिलाप्यथी गुण अनंत, अनभिलाप्य जाणिए संत ॥ स्निग्ध रूक्ष गुण पुद्गल माहा, अनंतानंत कह्या सुत माहा ॥ ६० ॥ दो गुण अधिक स्निग्ध रुख मले, द्विगुण अधीक रूख स्निग्ध जले ॥ रूक्ष रुक्ष मले द्विगुण अधीक, स्निग्ध स्निग्ध मले द्विगुण अधीक ॥ ६१ ॥ एक तीन अधिक नवि मले, सम सम गुण पण नाहिज मले ॥ परमाणु मलि वर्गणा होय, सूक्ष्म स्थूल द्विविधथी जोय ॥ ६२ ॥ गुण सकल द्रव्याश्रित होय, गुणमा अवर गुण नहि कोय॥ पज्जाव परिणमे द्रव्य स्वरूप, सकल समय एम द्रव्य अनूप ॥ ६३ ॥ द्रव्य गुण परजाय अभेद, स्वपर द्रव्ये लखि टालो खेद ॥ गुण पर्यायवंत ते द्रव्य, निश्चे भिन्न क्षेत्री सहु द्रव्य ॥ ६४ ॥ आतम विद्या विद्या एह, ए विण विद्या अविद्या तेह ॥ जेहथी सकल दुःख क्षय जाय, आतम परमातम पद पाय ॥ ६५ ॥ परभावे उदासिन थई, आत्म भाव उपयोगे रही ॥ टोमो अष्ट करमना पास, लहो मनसुख शिव सहज विलास ॥ ६६ ॥

॥ दोहरा ॥

कह्यो द्रव्य अधिकार ए, कहु कहु आस्रव रूप ॥ बंधन कारण कर्मना, भाखुं द्विविध स्वरूप ॥ १ ॥

ढाल (१२) बारमी ॥ चतुर चित्त चेतोने ॥ ए राग ॥

मन वच काय त्रियोगनी ॥ चित्त चेतोने॥ किरिया आस्रव मूल॥ चतुर चित्त चेतोने ॥ जे जे ते संप्रायनी ॥ चित्त चेतोने ॥ ते आतम प्रतिकूल ॥ चतुर चित्त चेतोने ॥ १ ॥ मन वच काय त्रियोगथी ॥ चित्त०॥ सकपे आत्म प्रदेश ॥चतुर०॥ चल योगे बंधन कह्युं ॥चित्त०॥ निहां निवृत्ति न लेश ॥ चतुर० ॥ २ ॥ पंदर भेद छे तेहना ॥ चित्त०

॥ चउ चउ मन वच जाण ॥ चतुर० ॥ काय योग सातज कह्या ॥ चित्त० ॥ ग्रंथथी जाण सुजाण ॥ चतुर० ॥ ३ ॥ अशुभ प्रवृत्ति योगथी ॥ चित्त० ॥ होय पापनो बंध ॥ चतुर० ॥ शुभ प्रवृत्ति योगथी ॥ चित्त० ॥ जाण पुण्यनो बंध ॥ चतुर० ॥ ४ ॥ हिंसा अनृत चोरिमां ॥ चित्त० ॥ अब्रह्म परिग्रह मांह्य ॥ चतुर० ॥ जोग प्रवृत्ते जे समे ॥ चित्त० ॥ पाप बंध होय त्याह्य ॥ चतुर० ॥ ५ ॥ एम अठ दश पापज विषे ॥ चित्त० ॥ जोग प्रवृत्ति अशुद्ध ॥ चतुर० ॥ टालि थिरता आदरो ॥ चित्त० ॥ संवर राखी बुद्ध ॥ चतुर० ॥ ६ ॥ दान दया तप शीलमां ॥ चित्त० ॥ पूजादिकमां जेह ॥ चतुर० ॥ शुभ प्रवृत्ति जोगथी ॥ चित्त० ॥ पुण्यबंध होय तेह ॥ चतुर० ॥ ७ ॥ क्षयउपशम शक्ति लही ॥ चित्त० ॥ करणवीर्य त्रय योग ॥ चतुर० ॥ फोरे जेह विभावमां ॥ चित्त० ॥ बंधे कर्म अभ रोग ॥ चतुर० ॥ ८ ॥ क्षयउपशम त्रण योगनी ॥ चित्त० ॥ शक्ति करि नर नार ॥ चतुर० ॥ मारे मोह जिविंदने ॥ चित्त० ॥ ते पामे भवपार ॥ चतुर० ॥ ९ ॥ हणाये आतम शक्तिथी ॥ चित्त० ॥ कर्म शत्रु दल फोज ॥ चतुर० ॥ क्षांत्यादि मित्रो पोषीने ॥ चित्त० ॥ लहिये निज गुण मोज ॥ चतुर० ॥ १० ॥ विणु कषाय त्रिय योगनी ॥ चित्त० ॥ किरिया इरियापथ्थ ॥ चतुर० ॥ कषाय युक्त किरिया कही ॥ चित्त० ॥ नहि आतम गुण पथ्य ॥ चतुर० ॥ ११ ॥ संपरायिक किरिया थकी ॥ चित्त० स्थिति रसनो होय बंध ॥ चतुर० ॥ विणु कषाय जे योगनी ॥ चित्त० ॥ प्रकृति प्रदेशनो बंध ॥ चतुर० ॥ १२ ॥ पंच इंद्रि विषय रसे ॥ चित्त० ॥ बांधे कर्म अजाण ॥ चतुर० ॥ बंधे चार कषायथी ॥ चित्त० ॥ ते नवि कहिये जाण ॥ चतुर० ॥ १३ ॥ सेवत पंच अव्रत जे ॥चित्त०॥ नहि निवृत्ति कदाय ॥ चतुर० ॥ कर्म बंध बहु विध करी ॥ चित्त० ॥ भवसागर भटकाय ॥ चतुर० ॥ १४ ॥ किरिया पचिश प्रवर्त्ततो ॥ चित्त० ॥ बधे शुभ अशुभ ॥ चतुर० ॥ इरिया पथ्थनी शुभ छे ॥ चित्त० ॥ शेपथी शुभ अशुभ ॥ चतुर० ॥ १५ ॥ तिव्र कषाये बंध जे ॥

चित्त० ॥ अशुभ तिव्र बधाय ॥ चतुर० ॥ मदरस मंदकषायथी ॥ चित्त० ॥ अशुभ कर्मनो थाय ॥ चतुर० ॥ १६ ॥ मंदकषाये पुण्यनो ॥ चित्त० ॥ तिव्र रसबंध जाण ॥ चतुर० ॥ तिव्रकषाये पुण्यनो ॥ चित्त० ॥ एम मदो रस मान ॥ चतुर० ॥ १७ ॥ करणवीर्य विशेषथी ॥ चित्त० ॥ होय शुभ अशुभ विशेष ॥ चतुर० ॥ न्यून करणवीर्ये करी ॥ चित्त० ॥ ओछो कर्म कलेप ॥ चतुर० ॥ १८ ॥ अधिकरण आस्रव तणु ॥ चित्त० ॥ दुविधे होय सदीव ॥ चतुर० ॥ जावकर्मनु जीव छे ॥ चित्त० ॥ द्रव्यकर्मनु अजीव ॥ चतुर० ॥ १९ ॥ अभिप्राय आरंभनो ॥ चित्त० ॥ करता छे संरंभ ॥चतुर० ॥ शस्त्रादि कारण मेलवे ॥चित्त०॥ ते जाणो समारंभ ॥ चतुर० ॥२०॥ कर्यो आरंभ जेणे समे ॥चित्त०॥ ते तो आरंभ जाण ॥ चतुर०॥ कृत कारित अनुमोदना ॥ चित्त० ॥ त्रण त्रणथी नव मान ॥ चतुर०॥ २१ ॥ भूत वर्त्तता आवता ॥ चित्त० ॥ कालथी सत्तावीश ॥ ॥ चतुर० ॥ मन वच काय त्रियोगथी ॥ चित्त० ॥ गुणत एकाशी लहीश ॥ चतुर० ॥ २२ ॥ गुणतां सोल कषायथी ॥ चित्त० ॥ बारसें बत्रु होय ॥ चतुर० ॥ सूत्रे भेद अनेक छे ॥ चित्त० ॥ आस्रवना तु जोय ॥ चतुर० ॥ २३ ॥ मोहनिकर्मना जाणिये ॥ चित्त० ॥ अध्यवसाय असख्य ॥ चतुर० ॥ ते सहु आस्रव भेद छे ॥ चित्त० ॥ जाणो चित्त निशंक ॥ चतुर० ॥ २४ ॥ पण पण इंद्रि अव्रत छे ॥ चित्त० ॥ तेम वलि चार कषाय ॥चतुर०॥ पच्चिश क्रिया त्रण योगनी ॥चित्त०॥ भेद बेतालीश थाय ॥ चतुर० ॥ २५ ॥ आस्रव क्रिया परिणामथी ॥ चित्त० ॥ परिणाम सकल्पथी होय ॥ चतुर० ॥ संकल्प आत्म अज्ञानथी ॥ चित्त० ॥ कर्मबंध एम जोय ॥ चतुर० ॥ २६ ॥ निश्चय पर रमणे हुवे ॥ चित्त० ॥ आस्रव एक अभेद ॥चतुर०॥ बधे पुद्गल स्नेहथी ॥ चित्त० ॥ बहुविध कर्मना भेद ॥ चतुर० ॥ २७ ॥ ए सवि आस्रव रोकना ॥ चित्त० ॥ प्रगटे सवर रूप ॥ चतुर० ॥ तजि प्रमाद सवर ग्रहो ॥ चित्त० ॥ मूदो भवजल कूप ॥ चतुर० ॥ २८ ॥ अधि

करण आस्त्रव तणां ॥ चित्त० ॥ निर्वर्त्तना निक्षेप ॥ चतुर० ॥ संजोग निसर्ग जाणिये ॥ चित्त० ॥ चार भेद संक्षेप ॥ चतुर० ॥ २९ ॥ किरिया चेष्टा शरिरनी ॥ चित्त० ॥ धुर उपकरण ते जाण ॥ चतुर० ॥ बीजी किरिया शस्त्रनी ॥ चित्त० ॥ उपकरण निर्वर्त्तना मान ॥ ॥ ३० ॥ पंच प्रकार शरिर तथा ॥ चित्त० ॥ निपावे मन वच काय ॥ ॥ चतुर० ॥ ए मूल गुण निर्वर्त्तना ॥ चित्त० ॥ तत्त्वार्थे मन लाय ॥ ॥ चतुर० ॥ ३१ ॥ काष्ट पाषाण चित्रादि ते ॥ चित्त० ॥ कांइ बनावे कोय ॥ चतुर० ॥ जे जे कीधुं शस्त्रथी ॥ चित्त० ॥ उत्तर निर्वर्त्तना होय ॥ चतुर० ॥ ३२ ॥ निक्षेप कहिये स्थापवु ॥ चित्त० ॥ चार भेद तस मान ॥ चतुर० ॥ सहसाधिकरण प्रथम कह्यु ॥ चित्त० ॥ अनाभोग विय जाण ॥ चतुर० ॥ ३३ ॥ त्रीजुं दुःप्रमार्जना ॥ चित्त० ॥ अप्रतिपेक्षित चार ॥ चतुर० ॥ निक्षेपा अधिकरण छे ॥ चित्त० ॥ अर्थ सूणो तस सार ॥ चतुर० ॥ ३४ ॥ विण विचार उतावले ॥ ॥ चित्त० ॥ उपकरण मूके कोय ॥ चतुर० ॥ सहसाअधिकरण कहुं ॥ ॥ चित्त० ॥ दोष इहां बहु होय ॥ चतुर० ॥ ३५ ॥ विण उपयोगे जे मूकवुं ॥ चित्त० ॥ अनाभोग ते होय ॥ चतुर० ॥ हाणी कारण जीवनुं ॥ चित्त० ॥ करे दोष बहु सोय ॥ चतुर० ॥ ३६ ॥ प्रमार्जना अयथार्थथी ॥ चित्त० ॥ मूके संजम हथियार ॥ चतुर० ॥ दोष इहां बहु ऊपजे ॥ चित्त० ॥ तृतिय भेद मन धार ॥ चतुर० ॥ ३७ ॥ विण देखे मूके लिये ॥ चित्त० ॥ अप्रतिपेक्षित एह ॥ चतुर० ॥ ए चउ अविधि न आदरे ॥ चित्त० संजमधर छे तेह ॥ चतुर० ॥ ३८ ॥ शीत उष्ण न विचारता ॥ चित्त० ॥ उपकरण मेलवे कोय ॥ चतुर० ॥ ते उपकरण संयोजना ॥ चित्त० ॥ प्रथम भेद ए होय ॥ चतुर० ॥ ३९ ॥ गमता आहारने पाननो चित्त० ॥ करे संयोगे भक्ष ॥ चतुर० ॥ दोष लगे संजम विषे ॥ चित्त० ॥ बीजो भेद प्रत्यक्ष ॥ चतुर० ॥ ४० ॥ दुःप्रयोग त्रिय योगनो ॥ चित्त० ॥ नीसर्गाधिकरण कहाय ॥ चतुर० ॥ सहु मलि

एकादश कह्या ॥ चित्त० ॥ दोष तजे निरमाय ॥ चतुर० ॥ ४१ ॥ एम बहु विध आस्रव प्रत्ये ॥ चित्त० ॥ रोके संवरवंत ॥ चतुर० ॥ मनसुख शीव स्वतंत्रता ॥ चित्त० ॥ पामे सूख अत्यंत ॥ चतुर० ॥ ४२ ॥

॥ दोहरा ॥

कह्यो आस्रव अधिकार ए, कर्मबंधनुं मूल। जेहथी जेह बंधाय छे, कहुं सूत्र अनुकूल ॥ १ ॥

॥ ढाल (१३) तेरमी ॥ धर्म जिनेश्वर गाऊं रंगशुं ॥ ए देशी ॥

दर्शन ज्ञान चरण गुणवंतनु, समकित तपसीनु जेह ॥ सुगुण नर ॥ अरिहंत सिद्ध आचारज मुनितणु, पाठक आदिनुं एह ॥ सुगुण नर ॥ तत्त्व विचार सुधारस पीजीए, लहिये आतम रिद्ध ॥ सु० ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ जे नर प्रत्यनीकपणु आदरे, एहथी विपरीत होय ॥सु०॥ कर्मबंध करि भव भमतो रहे, मूढ जीव जेह कोय ॥ सु० ॥ तत्त्व० ॥ २ ॥ जे निन्हव होय सुगुरु तणो कदा, तेह मूढमती हीण ॥ सु० ॥ निंदे सदगुरु आदिक शुभ प्रते, कर्म अशुभने आधीन ॥ सु० ॥तत्त्व० ॥ ३ ॥ ज्ञान दर्शन दाता सदगुरु प्रते, जेह छुपावे हो मूढ ॥ सु० ॥ आप अजाण छता कहे जाण छुं, जाण्यु राखे हो गूढ ॥ सु० ॥ त० ॥ ४ ॥ करे उपघात सुगुरु आदिक तणो, सम्यक शास्त्रनो कोय ॥ सु० ॥ बंधी दुष्ट करम बहु दुःख सहे, मिथ्या मूढ ते होय ॥ सु० ॥ त० ॥ ५ ॥ शिवमार्गी जन ऊपर जे करे, निशदिन अधिको हो द्वेष ॥ सु० ॥ अनिष्ट वचन बोले उत्तम प्रते, पामे बहु विध क्लेश ॥ सु० ॥ त० ॥ ६ ॥ करे अंतराय गुरु आदि तणो, ज्ञानादिकनो हो विशेष ॥ सु० ॥ बाधे विविध प्रकारे अंतराय ते, लहे दुःख राशी अशेष ॥ सु० ॥ त० ॥ ७ ॥ अरिहंतादिक दर्शनी आशातना, शील संजमनी हो जाण ॥ सु० ॥ ते पगले पगले बहु दुःख सहे, पामे अधिक अपमान ॥ सु० ॥ त० ॥ ८ ॥ ए खट अशुभ भाव जे आदरे,

बांधे दर्शन ज्ञानावर्ण ॥ सु० ॥ जाणि तजो खट ए अशुभ भावने, राखि शुद्धातम वर्ण ॥ सु० ॥ त० ॥ ए॥ देतो देशना जे उनमार्गनी, सुमग नशावे हो कोय ॥ सु० ॥ मूढमती करि देवदरव हरे, जिन मुनि प्रत्यनीक होय ॥ सु० त० ॥ १० ॥ चैत्य सघ तणो प्रत्यनीक ते, बांधे दरशनमोह ॥ सु० ॥ कषाय नोकषाय वशे हूवो, जेहने अधिको हो कोइ ॥ सु० ॥ त० ॥ ११ ॥ बांधे चरणमोहनी दोय भेदथी, कषाय तथा नोकषाय ॥ सु० ॥ अधिक आरंभ परिग्रह जे करे, बांधे नरकनुं हो आय ॥ सु० ॥ त० ॥१२॥ गुरुभक्ति खाति करुणा करु, व्रत जोग कषायनी जीत ॥ सु० ॥ द्रढ धर्मादानी अज्ञावधरु, शातावधनी ए रीत ॥ सु० ॥ त० ॥ १३ ॥ विपरित एथी अशाता वेदनो, करि हिंसादि कूकर्म ॥ सु० ॥ बांधे पापस्थानक सेवतो, जेणे न लह्यो शुद्ध धर्म ॥सु०॥ त० ॥१४॥ तिर्यक आयु कूड कपट वशे, बांधे राखी हो शल्य ॥ सु० ॥ मंदकषाय प्रकृती जेहने, दान रुची होय निशल्य ॥ सु० ॥ त० ॥ १५ ॥ मध्यमकषायी मनुष्य आयु लहे, न करे अधिक कूकर्म ॥ सु० ॥ अविरती सम्यकदृष्टि तथा, बाल तपस्वी शुभ धर्म ॥ सु० ॥ त० ॥१६॥ अकामे निर्जरा करतो इंद्रिजयी, ए आदि बांधे देव आय ॥ सु० ॥ देशव्रती मनुष्य तिर्यंच जे, आयु देवनुं निपाय ॥ सु० ॥ त० ॥१७॥ गर्व रहित मद कपट रहीत जे, विषयथी कांईक विराम ॥ सु० ॥ मंदकषाय नहीं पर पीडतो, बांधे ते शुभ नाम ॥ सु० ॥ त० ॥ १८ ॥ एहथी विपरित जे होय जगतमां, अशुभ नाम करे बंध ॥ सु० ॥ गुणपेक्षी मद कपट रहित सदा, सुतरुचि गुरुमित्र संबंध ॥ सु० ॥ त० ॥ १९ ॥ करे भक्ति जिन गुरुआदि तणी, बंध करे ऊंच गोत्र ॥सु०॥ एहथी विपरित जे जन जगतमां, बंधे ते नीच गोत्र ॥ सु० ॥ त० ॥ २० ॥ जिन आणा पूजा जिन मार्गमां, विघ्न करे जन कोय ॥ सु० ॥ दान लाभ भोग उपभोगनी, शक्ति हणे नर सोय ॥ सु० ॥ त० ॥२१॥ रोके सुख भोगादिक जीवनां, हिंसा वश पण होय

॥ सु० ॥ बांधे दुविध पंच अंतराय ते, बाल मूढ जन सोय ॥ सु० ॥ ॥ त० ॥ २२ ॥ दान लाज जोग उपजोगमां, न किजे वीर्य अंतराय ॥ ॥ सु० ॥ आतम लब्धि अनुजव रगमां, रहिए शीव सदाय ॥ सु० ॥ ॥ त० ॥ २३ ॥ दरशनेविशुद्धि जेह आदरे, चुके न विनेय योग ॥ ॥ सु० ॥ न लगावे अतिचार शियल विषे, खिण खिण ज्ञान उपयोग ॥ सु० ॥ त० ॥ २४ ॥ जवजीरू निज शक्ति न गोपवे, दान संवेग तप लाग ॥ सु० ॥ खट विध बाह अभ्यंतर तप करे, मुनिसर्जाल सोजाग्य ॥ सु० ॥ त० ॥ २५ ॥ वैयावच्चे करे नित धर्मीनी, अरिहंतादिनी जंक्ति ॥ सु० ॥ तेम सुरिश्वरनी सेवा करे, यथायोग्य निज शक्ति ॥ ॥ सु० ॥ त० ॥ २६ ॥ सुतधर ने सुतपद नित सेवतो, प्रवचनजक्ति करे सार ॥ सु० ॥ आवश्यक नित नित प्रते करे, मार्गप्रजावना उदार ॥ सु० ॥ त० ॥ २७ ॥ प्रवचन वात्सल्यता नित आदरे, ए सोले पद धाम ॥ सु० ॥ सेवे तन्मय थई निज आतममा, बांधे जिनपद नाम ॥ सु० ॥ त० ॥ २८ ॥ जे जिन शासन अधिक फेलाववा, तारवा जव्य सदाय ॥ सु० ॥ तत्वारथे दाख्यो अधिकार ए, तीर्थपती पद पाय ॥ ॥ सु० ॥ त० ॥ २९ ॥ एम सवि बधन कारण जाणीने, तजिए तत खीण तेह ॥सु०॥ मनसुख दरशन ज्ञान चरण लही, लहिये शिव सुख गेह ॥ सु० ॥ त० ॥ ३० ॥

॥ दोहरा ॥

कर्म बंध कारण कह्यो, कहुं व्रत आदि स्वरूप ॥ लहि निवृत्ति विजावथी, लहो समाधि अनूप ॥ १ ॥

॥ ढाल (१४) चौदमी ॥

॥ हुं तो नहीं रे नमुं दुजा देवने रे लो ॥ ए देशी ॥

हुं तो नहीं रे तजुं जिन धर्मने रे लो, रूडी रूडी अरिहंत जीनी सेव महाराजाला नहीं रे तजुं जिन धर्मने रे लो ॥ ए आंकणी ॥

व्रत पहेले हिंसा तजी सेविए रे लो, शुद्ध आतम चरण अशेष महारा लाल ॥ दश प्राण हणो नही द्रव्यथी रे लो, भाव प्राण नवि हणिए लेश महारालाल ॥ नहींरे० ॥ १ ॥ काई अलीक वचन नवि बोलिए रे लो, क्रोधादिक वश थई कांई महारालाल ॥ जिन आणाए वाक्य उच्चारिये रे लो, दृष्टि राखी आतम गुण माहि महारा लाल ॥ ॥ नहींरे० ॥ २ ॥ अण दिधी परवस्तु नवि लीजिए रे लो, द्रव्य भावथी दुविध प्रकार महारा लाल ॥ ज्ञानादिक गुण ग्रही थिर रहो रेलो, पुद्गल ग्रहणे नहि सार महारा लाल ॥ नहींरे० ॥३॥ नर नारी अब्रह्म नवि सेविये रे लो, छोडि सुमतिनो रंग अभंग महारा लाल ॥ द्रव्य भाव परिग्रह त्यागिये रे लो, नवि राखो काइ मूर्छा संग महारा लाल ॥ नहींरे० ॥ ४ ॥ मुनि राखे ए पच व्रत सर्वथी रे लो, ग्रहस्थोने होय देश विवेक महारा लाल ॥ एम चरण शरण दृढ आदरोरे लो, जिन धर्मे अचल दृढ टेक महारा लाल ॥ नहींरे० ॥ ॥ ५ ॥ व्रत थिर अर्थे नित भावियेरे लो, व्रत पंचनी भावना पचीश महारा लाल ॥ शुद्ध आतम गुण प्रगटे सवेरे लो, एथी लहिये शुद्धात्म जगीश महारा लाल ॥ नहींरे० ॥ ६ ॥ इरियासमिति सहित नित चालवुंरे लो, वारो पापथी मनने सदाय महारा लाल ॥ हिंसाकारी वचन नवि बोलवु रे लो, आदाननिक्षेपण दोष न लगाय महारा लाल ॥ नहींरे० ॥ ७ ॥ आहार पाणी विलोक्यां विना न लियेरे लो, पंच पहेला व्रतनी भाण महारा लाल ॥ अहिंसा व्रत एथी विमलुं रहे रे लो, शिव साधन गुणगणखाण महारा लाल ॥ नहींरे० ॥ ८ ॥ क्रोधे लोभे भयें हास्यथी न बोलवु रे लो, काई अलीक वचन दुःखदाय महारा लाल ॥ जिन आणा विचारी बोलिए रे लो, निज पर आतम सुखदाय महारा लाल ॥ नहींरे० ॥ ९ ॥ क्रोध लोभ भय हास्य वश ना थशो रे लो, जाणि ए अहितकारी भाव महारा लाल ॥ पंच भावना ए बीजा व्रत तणी रे लो, तेथी नाशे दुष्ट विभाव महारा

लाल ॥ नहींरे० ॥ १० ॥ वस्ति अवग्रेह परिमित विचारि ले रे लो, दाता दियो रजाए ओहार पाण म्हारा लाल ॥ काल क्षेत्र मर्यादा राखिने रे लो, लिये वस्ति अवग्रह शुद्ध जाण म्हारा लाल ॥ नहींरे० ॥ ११ ॥ वार वार अवग्रह हद बांधि ले रे लो, ए चोथी भावना होय म्हारा लाल ॥ अवग्रह परिमित साधर्मियो रे लो, मागि लेता त्रीजा व्रतनी जोय म्हारा लाल ॥ नहींरे० ॥ १२ ॥ वार वार स्त्रीकथा करे नहीं रे लो, स्त्री इंद्रि अंगे निरखे न कोय म्हारा लाल ॥ पुरव काम क्रिडा न सभालता रे लो, अधिक मादक ओहार न होय म्हारा लाल ॥ नहींरे० ॥ १३ ॥ स्त्री नपुंसक पशु जिहां रहे रे लो, वस्ती आसन तेह न लेय म्हारा लाल ॥ चोथा महाव्रतनी ए पंच भावना रे लो, व्रत राखे सुख होय अमेय म्हारा लाल ॥ नहींरे० ॥ १४ ॥ शब्द रूपे गंधे रसे फरस पचने रे लो, इष्ट अनिष्ट न धारे मन माह्य म्हारा लाल पुद्गल पर्याव माहरा नथी रे लो, माहरी ज्ञायकता शिव थाह म्हारा लाल ॥ नहींरे० ॥ १५ ॥ पंच भावना ए पच विषय त्यागनी रे लो, धन विषयनो लोभ न कदाय म्हारा लाल ॥ इम भावना पचविश भाविए रे लो, पच व्रत शुद्ध अखंड रखाय म्हारा लाल ॥ ॥ नहींरे० ॥ १६ ॥ चित चिते पच महाव्रत आदर्या रे लो, मन वच कायथी निरमाय म्हारा लाल ॥ व्रत पाली पलावी अनुमोदता रे लो, जिन आणा आराधक थाय म्हारा लाल ॥ नहींरे० ॥ १७ ॥ हिंसादि पच अव्रत सेवता रे लो, [illegible] लोक परलोक म्हारा लाल ॥ राजदंडादिक बहु दुःख [illegible] तिरियकना दुःख थोक म्हारा लाल ॥ नहींरे [illegible] पंच दुःख-दाय छे रे लो [illegible]
दिक घार [illegible]
॥ नहींरे० ॥ [illegible]
तारवानी

रे लो, राखि द्रव्यने जाव विशुद्धि महारा लाल ॥ नहींरे० ॥ २० ॥ आचारज वाचक मुनि लखी रे लो, साधु साधर्मीथी प्रमोद महारा लाल ॥ धन्य हुं म्हारे उत्तम गुरू मल्या रे लो, करे उत्तमनो विनय विनोद महारा लाल ॥ नहींरे० ॥ २१ ॥ हिंसक मिथ्याती आदि लखी रे लो, ते ऊपर राग न रोष महारा लाल ॥ एम चित्त चोखे चार जावना रे लो, जावतां लहे निज गुण पोष महारा लाल ॥ नहींरे० ॥ २२ ॥ लही चरण करणनी शुद्धता रे लो, करी अनुजव रंग विलास महारा लाल ॥ मनसुख शिव सुंदरिशु रमे रे लो, आनंदपुरी शाश्वत वास महारा लाल ॥ नहींरे० ॥ २३ ॥

॥ ढाल (१५) पंदरमी ॥ चेतन जाव ते चेतना जीहो, उलट अचेतन जाव ॥ ए राग ॥

पचाचार आराधिए लाला टाली सकल अतिचार, ॥ आतम जावे आतमा लाला, रमत लहो जवपार ॥ सुगुणनर आराधो जिन धर्म, तजि डुरमति कूकर्म ॥ सुगुण० ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥

काल विनय बहुमानथी लाला, वलि धारी उपधान ॥ निन्हवपणु ठोडी करि लाला, व्यंजन अरथ प्रमाण ॥ सुगुण० ॥ २ ॥ व्यंजन अर्थ उजय मली लाला, लखि लहो तत्त्व विचार ॥ एम शुज ज्ञान आराधतां लाला, लहिये जवजल पार ॥ सुगुण० ॥ ३ ॥ शंका कंखा डुगच्छना लाला, मूढदृष्टि तजि सार ॥ नय आदि मन धारिने लाला, कीजे तत्त्व विचार ॥ सुगुण० ॥ ४ ॥ गुरु अवगुण नवि बोलिए लाला, थिर करि सम्यकदृष्टि ॥ वात्सल्यता जिन धर्मनी लाला, करि प्रजावना पुष्ट ॥ सुगुण० ॥ ५ ॥ एम दरशन निरमल करो लाला, जेहथी जवजय जाय । चारित्र आवे निरमलुं लाला, स्हेजे शिवसूख थाय ॥ सुगुण० ॥ ६ ॥ त्रिप्रणिधान शुद्ध आदरो लाला, पण समिति त्रय गुप्ति ॥ चरण करण आराधतां लाला,

मुनिवर पामे मुक्ति ॥ सुगुण० ॥ ७ ॥ बाह्य अभ्यंतर तप तपो लाला, द्वादश विधे अति शुद्ध ॥ कुशलद्रष्टि राखो सदा लाला, गिलाणता तजि बुद्ध ॥ सुगुण० ॥ ८ ॥ आजीविकादि न इंछिए लाला, नवि चाहो नवजोग ॥ पुद्गल जाव निरीहथी लाला, तप शिव साधन योग ॥ सुगुण० ॥ ९ ॥ फोरे सदा धर्म कार्यमां लाला, आतम वीर्य अमाय ॥ तप सुत ध्यानादि आदरे लाला, गोपे न वीर्य कदाय ॥ सुगुण० ॥ १० ॥ जे जे कारण धर्मना लाला, तेहमां मन वच काय ॥ थिर वीर वीरज फोरवे लाला, आलस निंद नसाय ॥ सुगुण० ॥११॥ पंचे आचार आराधिये लाला, नवि कीजे अतिचार ॥ मनसुख शिव संपत्ति लहे लाला, अचल विमल सूखकार ॥ सुगुण० ॥ १२ ॥

॥ दोहरा ॥

महाव्रतादिक वर्णव्या, देशव्रतादिक सार ॥ नाखु सूत्राधारथी, शुद्धातम हितकार ॥ १ ॥

॥ ढाल (१६) सोलमी ॥ पाडलीपुरनी शेरिए रमता, रलाचिंतामणि लाध्युंजी ॥ ए राग ॥

संवेगने निरवेदने अरथे, जगत स्वरूप विचारोरे ॥ नावना अनित्यादिक बारे, मनथी कब न विसारो ॥ विरती रस लीजेजी, आतम अनुनव अभ्यास, अमृत रस पीजेजी ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ प्रमाद वशे द्रव्य नाव प्राणनी, हाणी कबहु न कीजेजी ॥ जिन शासन लहि समकित पामी, देशविरती आदरोजे ॥ विरती० ॥ २ ॥ सात धातुने साते मलथी, दुर्गति ए देहोजी ॥ रोग अनेकनु नाजन एहिज, दु खदायक दु ख गेहो ॥ विरती० ॥ ३ ॥ जगत पदारथ सवि पुद्गलना, खिण खिण उपजे विणसेजी ॥ खिणमा इष्ट अनिष्ट खीणमा, देखी मूरख हरखे ॥ विरती० ॥ ४ ॥ सवि पुद्गल अथिर समल जम, जगनो एह प्रतंतजी ॥ मूरख जोगनी बुद्धे देखी, माने

सुख अत्यंत ॥ विरती० ॥ ५ ॥ रागादिक परमाद आदरतां, डुविधे हिंसा जन्मेजी ॥ इंद्रि आदि दश द्रव्यप्राणनी, हाणि करी रस मनमें ॥ विरती० ॥ ६ ॥ नावप्राण ज्ञानादि जीवना, ते कबहू नवि हणियेजी ॥ नव भ्रमण बहु डुखनु कारण, हाणि जाणि परिहरिये ॥ विरती० ॥ ७ ॥ पंदर नेदे प्रमाद कह्यो ठे, पच विषय इंद्रीनाजी ॥ चार कषाय ने विकथा चारे, निंद्रा रागादिक जीना ॥ विरती० ॥ ०॥ स्वपर जीवना सुख हाणीथी, हिंसा श्रीजिन दाखीजी ॥ स्वपर जीव हाणि नवि कीजे, निज गुण निरमल राखी ॥ विरती० ॥ ए ॥ वध बंधन ठवि ठेद न कीजे, नार अधिक नवि नरियेजी॥ नात पाणि वीठोह जीवने, प्रमाद वशे नवि करिए ॥ विरती० ॥ १० ॥ मंत्र ठेलरू जूठां देखाडी, कष्टमा कोईने न पाडोजी ॥ गुप्त वात निज नारिथी जाणी, रहस्य नवी देखाडो ॥ विरती० ॥ ११ ॥ मृखा उपदेश न दिजे कोईने, कूडो लेख न लखिएजी ॥ साचुं पण डुःखकारी न बोलो, बिय व्रत रस ईम चखिए ॥ विरती० ॥ १२ ॥ पर द्रव्य नवि हरवुं त्रीजे, थूल नेद तस पंचजी ॥ चोरि आणेली वस्तु न लीजे, नेल न कीजे रंच ॥ विरती० ॥ १३ ॥ दान आदिमां राज विरुद्ध नहीं, कूडां तोल न मापोजी ॥ मदद कांई चोरने नवि दीजे, त्रीजा व्रत फल चाखो ॥ विरती० ॥ १४ ॥ परदारा पर पुरुषथी क्रीडा, चोथा व्रतथी न कीजेजी ॥ स्थूल अब्रह्म तजिने श्रावक, समता संग रमीजे ॥ विरती० ॥ १५ ॥ अपरिग्रहिता ने पर नारी, अनंग क्रिडा नवि कीजेजी ॥ पर विवाह जोडावो न कबहू, तिव्र राग ठडीजे ॥ ॥ विरती० ॥ १६ ॥ धन धान्य क्षेत्रने वस्तु, रूपु सोनु जाणोजी ॥ कुप डुपद चोपद मर्यादा, राखो द्रढ प्रमाणो ॥ विरती० ॥ १७ ॥ दश दिशानो गमण प्रमाण ते, कीजे व्रत गुण हेतेजी ॥ टालि पंच अतिचार एहना, राखो व्रत अखेदे ॥ विरती० ॥ १० ॥ उर्ध्व अधो तिर्यंग दिशि नीमथी, न जाय मर्यादा वधारीजी॥ एक दिशि त्यागी

बीजी वधारे, एम कुमती निवारी ॥ विरती० ॥ १९ ॥ लीधु नेम संभाल न राखे, एम पण विधि अतिचारोजी ॥ निर्मल व्रत राखि हित कारण, ए विधि दोष निवारो ॥ विरती० ॥ २० ॥ मदिरा मांस भक्षण नवि कीजे, फूल फल ने गंध मालाजी ॥ भोग उपभोगनुं नीम करीने, छोडो मोहना चाला ॥ विरती० ॥ २१ ॥ अभक्ष बाविश नवि वापरिये, अनंतकाय बत्रीशजी ॥ सचित तणो प्रतिबंध न कीजे, अपक तजो निशदीश ॥ विरती० ॥ २२ ॥ दुपक आहारने रयणी भोजन, कूलां फल निवारोजी ॥ जीव दयानु कारण जाणी, ए विधि व्रत निरधारो ॥ विरती० ॥ २३ ॥ सचित द्रव्य विगयने वाणी, तंबोल वस्त्रने कुसुमोजी ॥ वाहन शयन विलेपन स्नानने, ब्रह्म दिशि भक्त नीमो ॥ विरती० ॥ २४ ॥ चौद नीम ए नित्य आदरिये, नवि चूको कोई वारजी ॥ तुच्छ फल विष भक्ष निवारो, राखो व्रत द्रढ सार ॥ विरती० ॥ २५ ॥ अंगारा करी मत वेचो, हाक चाम मति वणजोजी ॥ वन न छेदावो सर न फोरुवो, कवहू न वणजो किणजो ॥ विरती० ॥ २६ ॥ भाडीकर्म न कीजे कवहू, निर्लंछन दवदाणजी ॥ पीलण कर्म न कीजे कवहू, शस्त्रनुं कर्मादान ॥ विरती० ॥ २७ ॥ दंते रसे व्यापार न कीजे विषे व्यापार तजीजेजी ॥ केशे वणज असंजतिपोषण, तजि व्रत शुद्ध द्रढ कीजे ॥ विरती० ॥ २८ ॥ पंदर कर्मादान ए मोटा, कारण पाप करमनुजी ॥ जिन धर्मे द्रढ रंग धरीने राखो मूल धरमनु ॥ विरती० ॥ २९ ॥ पंदर कर्मादान तजीजे, गुणव्रत बीजु धारीजी ॥ विश अतिचार एहना [illegible] दूर निवारी ॥ विरती० ॥ ३० ॥ आतमे [illegible]
अर्थ विण कोईजी ॥ शस्त्र अग्नि [illegible]
॥ विरती० ॥ ३१ ॥ तृण काठ [illegible]
जेजी ॥ बीजा पासे नवि [illegible]
॥ ३२ ॥ न्हवण उवटण विलेपन ए,

कारण कोईने नवि दीजे, कीजे चरणनुं शरण ॥ विरती० ॥ ३३ ॥ कंदर्प वश कूचेष्टा न कीजे, पाप अधिकरण न दीजेजी ॥ पापकारी शब्द नवि बोलीजे, निरमल व्रत फल लीजे ॥ विरती० ॥ ३४ ॥ विषय भोगनी वस्तु कोईने, देवानुं शुं कामजी ॥ आप आपणो आत्म शक्तिमा, किजे थिर आराम ॥ विरती० ॥ ३५ ॥ मिथ्या पाप उपदेश न दीजे, बहु विध अनरथ त्यागोजी ॥ गुणव्रत एम तिन निरमल राखी, आतम काजे लागो ॥ विरती० ॥ ३६ ॥ अनरथ दंड व्रत एम पालीजे, अणुव्रतने गुणकारीजी ॥ दरशन ज्ञान चरण आराधो, मनसुखथी शिवकारी ॥ विरती० ॥ ३७ ॥

॥ दोहरा ॥

पच अणुव्रत वर्णव्यां, तिन गुणव्रत सुखकार ॥ चउ शिक्षाव्रत दाखशु, श्री जिन वचनाधार ॥ १ ॥

ढाल (१७) सत्तरमी ॥ हो सुखकारी आ ससार थकी जो मुजने उद्धरे ॥ ए देशी ॥

नवमे सामायक आदरिये, मन वच काया त्रण द्रढ करिये ॥ पुद्गल ममता सवि परिहरिये, तजी राग द्वेष प्रातिक हरिये ॥ हो चेतनजी आतम अनुभव अमृत रस भर पीजे, नरभव पामी प्रमाद तजीने संजम लाहो लीजे ॥ ए आंकणी ॥ १ ॥ दुःप्रणिधान त्रिविध तजिये, दोय घडि आदि थिरता भजिये ॥ टाली परसंग आतम यजिये, धीर वीरज राखी सुमती भजिये ॥ हो चेतनजी० ॥ २ ॥ एक ठामे थिर आसन धारी, तन वच मन चंचलता टाली ॥ निरमल निज सत्ता निहाली, जिन आणाए द्रष्टि भाली ॥ हो चेतनजी० ॥३॥ द्रव्य भाव थकी सावद्य छंडी, निज दरशन ज्ञान चरण मंडी ॥ शुद्ध नय सुतपद द्रढ अभ्यासी, निज आतम ध्यावो अविनाशी ॥ हो चेतनजी० ॥ ४ ॥ दिशा अवगाहीने रहिए, त्यांथी बाहिर शब्द

नवि कहिए ॥ समता धरिने सुत रस लहिए, ज्ञानादिक गुणमां गह गहिए ॥ हो चेतनजी० ॥ ५ ॥ बाहिरथी कांइ न मंगावो, काई बाहिर पण नवि भेजावो ॥ बाहिर निज रूप न देखावो, ना ककर बाहिर फेंकावो ॥ हो चेतनजी० ॥ ६ ॥ करि पोषध रहि पोषध शाले, निज शुद्धातम गुण संचाले ॥ संथारा विधि काई नवि चूके, परमाद वशे विधि नवि मूके ॥ हो चेतनजी० ॥ ७ ॥ आहारादिक चिंता नवि कीजे, ज्ञानादिक गुण गण पोषीजे ॥ रागादिक दोष सकल वारी, थिर रहिए शुद्धातम अधिकारी ॥ हो चेतनजी० ॥ ८ ॥ असूरो पोषो नवि लीजे, उणे काले नवि पालीजे ॥ देववंदन काल न चूकिजे, समभावे निज गुण ध्यायीजे ॥ हो चेतनजी० ॥ ९ ॥ शुद्ध आहारादिक मुनिने दीजे, सचित पडिबंध नवि कीजे॥ देवा बुद्धे परनुं अपनु आपदेवा बुद्धे कहे परनु ॥ हो चेतनजी० ॥ १० ॥ तप चरण करण मुनि गुण धारी, दान देता मन मच्छर वारी ॥ दान दीजे भक्ति बहु सन्माने, मुनिवर वरते जेम शुभ ध्याने ॥ हो चेतनजी० ॥ ११ ॥ देतां अतिचार न कांई करे, मुनिने देता मन हर्ष धरे ॥ दातानां बहु प्रातिक जावे, शुभदानी सुख संपति पावे ॥ हो चेतनजी० ॥ ॥ १२ ॥ असजतिने नवि दान दिये, काई राग तथा काई द्वेष लीये ॥ जो सुखी के दूखी होवे, सम्यकधर निज गुण किम खोवे ॥ हो चेतनजी० ॥ १३ ॥ सजमीने में नवि दान दियो, पण देवा हरखे अति हैयो ॥ प्राशुक अन्नादिक हमे देइशु, देई दान ज्ञानादिक गुण लेइशुं ॥ हो चेतनजी० ॥ १४ ॥ एम बारे व्रत दृढता धारो, अते संलेखन ते सारो ॥ कषाय सवी पतला कीजे, तजी आहार पान तन शोषीजे ॥ हो चेतनजी० ॥ १५ ॥ इह लोगासंसा नवि धारू, पर लोगासंसा निवारू ॥ जीवित आशसा पण न करू, मरणाशसा पण चित्त न धरू ॥ हो चेतनजी० ॥ १६ ॥ काम भोग तणी आशसा तजुं, निज दर्शन ज्ञान चारित्त भजुं ॥ एम श्रावक बारे व्रत धारी,

चारित्र जमाडे सुखकारी ॥ हो चेतनजी० ॥ १७ ॥ विरतिथी परम विरती आवे, खिण खिण निज ज्ञायकता जावे ॥ मनसुख रंगे शिव सुख पावे, फरी ए संसारे ना आवे ॥ हो चेतनजी० ॥ १८ ॥

॥ दोहरा ॥

शल्य रहित व्रती कह्यो, शल्य युक्त व्रती नाहिं ॥ शल्य सहित व्रत जो धरे, जमे चतुरगति माहिं ॥१॥ माटे शल्य न राखिए, माया मिथ्या निदान ॥ शल्य रहित व्रत आदरो, पामो सूख अमान ॥२॥ प्रमाद त्यां हिंसकपणुं, विण प्रमाद नहिं तेह ॥ सहित प्रमाद बाहिर दया, तो पण हिंसक एह ॥ ३ ॥ माटे तजी प्रमादने, थिर उपयोग अमोल ॥ धारि धर्म शुकल सदा, लहो निज गुण रंग चोल ॥ ४ ॥ आगारी अणगारी दो, देश सर्व व्रत धार ॥ शेष अव्रती जे रह्या, ते जमशे संसार ॥ ५ ॥ शंका कंखा दुगंछना, तजि धारो जिनवाण ॥ स्तवन प्रशंसा कुलिंगीनी, समकित अतिचार ए जाण ॥ ६ ॥ वलि व्रत बार तणा कह्या, बहु विध जे अतिचार ॥ टाली व्रत दृढ राखिए, शुद्ध स्वजावाचार ॥ ७ ॥ व्रत आदि अधिकार ए, दाख्यो लेश विचार ॥ बंध हेतु कांइ दाखशु, श्रोता धारो सार ॥ ८ ॥

ढाल (१८) अढारमी ॥ ए व्रत जगमा दिवो मेरे प्यारे ॥ ए राग ॥

मिथ्यादरशन ने अविरति वली, प्रमाद कषायने योग ॥ पंच कारण ए कर्मबंधनां, तजि लहो शिवमग योग ॥ हो जविया जिन दरशन रस लीजे, ज्ञान सुधारस पीजे, हो जविया जि० ॥ ए आंकणी ॥ १ ॥ मिथ्यारुची अनादि जीवने, ते अग्रहित मिथ्यात ॥ कुगुरु थकी मिथ्यात ग्रहे जे, अजिग्रहित मिथ्यात ॥ हो जविया० ॥ २ ॥ ग्रहित मिथ्यात ते पंच जेदथी, प्रथम एकांते माने ॥ अनत धर्ममयी वस्तुने, एक धर्ममय जाणे ॥ हो जविया० ॥ ३ ॥ हिंसादिक जे धर्मथी विपरित, तेहने माने धर्म ॥ धर्म लखी अधर्म आदरतो, बांधे

बहुविध कर्म ॥ हो जविया० ॥ ४ ॥ जीव मांहे अजीवनी श्रद्धा, अ-
जीव प्रते जीव माने ॥ धर्म प्रते अधर्म कहे ते, अधर्मने धर्म प्रमाणे
॥ हो जविया० ॥ ५ ॥ कुगुरु प्रते सुगुरू निरधारे, सुगुरुने कुगुरु
उचारे ॥ मुक्त प्रते अमुक्त कहे एम, अमुक्तने मुक्त स्वकारे ॥ हो
जविया० ॥ ६ ॥ देवप्रते अदेव कहे एम, अदेव देव करि जाणे ॥ एम
बहु विध विपरीत वासना, होय मिथ्या अजिमाने ॥ हो जविया० ॥७॥
तीनसय त्रेसठ पाखंडो, बहु मिथ्यातना जेद ॥ सम्यक तत्त्व सुज्ञान
लहीने, किजे मिथ्यात उछेद ॥ हो जविया० ॥ ८ ॥ देव अदेव सु-
गुरु कुगुरुने, मोक्षार्थें आराधे ॥ विनय करे बेहुनो एक सरखो, चउ
गति मारग साधे ॥ हो जविया० ॥ ९ ॥ जिन देशित नवतत्त्व मांहि
जस, शंका विविध प्रकारो ॥ चोथो जेद मिथ्यातनो ए तो, जाणी
शंका निवारो ॥ हो जविया० ॥ १० ॥ जीव अजीवादिक नवि जाणे,
गहल रूप होय अंध ॥ पंच मिथ्यात जेदनो एह, दाख्यो संक्षेप
प्रबंध ॥ हो जविया० ॥ ११ ॥ खटकायनी हिंसा नवि त्यागे, पंच
विषयनो जोग ॥ निज मन थिरता कबहु न धारे, बार ए अविरति
योग ॥ हो जविया० ॥ १२ ॥ पंच अव्रत थकी न निवर्त्ते, वलि त्रिजोग
क्रियाथी ॥ कर्मबंध करि एहथी बहुविध, नवि निकसे जवमांथी ॥ हो
जविया० ॥ १३ ॥ पंदर विधे प्रमाद सेवतो, तेम वलि चार कषाय ॥
जोग चपलता बहुविध करतो, कर्मबंध बहु थाय ॥ हो जविया०
॥ १४ ॥ राग द्वेष वश जीव पुद्गलनो, सर्व प्रदेशे संबंध ॥ प्रकृति
स्थिति अनुजाग प्रदेशनो, चार प्रकारे बंध ॥ हो जविया० ॥ १५ ॥
लोकाकाश असंख्य प्रदेशे, वर्गणा विविध प्रकार ॥ काल अनादि
सदाय जरी छे, ते माहे कार्मण सार ॥ हो जविया० ॥ १६ ॥ आठ
प्रयोग छे तेहनारे, स्नेहथी जीव बंधाय ॥ ज्ञानावरणादिक करमना,
आठ प्रकारज थाय ॥ हो जविया० ॥ १७ ॥ प्रकृति कहिये कर्म

टेवने, स्थिति कालनुं मान ॥ कर्म तणो विपाक शुभाशुभ, ते अनुभव रस जाण ॥ हो भविया० ॥ १८ ॥ पुद्गल वर्गणा आत्म प्रदेशे, बंधे प्रदेशनो बंध ॥ आत्म रमण करि कर्म छेदो, टालि अनादि कुबंध ॥ हो भविया० ॥ १९ ॥ मूल प्रकृति आठज जाणो, उत्तर एकसय अडयाली ॥ ज्ञानावरणनी पंचज कहिये, दरशन नवविध भाली ॥ हो भविया० ॥ २० ॥ शाता अशाता दोय वेदनी, मोहनि अठावीश ॥ अंतरायनी पच प्रकारे, आयु चार जगीश ॥ हो भविया० ॥ २१ ॥ गोत्र ऊंच नीच दोय प्रकारे, नामकर्मनी त्राणुं ॥ सत्ताए एम दाखी श्रुतमां, इगसय वीश बंध मानुं ॥ हो भविया० ॥ २२ ॥ उदय होय एकसय बाविश, एम दाखी जगदीश ॥ कर्म सत्ता हणि शुद्धातम लही, विलसो स्वगुण जगीश ॥ हो भविया० ॥ २३ ॥ कर्मबध पररमणथी होवे, निज रमणे शिव लहिये ॥ शिवसगे रंगे आनदे, मनसुख शिवघर रहिये ॥ हो भविया० ॥ २४ ॥

॥ दोहरा ॥

स्थूल स्वरुप कह्युं कर्मनुं, कहुं कछु सूक्ष्म रूप ॥ सहजानंद अभ्यासयी, आतम सिद्ध स्वरूप ॥ १ ॥

॥ ढाल (१९) ओगणीशमी ॥ एसो कर्म अतुल बलवान जगतकुं पीड रह्यो ॥ ए राग ॥

एसो कर्म अतुल बलवान, जगत जीय पीड रह्यो ॥ कोई बंधे तत्त्व अजाण, पुद्गल रस कीद्ध रह्यो ॥ ए आंकणी ॥ निश्चय राग विरोधथीरे, बंधे अडविध कर्म ॥ आतम रमणे आतमारे, हरे कर्मना मर्म ॥ जगत० ॥ १ ॥ निज ज्ञायकता नवि लखीरे, देखत ज्ञेय अनेक ॥ ममत करि परज्ञेयमांरे, शुध पद चूक्यो ठेक ॥ जगत० ॥ २ ॥ ममता वशथी ऊपज्यारे, राग रोप वहु दोप ॥ कर्म वर्गणा ग्रहणथीरे, वध्यो कर्मघन पोप ॥ जगत० ॥ ३ ॥ सिद्ध समाधिमय सदारे, जे जाणे

निजरूप ॥ दरशन ज्ञान चरणमयीरे, रम्य रमण सुरूप ॥ जगत० ॥ ४ ॥ व्यवहारे पचासवेरे, कर्म वर्गणा आय ॥ रमतां पुद्गल भाव-मारे, अष्ट कर्म बंधाय ॥ जगत० ॥ ५ ॥ ज्ञान विना ममता रहेरे, ममताथी मिथ्यात ॥ अविरति प्रगटे तेहथीरे, प्रमाद कषाय विख्यात ॥ जगत० ॥ ६ ॥ जोग चपलता तेहथीरे, पुद्गल स्नेह विकार ॥ कर्मबंध तेथी करीरे, भमे चउगति कतार ॥ जगत० ॥ ७ ॥ शुभाशुभ विकल्पथीरे, लहि निवृत्ती न लेश ॥ ज्ञानादिक बल मल हुवारे, जोगत बहुविध क्लेश ॥ जगत० ॥ ८ ॥ ज्ञानसुधारस पानथीरे, सकल विकल्प विलाय ॥ दृढ समता समजावमारे, अष्ट करम क्षय थाय ॥ जगत० ॥ ए ॥ ज्ञान दर्शनावरणनीरे, वेदनी ने अंतराय ॥ तिस कोडाकोडी सागरूरे, स्थिति कही जिनराय ॥ जगत० ॥ १० ॥ सित्तेर कोडाकोडी मोहनीरे, तेत्रिश सागर आय ॥ नाम गोत्र दोय जाणि-एरे, वीश कोडाकोडी थाय ॥ जगत० ॥ ११ ॥ ए उक्कोस थिति कहीरे, वेदनी मुहूरत बार ॥ नाम गोत्र अड मुहूर्त्तनीरे, जघन्य स्थिति मन धार ॥ जगत० ॥ १२ ॥ पच कर्म अंतमुहूर्त्तनीरे, जघन्य स्थिति कही एह ॥ शुद्ध स्वजावाचरणथीरे, स्थिति रस छेदो एह ॥ जगत० ॥ १३ ॥ मोहनी कर्म तणी स्थितिरे, सामान्ये कहि जेह ॥ सित्तेर कोडाकोडी सागरूरे, कहु विशेषे तेह ॥ जगत० ॥ १४ ॥ चालिश कोडाकोडी सागरूरे, स्थिति छे सोल कषाय ॥ पुरुष हास्य रति तीननीरे, दश कोडाकोडी थाय ॥ जगत० ॥ १५ ॥ जय शोग अरति तथारे, डुगंछा नपुवेद ॥ विश कोडाकोडी सागरूरे, उक्कोस स्थितिनो भेद ॥ जगत० ॥ १६ ॥ पदर कोडाकोडी सागरूरे, नारिवेद स्थिति होय ॥ मिथ्या-मोह तणी कहीरे, सित्तेर कोडाकोडी जोय ॥ जगत० ॥ १७ ॥ समकित मिश्रमोहनी तणीरे, होय न बंध कदाय ॥ मिश्रमोहनी उदय तोरे, अतरमुहूरत थाय ॥ जगत० ॥ १८ ॥ साधिक उासठसागरूरे,

उदय समकितमोह ॥ निश्चय आतम ध्यावतां रे, मोहनी होय विछोह, ॥ जगत० ॥ १९ ॥ घनघाती चउ कर्मनो रे, अशुभ कटुक अनुभाग ॥ चार अघातीनो कह्यो रे, शुभ अशुभ रस लाग ॥ जगत० ॥ २० ॥ मति श्रुत अवधि मन तथा रे, निरमल केवलनाण ॥ पंच प्रकार छे ज्ञान-ना रे, तिन विपरीत अनाण ॥ जगत० ॥ २१ ॥ चक्षु अचक्षु ओहि-ने रे, केवलदरशन होय ॥ निद्रा निद्रानिद्रा कही रे, त्रीजी प्रचला जोय ॥ जगत० ॥ २२ ॥ प्रचलाप्रचला चोथी कही रे, थीणद्धि पचमि जाण ॥ सहु मलि दरशनावरणना रे, ए नव भेद प्रमाण ॥ जगत० ॥ २३ ॥ शाता अशाता वेदनी रे, मोहनि दोय प्रकार ॥ पणवीश चारित्र मोहनी रे, दरशनमोह त्रय धार ॥ जगत० ॥ २४ ॥ कषायमोहनी सोल छे रे, नोकषाय नव जाण ॥ नरक तिरिय मनु देवनुं रे, आयु चार प्रमाण ॥ जगत० ॥ २५ ॥ पिंड प्रकृती चौदना रे, पासठ भेद ते थाय ॥ त्रस थावर दश दश मले रे, वीश भेद चित्त लाय ॥ जगत० ॥ २६ ॥ प्रत्येक प्रकृती आठ छे रे, सवि मलि त्राणु थाय ॥ उंच नीच दोय गोत्र छे रे, दानादि पण अंतराय ॥ जगत० ॥ २७ ॥ द्रव्यथी पुद्गल वर्ग-णा रे, बंधे जीव प्रदेश ॥ भावे अशुद्ध उपयोगमां रे, रागादि दोष विशेष ॥ जगत० ॥ २८ ॥ जीव प्रदेश असंख्यमां रे, प्रतिप्रदेशे जाण ॥ पुद्-गल वर्गणा जाणिए रे, अनंतानंत प्रमाण ॥ जगत० ॥ २९ ॥ अज्ञानादि टेव जे रे, तेह प्रकृति नाम ॥ एम आठे कम्मपयडिनो रे, जथावत प्रकृती नाम ॥ जगत० ॥ ३० ॥ सम्यक चरण रमण करी रे, छेदि कर-मनुं मूल ॥ शिवसंपति मनसुख लहे रे, सहजातम अनुकूल ॥जगत०॥३१॥

॥ दोहरा ॥

कह्यो कर्म अधिकार ए, वलि कहुं कांई विशेष ॥ आतम शक्ति फोरवी, निज धन लहो अशेष ॥ १ ॥ समिति गुप्ति आदि कहुं, संव-रनो अधिकार ॥ जे सेवे मुनिवर सदा, पामे भवजल पार ॥ २ ॥

॥ ढाल (२०) वीशमी ॥ प्रथम जिनेश्वर प्रणमीए ॥ ए देशी ॥

आहार निहार विहारने, अरथे मुनिवर जाय ॥ हाथ सांमातीन मांहि आलोकी आगे चले, जेम जतू न हणाय ॥ १ ॥ आडु अवलुं देखे नहीं, मनमां भ्रांति न कोय ॥ नहि चित्त राग विरोध बोध सुतनो सदा, जेम संजम दृढ होय ॥ २ ॥ भाषा बोले विचारीने, राखी श्री जिन आण ॥ अलिक वचन नवि बोले क्रोधादिक वश थई, एवा होय सुजाण ॥ ३ ॥ दोष बेतालीश टालीने, आहारादि लीये शुद्ध ॥ लेत आहार चउ दोष तजी छेयालिश ईम, राखे संजम बुद्ध ॥ ४ ॥ संजम उपकरणो सवे, जोइ प्रमार्जी विशेष ॥ लेवे मूके अभ्रांत प्राणिनी हाणी नहीं, कोइ प्रकारे रे लेश ॥ ५ ॥ परठवणा मल मूत्रनी, वलि आहारादिक कांय ॥ हाण जंतुनी होय न एम संभालता, उपयोगी चित्त माय ॥ ६ ॥ सम्यक समिति पंच ए, राखे मुनिवर शुद्ध ॥ संजम कारण देह नेह विण साचवे, वरते न जीव विरुद्ध ॥ ७ ॥ मन वच काय त्रियोगनी, वारि चपलता दूर ॥ गुप्त राखे संजममां चरण थीरता वधे, अनुभव रस भरपूर ॥ ८ ॥ विकल्प तजी समभावमां, ध्यान शुक्ल दृढ धीर ॥ ध्याता द्रव्य प्रजाय अभेद शुद्धातमथी, मनसुख लहे भवतीर ॥ ९ ॥

॥ ढाल (२१) एकवीशमी ॥ वेदनी कर्मना अगिआर परिसह विषे ॥

॥ हु वारी लाला तुज जाण न देश ॥ ए राग ॥

हु अविनाशी आतमारे अप्पा, अमर अजर निर्द्वंद, हु निरभय एक चेतनारे अप्पा, अक्षय ज्ञानानंद सुज्ञानी अप्पा धारो सहज विवेक, ज्ञानानदमय छेक ॥ सुज्ञानी० ॥ ए आकणी० ॥ १ ॥ क्षुधावंत ते देह छेरे अप्पा, देहथी भिन्न हु छेक ॥ अक्षुधित गुणमय सदारे अप्पा, ए मुज टेक विवेक ॥ सुज्ञानी० ॥ २ ॥ ज्ञानामृत रस तृप्त तुंरे अप्पा, तृषावंत छे देह ॥ म्हारुं न विणसे तेहथीरे अप्पा, हु शांति

रस गेह ॥ सुज्ञानी० ॥ ३ ॥ ज्ञानानंद रसे जस्यो रे अप्पा, तृषातुरता नवि होय ॥ तृषा लगी जे देहमां रे अप्पा, देह न म्हारी कोय ॥ सुज्ञानी० ॥ ४ ॥ फरस रहित हुं आतमारे अप्पा, किम करि फरसे शीत ॥ फरस विना निरजय सदारे अप्पा, उष्ण तणी नहीं नीत ॥ सुज्ञानी० ॥ ५ ॥ वज्रमयी मुज अंग छेरे अप्पा, शुद्ध असंख्य प्रदेश ॥ दंश मशक आदि तणारे अप्पा, डंख न होय प्रवेश ॥ सुज्ञानी० ॥ ६ ॥ मुज ज्ञायकतामां वसेरे अप्पा, लोकालोक अनंत ॥ देह उदय जे विचरवुंरे अप्पा, चर्या दुःख न संत ॥ सुज्ञानी० ॥७॥ थाके दुःखे देह तेरे अप्पा, में जाण्यो तसु मर्म ॥ पर परिणति माहरी नहिरे अप्पा, में लह्यो आतम धर्म ॥ सुज्ञानी० ॥ ८ ॥ ममता मुज एहनी नहिरे अप्पा, में त्याग्यो पर गर्व ॥ पुद्गल गुण परजायनुं रे अप्पा, काम न वंछू सर्व ॥ सुज्ञानी० ॥ ए ॥ संजम काज विहार छेरे अप्पा, पर चिंता नहि मुज ॥ देह खेदथी जे विहे रे अप्पा, ते तो जाण अबूज ॥ सुज्ञानी० ॥ १० ॥ आतम द्रव्यादि चतरे अप्पा, शय्या माहरे एह ॥ पुद्गल शय्या देहनी रे अप्पा, त्यां माहरे श्यो नेह ॥ सुज्ञानी० ॥ ११ ॥ तन दुःखे मुज दुःख नहींरे अप्पा, हुं जाणुं ते सर्व ॥ जेह दुःख कांई अन्यनेरे अप्पा, नहि मुज एहनो गर्व ॥ सुज्ञानी० ॥ १२ ॥ जिहां तनु त्यां मल उपजेरे अप्पा, देहथी भिन्न हुं एक ॥ ज्ञायक रूपी हुं सदारे अप्पा, मल दुःख मुज नहि छेक ॥ सुज्ञानी० ॥ १३ ॥ अभेदी अछेदी हुंरे अप्पा, वंधबधन मुज नांहि ॥ ताडन तर्जन देहनेरे अप्पा, अविनाशी पद मुज मांहि ॥ सुज्ञानी० ॥ १४ ॥ रोग रहित हुं आतमारे अप्पा, रोगी होय ते देह ॥ दरशन ज्ञान चरणमयीरे अप्पा, हुं निरोग गुणगेह ॥ सुज्ञानी० ॥ १५ ॥ फरस रहित मुज अंगनेरे अप्पा, नहि तृणादिकफांस ॥ गुण अनंतमय हुं सदारे अप्पा, में लह्यो ज्ञान विलास ॥ सुज्ञानी० ॥ १६ ॥ वेदनीकर्म उदय कह्यारे अप्पा, परिसह ए अगियार ॥

पण नहि आतम अंगमारे अप्पा, परिसहनो प्रचार ॥ सुज्ञानी० ॥ १७ ॥ तजि ममता जेणे देहनीरे अप्पा, तस नहि परिसह ताप ॥ ज्ञान चरणमां मगतारे अप्पा, रहे अखंडित आप ॥ सुज्ञानी० ॥ १८ ॥ ए परिसह अगियार तो रे अप्पा, जिनवरने पण होय ॥ पण नहि मोहनीकर्म छेरे अप्पा, वेदक जाव न कोय ॥ सुज्ञानी० ॥ १९ ॥ जाववेदना विण कदारे अप्पा, करवा परिसह दूर ॥ कवहु न इच्छे चित्तमारे अप्पा, संजम रस जरपूर ॥ सुज्ञानी० ॥ २० ॥ परिसह डुर करवा कदारे अप्पा, ध्याने वेठे तेह ॥ ज्ञान चरण धन मगतारे अप्पा, विलसे मुनि गुणगेह ॥ सुज्ञानी० ॥ २१ ॥ अचल अकंप सदा रहे रे अप्पा, धीर वीर धरि ध्यान ॥ मनसुख शिवसंगे लहोरे अप्पा, शाश्वत सुख सुजाण ॥ सुज्ञानी० ॥ २२ ॥

ढाल (२२) वावीशमी ॥ अनिहारे दरशन दीपक निरमलोरे ॥ ए राग ॥

अनिहारे सवर अंवरमां रह्योरे, नवि देखे मुजने कोय ॥ जे देखाय ते देह छेरे, मुजथी तेह निलज होय ॥ मोहनि मूल छेदिएरे, थइ निर्मोही निरमाय, संजम श्रेणि निहालतारे, शिव संपत्ति सहज लहाय ॥ मोहनि० ॥ ए आकणी ॥ अनिहारे देह ढाकवा कारणेरे, नहि मुज वस्त्रनु काम ॥ ज्ञान स्वरूपी हु आतमारे, निज पद गुलाराम ॥ मोहनि० ॥ २ ॥ अनिहारे काम विकार तनमा रह्योरे, हु निःकामी नि शंक ॥ कामजोग ममता करे रे, ते नर अविवेकी रंक ॥ मोहनि० ॥ ३ ॥ अनिहारे हाव जाव नारि तणारे, देखी चित्त चले अजाण ॥ हु कामी शिवमार्गनोरे, शुद्ध निज गुण काम अमान ॥ मोहनि० ॥ ४ ॥ अनिहारे रति अरति ते पुद्गल विषेरे, करे अज्ञानी जीव ॥ नव नव पर्याव उपजेरे, वली व्यय होय सदीव ॥ मोहनि० ॥५॥ अनिहारे निश्चय ध्रुव अविनाशि हुरे, ज्ञायक रूप एक त्रिकाल ॥ रति अरति नहीं मुजनेरे, पुद्गल परजाय निहाल ॥ मोहनि०

॥ ६ ॥ अनिहांरे कठिण वचन कहे कोइ कदारे, करवो न घटे आं-क्रोश ॥ ढेड्या राग वीरोधने रे, तो मुज किण वाते रोष ॥ मोहनि० ॥७॥ अनिहांरे वचन ते सर्व पुद्गल दशारे, वचन मुज फरसे न कोय॥ वचन अगोचर आतमारे, वचन दुःख मुज नवि होय ॥ मोहनि०॥८॥ अनिहांरे आहारादि संजम अर्थथीरे, जांचुं हुं हुं तजि मान ॥ विण सजम काल अनंतथीरे, बहुविध पाम्यो अपमान ॥ मोहनि० ॥ ९ ॥ अनिहांरे जिन जेह जाव निषेधियारे, ते आदरुं नहि कोई वार ॥ काउसग ध्यानमा थिर रह्यो रे, हुं न चलु जयथी लगार ॥मोहनि० ॥१०॥ अनिहांरे वसति आदि जे जे निषेधियुरे, नवि आदरुं कोई प्रकार ॥ हुं निशंकित चेतनारे, अक्षय निर्भय सुखकार ॥ मोहनि० ॥ ११ ॥ अनिहारे करे सत्कार कोई मुनि तणोरे, मुनि न करे लोज लगार॥ चेतनता सहु जीवनीरे, सरखी संग्रहनय धार ॥ मोहनि०॥ १२ ॥ अनिहांरे सात परिसह चारितमोहथीरे, दर्शनमोहनिथी अेक ॥ शंका कंखा जिन वचनमारे, टाली राखो दरश विवेक ॥ मोहनि० ॥ १३ ॥ अनिहारे आहारादिक अणलाजतारे, जाणे पुरव फल अंतराय ॥ जावलब्धि दानादिक जावतोरे, रहे निजगुण मग्न सदाय ॥मोहनि०॥ ॥१४॥ अनिहारे तनुप्रज्ञा होय कोईनेरे, मनमां नावि माने खेद ॥ धैर्य धरी सुत साधवारे, धारे मन अधिक उमेद ॥ मोहनि० ॥ १५ ॥ अनिहारे ज्ञानावरण उदये होवेरे, अज्ञान विविध प्रकार ॥ खेद रहित नित आदरेरे, विनय वैयावच्च उदार ॥ मोहनि० ॥ १६ ॥ अनिहांरे गुरु सुत आदि नित सेवतारे, तन्मय राखि श्रुतध्यान ॥ प्रगटे ज्ञानादिक गुण सवेरे, निरमल थिर अचल अमान ॥मोहनि०॥ ॥ १७ ॥ अनिहारे ज्ञानादि निज गुण उपयोगमारे, रहे अचल धरि दृढजाव ॥ परिसह ताप तेहने नहिरे, प्रगटे शुद्ध आतम स्वजाव ॥ मोहनि० ॥ १८ ॥ अनिहारे धीर वीर थई शिवपद साधशेरे,

लहि श्रुत सिद्धांतनो सार ॥ मनसुख शीव कमला वरे रे, करशे भवजलदधि पार ॥ मोहनि० ॥ १९ ॥

॥ ढाल ॥ (२३) त्रेवीशमी ॥ नयरी महानकुममा वसे रे, महारिद्धि रिखवदत्त नामरे ॥ ए राग ॥

परम क्षमागुण आदरोरे मुनि, श्री जिनशासन सार ॥ द्रव्य भाव क्षमा धरिरे मुनि, लहिये भवजल पार हो मुनि लहिये भवजल पार ॥ १ ॥ अपराधीशु पण कदारे मुनि, कोप न कीजे लेश ॥ परपरिणति ममता तजिरे मुनि, तजि मद मान आवेश हो मुनि तजि० ॥ २ ॥ विनय करी गुणवंतनो रेमुनि, लहिये ज्ञान अत्यंत ॥ पूर्णातम गुण प्रगटशे रेमुनि, निरमल शक्ति अनंत हो मुनि निरमल० ॥ ३ ॥ मन वच कायनी वक्रता रेमुनि, न करो कपट कदाय ॥ माय त्यागथी प्रगटशे रेमुनि, समसुख अचल अमाय ॥ हो मुनि समसुख० ॥ ४ ॥ समदरशी समतापीने रेमुनि, जगत जीव होय मीत ॥ निरभय निराकुल सदा रेमुनि, नहि कोइनी होय भीत ॥ हो मुनि नहि० ॥ ॥ ५ ॥ धन विषय स्त्रीय आदिनो रेमुनि, लोभ न कीजे लेश ॥ तजि स्पृहा पुद्गल तणि रेमुनि, राखो संजम अशेष ॥ हो मुनि राखो० ॥ ॥ ६ ॥ इछा मूर्छा कामना रेमुनि, नाहि पुद्गलनी जास ॥ निरालंब निरलोभता रेमुनि, तोडे कर्मना पास ॥ हो मुनि तोडे० ॥ ७ ॥ दरशन ज्ञान चरण गुणे रेमुनि, तृप्त रहो निशदीश ॥ विषय विकार इहा तजो रेमुनि, प्रगटे आतम जगीश ॥ हो मुनि प्रगटे० ॥ ८ ॥ खट खट बाह्य अभ्यंतरे रेमुनि, तप तपि साधो सिद्धि ॥ इच्छा निरोधे तप करि रेमुनि, लहिये नित नव नीधि ॥ हो मुनि लहिये०॥ ॥ ९ ॥ पण पण विषय अव्रत तजि रेमुनि, हणिये चार कषाय ॥ मन वच काया थिर करि रेमुनि, निरमल संजम पाय ॥ हो मुनि निरमल० ॥ १० ॥ द्रव्य भाव मृखा ताजि रेमुनि, निज पर तत्व सुज्ञान ॥ द्रव्यादिक लखी राखिए रेमुनि, सत्यपणु सुखखाण ॥ हो मुनि

सत्य० ॥ ११ ॥ रागद्वेष आदि सवे रेमुनि, दोष तजी निरमाय ॥ शौच रहो निज रूपमा रेमुनि, निजघर मंगल थाय ॥ हो मुनि निज० ॥ १२ ॥ कंचन तृण तूष आदि छे रे मुनि, पुद्गल वस्तु जेह ॥ मुनि परिग्रह राखे नहि रेमुनि, अकिंचन गुण गेह ॥ हो मुनि अकिंचन०॥ ॥ १३ ॥ सहस्त्र अढदश भेदथी रे मुनि, तजिए सर्व अब्रह्म ॥ अढार हजार शिलांगथी रेमुनि, सेवो पूरण ब्रह्म ॥ हो मुनि सेवो० ॥ १४ ॥ दश यतिधर्म आराधीने रेमुनि, रत्नत्रयी करि शुद्ध ॥ शिवसुंदरि मनसुख वरे रेमुनि, जगत जंतु अविरुद्ध ॥ हो मुनि जगत० ॥ १५ ॥

॥ ढाल (२४) चोवीशमी ॥ इणि पेरे चंचल आउखुं जीव जागोरे ॥ ए राग ॥.

जे जे पुद्गल पज्जवा ॥ तुम जाणोरे ॥ ते सवि जाण अनीत ॥ तजो दूर्ध्यानो रे ॥ विणसे उपजे खिणखिणे ॥ तुम० ॥ तेहशुं केसी प्रीत ॥ तजो० ॥ १ ॥ गमता अणगमता क्षिणक्षिणे ॥ तुम० ॥ पुद्गल सवि परतंत्र ॥ तजो० ॥ श्रम करि राख्या नवि रहे ॥ तुम०॥ ते केम चाहे संत ॥ तजो० ॥ २ ॥ देह त्रियादिक वस्तुनो ॥ तुम०॥ बहुविध परिग्रह जेह ॥ तजो० ॥ तसु अधिकारी न आतमा ॥ तुम० ॥ तो किम कीजे नेह ॥ तजो० ॥ ३ ॥ ज्ञानादिक निज गुण तणो ॥ तुम० ॥ छे अधिकारी आतम ॥ तजो० ॥ निज अधिकार न सुंपीए ॥ तुम० ॥ वयरी जेह अनातम ॥ तजो० ॥ ४ ॥ शरण नही ससारमां ॥ तुम० ॥ चरण विना कोइ ओर ॥ तजो० ॥ सद्गुरु पण व्यवहारथी ॥ तुम० ॥ जीव शरणनो ठोर ॥ तजो० ॥ ५ ॥ मरण कष्ट आदिक थकी ॥ तुम० ॥ वालि नरकादिक दूख ॥ तजो० ॥ एहथी राखी कोण दिए ॥ तुम० ॥ शुद्धातम थिर सुख ॥ तजो० ॥ ६ ॥ घर धन स्त्री आदिक तणो ॥ तुम० ॥ राग न कीजे लेश ॥ तजो० ॥ पुद्गल

राग तजे थके ॥ तुम० ॥ लेश न होय कलेश ॥ तजो० ॥ ७ ॥ संसरतां संसारमा ॥ तुम० ॥ कस्या अनेक संबध ॥ तजो० ॥ पत्नी पुत्री पण थई ॥तुम०॥ पुत्री पत्नी संबंध ॥ तजो० ॥ ८ ॥ जज्ञा ते जगिनी थई ॥ तुम० ॥ जगिनी जज्ञा होय ॥ तजो० ॥ मित्र शत्रु पण होय ठे ॥ तुम० ॥ शत्रु मित्र तुं जोय ॥ तजो० ॥ ए ॥ दास होय ठे शेठनो ॥ तुम० ॥ दास शेठपणुं पाय ॥ तजो० ॥ एम अनेक सबंधमा ॥ तुम० ॥ किण पर राग कराय ॥ तजो० ॥ १० ॥ सुख दुःख जोगे एकलो ॥ तुम० ॥ जन्म मरण करे एक ॥ तजो० ॥ नरक निगोदमां एकलो ॥ तुम० ॥ सिद्धि लहे निज एक ॥ तजो० ॥ ११ ॥ दरशन ज्ञान पोते लहे ॥ तुम० ॥ चरण लहे निज एक ॥ तजो० ॥ राग तजो परपद तणो ॥ तुम० ॥ राखो एक विवेक ॥ तजो० ॥१२॥ जीवथी जिन्न शरीर ठे ॥ तुम० ॥ धन कुटुंब परिवार ॥ तजो० ॥ परसंजोग विजोगनो ॥ तुम० ॥ कारण निश्चय धार ॥ तजो० ॥ १३ ॥ अन्यत्व जावना जावतां ॥ तुम० ॥ नाशे राग विरोध ॥ तजो० ॥ आतमता आतम लहे ॥ तुम० ॥ प्रगटे निरमल बोध ॥ तजो०॥१४॥ मलमूत्रादिक बहुविधे ॥ तुम० ॥ रोग अनेकनी खाण ॥ तजो० ॥ दुर्गंधी वहेती सदा ॥ तुम० ॥ देह ठे एह निदान ॥ तजो० ॥ १५ ॥ सात धातु सस मल जरी ॥ तुम० ॥ पुरण अशुचीगेह ॥ तजो० ॥ दुःखदायक जाणी तजो ॥ तुम० ॥ चलमल देहनो स्नेह ॥ तजो० ॥ ॥ १६ ॥ समय समय पररमणथी ॥ तुम० ॥ आस्रव दुविधनी थाय ॥ तजो० ॥ शुद्धातम रमणे रमो ॥ तुम० ॥ संवर धारी सदाय ॥ तजो० ॥ १७ ॥ पुद्गल जोग इहा तजी ॥ तुम० ॥ लहि शुद्धातम तृप्ति ॥ तजो० ॥ करि निर्जरा कर्मनी ॥ तुम० ॥ लघुकाले लहो मुक्ति ॥ तजो० ॥१८॥ लोकाकाश प्रदेशमां ॥ तुम० ॥ वलि वलि जटक्यो जीव ॥ तजो० ॥ जन्म मरण बहुलां कस्यां ॥ तुम० ॥ जोग-

व्या दुःख सदीव ॥ तजो० ॥ १९ ॥ चउ पुद्गलपरिग्रहने ॥ तुम० ॥ ग्रहिया पुद्गल सर्व ॥ तजो० ॥ छोड्या मरणादिक करी ॥ तुम० ॥ रह्यो नहि तुज गर्व ॥ तजो ॥ २० ॥ सम्यकदर्शन दोहिलुं ॥तुम०॥ सुह्वत्त धन परिवार ॥ तजो० ॥ विषयो देव मनुष्यना ॥ तुम० ॥ विलस्या अनंतीवार ॥ तजो० ॥ २१ ॥ तो पण तृप्ति नवि लही ॥ तुम० ॥ नरजव पाम्यो आज ॥ तजो० ॥ समकित गुण निरमल करी ॥ तुम० ॥ साधो वंछित काज ॥ तजो० ॥ २२ ॥ धर्म परम अरिहंतनो ॥ तुम० ॥ साधो थइ उजमाल ॥ तजो० ॥ ज्ञान चरण निर्मल करो ॥ तुम० ॥ लहिये गुणमणिमाल ॥ तजो० ॥ २३ ॥ तजी शुजाशुज कल्पना ॥ तुम० ॥ करि परिणति गुण लीन ॥ तजो० ॥ मनसुख शिव शाश्वत लहे ॥ तुम० ॥ आतम संपत्ति पीन ॥ तजो० ॥ २४ ॥

ढाल (२५) पचीशमी ॥ पद्म प्रजु जिन तुज मुज आंतरूरे ॥ ए राग ॥

मन वच काया थिर करीरे, तजि सावद्य डुवीध ॥ दरशन ज्ञान आराधतांरे, सामाइक होय सिद्ध ॥ चरण आराधिएरे, तजि पर परिणति चाल, शिवसुख साधिएरे ॥ ए आंकणी ॥ १ ॥ राग द्वेष तजि आतमारे, आतम जावे लीन ॥ दृढ थिरता शुद्ध जावमांरे, अनुजव अमृत पीन ॥ चरण० ॥ २ ॥ शुजाशुज तजि कल्पनारे, निर्विकल्प एक रूप ॥ रम्य रमण शुद्धात्ममारे, निश्चय चरण अनूप ॥ चरण० ॥ ३ ॥ प्रमाद वश हुआ दोष जेरे, छेदि चरण करि शुद्ध ॥ छेदोपस्थापन धारियेरे, द्वितीय चरण थिर बुद्ध ॥ चरण० ॥ ४ ॥ तजि हिंसा तपस्या करेरे, विनय ने सुत अज्यास ॥ चरणप्रजाय विशोधतांरे, परिहारविशुद्धि विलास ॥ चरण० ॥ ५ ॥ करि कषायने पातलारे, रह्यो कछु सूक्ष्म लोज ॥ रमण शुधातम एकतारे, करे मुनी थिर योज ॥ चरण० ॥ ६ ॥ जिहां सूक्ष्म संपराय छे रे, वरते दशम गुणठाण ॥ थिरता आत्म स्वजावमांरे, शुकल प्रथम शुजध्यान

॥ चरण० ॥ ७ ॥ सवि कषाय उपशम करेरे, एकादशम गुणठाण ॥ यथाख्यातउपशम चरण तेरे, शुक्ल प्रथम पद ध्यान ॥ चरण०॥ए॥ पूर्ण कषायना क्षय थकीरे, चरणखायक यथाख्यात ॥ बीजो पायो शुकलनोरे, थिरता अव्याघात ॥ चरण० ॥ ए ॥ बार तेर ने चौदमेरे, खायकचरण महंत ॥ घातीकर्म क्षये करीरे, होय सजोगि जगवत ॥ चरण० ॥ १० ॥ अघाती चउ क्षय करे रे, चतुर्दशम गुणठाण ॥ शैलेशी करि मुनी लहेरे, शाश्वत सुख निरवाण ॥ चरण० ॥ ११ ॥

॥ ढाल छवीशमी (२६) वीर जिनेश्वर वदन वचन आदर जनि प्राणी ॥ ए देशी ॥

प्रथम हएयो मिथ्यात विमल दर्शनपद पायो, मिथ्या प्रत्तिओ बंध हणी विरती घर आयो । अविरति प्रत्तिओ बध हणी परमाद नशाव्यो, लहि सत्तम गुणठाण प्रमादनो बध गमाव्यो ॥ १ ॥ क्षय करि पूर्ण कषाय चरणक्षायक थीर पायो, लहि बारमु गुणठाण दर्शनावरण खपाव्यो ॥ ज्ञानने वीर्यावरण हणी मुनि तेरमे आवे, घातीकर्म हणि एम अनत चतुक पद पावे ॥ २ ॥ कर्म सत्ता हणि जेह तेह फरि बंध न होवे, केवलदर्शनज्ञान त्रिलोक समयमा जोवे ॥ स्वपर अनत प्रजाय समय समकाले देखे, सर्व द्रव्य त्रिकाल प्रजाय समयमा अशेषे ॥ ३ ॥ बधना हेतू जेह तेह सघला क्षय कीधा, अयोगि शैलेशीकरण करी मुनि सिद्धा बुद्धा ॥ पूर्व प्रयोग गति परिणाम बध छेद असंग, समय एकमा उरधगती सम श्रेणी अजग ॥ ४ ॥ सिद्धि लहि सिद्ध क्षेत्र विषे रह्या सादि अनंत, पूर्णानंद विलास परमपद सहज स्वतत ॥ कर्मजूमिना उपन्या कर्मजूमिमा सिद्धे, कोइक देवना हरणथी अकस्मजूमे सिद्धे ॥ ५ ॥ सुणजो काल विचार सार जे छे ते दाखु, उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालचक्र ते जाखुं ॥ वीशे कोमाकोमिनुं दश दशे कहिए, अवसर्पिणी आरा चार चार उत्सर्पिणी लहीए ॥ ६ ॥ चार कोमाकोडी

अवसर्पिणिनो प्रथम छे आरो, त्रण कोडाकोडि वीजो त्रीजो वे कोमाकोडि धारो ॥ चोथो एक कोमाकोडिसागर धर्म प्रवृत्ति, तीर्थपती चोवीश तिहां होवे सिद्धि निवृत्ति ॥ ७ ॥ उत्सर्पिणिनो एक कोमाकोडि प्रथम छे आरो, तीर्थपती चोवीश होवे मोक्ष मार्ग सुधारो ॥ धर्म प्रवृत्ते सार सिद्धिपद एहमां लहिये, बाकी कोमाकोडी अढारमां सिद्धि न कहिये ॥ ८ ॥ उत्सर्पिणिने वीजे तीजे चोथे नवि सिद्धे, अवसर्पिणिने पहेले वीजे त्रीजे नवि सिद्धे ॥ मूल छे आरा चार कल्पना खटखट कीधा, छुषम छुषम वीचारि नेद दोय अधिक प्रसिद्धा ॥ ए ॥ धर्मविरहनो काल सदा एम वर्त्ते जोई, आदरिये जिनधर्म लही अवसर ढढ होई ॥ व्यवहारे एह नेद सिद्धे निश्चयथी सकाले, निश्चे सिद्धि स्वक्षेत्र व्यवहारे परक्षेत्रे निहाले ॥ १० ॥ महाविदेह मोजार उत् अवसर्पिणी नांहि, विजय एकसेंसाठे सदा नवि सिद्धे तांहि ॥ द्रव्य क्षेत्र सकाल नाव निज रम्ये रमिये, मनसुख शिवशुं केल करी नव-वन नवि नमिये ॥ ११ ॥

॥ ढाल (२७) सत्तावीशमी ॥ श्री सुपार्श्व जिन वंदीये ॥ ए देशी ॥

नरगति पणिंदि त्रस नव, सन्नी यथाख्यात चरित्त ललना ॥ खायकसमकितमां लहे, सिद्धे जिन जग मित्त ललना ॥ शिवरमणी रंगे रमो ॥ १ ॥ आखर अणाहारीपणुं, केवलदर्शन नाण ललना ॥ ए नव मार्गणामां लहे, शेष नहीं निरवाण ललना ॥ शिव० ॥ २ ॥ द्रव्यथी सिद्ध अनंत छे, लोक असंख्यमे नाग ललना ॥ एक जीव वा सर्वने, लोकांत स्थितिनो लाग ललना ॥ शिव० ॥ ३ ॥ क्षेत्र प्रदेशथी फरसना, अधिकी जाणो सार ललना ॥ एक सिद्ध आश्रित काल छे, सादिअनंत अपार ललना ॥ शिव० ॥ ४ ॥ सर्वे सिद्ध परुचयी, काल अनादि अनंत ललना ॥ सिद्धपणाथी नवि पके,

तेथी न अंतर हुंत ललना ॥ शिव० ॥ ५ ॥ सर्व संसारी जीवथी, सिद्ध अनंतमे नाग ललना ॥ खायक परिणामी जावमां, जीवपणुं गत राग ललना ॥ शिव० ॥ ६ ॥ थोडा कृत्रिम नपुंसक, सख्यगुणी स्त्री सिद्ध ललना ॥ तेहथी संख्यगुणा सदा, पूरूष होये सिद्ध ललना ॥ शिव० ॥ ७ ॥ सिद्धे जिनपद पामीने, ते जिनसिद्ध कहाय ललना ॥ सिद्धया पुंडरिक आदि जे, अजिनसिद्ध सुख पाय ललना ॥ शिव० ॥ ८ ॥ गणधर आदि सिद्धिया, तीर्थसिद्ध कह्या तेह ललना ॥ मरुदेवादिक जाणीए, अतिथ्थसिद्ध वे एह ललना ॥ शिव० ॥ ए ॥ गृहिलिंगे जरतादि सिद्धिया, वल्कलचिरिय परलींग ललना ॥ साधु सकल जे सिद्धिया, जाणो तेह स्वलींग ललना ॥ १० ॥ चदनादि स्त्री सिद्धिया, गौतम आदि पुलिंग ललना ॥ गागेय आदि सिद्धिया, कृत्रिम नपुसक लिग ललना ॥ शिव० ॥११॥ करकंडु नमि डुम्मुह आदि, प्रत्येकबुद्ध सिद्ध जाण ललना ॥ कारणथी प्रतिबूझीआ, शास्त्रे एम वखाण ललना ॥ शिव० ॥ १२ ॥ स्वयबुध कपिलादिक, सिद्धया जीव अनेक ललना ॥ बुद्धबोहि गुरु-बोधथी, सिद्धया राखि विवेक ललना ॥ शिव० ॥ १३ ॥ एक समय एक सिद्धिया, वीरजिन आदि अनेक ललना ॥ एक समय बहु सिद्धिया,रिपजादि सुविवेक ललना ॥ शिव० ॥ १४ ॥ नवमुं गुणठाणुं नवि लहुं, नपुसक ने नर नार ललना ॥ लिंग तीन ए त्यां लगे, आगे न लिंग विचार ललना ॥ शिव० ॥ १५ ॥ पूर्वपक्ख तिन लिग वे, नवमे वेदे लिग ललना ॥ ए त्रण लिंग रहित थया, सिद्धया कहिए अलिग ललना ॥ १५ ॥ लिंग जेद ए डव्यथी, जावथकी जिनलिंग ललना ॥ सिद्धे जीव अनत ए, नवि तिहा लिगने शींग ललना ॥ शिव० ॥ १७ ॥ सुत तत्त सार विचार ए, सदहशे नर नार ललना ॥ अर्द्धो पुद्गल मांही ते, लहेशे जवदधि पार ललना ॥ ॥ शिव० ॥ १८ ॥ निज पर तत्त्व विचारतां, जाय विजाव वलाय ललना ॥ मनसुख शिवसगे रहे, सादि अनंत सदाय ललना ॥ ॥ शिव० ॥ १ए ॥

॥ ढाल (२८) अठावीशमी॥ एसो कर्म अतुल बलवान जगतकुं पीरू रह्यो ॥ ए देशी ॥

एसे धीर वीर गंजीर परमपद सिद्ध किया, लही आतम तत्त्व अवाध मोहमल्ल चूर दिया ॥ ए आंकणी ॥ जरतचक्रि खटखंमनो, राज जोग सुविशाल ॥ जोगी जावी खीण एकमां, अनित्य अशुचि गुण-माल ॥ श्रेणि आरूढ जया ॥ एसे० ॥ १ ॥ लहि केवल बहु तारिया, लख पूरव लगे खेम ॥ लहि निरवाण सुख शाश्वतो, सादि अनंत थिर एम ॥ स्वगुणरस लीन रह्या ॥ एसे० ॥२॥ रिखवप्रजुनी नंदनी, ब्राह्मी सुंदरी दोय ॥ तप चरण ऊढ आदरी, शिवपद लहि सुखि होय ॥ विमल सुख जोगी रह्या ॥ एसे० ॥ ३ ॥ रिखवादिक चोविश जिना, राज सुजोग उदार ॥ जोगी चरण ग्रही लह्यु, केवल-ज्ञान श्रीकार ॥ परमपद सिद्ध किया ॥ एसे० ॥ ४ ॥ तीरथ थापी तारिया, गणधर मुनी अनेक ॥ चउविध संघ चलावियो, दाखी स्वपर विवेक ॥ परमपद सिद्ध किया ॥ एसे० ॥ ५ ॥ विचरी देश विदेशमां, ताख्या बहु नरनार ॥ धन्य वाणी जिनवरतणी, जवि शिवसुख आधार ॥ परम० ॥ एसे० ॥ ६ ॥ अन्यत्व जावना जावतां, मरुदेवा हुआ सिद्ध ॥ निरमल निज नवनिधि लही, विलसे अनंती रिध्ध ॥ परम० ॥ एसे० ॥ ७ ॥ अयोध्या नगरे हुआ, चक्री सागर नाम ॥ अजित जिनेश्वर समयमां, राजजोग सुखठाम ॥ परम० ॥ एसे० ॥ ८ ॥ पुत्र मरण सुणी ऊपन्यो, अति संवेग विराग ॥ अजितनाथ समीपे ग्रह्यु, चरण शरण पउजाग ॥ परम० ॥ एसे० ॥ ए ॥ ममता त्यागी मूलगी, ठेद्यो मोह गयंद ॥ आठ कर्मदल क्षय करी, पाम्या परमानंद ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १० ॥ सावथ्थी नगरी धणी, चक्री मघवा नाम ॥ रमणी देह अनित्य लखी, लीनो स्वगुण विराम ॥ परम० ॥ एसे० ॥ ११ ॥ चरण रमण ऊढ आदरी, पाम्यो त्रीजुं सर्ग ॥ नरजव लहि शुद्ध चरणथी,

लहेशे पद अपवर्ग ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १२ ॥ हस्तिनागपुर ऊपन्या, चक्री सनतकुमार ॥ इंद्रे रूप वखाणियु, जेनो अतुल अपार ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १३ ॥ अणसद्दहतो देव तिहां, आवी निरख्यु रूप ॥ कोमादिक अतर लखी, चेताव्यो तेणे नृप ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १४ ॥ सवेग रग नरनाहने, वलि ऊपन्यो वैराग ॥ रगे चारित्र आदर्युं, तन ममता करि त्याग ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १५ ॥ तप तपता लब्धि घणी, ऊपनी मुनिने तास ॥ इंद्रे धैर्य वखाणियु, आव्यो देव तेणे वास ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १६ ॥ करु परिक्षा एहनी, इम चिंती मन माह्य ॥ वैद्य वैद्य पोकारतो, आव्यो मुनि छे ज्याय ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १७ ॥ मुनि कहे रोगि तन मुज नहीं, पण छे रोग विजाव ॥ तेह मिटावा शक्ति तुज, दिशे न ईस्यो प्रजाव ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १८ ॥ इम कहि थुकथी आगली, करि चोपडी कोइ अग ॥ कोक वरण मटिने हुवो, निरमल कचन रग ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १९ ॥ स्पृहा नहीं जस देहनी, अवर स्पृहा नहि तास ॥ धैर्यवंत मुनि धन्य ते, वरते ज्ञान विलास ॥ परम० ॥ एसे० ॥ २० ॥ धैर्यवंत देखी मुनो, अति विस्मित हुओ देव ॥ वदि नमी मुनिराजने, देव गयो ततखेव ॥ परम० ॥ एसे० ॥ २१ ॥ चरण रमण तपस्या करीने, विचरे आतम जाव ॥ अते सलेखन करी, आयु मास रह्यु जाव ॥ परम० एसे० ॥ २२ ॥ सनतकुमारमा ऊपन्यो, विलसे दिव्य सुजोग ॥ महाविदेहे सिऊशे, धारी सयम योग ॥ परम० ॥ एसे० ॥ २३ ॥ शान्ति कुंथु अर च क्रिए, त्यागि सकल जवजोग ॥ परपरिणति ममता तजी, लीना निज गुण जोग ॥ परम० ॥ एसे० ॥ २४ ॥ महापद्मचक्रि नवम हुओ, लहि सवेग विराग ॥ सजम साधि सुगति लही, आएयो जवजल याग ॥ परम० ॥ एसे० ॥ २५ ॥ चक्रिहरिषेण कांपिलपुरे, पुरव पुण्य रिद्धि जोग ॥ पाम्यो विलसे सुख घणु, एक दिन हुओ उपयोग

॥ परम० ॥ एसे० ॥ २६ ॥ ए संसार असार छे, अनित्य सज्जन रिद्धि सर्व ॥ अशुचि जरी एह देहनो, कहो कीम कीजे गर्व ॥ परम० ॥ एसे० ॥ २७ ॥ रंगे सवेगे वर्यो, लीधुं चरण उदार ॥ केवल लहि मुक्ति वरी, पाम्यो जवदधि पार ॥ परम० ॥ एसे० ॥२८॥ राजगृहीमां ऊपन्यो, जयचक्री गुणवंत ॥ तृप्ति न देखी जोगथी, चेत्यो तेह महंत ॥ परम० ॥ एसे० ॥ २९ ॥ लाहि समकित संजम ग्रह्युं, धीर वीर गंजीर ॥ आठ करम मल क्षय करी, पाम्यो जवजल तीर ॥ परम० ॥ एसे० ॥ ३० ॥ अष्टम सुजुमचक्री थयो, करि अति राज्य-नो लोज ॥ सिंधु बुडो गयो सातमी, नरक जिहा दुःख फोज ॥ परम० ॥ एसे० ॥ ३१ ॥ द्वादशम चक्री हुओ, ब्रह्मदत्त जस नाम ॥ जोगातुरता वश पड्यो, चित्त न आव्युं ठाम ॥ परम० ॥ एसे० ॥३२॥ पूर्वे मित्र मुनि उपदिश्यो, पण नवि बूझ्यो लेश ॥ पहोंच्यो सातमी नर-कमां, जोगे विविध कलेश ॥ परम० ॥ एसे० ॥ ३३ ॥ गणधर वीर जिणंदना, वेद वादी अगीआर ॥ मान ठेली मद म्हेलिने, आप हुआ अणगार ॥ परम० ॥ एसे० ॥ ३४ ॥ वलि पुंडरिकादिक जली, चौदशें बावन धार ॥ श्री जिनशासन प्रेरता, करता बहु उपकार ॥ परम० ॥ एसे० ॥ ३५ ॥ चोविश जिनना ए सवे, सिद्धया प्राक्रम फोर ॥ सादिअनंतु सुख लह्युं, मनसुख शाश्वत ठोर ॥ परम० ॥ एसे० ॥ ३६ ॥

॥ ढाल (२९) ओगणत्रीशमी ॥ कराकन दराखनरो जावे ॥ कराकन० ॥ ए राग ॥

मोहमल खायक करि ऊटकोरे ॥ मोह० ॥ अष्ट कर्म दल फोज ध्यान थिर राखोने पटको ॥ ए आंकणी ॥ चंपा नयर सोहामणुं जीहो, श्रेणिकराय सुजाण ॥ धारणी देवी

तस घरे जीहो, शीलरूप गुणखाण ॥ मोह० ॥ १ ॥ तस कूखे अति पुण्यथी जीहो, उपन्यो मेघकुमार ॥ जोवन वय पामी करि जीहो, विलसे जोग उदार ॥ मोह० ॥ २ ॥ वीरजिणंद समोसरया जीहो, गुणशिल चैत्य मोझार ॥ चोत्रीश अतिशय दीपता जीहो, जगतजंतु हितकार ॥ मोह० ॥ ३ ॥ देशना सुणवा आवियो जीहो, मेघकुमर तेणिवार ॥ वर्द्धमान जिन उपदिशे जीहो, सुत चरण जगसार ॥ मोह० ॥ ४ ॥ पंचास्त्रव करी जीवने जीहो, बंधे अरुविध कर्म ॥ चउगति जवकतारमा जीहो, दुःख सहे विणधर्म ॥ मोह० ॥ ५ ॥ तजि आस्त्रव संवर ग्रहे जीहो, सेवे कारण तीन ॥ सम्यकदरशन ज्ञानने जीहो, चरण शुद्धातम अभिन्न ॥ मोह० ॥ ६ ॥ ए त्रण कारण सेवतो जीहो, लहे जीव निरवाण ॥ ते माटे नरजव लही जीहो, श्रोता थाओ सुजाण ॥ मोह० ॥ ७ ॥ इम निसुणी प्रभु देशना जीहो, चेत्यो मेघकुमार ॥ अनुज्ञा मात पिता तणी जीहो, लेइ लीयो संयम भार ॥ मोह० ॥ ८ ॥ संथारे सूते थके जीहो, मुनि पग फरसनु दुःख ॥ मानी मनमां चिंतवे जीहो, मलेश समो लिहां सुख ॥ मोह० ॥ ए ॥ पूछी वीर जिणंदने जीहो, जाइश घर परजात ॥ निज घरमां रहेतां थकां जीहो, होय नहीं उपघात ॥ मोह० ॥ १० ॥ सूरज उगे आविने जीहो, वीरजिनने कहे एम ॥ जो मुजने अनुज्ञा दीयो जीहो, तो घर जाउं खेम ॥ मोह० ॥ ११ ॥ वीर कहे मेघा सुणो जीहो, पूर्वे तु गज एक ॥ दावानल वनमां लग्यो जीहो, दुखिया जीव अनेक ॥ मोह० ॥ १२ ॥ पग उपाडे खणतां थकां जीहो, ससलो आव्यो एक ॥ तुज पग स्थाने ते रह्यो जीहो, दया राखि ते विवेक ॥ मोह० ॥ १३ ॥ त्रण दिनमां दव उपशम्यो जीहो, गयो ससलो निज थान ॥ पण तुज पग अटकी रह्यो जीहो, पाम्यो दुःख असमान ॥ मोह० ॥ १४ ॥ एम केइ तीरग जवविषे जीहो, राखि दया तें धीर ॥ साधु चरणथी दूमणो जीहो, केम हुओ तुं अधीर ॥

मोह० ॥ १५ ॥ एम जिन वचन सुणी लह्यो जीहो, अति दृढ चित्त सवेग ॥ चरणे थिर परिणति करी जीहो, राख्यो एक विवेक ॥ मोह० ॥ १६ ॥ गुणरत्नसंवत्सर आदरी जीहो, संलेखन एक मास पूर्णायु करि ऊपन्यो जीहो, विजयविमाने खास ॥ मोह० ॥ १७ ॥ बत्रीश सागर आयुमां जीहो, दिव्य भोग सुविलास ॥ विलसी पूरण आउखे जीहो, महाविदेह नर वास ॥ मोह० ॥ १८ ॥ चरण लही तिहां सिझशे जीहो, मेघकुमरनो जीव ॥ आठ कर्ममल क्षय करी जीहो, लहेशे शाश्वत शीव ॥ मोह० ॥ १९ ॥ आठ वरस वयमां लियो जीहो, अतिमुक्ते संजम भार ॥ पत्र नाव करि नदी विषे जीहो, खेले बाल अणगार ॥ मोह० ॥ २० ॥ थिविरे रमतो देखियो जीहो कह्युं वीरजिनने एम ॥ शिष्य तुमारो सिझशे जीहो, अथवा होशे केम ॥ मोह० ॥ २१ ॥ वीर प्रभु कहे सिझशे जीहो, चरमशरिरी एह ॥ एहने तुम कांइ मत कहो जीहो, छे एह गुणनो गेह ॥ मोह० ॥ २२ ॥ एक दिन वीर जिनेश्वरु जीहो, अतिमुक्तने कहे एम ॥ संजम धारी तुं थयो जीहो, दया न राखे केम ॥ मोह० ॥२३॥ वचन सुणी श्री वीरनां जीहो, प्रतिक्रमतां बहु दोष ॥ शुक्लध्यान केवल लह्यु जीहो, चार अनंतां पोष ॥ मोह० ॥ २४ ॥ छेदी आठे कर्मने जीहो, पाम्यो पद निरवाण ॥ मनसुख समजावे सहे जीहो, शाश्वत सूख अमान ॥ मोह० ॥ २५ ॥

॥ ढाल (३०) त्रीशमी ॥

करकंडु नमिराजजी रे, निग्गइ डुम्मुह नरिंद ॥ कारणथी प्रतिबूझिया रे, धार्युं चरणानद ॥ निज गुण रंग लाग्यो रग लाग्यो चोल मजीठ, चरणे रंग लाग्यो ॥ ए आंकणी ॥ १ ॥ केवल लहि सिद्धि वर्या रे, एम केइ प्रत्येकबुद्ध ॥ वीरज फोरी सिद्धिया रे, जगत जंतु अविरुद्ध ॥ निज० ॥ २ ॥ नमिराजा विदेहनो रे, करकंडु

देश कलिंग ॥ दुम्मुह देश पचालनो रे, निग्गइ गंधारी ठींग ॥ निज०॥ ॥ ३ ॥ दधिवाहन राजा सुता रे, चंदनबाला नाम ॥ ब्रह्मचारी बालक पणे रे, ग्रह्वि चारित्र विराम ॥ निज० ॥ ४ ॥ गुरुणी बहु अज्ञातणी रे, बहु नविने आधार ॥ संजम साधि सिद्धिया रे, पाम्या नवजल पार ॥ ॥ निज० ॥ ५ ॥ रहेनेमी प्रतिबूझिओ रे, राजुल चरण महंत ॥ धीर वीर प्राक्रम करी रे, आएयो नवदधि अंत ॥ निज० ॥ ६ ॥ रहेनेमी सिद्धि वस्या रे, ते राजुल उपकार ॥ राजुल वचने थिर थई रे, साध्युं संजम सार ॥ निज० ॥ ७ ॥ सिद्धया उदायन रुपी रे, तप तपि निज गुण लीन ॥ अनुजव रस आस्वादमां रे, अष्ट कर्म करि खीण ॥ निज०॥ ॥ ८ ॥ दश श्रावक श्री वीरना रे, आणंदादिक धीर॥ परिसह तापे नवि चल्या रे, धरि व्रत गुण गंजीर ॥ निज० ॥ ९ ॥ सोहम कल्पे ऊपन्या रे, वलि लहेशे ते सिद्ध ॥ एम जे व्रत दृढ पालशे रे, ते पामे नवनिद्ध ॥ निज० ॥ १० ॥ अनुत्तर वासी दश हुवा रे, श्री जिन धर्म पसाय॥ व्रत धारी दश सिद्धिया रे, वीरज फोरी अमाय ॥ निज० ॥ ११ ॥ एम अनेक सिद्धि वस्या रे, पुरुष पराक्रम कीध ॥ तजि प्रमाद व्रत आदरे रे, ते पामे निज रिद्ध ॥ निज० ॥ १२ ॥ सिद्धया सिद्धे सिद्ध-शे रे, समगुण सेवे जेह ॥ परमज्ञान मनसुख लही रे, शिव संगे रहे तेह ॥ निजगुण रंग लाग्यो० ॥ १३ ॥

॥ कलश ॥

गायो गायो रे में तत्त्व सुधारस गायो ॥ निजपर तत्त्व लह्यु जेणे जगमां, चरण लही शिव पायो ॥ परमानद विलास प्रगट करि, पूरण ब्रह्म समायो रे ॥ में तत्त्व० ॥ १ ॥ "दाहोद" श्रावण शुक्ल दशमे दिन, आनंद हरख वधायो ॥ "कपूरा बाई" आग्रहथी, ए अधिकार बनायो रे ॥ में० ॥ २ ॥

लीधी मदद करी "शाह गीरधर," निजपर हेत उपायो ॥ संघ सकल मंगल शिव कारण, जणजो गुणजो सदायो रे ॥ मैं० ॥ ३ ॥ जवलग सिद्ध समाधि विलसे, तवलग रहो ए ग्रंथो ॥ जविजन तत्त्व अभ्यास करीने, वर्त्तो वर शिव पथो रे ॥ मैं० ॥ ४ ॥ श्रोगणीश पांसठ बुरू बुद्धि लखि, शिवमग प्रेरण काजे ॥ मनसुख समजावे शिव संगे, विलसे सदा शिवराजे रे ॥ मैं० ॥ ५ ॥

॥ संपूर्ण ॥ श्रीरस्तु ॥



॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

॥ अथ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी विरचित विहरमान जिन स्तवनानि बालावबोध सहित ॥

॥ दोहरा ॥

जयति ज्योति शुद्धात्मनी, करति परम उद्योत;
दूर करे सहु विघ्नचय, करे अखिल सद्बोध. (१)
दुःखहर सुखकर सद्गुरु, " श्री मनसुख " मति पूर,
स्वपर समय ज्ञाता सदा, मम मति करे सनूर. (२)
स्याद्वाद जिन वचनने, वंदु धरि सन्मान,
हृदय वदन राखुं सदा, सहज लहु शुभ ध्यान. (३)
देवचंद्र मुनिवर रचित, स्तवन वीश अभिराम,
विहरमान जिनवर तणा, अति गंभिर गुणधाम. (४)
पूर्ण अर्थ में नवि लह्यो, पण निजमति अनुमान,
अर्थ लखु हु एहनो, हृदय धरि सन्मान (५)
द्रव्यानुयोग दूरे करे, करम भरमनो खेल;
सुमति सखि आवी मले, लहे सुगुण रगरेल. (६)
शिवमगमा पग ते धरे, करे सुतत्त्व विचार;
शिव संपति शाश्वत लहे, तरे सहज संसार. (७)
ध्यावे ते पावे सदा, परम महोदय सार;
तिणे धरि थिर अप्रमत्तता, शिव साधो जयकार. (८)

प्रथम श्री सीमधरजिन स्तवन ॥ सिद्धचक्रपद वदो ॥ ए देशी ॥

॥ श्री सीमंधर जिनवर स्वामी, वीनतडी अवधारो ॥ शुद्ध धर्म प्रगट्यो जे तुमचे, प्रगटो तेह अम्हारो रे स्वामी, विनवियें मन रंगे ॥ १ ॥

अर्थ.--सहज अनंत सुख निधान शुद्धात्म परिणति, तेनो घात करनार मिथ्यात अज्ञान अने कषाय रुप अनादिकालना महान् शत्रुओने जेणे सम्यक्पराक्रम वडे जीत्या छे ते " जिन " मां वर अर्थात् प्रधान शिरोमणि तथा शारीरिक अने मानसिक अनंत असह्य दुःखना हेतुभूत आ भयानक संसार समुद्रमा परिभ्रमण करी दुःखी थता दीन जीवोनु परम करुणाभाव वडे रक्षण करनार तथा अन्य जीवोने पण अहिंसानो उपदेश आपी तेओ पासे पण रक्षण करावनार तथा अबाध्य सिद्धांत वडे समीचीन मोक्षमार्गनो उपदेश करी आत्मिक सहज स्वतंत्र परमानंदना दातार होवाथी " स्वामी " तथा अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख अने अनंतवीर्यरुप आत्म लक्ष्मीना मालीक, देहातीत आत्मसत्ताभूमिमा निरंतर विहरमान हे श्री सीमंधर देव ! आपने समर्थ जाणी आप प्रति अत्यंत उल्लसित चित्ते नम्रभावे विनती करुं छुं के सरस स्वर जलना प्रवाह वडे ज्ञानावरणादि कर्म रुप मल धोवाई जवाथी स्फटिक मणि समान अत्यंत शुद्ध केवलज्ञान दर्शनात्मक जेम आपनो स्वधर्म सर्वथा प्रगट--व्यक्त थयो छे " तेमज अमारो पण सत्तागते रहेलो (ज्ञानावरणादि कर्म वडे लिप्त थयलो) लोकालोक प्रकाशक अनंत सुखनिदान आत्मधर्म संपूर्ण रीते प्रगट थाओ " ए उक्त विनती--प्रार्थना हे भगवंत ! अमो दीन उपर करुणादृष्टी करी अवधारो--चित्तमा धारो ॥ १ ॥

जे परिणामीक धर्म तुमारो, तेहवो अमचो धर्म ॥ श्रद्धा
भासन रमण वियोगे, वलग्यो विभाव अधर्म रे॥स्वामी०॥२॥

अर्थ--सर्वे द्रव्य " उत्पाद् व्यय ध्रौव्य युक्त सत् " लक्षणवंत होवाथी प्रति समये परमभाव अनुयायी नवा नवा पर्याये परिणमे छे अर्थात् वर्त्तमान पर्याय तीरोभूत थाय छे अने नूतन पर्यायनो आवीर्भाव थाय छे अने द्रव्य ध्रुव रहे छे तेथी आपनो आत्म द्रव्य, ज्ञान

दर्शन चारित्रादि अनंत शुद्ध पर्याय रुप निरंतर परिणमे छे–सहज परमानंदना अनुभवमा निमग्नपणे वर्त्ते छे तेमज अमारो आत्म द्रव्य पण कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नये (शुद्ध समह नये) आपना सदृश सत्तावंत छे " जारिस सिद्ध सहावो तारिस भावो हु सव्व जीवाणं " तथापि अनादिथी कनकोपल न्याये अशुद्ध होवाथी शुद्ध परिणतिनी श्रद्धा (प्रतीती), भासन (विज्ञान), रमण–आचरण, स्थिरताना वियोगथी मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र रुप अधर्मे परिणमे छे अर्थात् आत्माथी परवस्तु जे पुद्गल द्रव्यथी बनेला विलक्षण धर्मवंत शरीरमा आत्मपणानी श्रद्धा करे छे, तेनेज आत्म रुप जाणे छे तेथी ते पौद्गलीक भावमा पोताना आत्म परिणामने स्थित करे छे–तल्लीन करे छे एटले पुद्गल द्रव्यमां इष्टानिष्ट कल्पना करी अनिष्टने दूर करवामां अने इष्टने प्राप्त करवामां तथा स्थिर राखवामा पोतानी आत्म परिणतिने निरंतर रोकी राखे छे ॥ २ ॥

वस्तु स्वभाव स्वजाति तेहनो, मूल अभाव न थाय । पर विभाव अनुगत परिणतिथी, कर्मे ते अवरायरे स्वामी॥वि०॥३

अर्थ–द्रव्य, अस्तित्व नास्तित्व स्वभाववंत होवाथी अन्य द्रव्यनो परिणाम तेमां कदापि काले प्रवेश करी शके नहीं अने अस्तिपणे रहेला जे अनंत अन्वय गुणो तेमांथी कोइनो पण कोइ पण काले अभाव थाय नहीं कारणके द्रव्य मात्र द्रव्यार्थिक नये नित्य छे अने " तद्भावाव्ययं नित्यम् " एम नित्यनी व्याख्या श्री तत्त्वार्थ सूत्रमां प्रतिपादन करेल छे तथा वली " अण्णोण्ण पविसंता, दिंता ओगास मण्ण मण्णस्स । मेलंताविय णिच्चं, सग सग भावं ण विजहंति " ए न्याय अनुसारे आत्मामां रहेला ज्ञान दर्शन

चारित्रादिनो समूल अभाव थवानो बिलकुल असंभव छे तथा वली पंचास्ति द्रव्य मात्र ऊर्धता तथा तिर्यग्प्रचयवंत होवाथी पण तेमज सिद्ध थाय छे परंतु अनादि अज्ञान वशे आत्म परिणतिने परकर्तृत्व, परभोक्तृत्व, परग्राहकत्व, परव्यापकत्व, पररमणता, परआधाराधेयता आदि परानुयायी पणे प्रवर्त्तावथी शुद्धात्म परिणति ज्ञानावरणादि दुष्ट अष्ट कर्मवडे अवराय छे—व्याघात पामे छे एम शुद्ध परिणतिनो वियोग रहे छे ॥ ३ ॥

जे विभाव ते पण नैमित्तिक, संतति भाव अनादि। परनि-
मित्त ते विषय संगादिक, ते संयोगे सादिरे स्वामी॥वि०॥४॥

अर्थ—मनाज्ञ अमनोज्ञ पुद्‌गलोक विषयमा इष्टानिष्ट कल्पना करवाथी, धन धान्यादि सचित्त अचित्त मिश्र परिग्रहमा ममत्व बुद्धि ग्रहणबुद्धि करवाथी आत्मा राग द्वेष रुप विभावे परिणमे छे तेथी ते विभाव नैमित्तिक छे तथा सादि सांत छे तथापि प्रवाहे संतति अनादिनो छे जेम आपणे वर्त्तमान समये एक पुरुषने जोइये छिये ते पुरुष तेना पितावडे उत्पन्न थयेल छे तेथी ते आदि सहित छे अने तेनो नाश पण छे तेथी ते पुरुष सादिसांत भागे छे परंतु ते पुरुष तेना पिताथी उत्पन्न थयो छे तेम तेनो पिता पण वली तेना पिताथी उत्पन्न थयो छे एम तेनो वंश अनादि सिद्ध छे ॥ ४ ॥

अशुद्ध निमित्ते ए संसरता, अत्ता कत्ता परनो ॥ शुद्ध
निमित्त रमे जब चिद्‌घन, कर्त्ता भोक्ता घरनो रे स्वामी॥वि०॥५॥

अर्थ—ज्ञानावरणादि कर्म उदय रुप अशुद्ध निमित्त पामी अज्ञान मिथ्यात कषाय रुप अशुद्ध परिणामे परिणमी भव समुद्रमा संसरण—परिभ्रमण करता आत्मा परद्रव्यादिकना कर्त्तापणानु ममत्व, अभिमान करेछे अर्थात् मे अमुक जीवने मार्यो, अमुकने उगार्यो, अमुकने सुखी कर्यो, अमुकने दुःखी कर्यो, अमुकने राख्यो, अमु-

कने चलाव्यो तथा घटपटादिक मे बनाव्या अथवा घर हाटादिकनो में नाश कर्यो, अमुक इष्ट पदार्थोनो मे लाभ मेळव्यो, तेओने में माहरा भोगमां लीधा, तेउने में राख्या, दूर जवा नहि दीधा, अमुक वस्तु मे शुभ मनोज्ञ करी, अमुक वस्तु में अशुभ अमनोज्ञ करी, एम हु करुं छुं, भविष्यतमां एम करीश ए आदि पुद्गल रुप त्रण योगनी क्रियामां ममत्व करे छे एम अज्ञान वशे पर द्रव्यादिकनो कर्त्ता बनी पुनः ज्ञानावरणादि नवा कर्म बांधे छे अने वली ते बांधेला कर्मना उदय काले पण उपर प्रमाणे वर्त्ती पुन ज्ञानावरणादि कर्म बांधे छे एम परना कर्त्तापणानु ममत्व करी निरंतर सात आठ कर्म बांधतो आ संसार समुद्रमां परिभ्रमण करे छे अने जन्म जरा मरण तथा रोग शोक भय आदि अनेक दुःसह दु खनो अमाप भार पोताना शिरउपर उपाडी ले छे.

पण ज्यारे सम्यक्ज्ञान सम्यक्दर्शन सम्यक्चारित्र रुप शुद्ध निमित्तमां रमण करे अर्थात् तेमां तल्लीन थाय, पोतानी आत्म परिणतिने तेमां स्थित करे, पर द्रव्यादिथी उदासिन्न वृत्ति धारण करे त्यारे पोतानाज स्वभावनो कर्त्ता भोक्तादि थाय, निर्मल प्रशमरतिनो विलास पामे अने राग स्नेहथी रहित वर्त्तवाथी कर्म रुप रज तेने स्पर्श करवा पामे नहि तथा पूर्वे बांधेला संचित कर्मनो क्षय निर्जरा थाय ॥ ५ ॥

जेहना धर्म अनंता प्रगट्या, जे निज परिणति वरिया ॥ परमातम जिन देव अमोही, ज्ञानादिक गुण दरियारे स्वामी०॥६

अर्थ—आत्मानो परमभाव जे ज्ञान, तदनुयायी दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य, कर्त्तृता, भोक्तृता, ग्राहकता, व्यापकता, रक्षणता, रमणता, आधाराधेयता विगेरे अनंत स्वधर्मो जे अनादिकालथी कर्ममलवमे लिप्त थएला हता—बाधकभावे परिणमता हता, ते शुक्लध्याननी

तिह्ण थांच वळे कर्ममल जस्म थइ जवाथी संपूर्ण प्रगट थया अर्थात् निरावाध-स्वतत्र पणे पोतपोताना कार्यजावे परिणमवा लाग्या एटले शुद्ध परिणति रुप अनुपम लक्ष्मीने वर्या-तेना स्वामी थया तेज परमात्म जिनेश्वर देव, क्रोध मान माया लोज आदि मोहनीय कर्मनी अष्ठावीश प्रकृतिथी रहित तथा ज्ञानादिक गुणना दरिया अर्थात् ज्ञानादि गुणना अखूट निधान छे एटले जेम दरियामाथी जल खूटे नहि तेम तेमनामाथी कोइ पण काले ज्ञानादि गुणो-पर्यायो खुटवाना-क्षीण थवाना नथी, अनंतकाल सुधी एक सरखी रीते परिणम्याज करशे ॥ ६ ॥

अवलंबन उपदेशक रीते, श्री सीमधर देव । जजीये शुद्ध निमित्त अनोपम, तजीये जव जय टेवरे स्वामी॥ वि० ॥ ७ ॥

अर्थ-श्री सीमधर देवमा साध्य पद पूर्ण पणे प्रगट होवाथी तेज पुष्ट-अनुपम निमित्त हेतु छे (साध्य साध्य धर्म जेमाहे होवेरे ते निमित्त अति पुष्ट, तथा च-पुष्ट हेतु जिनेंद्रोय, मोक्ष सद्भाव साधने) तथा सर्वज्ञ अने वीतराग होवाथी आत्मोक्षमार्गना साचा उपदेशक तथा सर्वे आत्मरिद्धि संपूर्ण पणे प्राप्त होवाथी परम आधार-जव समुद्रमा बूडता जव्य प्राणीयोने जहाज समान, जवाटवीमा सथ्थवाह समान छे. न्याय पूर्वक एम सिद्ध होवाथी तेउनी जक्ति करीये अर्थात् तेमनी आज्ञा आपणा शिर उपर चढावीए-सन्मानीये कह्यु छे के " आणाकारी जत्तो, आणा छेइर्ड अजत्तोत्ति " माटे तेमनी आणा प्रमाणे वर्त्तीए- मिथ्यात, अज्ञान, कषाय,प्रमाद, अविरति रुप जयंकर जव भ्रमणनी टेवनो त्याग-परिहार करीये ॥ ७ ॥

शुद्ध देव अवलंबन करतां, परिहरीये परजाव । आतम धर्म रमण अनुजवतां, प्रगटे आतम जावरे स्वामी०॥८॥

अर्थ–जे अज्ञान कषाय विषय आदि दूषणोथी जरपूर छे अर्थात् जे सर्वे द्रव्यना त्रिकालवर्त्ती पर्यायोने हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष पणे जाणी शकता नथी, पोताना आत्म द्रव्यने पण सर्व नये प्रत्यक्ष पणे जाणता नथी तथा तेथी पोतानी आत्म रिद्धिथी परागमुख होवाथी निरतर जे विषय कषायने आधिन वर्त्ते छे, चाह दाहमा प्रज्वलीत थइ रह्या छे, जव समुद्रमां बूडेल छे तेमा देवपणुं केम मनाय ? पण जे अज्ञान आदि समस्त अधर्म रुप दूषणोथी सर्व नये मुक्त होवाथी परम निष्कलंक शुद्ध देव छे. ते श्री सीमंधर स्वामीनुं शरण ग्रहण करता परद्रव्यनी ममता, ग्राहकता, रमणता आदि समस्त परजावनो परिहार–त्याग थाय अने ज्ञान दर्शन चारित्र रुप शुद्धात्म जावमां रमण करतां–तेमा तल्लीन थतां-तृप्त थतां–सतुष्ट थतां–तेनो आस्वादन अनुजव लेता ज्ञानादि आत्म धर्म, कर्म लेपथी रहित–शुद्ध प्रगट थाय ॥ ८ ॥

आतम गुण निरमल नीपजतां, ध्यान समाधि स्वजावे ॥
पूर्णानंद सिध्धता साधी, देवचंद्र पद पावेरे स्वामी० ॥९॥

अर्थ–शुद्ध साध्य सन्मुख लक्ष राखी (यस्मात् क्रिया प्रतिफलन्ति न जाव शुन्या) धर्म शुक्लध्याननुं सेवन करतां तज्जन्य समाधिमां लीन थतां आत्म गुण निर्मल अर्थात् मल रहित-परमपवित्र थाय एम पूर्णानंदमय सिद्ध पद साधी देवमा चंद्रमा समान अर्थात् देवाधिदेवपदने प्राप्त थइए ॥ ९ ॥

॥ अथ द्वितीय श्री युगमंधर जिन स्तवन ॥ नारायनी देशी ॥

श्री युगमंधर विनवुरे, विनतमी अवधाररे दयालराय ॥
ए पर परिणति रंगथीरे, मुजने नाथ उगाररे ॥ द० श्री० ॥ १

अर्थ–प्राणातिपात विरमण, मृषावाद विरमण, अदत्तादान विर-

मण, मैथुन विरमण तथा परिग्रह समह विरमण रुप पंचमहाव्रत तथा क्षाति, मार्दव, आर्यव, मुक्ति, तप, सयम, शौच, सत्य, आकिंचन, तथा ब्रह्मचर्य आदि सर्वे धर्मोमा अनुवृत्ति धरावनार अहिंसा–दया धर्म छे जेमा सर्वे धर्मनो समावेश थइ जाय छे उक्तच–सव्वाउवि नइउ, जह सायरंमि निवमति । तह भग, वई अहिंसिं, सवे धम्मा समिल्लन्ति ॥ तथा जेने सर्व मतावल बीउ स्विकारे छे–सन्माने छे " अहिंसा परमो धर्म, हिंसा सर्वत्र गर्हिता " परतु जेन शिवाय अन्य मतावलबीउ अहिंसा–दयामा वर्त्ती शकता नथी कारणके तेउ हिस्य हिंसा तथा हिंसाना कारणोने यथार्थ सपूर्ण उलखता नथी

सर्वज्ञ तीर्थंकर देव द्रव्यहिंसा तथा भावहिंसा एम हिंसाना बे प्रकार प्ररुपे छे–पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजस्काय, वायुकाय अने वनस्पतिकाय एम पच स्थावरकायिक एकेंद्रि जोवो तथा बेंद्रिय आदि त्रस जीवोना पांच इंद्रियो, मनोवल, वचनवल, कायवल, श्वासोश्वास तथा आयुप्राण ए दश द्रव्यप्राणने मारवुं, कापवु, छेदवु, दु खववु तथा तेनो वियोग करवो ते द्रव्यहिंसा छे, पोताना द्रव्यप्राणनी हिंसा करवी ते स्वद्रव्यहिंसा अने अन्य जीवना द्रव्यप्राणनी हिंसा करवी ते परद्रव्यहिंसा छे तथा ते कायमा ममत्व करी रहेला जीवोना ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य, उपयोग विगेरे भावप्राणनो मिथ्यात, अज्ञान तथा कषाय वके घात वो ते भावहिंसा छे अर्थात् मिथ्योपदेशादिवडे कोइ जीवना गुणनो घात करी मिथ्यात्व रुप परिणमाववो, सम्यक्ज्ञानथी ज्ञान रुप परिणमाववो तथा क्षमा गुणनो घात करी तथा विनय गुणनो घात करी मान रुप परि- गुणनो घात करी मायारुप परि-

णमाववो, मुक्ति गुणनो घात करी लोभ रुप परिणमाववो, ए विगेरे तेनी शुद्ध परिणतिनो घात करी अशुद्ध परिणामे परिणमाववो ते भावहिंसा छे. तेमा पोताना भावप्राणनी हिंसा करवी ते निजभावहिंसा छे अने परजीवना भावप्राणनी हिंसा करवी ते परजीव भावहिंसा छे अने मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, प्रमाद तथा योगनुं सेवन करवुं ते हिंसानां कारणो छे ते कारणो सेववाथी हिंसा थाय छे कह्यु छे के " कारण जोगे कारज निपजे रे, एहमां कोइ न वाद। पण कारण विणुं कारज साधीए रे, ते निज मति उन्माद " एम स्याद्वाद नय युक्त जिन प्ररूपित द्रव्यहिंसा तथा भावहिंसाना स्वरुपथी अजाण तथा तेना कारणोथी अजाण मिथ्याद्रष्टी जीवो एक समय मात्र पण अहिंसाभावमा वर्त्ती शकवाने असमर्थ छे तथापि मोहमथमां बेभान थयेला हिंसामां वर्त्तता छतां हमे दया पालीए छीए–दयालु छीए एम पोताना जीव्हाग्रथी जल्पना तथा मनमां कल्पना करे छे पण तेथी शुं ? साची दया पाल्या शिवाय तेना परमोत्तम फल मोक्ष सुखने पामी शके नाहि.

पण जे स्याद्वाद नय युक्त जिन प्ररूपित द्रव्यहिंसा तथा भावहिंसाना स्वरूपनुं तथा तेना कारणोनुं सम्यक्ज्ञान धरावे छे–जे परमोत्तम फलना उत्सुक छे, हिंसानु फल जे भवभ्रमण तेथी उद्विग्नभयभीत छे एवा सम्यक्द्रष्टी जीवोज अहिंसामां वर्त्ती शकवाने समर्थ छे "(पढम नाण तओ दया)" जे जे अंशे अहिंसाभावमा वर्त्ते छे तेने तेटला अंशे अहिंसक कहिये माटे चोथा गुणस्थानथी मान्डी उपला उपला गुणस्थानोमा अहिंसकदशा नय प्रमाण अधिकी अधिकी वर्त्ते छे पण हे भगवंत! आप हिंसाना सर्वे कारणोथी दूर वर्त्ती होवाथी सर्वोत्कृष्ट तथा सर्वदा अहिंसक भावमा वर्त्तो छो, राग द्वेष रहित होवाथी सर्वे जीवो उपर एक सरखी रीते दया राखोछो, तेथी सर्वे

दयालु जीवोमा आप राजा समान शिरोमणि छो, तेथी हे दयालराय श्रीयुगमधर स्वामी ! करुणा निधान तथा समर्थ जाणी आप प्रति विनंती उचारु छु कारणके दयालु तथा समर्थ होय तेज सेवकनी विनंति मनोर्थने परिपूर्ण करे माटे मुज सेवकनी विनती करणा भावे चित्तमा धारी–" ए परपरिणति रगथी मुजने नाथ उगार"–हे नाथ ! हे स्वामी ! अनादि विभाव वशे पुद्गल पर्याय जे शरीरादिक तेमा अहपणु मानी ते उपर अत्यत राग करी तेमा तल्लीन थइ रह्यो छु तथा ते शरीरादिकने प्रशस्त–हितकारी कुटुम्बी जनो मित्रवर्ग नोकर चाकर तथा धन धान्य मणि औषधी आवास आदि अनेक पुद्गल पर्यायोमा तथा पंचेंद्रिना अनेक मनोज्ञ विषयमा राग वशे तल्लीन थइ रह्यो छुं, तेने मेलववा राखवा माटे अनेक प्रयास करु छु, अनेक विकल्प जाल रचु छु, तेनी तृष्णारूपी आगमा निरतर प्रज्वलित थाउ छुं, तेनो वियोग थाय ते माटे भय भोगवु छु, तेना वियोगे शोक सताप आक्रद विगेरेनो भोक्ता बनु छु, अने पोतानी सहज अनंत स्वतत्र, अप्रथग् भूत स्वक्षेत्रवर्त्ती अविनश्वर सुख निदान आत्म परिणतिथी वियोगी रहुं छुं माटे हे भक्त वत्सल प्रभु ! एवी दुष्ट परपरिणतिना रगथी मुजने हवे शीघ्रमेव उगारो ॥ १ ॥

कारक ग्राहक भोग्यतारे, में कीधी महारायरे, दयालराय ॥
पण तुज सरीखो प्रभु लहीरे, साची वात कहायरे, दया० ॥२

अर्थ–सर्वे द्रव्यो अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व अगुरुलघुत्व अने सत्व स्वभाववत होवाथी पोताना गुणपर्यायोना क...
व्यापक आदिपणे पोतानी सत्ताभूमिमा सर्वदा वर्त्ते...

"क्षेत्र काल भावानाम् एक समुदायि...
भावनुं एक समुदायिपणु ते द्रव्यत्व छे ...
परस्पर अभेद छे–अप्रथग् भूत छे तेथ...

क्षेत्र काल भावमां प्रवेश करवा सर्वथा असमर्थ छे माटे निश्चय नये कोइ द्रव्य अन्य द्रव्यनो कारक कर्त्ता, भोक्ता, ग्राहक, व्यापक, आधार, आधेय विगेरे थइ शके नहि, तथापि जीवमां अनादि विभाव स्वभाव होवाथी हुं मिथ्यात अज्ञान वशे परपरिणति–पुद्गल पर्यायो विषे कर्त्ता, भोक्ता, ग्राहक, व्यापक आदि बुद्धि करी मारी आत्मीक स्वतंत्र रिद्धियी वियोगी रह्यो पण हे युगमधर स्वामी! आपने संपूर्ण नये पोताना परिणामना कर्त्ता, ज्ञाता तथा तेमांज रमण करनार तथा तेनोज आस्वादन–अनुभव लेनार होवाथी साचा प्रभु जाणी आप प्रति हुं मारी साची कथा निवेदन करुं छुं ॥ २ ॥

यद्यपि मूल स्वभावमेरे, पर कर्त्तृत्त्व विभावरे ॥ दयालराय ॥ अस्ति धर्म जे माहरोरे, एहनो तथ्य अभावरे ॥ दयालराय ॥ श्री० ॥ ३ ॥

अर्थ–अनादि कालथी जो के माहरा ज्ञान दर्शन चारित्ररुप आत्म गुणमा परकर्तृत्वादि विभावनो संश्लेष थयेलो छे तेथी हुं अनादिकालथी परकर्तृत्वादि विभाव रुप परिणमुं छु तो पण सत्तागते रहेला माहरा अस्तिधर्ममा–सामान्य स्वभावमा खरेखर ते विभावनो अभाव छे कारण के सामान्य स्वभाव सदा निरावरण छे, माटे जो हुं माहरा अस्तिधर्म तरफ लक्ष आपुं तेने प्रगट करवा रूचि धरू तो निश्चय कर्मजन्य उपाधि रूप विभावनो समूल नाश करी संपूर्ण शुद्ध सुखनिधान अस्तिधर्मनो भोगी थाउ, सादिअनतकाल सुधी ए अवस्थामां अवस्थित रहु ॥ ३ ॥

पर परिणामिकता दशारे, लहि पर कारण योगरे, दयालराय ॥ चेतनता परगत थईरे, राची पुद्गल भोग रे, दयालराय ॥ श्री० ॥ ४ ॥

अर्थ—ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म तथा भावकर्मना उदय वशे पर परिणामिक दशाने प्राप्त थयो छु, अर्थात् पर द्रव्यना परिणामने पोतानो परिणाम मानु छु एटले मन वचन अने कायानी क्रियाने आत्म क्रिया मानु छुं तेथी मारी चेतनता पर परिणाममा व्यापी—परगत थई—पुद्गल पर्यायोने भोगववामा राची—आसक्त थई— लीन थई—त्यांज स्थित थई तेथी आत्म परिणामनो भोग लेवा अवकाश मल्यो नहीं ॥ ४ ॥

अशुद्ध निमित्त तो जड अछे रे, वीर्य शक्ति विहीन रे॥ द०॥
तु तो वीरज ज्ञानथी रे, सुख अनंते लीन रे ॥द०॥श्री०॥५॥

अर्थ—आत्माने अशुद्ध परिणामे अर्थात् अज्ञान, मिथ्यात्व अने कषाय रुप परिणमवामा शुभाशुभ कर्मोदय वडे पुद्गल द्रव्य गुण पर्यायनो सबर ते निमित्त छे पण ते शुभाशुभ कर्मोदय, जड—चेतनता रहित तेमज वीर्य शक्ति रहित होवाथी तेओ आत्माने अशुद्ध परिणामे परिणमाववामा पोतानो मेले कारण बनवाने असमर्थ छे, तथा कारण पद तो उत्पन्न पर्याय छे माटे ज्यारे कर्त्ता कार्य साधवानो रुचीवत थइ तेने निमित्तमा वापरे त्यारे तेमां कारण पद उत्पन्न थाय छे "ए कारका कर्तृराधिना" जो आत्मा प्रमाद भावमां वर्त्ते तो ते शुभाशुभ कर्मोदय अशुद्ध परिणामनुं निमित्त थाय पण पोते सचेत थइ पोताना शुद्ध कार्यनो कर्त्ता थाय त्यारे कारकचक्र सुलटे अने शुभाशुभ कर्मोदये अशुद्ध परिणामे परिणमे नहि तो ते पुद्गलो निमित्त पण थइ शके नहि. जेम कुंभार घट कार्यनो रुचिवान थाय नहि, तथा दंड चक्रादिने ते घट कार्य साधवामां वापरे नहि, तो दंड चक्रादि तेवारे घट कार्यना निमित्त कहेवाय नहि पण हुं अनादि विभाव वशे राग द्वेषे परिणमवानी टेव टेवथी ते पुद्गल जडमां कारण पद उत्पन्न करी अशुद्ध परिणामे परिणमु छु, तेथी

आत्मिक शुद्ध कार्य करवामां आत्म वीर्ये अत्यंत हीन थइ रह्यो छुं, अर्थात् अनंतज्ञान अनतदर्शन अनंतसुखरुप अनुपम आत्म व्यक्तिथी रहित कंगाल बनी अत्यंत पराधिन, दरिद्र—दयामणि अवस्थाने भोगवुं छु पण हे प्रभु ! तमे तो अनंत ज्ञान वीर्यना परिपूर्ण पणाथी—पूर्ण व्यक्तिथी सहज, अकृत्रिम, स्वतंत्र, एकांतिक, अंतातीत, अव्यावाध आत्मीक सुखमां लीन—संतृप्त—निमग्न थइ रह्या छो ॥ ५ ॥

तिण कारण निश्चय कर्यो रे,मुज निज परिणति भोगरे॥द०।
तुज सेवाथी नीपजे रे, भाजे भव भय शोग रे॥द०॥श्री०॥६

अर्थ—तेथी न्याय युक्त ज्ञानद्रष्टिथी मने एवो निश्चय थयो छे के हे भगवत ! कर्म रुप रजथी सर्वथा निर्लेप स्फटीक समान तमारा संपूर्ण, निर्मल, पवित्र गुणोनु सेवन करतां—भक्ति करतां माहरी आत्म परिणति रुप अवाध्य अखूट स्वतंत्र पूर्णानंदमय सहज आत्म संपदाना भोगनी मने प्राप्ति थशे तथा "भाजे भव भय सोग" अनादि कालथी चार गतिरुप भवसमुद्रमां अज्ञान वशे अनेक दुःसह दुःखो तथा तज्जन्य भय, शोक, संताप, आक्रंद विगेरे सहुं छुं, तेनो सहज लीलामात्रमां नाश थशे ॥ ६ ॥

शुद्ध रमण आनंदता रे, ध्रुव निस्सग स्वभाव रे ॥ द० ॥
सकल प्रदेश अमूर्त्तता रे, ध्यातां सिद्धि उपाय रे॥द०॥७॥

अर्थ—अचल, अवाधित, निरावरण, शुद्ध परमात्म पद रमण—अनुभवजन्य आनदने तथा पोताना ध्रुव अर्थात् पोताना द्रव्य क्षेत्र काल भावे सदा सत् (दव्व गुण समुदाउ, खित्त ओगाह वट्टणा कालो। गुण पज्जाय पवत्ति, भावो निअ वत्थु धम्मो सो) अनंत अन्वय गुणनो पिंड तथा निस्सग—सकल परभाव, परिग्रहथी अतीत

एवा आत्मभावने तथा अलेशी, अस्पर्शी, अगंधी, अवर्णी, अरसी, अक्रोधी, अमायी, अमानी, अलोभी, अवेदी आदि अनेक व्यतिरेक गुणना समूहरूप सकल प्रदेश अमूर्त्ति पिंड आत्म द्रव्यने सर्वे परद्रव्यनी मूर्छाथी पोतानी आत्म परिणति वारी पोतानी आत्म भूमिमा स्थिर करी–लीन करी पोतानी सर्वे वीर्य शक्ति एकत्र करी एकाग्र चित्ते ध्याता अमूर्त्त परमात्मपदनी सिद्धि थाय–ध्याता ध्येयनी एकता थाय ॥ ७ ॥

सम्यक तत्त्व जे उपदिस्योरे, सुणतां तत्त्व जणायरे ॥द०॥
श्रद्धा ज्ञाने जे ग्रह्योरे, तेहिज कार्य करायरे ॥द०॥ श्री० ॥८॥

अर्थ–द्रव्यना सर्व पर्यायना ज्ञान विनाना एकांत वादीयो (मिथ्या वादीयो) (एकाते होइ मिथ्यतो) ना विडंबनारूप भव भ्रमणना हेतुभूत दुर्नयथी परिपूर्ण अज्ञान जन्य सिद्धातथी उपजता अज्ञानरुप अंधकारना समूहनो नाश करनार सकलनय तथा प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणथी अबाधित स्याद्वाद युक्त, अव्याप्ति अतिव्याप्ति तथा असंभवादि सकल दूषणो रहित जीवादि तत्त्वोनु सत्य स्वरूप प्रतिपादन करनार जिनेश्वरना परम कल्याणकारी वचनो श्रवण मनन निदिध्यासन करता संशय विपर्यय अने अनध्यवसाय रहित तत्त्व स्वरूपनुं सम्यक्ज्ञान थाय अने सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान युक्त जो आत्म स्वरुप जाणीये–ग्रहण करीये तोज परमात्म सिद्धिना साधक थनी शकीए ज्यासुधी आत्मद्रव्यनु सम्यक्ज्ञान सम्यक्दर्शन थयु नथी त्यासुधी आदरेलु चारित्र ते सम्यक् विशेषपणे प्राप्त थइ शके नहि अने सम्यक्चारित्र विना कदापि काले मोक्षनी प्राप्ति थइ शके नहि कह्यु छे के "विरआ सावज्झाउं, कषाय हीणा महव्वय धरावी। सम्मदिट्ठी विहुणा, कयावि मुख्ख न पावति"

तथा "नयगम भंग पमाणेहिं, जो अप्पा सायवाय भावेण।
मुणइ मोख्ख सख्वं समदिट्ठि सो नेउ" ॥ ८ ॥

कार्य रुची कर्त्ता थये रे, कारक सवि पलटाय रे ॥-द० ॥
आतम गते आतम रमे रे, निज घर मंगल थाय रे ॥ द० ॥ ए ॥

अर्थ–ज्यांसुधी जीव मिथ्यात गुणस्थाने वर्त्ते छे–सम्यक्दर्शननी प्राप्ति थइ नथी, त्यांसुधी अनात्म वस्तुमा आत्मबुद्धि–अहंपणु माने छे अर्थात् पुद्‌गल स्कंधोथी बनेलु चैतन्यशून्य जे शरीर, तेमा लोलीभूतपणे परिणमि पोतानुं आत्म अंग माने छे तथा ते शरीरने जे प्रशस्त, हितकारी पदार्थो–स्त्री धन कुटुंबादिने पोताना हितकारी माने छे, तेउमा रागरसे रीझे छे, संसार भ्रमण परिपाटीने वधारे छे (जो अपसत्थो रागो, वड्ढई ससार भमण परिवाडी। विसयाइसु सयणाइसु, इठत्तं पुग्गलाईसु) अने ते शरीरादिने पोताना साध्य जाणी निरंतर तेने साधवा माटे अनेक प्रयास करे छे–तेनेज पोतानुं कार्य जाणे छे एम अज्ञान वशे पोते पर कर्तृत्व भावे परिणमे छे तेथी कारकचक्र शुद्ध स्वभावथी विरुद्ध बाधकभावे परिणमे छे पण ज्यारे आत्मा योग्य कारण वडे सम्यक्ज्ञाननो लाभ पामे, अनंत परमानंदमय संपूर्ण सुखना हेतु परमात्म पद रूप पोताना शुद्ध साध्यने उलखे, त्यारे पर साध्य तरफथी अरूची थाय अने पोतानु शुद्ध साध्य साधवानी रूची थाय, शुद्ध कार्य करवानो अभिलाषी थाय त्यारे जे कारकचक्र बाधकभावे अर्थात् आत्माना ज्ञान दर्शन सुख वीर्यनी घात करवा रूप कार्ये परिणमतु हतु ते साधक भावे एटले शुद्ध ज्ञान दर्शन सुख वीर्य साधवा रूप परिणमे एटले आत्मा पोताना शुद्ध परिणामे वर्त्ते–तेमां रमण करे–त्यांज स्थित थाय एम थता आत्माना सर्वे प्रदेशे मंगल थाय अर्थात् कर्म रूप रज गली जाय–अत्यंत सुख निधाननो लाभ थाय ॥ ए ॥

त्राण शरण आधार छोरे, प्रभुजी जव्य सहायरे ॥ द० ॥
देवचंद्र पद नीपजेरे, जिन पदकज मुपसायरे॥ द०॥श्री० १०॥

अर्थ–हे प्रजुजी ! आप चार गति रूप जव भ्रमणना दुःखथी त्राण अर्थात् रक्षण करनार तथा महान् दुःखदायी ज्ञानावरणादि प्रचंड अष्ट कर्म शत्रुउंथी डरता जव्य प्राणीउंने शरण छो तथा जव समुद्रमा बूडता जव्य प्राणीउंने हस्तावलंबन रूप छो तथा जव्य जीवोने मोक्षलक्ष्मी वरवामा परम सहायजूत छो, तेथी हे गुण सागर ! आपना निर्मल चरण कमलना पसायथी देवमा चंद्रमा समान परमात्म पदनी प्राप्ति थाय ए निर्विवाद छे ॥ १० ॥ (संपूर्ण)

॥ अथ तृतीय श्री बाहुजिन स्तवन ॥ सजवजिन अवधारीये ॥ ए देशी ॥

बाहुजिणंद दयामयी, वर्त्तमान जगवान ॥ प्रजुजी ॥
महाविदेहे विचरता, केवलज्ञान निधान॥प्रजुजी॥बा०॥१॥

अर्थ–महाविदेह क्षेत्रमा विहरमान वर्त्तमान जगवान, सडण पडण विध्वंसन धर्म युक्त पौद्गलीक शरीरथी अत्यंत विलक्षण महान् आत्म सत्ताजूमिमा (अर्थात् जे जूमिमा अन्य कोइ पण द्रव्यनो प्रवेश थइ शके तेम नथी तेथी वीलकुल संकराश वगरनी परम रमणीय स्वतंत्र एवी आत्म सत्ताजूमिमां) निरंतर पोताना पर्यायोमा परिणमता पोताना गुण पर्यायो सहित सदा सत् लक्षणवंत होवाथी वर्त्तमान, आत्मीक अविचल अखंड लक्ष्मीना स्वामी होवाथी जगवान, सामान्य केवलीओमा इंद्र समान हे श्री बाहुस्वामी ! आप सर्व प्रदेशे

सर्व काले सर्व भावे दयामयी छो अर्थात् आपना सर्वे प्रदेशथी हिंसाना हेतुनो अभाव थएलो छे तथा हवे ते हेतुओनो समूल क्षय होवाथी कोइ पण काले हिंसकभावे परिणमनार नथी तथा ज्ञानादि सर्वे धर्मो सर्वे नये पूर्ण पवित्र थया छे तेथी कोइ पण भाव हिंसकभावे परिणमे तेम नथी. तेथी आप सर्वांगे सर्वोत्कृष्ट अनुपम दयाना भंडार छो तथा जे ज्ञानमां जीवाजीव सर्वे द्रव्यो पोताना त्रिकालवर्त्ती सर्वे पर्यायो सहित प्रत्यक्षपणे भासे छे उक्तंच तत्त्वार्थे-(सर्व द्रव्य पर्यायेसु केवलस्य) एहवा केवलज्ञानना निधान के० अखूट खाण छो. कारण के द्रव्य ते गुण पर्यायनुं भाजन छे, उत्तीपर्याय तथा सामर्थ्यपर्यायनो आधार छे तेथी कोइ पण काले द्रव्य ते पर्यायथी हीण क्षीण थाय नहि. कारण के तीरोभावे रहेला पर्यायो आवीर्भावे थाय छे अने ते पाछा तीरोभूत थाय छे एम परावर्त्त चक्रे परिणमे छे उक्तंच- संमति ग्रंथे-"दव पज्जाय विउअं, दव वियुत्ताय पज्जाया नत्थि । उप्पायवय भंगाइ दविय लक्खणं एयं" तथाच-पंचास्तिकाय समयसारे-"दवं सल्लक्खणियं, उप्पादवय धुवत्त संजुत्तं । गुण पज्जाया सयं वा, जं तं भणंति सवण्हु" ॥ १ ॥

द्रव्य थकी छकायने, न हणे जेह लगार ॥ प्रभुजी ॥ भावदया परिणामनो, एहिज छे व्यवहार ॥ प्रभुजी ॥ बा० ॥२॥

अर्थ-पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय अने त्रसकाय ए छ कायना जीवना द्रव्यप्राणने हणवा हणाववा तथा हणतानी अनुमोदना करवी ए द्रव्यहिंसा छे. ते द्रव्यहिंसामां भावहिंसाना कारणनी भजना छे तेथी भावहिंसानो त्यागी द्रव्यहिंसा आदरे नहि-थवा दे नहि-सावचेत पणे वर्त्ते-समिति पूर्वक

वर्त्ते अर्थात् छकायना जीवोनी द्रव्यहिंसानो त्याग करवो ते भाव दयानो तथा भावदयाना परिणामीनो व्यवहार छे. द्रव्यअहिंसा ते भावअहिंसानो व्यवहार—कारण छे ॥ २ ॥

रूप अनुत्तर देवथी, अनतगुण अभिराम ॥ प्रभुजी ॥ जोतां पण जग जतुने, न वधे विषय विराम ॥ प्रभुजी ॥वा० ॥३॥

अर्थ—सर्वे जीवोने आ ससार जन्य जन्म जरा मरणादि रूप भयंकर दु खथी छोडावी रत्नत्रय पमाडी अनत आत्मीक परमानदना भोक्ता करूं एवी उत्कृष्ट भावदयाना योगे अत्यंत तीव्र शुद्ध परिणाम वर्त्ते—सर्वोत्कृष्ट पुण्यानुबधी पुण्यना उदये हे बाहु जिनेंद्र ! आपनु रूप लावण्य काति, विजय विजयत जयंत अपराजीत अने सर्वार्थसिद्ध विमानवासी देवो करता पण अनतगुण अभिराम, अतिशययुक्त, सर्वोपरी, मनोहर, रमणीय, आहल्लादकारी छे उक्तंच— " जाकी देहद्युतिसो दसो दिशा पवित्र भई, जाके तेज आगे सव तेजवत रुके है । जाको रुप निरखी थकित महा रुपवंत, जाकी वपुवाससो सुवास और लुके है ॥ जाकी दिव्य धुनी सुनि श्रवनको सुख होत, जाके तन लछन अनेक आइ ढूके है । तेइ जिनराज जाके कहे विवहार गुन, निहचै निरखि शुद्ध चेतनसों चुके है ॥ " एवु अत्यत देदिप्यमान अनुपम औदारिक आपनुं मनोहर रूप जोता—निरखता छता पण विषयातुरताने अवकाश मलतो नथी परतु आपनी शात, दात, गंभीर अने निश्चल मुद्रानु दर्शन पामी विषयोथी उपशान्त चित्त थाय छे ॥ ३ ॥

कर्म उदय जिनराजनो, भविजन धर्म सहाय ॥ प्रभुजी ॥ नामादिक सभारता, मिथ्या दोष विलाय ॥ प्रभुजी ॥ वा० ॥४

अर्थः—"सवि जीव करुं शासन रसी, इसि भाव दया मन उल्लसी" एहवा अत्यंत तीव्र शुभ राग युक्त भावदयाना परिणाम वडे बंधायला तीर्थंकर नामकर्मना उदय वडे हे त्रिलोक पूज्य! आ पारावार दुःखनिधान संसार समुद्रमां बूडता भव्य प्राणियोनो उद्धार करवा माटे सर्व दूषणो रहित अने पात्रीश गुण सहित नय निक्षेप पक्ष प्रमाण युक्त जीवा जीवादि तत्त्वनो सम्यक् प्रकारे उपदेश आपो छो ए आपनो कर्म उदय निर्विवाद पणे "भवि जन धर्म सहाय" अनादि कालथी ज्ञानावरणादि कर्म रज वडे मलिन थएला—लिप्त थएला भव्य जीवोना आत्म धर्मने एवंभूत नये प्राप्त थवा सहाय—निमित्तभूत छे. तथा हे तीर्थनाथ! आपना नामादिक चार निक्षेप संभारता—स्मरण करता—लक्षमां लेतां मिथ्यात्वादि दुष्ट दोषोनो तत्काल अत्यत अभाव थाय "तीर्थ—संसार निस्तरणोपायं करोतीति तीर्थकृत्" इति वचनात् जन्म मरण रुप संसार सागरथी तरी जवानो उपाय जे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र ते तीर्थ छे उक्तच तत्त्वार्थ सूत्रे "(सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः)" ते रत्नत्रयरुप तीर्थने भव्य जीवोना हृदयमां स्थापन करनार पुष्ट निमित्त होवाथी आप तीर्थंकर नामने संप्राप्त छो. तथा आपना निर्मल असंख्यात् आत्म प्रदेशमां ते रत्नत्रय भरपूर अभेद पणे वसी रह्यां छे ते स्थापनानिक्षेपो. तथा आपनो आत्म द्रव्य ते ज्ञान दर्शन चारित्र रुप भावनुं सर्वदा कारण छे ते द्रव्यनिक्षेपो. अने घातीकर्मना क्षयथी अनंत चतुष्टय अनत शुद्ध पर्याय पणे प्रगट्या ते आपनो भाव ते भावनिक्षेपो एम आपना चार निक्षेप आपथी तन्मय पणे एक क्षेत्रे रह्या छे उक्तंच—"इह भावोच्चिय वत्थु, तय सुनेहिं किंच सेसेहि, नामादयो विभावा, जं ते विहु

वत्थु पज्जाया " तथा वली–"अहवा वत्थुभिहाण, णामं ठवणाय जो तयागारो। कारणयासे दवं, कज्जय वन्नं तयं भावो॥
अने आप पण जीव द्रव्य छो अने हुं पण जीव द्रव्य तुं माटे स्वजाती हुं तेथी आपनु स्वरूप यथार्थ पणे जाणतां माहरूं स्वरूप पण यथार्थ जणाय " जो जाणइ अरिहंत, दव्व गुण पज्जवतेहिं। सो जाणइ अप्पाणं, मोहो खलु जाइ तस्स लय " अने पोताना आत्म स्वरूपनी प्राप्ति थता मिथ्यात्व अज्ञान आदि दोषो तत्काल विलयमान थाय, कर्मबंधनो नाश थाय, मोक्ष पदवीनी प्राप्ति थाय·उक्तच–" दर्शन मात्म विनिश्चित, रात्म परिज्ञान मिष्यते बोध। स्थिति रात्मनि चारित्रं, कुत एतेभ्यो भवति बन्धः॥" तथा " योगात् प्रदेश बन्धः स्थिति बन्धो भवति तू कषायात्। दर्शन बोध चरित्रं, न योग रूपं कषाय रूपं च। " ॥ ४ ॥

आतम गुण अविराधनी, भाव दया भंडार ॥ प्रभुजी ॥
क्षायिक गुण पर्यायमें, नवि पर धर्म प्रचार ॥ प्रभुजी ॥
॥ बा० ॥ ५ ॥

अर्थ–ज्ञान दर्शन चारित्रादि अनंत आत्म गुणो ते भावप्राण छे अने ते भावप्राणनो विषय कषायादिके घात करवो ते भावहिंसा छे अने ते भावप्राणनुं समिति गुप्ति आदि संवर वडे रक्षण करवुं घात न थाय एम अप्रमत्त भावमा वर्त्तवुं ते भावदया छे ते भावदयाना आप भंडार–निधान छो कारण के भावप्राणना घातक मिथ्यात्वादि दुष्ट हेतुओनो आपना आत्म प्रदेशमाथी सर्वथा नाश थयो छे, क्षायिक लब्धिने पाम्या छो तेथी आपनी सत्ताभूमिमा मिथ्यात्वादि दोषोनो रंच मात्र पण प्रवेश–प्रचार थई शके तेम नथी अने तेथी आपमा

भावहिंसानो बीलकुल अभाव छे तेथी आप निर्विवाद पणे भाव दयाना भंडार छो ॥ ५ ॥

गुण गुण परिणति परिणमे, बाधक भाव विहीन ॥ प्रभु०॥
द्रव्य असंगी अन्यनो, शुद्ध अहिंसक पीन ॥ प्रभुजी ॥
॥ बा० ॥ ६ ॥

अर्थः—आपनो आत्म द्रव्य ज्ञान दर्शन चारित्र दान लाभ भोग उपभोगादि अनत गुणनो पिंड छे (दव्वं गुण समुदाओ) ते सर्वे गुणो बाधकभाव रहित पोताना शुद्ध परिणामे परिणमे छे. कारण के " सव्वे सपज्जवा गुणा, अपज्जवे जाणणा नत्थि " पण ते गुणो जो बाधकभावे एटले ज्ञान अज्ञानपणे, दर्शन अदर्शनपणे, चारित्र मिथ्याचरण रुप एम परिणमे तो आत्म स्वगुणनो रोध करे— शुभाशुभ कर्मबध करे— आत्मीक सहज अबाधित सुखनी हाणी करे " (सायासायं दुःख्खं, तव्विरहंमि य सुहं जओतेणं । देहिंदियेसु दु.ख्खं, सुख्खं देहिंदिया भावो) " पण आपना सर्वे गुणो अबाधकभावे परिणमे छे तेथी आत्म अनंत गुणना आनंदना भोक्ता छे. ज्यांसुधी आत्मा बाधकभावे परिणमे त्यासुधी अशुद्ध छे पण ज्यारे सर्वे परद्रव्यना राग-संग रहित वर्त्ते त्यारे शुद्ध छे, अहिंसक छे, कर्मबधनो अकर्त्ता छे तथा पोताना अनंत आत्म वीर्य वडे पुष्ट छे. उक्तच " परदव रओ बज्झइ, विरओ मुंचेइ अठ कम्मेहिं- एसो जिन उवएसो, समासओ बंध मोख्खस्स " ॥ ६ ॥

क्षेत्र सर्व प्रदेशमें, नहि परभाव प्रसंग ॥ प्रभुजी ॥
अतनु अयोगी भावथी, अवगाहना अभंग॥प्र०॥बा०॥७॥

"अर्थ —जेम सोनु खाणमा पथ्थर माटी विगेरे अनेक कुधातुथी मलेलु होय छे पण ज्यारे योग्य युक्ति वडे तेने सर्वथा जूदु पाडी गाली शुद्ध सोनुं करी लइए त्यार पछी ते सोनाने काट लागी शके नहि

तेमज अनादिकालथी आत्म प्रदेशे लागेला ज्ञानावरणादि कर्मनो आपे शुक्लध्यान रुप अग्निवडे सर्वथा नाश कर्यो छे, सर्वे प्रदेशे शुद्ध निर्मल परम पवित्र थया छो तेथी आपना कोइ पण प्रदेशे परभाव—राग द्वेषादिनो- विषय कषायादिनो रंच मात्र पण संश्लेष नथी, थवानो संभव पण नथी

ज्यासुधी आत्मा औदारिकादि शरीरमा तेमज मन वचन काय योगमा ममत्व करी वसे छे तेथी ते चल पुद्गल योगे आत्म प्रदेश सकप थाय छे पण ज्यारे सर्वथा तेनु ममत्व त्याग करे त्यारे शुद्धात्म भावे अरुपी ज्ञायक स्वरूप प्रगटे उक्तंच आचारांगे—से णदीहे ण हस्से ण वट्टे ण तंसे ण चउरंसे ण परिमण्डले ण किन्हे ण णीले ण लोहिए ण हालिद्दे ण सुकिल्ले ण सुरहिगंधे ण दुरहिगंधे ण तित्ते ण कडुए ण कसाये ण अंबिले ण महुरे ण कक्खडे ण मउए ण गुरुए ण लहुए ण सीए ण उण्हे ण णिध्धे ण लुक्ख ण काऊ ण रुहे ण संग ण इत्थी ण पुरिसे ण अन्नहा परिंसे सण्णे उवमा ण विज्जए अरुवी सत्ता अपयस्स पयं णथ्थि से ण सद्दे ण रुवे ण गंधे ण रसे ण फासे इच्चेतावात तिबेमि " एम अतनु अयोगी आत्म अंग आत्म भावमा स्थिर थाय त्यारे कोइ पण आत्म प्रदेश रंच मात्र पण सचल थाय नहि अभंग अवगाहनाने प्राप्त थाय ॥ ६ ॥

उत्पाद व्यय ध्रुव पणे, सहेजे परिणति थाय ॥ प्रभुजी ॥
छेदन योजनता नहि, वस्तु स्वभाव समाय ॥प्रभु०बा०॥८॥

अर्थः—स्वभाव भावे परिणमवामां अन्य द्रव्यनी सहाय जोइति नथी जेम अग्नि सहजे दाहकभावे परिणमे छे तेम सर्वे द्रव्यो उत्पाद् व्यय ध्रौव्य युक्त सदाकाल होवाथी सहजे पोताना स्वभाव पर्यायमां परिणमे. अन्य द्रव्यनी मदद जोइए नहि. उक्तच "दवियदि गछदि ताइं, ताइं सब्भाव पज्जयइंजं, दवियं त भसते अणणभूद तु सत्तादो "वस्तुने सहजे परिणमवामां कइ पण दूर करवानी तथा कंइ पण संयोग करवानी आवश्यकता नथी कारण के द्रव्य तथा पर्यायनो अभेद भाव छे. जेम अग्निने दाहक परिणाम वगरनी तथा अग्नि वगर दाहक परिणामने आपणे कदापी काले जोता नथी अर्थात् अग्निने ज्यारे जोइए त्यारे दाहक परिणाम सहितज होय छे तेम सर्वे द्रव्य सदाकाल पोताना परिणामे वर्त्ततांज होय छे. परिणाम वगर द्रव्य अभाव—शून्यपणाने पामे. उक्तंच—" पज्जय विजुदं दवं दव विजुदाय पज्जयाणत्थि दोरहं अणणभूदं, भावं समणा परूविंति ॥" वर्त्तमान पर्यायनो व्यय थाय अने नूतन पर्यायनो उत्पाद् थाय तो पण द्रव्यार्थिक नये द्रव्य सदा ध्रुव छे जेम सोनानुं कडु भांगी मुकुट बनावीए तेमां कडानो नाश अने मुकुटनो उत्पाद् थता छता पण सोनुं द्रव्य सदा ध्रुव छे उक्तच—" भावस्स णत्थि-णासो, णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो। गुण पज्जयेसु भावा, उप्पाद वये पकुव्वंति।" ॥ ८ ॥

गुण पर्याय अनतता, कारक परिणति तेम ॥ प्रभुजी ॥

निज निज परिणति परिणमे, जाव अहिंसक एम ॥
॥ प्रभुजी ॥ वा० ॥ ए ॥

अर्थ–ज्ञान ते सम्यक्ज्ञान रूप, दर्शन ते सम्यक्दर्शन रूप, चारित्र ते स्वभावाचरण रूप एम ज्ञानानुयायी आपना अनंत गुणो पोताना शुद्ध परिणामे परिणमे छे कारण के आपनु कारक चक्र ते शुद्ध अबाधक पणे सदा परिणमे छे (१) स्वधर्म कर्त्ता ते कर्त्तापणुं (२) स्वधर्म परिणाम ते कार्य (३) स्वधर्मानुयायी चेतना शक्ति ते करण (४) साध्य गुण शक्तिनु प्रगटवु ते सप्रदान (५) पूर्व पर्यायनुं निवर्त्तन ते अपादान (६) स्वगुणनो आधार आत्म सत्ताभूमि ते अधिकरण–एम गुण पर्यायनी तथा कारक परिणतिनी अनंतता छे तेथी कोइ पण आत्म धर्मने विराधक पणे रंच मात्र–समय मात्र पण परिणमता नथी तेथी आप सदा अहिंसक नामनुं सर्वोत्कृष्ट बिरुद धरावो छो ॥ ए ॥

एम अहिंसकता मयी, दीठो तु जिनराज ॥ प्र० ॥
रक्षक निज पर जीवनो, तारण तरण जिहाज॥प्र० वा० १०

अर्थ –एम स्वपर जीवना द्रव्य भाव प्राणनुं रक्षण करनार तथा अगाध कषाय रुप जलथी भरेला संसार समुद्रथी तारण तरण जहाज रुप हे जिनेश्वर ! हे करुणा निधान ! आ जगत् त्रयमां सर्वांगे दयामय में आपनेज जोया ॥ १० ॥

परमातम परमेसरु, भाव दया दातार ॥ प्रभुजी ॥
सेवो ध्यावो एहने, देवचंद्र सुखकार ॥ प्रभुजी० वा० ॥११॥

अर्थ –आत्मानो परमभाव जे ज्ञान तेनी शुद्धता तथा संपूर्णताने सर्व नये प्राप्त थयेला होवाथी परमात्मा तथा अनंत अविनश्वर स्वाधीन परमानंद मय शुद्धात्म ऐश्वर्यताने प्राप्त थएला होवाथी

परमेश्वर, अने भावदया रुप जे परमधर्म (आतम गुण रक्षणा तेह धर्म, स्वगुण विध्वंसना ते अधर्म) तेना उपदेष्टा, दातार तथा भव भ्रमण जन्य शारीरिक तथा मानसिक दुःखनो अत्यंत अंत करी सहज परमोत्कृष्ट आत्मीक सुखना दातार त्रिलोक पूज्य श्री बाहुजिनेश्वरने सेवो, ध्यावो, तेमना गुणनुं ध्यान करो, तेथी एकाग्र चित्त करो, एमश्री देवचंद्र मुनि मित्र भावना वडे भव्य जीवो प्रति हित शिक्षा आपे छे ॥ ११ ॥

(संपूर्ण)

॥ अथ चतुर्थ श्री सुबाहुजिन स्तवनं ॥

॥ माहरो व्हालो ब्रह्मचारी ॥ ए देशी ॥

श्री सुबाहुजिन अंतर जामी, मुज मननो विशरामी रे।
॥ प्रभु० ॥ आतम धर्म तणो आरामी, पर परिणति
निःकामी रे ॥ प्रभु अतरजामी ॥ श्री० ॥ १ ॥

अर्थ—शुद्ध अने तिक्ष्ण उपयोगमा परम स्थिरता एकाग्रता धारण करी राग द्वेष रूप महान् शत्रुओने जीतेला हे श्री सुबाहु स्वामी ! केवलज्ञान दर्शन उपयोग वडे मारा तेमज सर्व द्रव्योना अतर्गत भावने इंद्रियादिकनी सहाय विना प्रत्यक्ष जाणवा देखवा-वाला तथा सर्वदा परम संवरमां लीन होवाथी अतर्यामी छो.

स्त्री पुत्र मित्रादि परिजनो तथा धन धान्य हिरण्य क्षेत्रादि पर-द्रव्यना मनोज्ञ पर्यायोने आप सुख हेतु जाणता नथी परंतु तेओने जलना बुद्बुद्वत् तथा विजलीना चमत्कारवत् क्षणीक, पराधीन, अतृप्तिना हेतु, तथा आत्म धर्म रोधक राग द्वेषना निमित्त, संसार परिभ्रमणना निमित्त साक्षात् पणे जाणो छो माटे ते विषयोनी आपने कामना केम थाय ? कदापि न थाय; तेथी आप सदा निःकामी छो.

जे मुग्ध प्राणीओ ते विषयोने सुख हेतु जाणे तेओने तेनी कामना थाय अने तेज तेनी चाहरूप दाहमा प्रवेश करी पोताना आत्म भोगने दग्ध करे पण आप तो केवल सम्यक्ज्ञानी होवाथी शुभा-शुभ-शाता अशाता बनेना उदयने आत्मगुणना रोधक होवाथी दुःख रूपज जुओछो तेथी आपने तेनी कामनानो बीलकुल संभव नथी, निरतर निष्कामी छो तथा शुद्धात्म ज्ञान दर्शन चारित्र गुणने स्वाधिन अविनश्वर तथा परमानंदना हेतु जाणी निरतर तेमाज रमण करवावाला तथा तेनाज भोगमा परम संतुष्ट छो एवी आपनी परमोत्कृष्ट अवस्था जोइ ते पद साधवानी मने रूची थइ तथा ते पद साधवानो समीचीन मार्ग पण आपे बताव्यो तेथी खरेखर मारा मनने परम विश्रामना हेतु आपजछो ॥ १ ॥

केवलज्ञान अनत प्रकाशी, भविजन कमल विकाशी रे।
॥ प्र० ॥ चिदानदघन तत्त्व विलासी, शुद्ध स्वरूप नि-
वासी रे ॥ प्र० ॥ श्री० ॥ २ ॥

अर्थ-अनंत केवलज्ञान रुप सूर्यनो प्रकाश करी भव्य जीवोना हृदयकमलने विकस्वर करनार ज्ञानानंदना समूह आत्म तत्त्वमां विलास करनार तथा तेज शुद्ध स्वरुपमा निवास करनार छो

—अनादि कालथी ज्ञानावरणादि कर्मवडे आछादित थयेला अनत केवलज्ञान रुप जलहलाटमान अद्वितिय सूर्यने, कर्म पड-लनो नाश करी संपूर्णपणे प्रकाशमान करी अज्ञानरुप अंधकार वडे आवृत थएला भव्य जीवोना हृदयकमलने ज्ञानकिरणो वडे परम प्रफुल्लित करनार छो रुप रस गध स्पर्शादि, परद्रव्यना पर्यायनो भोग, रमण, आस्वाद, मूर्छा, कामना विगेरेनो समूल नाश करी राग द्वेषादि विभावनो परिहार करी पोताना सहज अविनश्वर ज्ञानसं-मूह आत्म तत्त्वमा विलास करनार अर्थात् तेना भोगमां निमग्न छो.

तेज शुद्धात्म स्वरुपमां सदा निवास करो छो अर्थात् आपनो उपयोग त्यांथी समय मात्र पण चलतो नथी–परद्रव्यादि तरफ जतो नथी ॥ २ ॥

यद्यपि हुं मोहादिके छलियो, पर परिणतिशुं भलियो रे ॥ प्र० ॥ हवे तुज सम मुज साहिब मलियो, तिणे सवि भवभय टलियो रे ॥ प्रभु अंतरजामी ॥ ३ ॥

अर्थ–जो के हुं मोहादि वडे छगायो, परपरिणतिमां तल्लीन थइ रह्यो, पण हवे तमारा जेवा साहेबनी वाणी सांभली मने प्रतित थवाथी मारो सर्वे भवभय दूर थयो जो के मोह अज्ञान मिथ्यात्वादि दुष्टोए मने वश करी मारी ज्ञानादि सपदा छगी लीधी छे, माहरा सहज अनुपम सुख भोगथी मने वियोगी कर्यो छे, तेथी हुं ते दुष्टोना वशमां पडी अत्यंत कंगाल अवस्थाने भोगवुं छुं

परपर्याय–शरीर स्वजन परिजन तथा धन धान्यादिमां अहं ममत्व करी तेनेज सुख तथा सुख हेतु जाणी तेनीज इच्छा कामना करी जेम लींबडामा वसतो कीडो लीमडाना रसनेज मधुर मानी तेमा तल्लीन रहे छे, त्यांथी निकलवा चाहातो नथी, तेम हुं तेमां तल्लीन थई रह्यो, तेथी विरत थयो नहि, पण हवे हे करूणा निधे ! सर्वज्ञ अने वीतराग आप जेवा समर्थ स्वामीनी मने प्राप्ति थई–आपनुं दर्शन पाम्यो तेथी अनंत रोग शोक भय क्रोध मान माया लोभ अरति आदिके भरेला भव समुद्रमां भ्रमण करवानो भय दूर थयो. कारण के ते भव भ्रमणनो हवे अवधि आवी उक्तंच–

"अंतो मुहुत्त मित्तंपि फासिअं हुज्ज जेहि सम्मत्तं, तेसिं अवड्ढ पुग्गल, परिअट्टो चेव ससारो" ॥ ३ ॥

ध्येय स्वभावे प्रभु अवधारी, दुर्ध्याता परिणति वारी रे

॥ प्र० ॥ भासन वीर्य एकता कारी, ध्यान सहज संभारी
रे ॥ प्र० ॥ श्री० ॥ ४ ॥
ध्याता ध्येय समाधि अभेदे, पर परिणति विछेदे रे ॥ प्र०
॥ ध्याता साधक भाव उछेदे, ध्येय सिध्धता वेदे रे ॥ प्र० ॥
॥ श्री० ॥ ५ ॥

अर्थ.–प्रभुपदने पोतानु शुद्ध ध्येय जाणी पोताना हृदयमां स्थापन करी, दुर्ध्यान रूप परिणतिने निवारी, पोताना ज्ञान वीर्यनी संपूर्ण एकता अभेदता करनारू सहज आत्म ध्यान संभारे, तेथी पर परिणतिनो समूल विच्छेद थाय, त्यारे ध्याता ध्येय समाधिमा तल्लीन थाय अने ध्येय पदनी सिद्धि प्राप्तिने वेदे–भोगवे त्यारे ध्यातामांथी साधकपद दूर थाय

ज्ञानावरणादि सकल कर्मना संबंधथी सर्वथा मुक्त केवलज्ञान दर्शन चारित्र वीर्यमय सहज आत्म गुणना समूह रूप श्री सुबाहु स्वामीना परमात्म पदने शुद्ध ध्येय (ध्याववा लायक वस्तु) धारी–ज्ञान पूर्वक निश्चय करी, जन्म जरा मरण रूप संसार भ्रमणना हेतु भूत, शुद्ध परिणतिथी विमुख आर्त्त रौद्र परिणाम वारे–दूर करे, (कारण के ज्यांसुधी दुर्ध्यान परिणाम वर्त्ते त्यांसुधी शुद्ध ध्यानने अवकाश मले नहि जेम मलीन वस्त्र उपर केशरनो रंग लागे नहि) अने पर परिणामानुगत थयेला पोताना आत्म वीर्यने समेटी मात्र शुद्ध ज्ञान दर्शन चारित्र परिणाममा आत्म वीर्यने एकत्र तल्लीन करे–अभेद करे एवुं सहज आत्म ध्यान आदरे, जेथी ध्येय समाधि अर्थात् शुद्धात्म अनुभव रूप निर्विकल्प निराकुल निरूपचरित स्वतंत्र परम समाधिमा मग्न–तल्लीन थाय, ते वारे आत्म परिणति मनोज्ञ अमनोज्ञ कोइ पण पर द्रव्यमा राग द्वेष रूप अशुद्ध परिणामे वर्त्ते

(गमन करे) नहि, ते वारे ध्येय पदनी अर्थात् शुद्ध परमात्म पदनी सिद्धि थाय. तेना अचल अनंत जोग उपजोगनो स्वामी थाय. उक्तंच—

एको मोक्ष पथोय एष नियतो, दृग्ज्ञप्ति वृत्त्यात्मक; स्तत्रैव स्थिति मेति यस्तमनिशं, ध्यायेच्चतं चेतसि; तस्मिन्नेव निरंतरं विहरति द्रव्यान्तराण्य स्पृशन् । सोवश्यं समयस्य सार मचिरान्नित्योदयं विन्दति

अर्थः— सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्रात्मक मोक्ष मार्गमां जे पुरुष स्थित थाय छे, तेनेज जे निरंतर ध्यावे छे वली तेनेज जाणे, छे तेनेज अनुभवे छे वली तेनाज विषे विहार करे छे—प्रवर्त्ते छे पण अन्य द्रव्यमां रंच मात्र स्पर्श करतो नथी ते अल्प कालमां नित्योदय परमात्म पदने पामे छे त्यारे ध्यातामांथी साधक भावनो उच्छेद थाय छे; कारण के ध्येयनी संपूर्ण सिद्धि थया पछी साधवानुं कंइ बाकी रह्युं नथी. ज्यांसुधी कंइ साधवानुं बाकी होय त्यांसुधी साधक भाव कहेवाय जेम (कारण पद उत्पन्न, कार्य थये न ग्रह्योरी).॥४॥५

द्रव्य क्रिया साधन विधि याची, जे जिन आगम वाची रे ॥ प्र० ॥ परिणति वृत्ति विभावे राची, तिण नवि थाये साची रे ॥ प्र० ॥ श्री० ॥ ६ ॥

अर्थः—शुद्ध ध्येय जे परमात्म—मोक्ष पद तेनुं यथार्थ स्वरूप श्रद्धान पूर्वक में न जाण्युं तथा साध्य सापेक्ष आचरणा न आदरी त्यांसुधी माहरी चित्त वृत्ति विभावमां राची रही अर्थात् आ लोक सबधी पंच ईंद्रियोना मनोज्ञ भोग्य पदार्थो तथा परलोक संबंधी स्वर्गादिना भोगमां आशक्त रही—तेनी मनोकामना रही तेथी आपना सत्य प्रमाणिक आगममा बतावेली समिति गुप्ति परिषह महन तथा चारित्र तप नियमादि परमात्म पदनी साधन भूत द्रव्य

क्रियाउं पण विष गरल अने अन्योन्य अनुष्ठान रूप होवाथी परमार्थ-मोक्ष पदने आपवा समर्थ थई नहि. ज्यांसुधी सम्यग्ज्ञाननी प्राप्ति थई नथी त्यांसुधी सर्वे क्रियाउं शुद्ध जाव विनानी अशुद्ध विष गरल अन्योन्य अनुष्ठान रूप जाणवी उक्तंच "शुद्ध क्रिया तो सपजे, पुद्गल आवर्त्तने अर्द्ध रे" ॥ ६ ॥

पण जय नहि जिनराज पसाये, तत्त्व रसायण पाये रे ॥ प्र० ॥ प्रजु जगतें निज चित्त वसाये, जाव रोग मिट जाये रे ॥ प्रजु० ॥ श्री० ॥ ७ ॥

अर्थ.–पण हवे मने जय नथी कारण के जिनराजना वचन पसाये तत्त्व रसायणनी प्राप्ति थई छे तेथी माहरूं चित्त प्रजुनी जक्तिमा वसवाथी जाव रोग मटी जशे पण हवे हे तरण तारण श्री सुबाहु जिनेश्वर ! बत्रीश दोष रहित तथा वाणीना पात्रीश गुण सहित परमामृत रूप आपना वचनोना पसाये ज्ञानावरणादि कर्म रोगने अत्यत दूर करी आत्म वीर्यनी संपूर्ण वृद्धि पुष्टि करनार देवतत्त्व, गुरु तत्त्व, अने धर्मतत्त्वनी मने प्राप्ति थई छे तेथी माहरी चित्त वृत्ति मनोज्ञ अमनोज्ञ पर ऊव्यथी निवृत्त थई प्रजुनी आज्ञा पालवा रूप जक्तिमा लीन थशे तेथी माहरा ज्ञानावरणादि सर्वे जाव रोगो सूर्यथी जेम अंधकार नष्ट थाय तेम तत्काल विनाप्रयासे नष्ट थई जशे एवा निश्चयथी मारो जव भ्रमणनो अत्यत जय दूर थयो छे ॥ ७ ॥

जिनवर वचन अमृत अनुसरिये, तत्त्व रमण आदरिये रे ॥ प्र० ॥ ऊव्य जाव आस्रव परिहरिये, देवचंद्र पद वरिये रे ॥ प्र० ॥ श्री० ॥ ८ ॥

अर्थ –जिनेश्वरना अमृत समान वचन अनुसारे वर्त्तीए, तत्त्व रमणना ग्राहक थईए, ऊव्यास्रव तथा जावास्रवनो त्याग करीये तो देवमां चंद्रमा समान सिद्ध पद वरिये–

हे सुबाहु जिनेश्वर ! आप सर्वज्ञ अने वीतराग होवाथी साचा आप्त छो. आपनांज वचन आ चार गति रूप अत्यंत जयंकर पारावार जव समुद्रथी पार उतारी शिव स्थानके पहोंचाऱवाने अद्वितीय नौका समान छे तथा दुष्ट ज्ञानावरणादि कर्म रोग वडे पीडाता दूर्बल आत्म वीर्यथी हीण थएलाने ते रोग दूर करी आत्म वीर्ये संपूर्ण पुष्ट करवाने अमृत समान छे माटे जो आपना वचनने हमे अनुसरीये–ते प्रमाणे वर्त्तीए अने शुद्धात्म तत्त्वनु रमण करीए–तेमां लीन थईए तथा अजिनिवेशादि पाच मिथ्यात्व, हिंसादि पाच अव्रत, तथा क्रोधादिक कषाय, विकथादि प्रमाद तथा औदारिक काय योग आदि योगनो परिहार करीए–राग द्वेषादि विजावनो त्याग करीए तो नवां कर्म आवतां बध थाय अने पूर्व संचिन कर्मनी निर्जरा थाय तेथी देवमा चंद्रमा समान परमात्म पदनी प्राप्ति थाय–अतींद्रिय अव्याबाध अनंत सुखनी प्राप्ति थाय उक्तंच " पंचासव विरत्ता; विषय विजुत्ता समाहि संपत्ता, राग दोष विमुत्ता, मुणिणो साहंति परमढं, " ॥ ८ ॥ (संपूर्ण)

॥ अथ पंचम श्री सुजात स्वामीजिन स्तवन ॥

देहुं देहुं नणद हठीली ॥ ए देशी ॥

स्वामी सुजात सुहाया, दीठा आणंद उपाया रे, मन मोहना जिनराया। जिणे पूरण तत्त्व निपाया, द्रव्यास्तिक नय ठहराया रे, मन मोहना जिनराया ॥ स्वामी० ॥ १ ॥

पर्यायास्तिक नय राया, ते मूल स्वजाव समाया रे, मन मोहना जिनराया। ज्ञानादिक स्व परजाया, निज कार्य करण वरतायारे, मन मोहना जिनराया ॥ स्वामी० ॥ २ ॥

अर्थः—हे सुजात स्वामी ! सर्वे स्वपर्यायनु कारण द्रव्य छे पण द्रव्यनुं कारण अन्य द्रव्य होइ शके नहि तेथी आप स्वयं सिद्ध छो, स्वयं बुद्ध छो, सर्व पर द्रव्यनी कामनाथी रहित परम संतुष्ट छो, तथा अतींद्रिय, अव्याबाध, अनुपम, निरूपचरित, स्वाधीन, अपृथग्भूत, अनंत, सहज, आत्म सुखना निरंतर भोक्ता, अनुभव लेनार छो, सुखात्मा छो, उक्तंच "जादो सय स चेदा, सवण्हू सव्व लोग दरसीय। पप्पोदि सुहमणंतं, अवाबाहं सगम मुत्त"॥ माहरा चित्तने सुहंकर लाग्या छो, अनंत गुणना निधान आप स्वजातिनु दर्शन थतां अपूर्व आनंद रूप जल वडे माहरू चित्त सरोवर भरपूर थयु, अज्ञान कषायना पात्र पर द्रव्यादिनी चाह दाहमां निरंतर प्रज्वलित थता शुद्धात्म अनुभव रूप सुगंधथी रहित हरिहरादि कुदेवोने करीरादि वृक्षोनी पेठे त्यागी शुद्धात्म अनुभव रूप अनंत सुगंधथी भरपूर आपना पद कमलमां माहरू मन मोहित थयुं छे, त्यांथी रंच मात्र पण खसवा चाहातुं नथी, माटे हे जिनेश्वर ! जगत् भरमां आपज भव्य जीवोना मन मोहन छो जे आपे अनादि कालथी लागेला आत्म गुण रोधक ज्ञानावरणादि कर्म मलने बाह्य अभ्यंतर तप वडे दूर करी पोताना आत्म तत्वनी एवंभूत नये सिद्धि करी छे अर्थात् सर्वे आत्म गुणो संपूर्ण निर्मल तथा स्वाधीन करी लीधा छे माटे हवे कंई पण करवानु आपने बाकी रह्यु नथी तेथी आप निष्क्रिय बिरूदने संपूर्ण प्राप्त थया छो, अनंतानंदना स्वामी थया छो तथा आत्म धर्मने मलिन करवाना तथा भव भ्रमणना निमित्त अज्ञान मिथ्यात्व कषाय अने योगनो सर्वथा अभाव कर्यो छे तेथी आपनो कोइ पण गुण पर्याय हवे कोइ पण काले रंचमात्र पण मलिन थवानो नथी तथा तेमज ते सिद्धि अवस्थाथी आप कोइ पण काले च्यूत थवाना नथी. द्रव्यास्तिक नये आप सदा अवस्थित रही चेतनतामां समाता पोताना

शुद्ध अनंत पर्यायनुं राज्य जोगवो छो. ज्ञानादिक सर्वे पर्यायोने स्वकार्य करवामां निरंतर प्रवर्त्तावो छो अर्थात् ज्ञान गुण वडे अनंत द्रव्यना त्रिकालवर्त्ती अनंत गुण पर्यायने समकाले प्रत्यक्ष पणे जाणो छो, दर्शन गुण वडे सर्वे द्रव्यना अस्तित्वादि सामान्य स्वजावने सम काले देखो छो, चारित्र गुण वडे सर्व परजावथी निवृत्त पणे अनंत ज्ञानादिक स्वधर्ममां निरंतर रमण करो छो अने आपनुं आत्म वीर्य ते पण ज्ञानादिक अनंत स्वधर्म परिणमाववामां वर्त्ते छे. एम आपना सर्वे पर्यायो पोत पोतानुं कार्य करवामा स्वाधीन पणे वर्त्तावो छो वली हे सर्वे नीतिमानमां शिरोमणि ! द्रव्यना यथार्थ स्वरूपनो बोध थवा माटे आपे द्रव्यास्तिक अने पर्यायास्तिक ए बे मूख्य नयो ठराव्या छे जेमां सर्वे नयनो समावेश थई जाय छे ते नयना यथार्थ ज्ञानवडे वस्तुनुं स्वरुप यथार्थ साक्षात् वत् जणाय छे—जासे छे॥२॥२॥

अंश नयमार्ग कहाया, ते विकल्प जाव सुणायारे॥ मन०॥
नय चार ते द्रव्य थपाया, शब्दादिक जाव कहायारे॥मन०॥३

अर्थ—नय ते पदार्थना ज्ञानने विषे ज्ञानना अंश छे, वस्तु अनंत धर्मात्मक छे अर्थात् जीवादिक दरेक पदार्थमां अनंता धर्म छे तेमांथी जे स्वाजिष्ट एक धर्मने मुख्यताए गवेषे छे तेमां रहेला बीजा धर्म, प्रति उदासिनता राखे छे ते नय छे उक्तंच—स्याद्वाद मंजरीमा “ नीयते परिच्छियते एक देशो वि-शिष्टोर्थ आजिरिति नीतयो नयाः तथा रत्नाकरे, नीयते येन श्रुताख्य प्रमाण विषयी कृतस्यार्थ स्याशस्तदितराशौदासीन्यतः स प्रतिपत्तुरजिप्राय विशेषो नय.” एम दरेक नयो वस्तुना स्वाजिष्ट एक अंशने प्रतिपादन करे छे तेथी ते विकल्प मार्ग छे. जे एकांते पोताना अजिष्ट धर्मनेज स्थापन करे छे तेमां रहेला बीजा

धर्मोने तिरस्कारे छे, ओळवे छे, अपेक्षा राखतो नथी ते दुर्नय अथवा नयाभास छे "स्वाभिप्रेता दशा दितरांशा पलापी पुनर्नया भासं" अने जे वस्तुमां रहेला कोइ पण धर्मने तिरस्कारतो नथी अर्थात् तेनी अपेक्षा राखे छे एम बताववाने स्यात्पद युक्त अभिष्ट धर्मनुं प्रतिपादन करे छे ते सुनय छे, स्याद्वाद छे, प्रमाण वाक्य छे, तेज हे जिनेश्वर! आपना परम आगमनुं बीज (जीवन) छे, जे सर्वे एकांत वादे मचेला उन्मत्त हाथीओना मदने भंजन करवाने सिंह समान छे, वस्तुनुं यथार्थ सर्वांगे स्वरूप जाणवा दिव्य ज्ञानदृष्टि छे, उक्तंच– स्याद्वादमजरी–राग–उपेंद्रवज्रा ॥ "सदेव सत्स्यात् सदिति त्रिधार्थो, मीयेत दुर्नीति नय प्रमाणै, यथार्थ दर्शीतु नयप्रमाण, पथेन दुर्नीति पथं त्वमास्थः" अर्थ–सत्यज छे, सत् छे अने स्यात् सत् छे एवी रीतनो त्रण प्रकारनो अर्थ अनुक्रमे दुर्नय, नय अने प्रमाण वडे मापी शकाय छे अने यथास्थित पदार्थने जोनारा एहवा हे प्रभु! आपेज नय अने प्रमाणना मार्ग वडे दुर्नय मार्गने दूर कर्यो छे ते नयना विस्तारथी अनेक भेद छे (व्यासतो नेक विकल्पः) कारण के वस्तु अनंत धर्मात्मक छे अने ते अनंत धर्मनुं निरूपण करवाने वचन मार्ग पण अनंत होय माटे जेटलां वचन तेटला सर्वे नयवाद कहेवाय "जावइया वयण पहा, तावइया चेव हुन्ति नयवाया" तो पण ते सर्वे नयवादोनो समह करनारा एहवा सात अभिप्रायनी कल्पनाना द्वारे करीने सात नयो प्रतिपादन करेला छे तेनां नाम– नैगम, संग्रह, व्यवहार, रूजुसुत्र, शब्द, समभिरूढ अने एवंभूत तेमांथी प्रथमना चार नयो द्रव्यार्थीक नयमा अने शब्दादि त्रण नयो पर्यायार्थिकमां समाय छे ते त्रण भावनय छे

"समासतो द्विभेद द्रव्यार्थिक. पर्यायार्थिक तत्र द्रव्यार्थिक

श्चतुर्धा नैगम, संग्रह, व्यवहार, रुजुसूत्र भेदात् पर्यायार्थि कस्त्रिधाः शब्द समभिरुढ एवंभूत भेदात्"

श्री सिद्धसेन दिवाकर रुजुसूत्रनयने पर्यायार्थिकमां गणे छे माटे तेमना अभिप्राये नैगमादि त्रण नय द्रव्यार्थिक अने रुजुसूत्रादि चार नय पर्यायार्थिक छे द्रव्यने सामान्यपणे निरूपण करनारा प्रमाताना अभिप्रायो जेओनो आद्यना चार नयमा समावेश थाय छे ते द्रव्यार्थिक छे अने जे अभिप्रायो शब्दना अर्थनी मूख्यता धरावे छे ते शब्दादिक त्रण नय पर्यायार्थिक छे माटे आदिना चार नय ते अविशुद्ध छे अने शब्दादिक त्रण नय ते विशुद्ध छे उक्तंच–

आद्य नय चतुष्टय मविशुध्द पदार्थ प्ररूपणा प्रवणत्वात् अर्थ नया नाम्न द्रव्यत्व सामान्य रूपा नयाः शब्दादयो विशुध्द नया शब्दावलंबार्थ मूख्यत्वात्

तथा च स्याद्वादमंजरी "ये केचनार्थ, निरुपण प्रवणाः प्रमात्रभिप्रायास्ते सर्वेऽप्याद्येनय चतुष्टयेऽन्तर्भवति ये च शब्दविचार चतुरास्ते शब्दादि नय त्रय इति॥

॥ तथा रत्नाकरावतारिका ग्रंथे "द्रवति द्रोष्यति अदुद्रवत् तांस्तान् पर्यायानिति द्रव्यं तदेवार्थ, सोऽस्ति यस्य विषयत्वेन स द्रव्यार्थिक"

"पर्येति उत्पाद् विनाशौ प्राप्नोतीति पर्याय स एवार्थः स अस्ति यस्यासौ पर्यायार्थिकः" ॥ ३ ॥

दुर्नय ते सुनय चलाया, एकत्व अभेदे ध्यायारे ॥ मन० ॥
ते सवि परमार्थ समाया, तसु वर्त्तन भेद गमायारे॥मन० ॥४

अर्थः—सुनयनुं लक्षण कहे छे "स्वार्थ ग्राही इतरांशाप्रतिक्षेपी सुनय इति सुनय लक्षणं" कुनयनु लक्षण कहे छे. "स्वार्थ ग्राही इतरांशप्रतिक्षेपी दुर्नय इति दुर्नय लक्षणं" अर्थ—स्वाजिष्ट धर्मने गवेषतां बीजा धर्मोनी अपेक्षा नहि राखनार बीजा धर्मोंने ओलवनार जे दुर्नयो तेने दुर करी स्वाजिष्ट धर्मथी इतर सर्वे धर्मोनी अपेक्षा राखी स्यात्पदे शोजता सुनय—अनेकांत वादनी प्रवृत्ति करी ते अनेकांत—स्याद्वादनये वस्तुनु संपूर्ण स्वरुप जाणी सर्वे धर्मो वस्तुथी एकत्व तथा अन्नेद अर्थात् कोई काले जूदा नहि पडे एम चित्तमां चिंतन करी धारणा करी ते सर्वे नयोने परमार्थ एटले शुद्ध द्रव्यस्वरुपमा समाव्या, तज्जन्य एक शुद्धात्म अनुजूतिने जोगववा लाग्या, नयोनी वर्त्तना रुप विकल्पनो नाश थयो उक्तंच—उपेंद्रवज्रा

य एव मुक्त्वा नय पक्षपातं, स्वरूप गुप्ता निवसन्ति नित्यं
विकल्पजाल च्युत शान्तचित्ता, स्तएव साक्षादमृतं पिवन्ति ॥ ४ ॥

स्याद्वादी वस्तु कहीजे, तसुधर्म अनंत लहीजे रे ॥ मन० ॥
सामान्य विशेषनुं धाम, ते द्रव्यास्तिक परिणाम रे ॥ मन० ॥ ५ ॥

अर्थः—वस्तु अनंत धर्मात्मक छे अर्थात् अनंता धर्मो वस्तुमा समकाले होय छे जेम स्वद्रव्यादि चतुष्टये वस्तु अस्ति स्वन्नाववत छे, पर द्रव्यादि चतुष्टये वस्तु नास्ति स्वन्नाववत छे तेमज नित्य, अनित्य, एक, अनेक, जेद, अन्नेद, जव्य, अजव्य, वक्तव्य अवक्तव्य, विगेरे स्वन्नाववंत वस्तु होयछे माटे जो तेमाथी स्वाजिष्ट एकस्वन्नावने एकाते

गवेषीये, निश्चय करीये तो वस्तुनुं ज्ञान यथार्थ थाय नहीं पण जो स्यात् अस्ति, स्यात् नित्य, स्यात् एक विगेरे अनेकांते गवेषीये तो बाकी रहेला बीजा धर्मोनी पण सूचना थाय एम सर्वे वस्तु स्याद्वाद अनंत धर्मात्मक छे तेथी स्याद्वाद वडे वस्तुमा रहेला अनंत धर्मनो बोध थाय.

वली अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रमेयत्व, सत्त्व, ए छ मूल सामान्य तथा अस्तिस्वभाव, नास्तिस्वभाव, नित्यस्वभाव, अनित्यस्वभाव, एकस्वभाव, अनेकस्वभाव, भेदस्वभाव, अभेदस्वभाव भव्यस्वभाव, अभव्यस्वभाव, वक्तव्यस्वभाव, अवक्तव्यस्वभाव, परम स्वभाव विगेरे उत्तरसामान्य स्वभाव वस्तुमां अनता छे तथा जीवमां चेतनता अनुयायी अनेक विशेष स्वभाव छे तेम धर्मास्तिकायमां गति सहायादि, तथा अधर्मास्तिकायमां स्थितिसहाय आदि तथा आकाशमां अवगाहदान आदि तथा पुद्गलमां पूरण गलनादि अनंत धर्मो छे ते अनंत सामान्य स्वभाव तथा विशेष स्वभावनो आधारभूत जे अस्तित्वधर्म ते सर्वे द्रव्यमां सदाय समकाले परिणमे छे. उक्तंच. " नित्यत्वादीनां उत्तर सामान्यानां परिणामिकत्वादीनां विशेष स्वभावानामाधारभूत धर्मत्वं अस्तित्वं " विगेरे ॥ ५॥

जिनरुप अनंत गणीजे, ते दिव्यज्ञान जाणीजे रे ॥मन०॥
श्रुत ज्ञाने नय पथ लीजे, अनुभव आस्वादन कीजे रे ॥
मन० ॥ ५ ॥

अर्थः—जिनेश्वर निर्मल ज्ञानानुयायी अनंत रमणीय गुणना समूह अनंत धर्मे विराजमान छे, अप्रतिहत् महान् तेजस्वी अखंड एक ज्ञान मूर्त्ति छे, इंद्रिय विषयथी अतीत छे, ज्ञानस्वरुपी ज्ञानगम्य छे, तेथी तेओने रागद्वेष रुप मलीनताथी रहित मात्र शुद्ध दिव्यज्ञानवडे जाणी शकीये.माटे जिनेश्वर ते अनंत गुणात्मक अर्थात् जिनेश्वरना अनंत

गुणोने शुद्ध नये जाणवुं तेज सुंदर अनुपमज्ञान छे ते माटे अनत गुणात्मक जिनेश्वरने सम्यक्प्रकारे जाणवा माटे नवसमुद्रमा नौका समान सर्वज्ञ वीतराग प्ररुपित श्रुतज्ञानना प्रसादथी सुनय-स्याद्वाद मार्ग ग्रहण करीए अने शुद्ध नये जाणी तत्त्वरुपना अनुभवनो आनद पामीए-जोगवीए उक्तंच-राग-वसत तिलका वृत्तम्-" नैकान्त संगत दृशा स्वयमेव वस्तु, तत्व व्यवस्थितिमिति मविलोक यन्त ॥ स्याद्वाद शुद्धि मधिका मधिगम्य सन्तो, ज्ञानी नवन्ति जिन नीति मलन्घयन्त " नावार्थ-सर्वे वस्तु सहज अनेकातात्मक छे माटे जिनेश्वरना स्याद्वाद न्यायने नहि उलंघन करता वस्तु, तत्त्वनी अनेकातात्मक व्यवस्था सन्मुख दृष्टि राखी स्याद्वादनी अधिक शुद्धिने अंगीकार करी सत्पुरुषो ज्ञानी वने छे-ज्ञानपद धारण करे छे ॥ ५ ॥

प्रभु शक्ति व्यक्ति एक नावे, गुण सर्व रह्या समनावेरे ॥ ॥ मन० ॥ माहरे सत्ता प्रभु सरखी, जिन वचन पसाये परखीरे ॥ मन० ॥ ६ ॥

अर्थ-हे त्रिलोकपूज्य प्रभु ! आपनी ज्ञान दर्शन सुख वीर्यादि सर्व शक्तिओ व्यक्त अर्थात् निरावरण थई छे, अबाधित पणे पोताना शुद्ध कार्ये परिणमे छे, आगामी अनंतकाल सुधी एमज परिणमवाने शक्तिमान छे, कोइ पण काले क्षीणता पामे तेम नथी कारण के द्रव्यमा सामर्थ्य पर्याय तथा छती पर्याय अनंत छे माटे आपनी शक्ति व्यक्ति एक नावे छे तथा आप अमुक वर्त्तमान समये सर्वे द्रव्यना त्रिकालवर्त्ती पर्यायोने समकाले प्रत्यक्ष पणे जाणो छो अर्थात् आ समये आवी रीते परिणमे छे, आवते समये अमुक रीते परिणमशे पछी बीजे समये अनागतने वर्त्तमान पणे जाणो छो अने वर्त्तमान

परिणतिने भूतपणे जाणो छो एम उत्पाद् व्ययने भोगवो छो पण आपनी कोइ पण शक्ति हवे आवृत्त नथी के जे हवे प्रगट व्यक्त थाय माटे सर्वे शक्ति व्यक्ति एक भावे छे. तथा ज्ञान शुद्ध ज्ञानपणे, दर्शन शुद्ध दर्शनपणे, एम आपना सर्वे गुणो राग द्वेष मोह विगेरेथी रहित समभावे परिणमे छे कारण के विषय परिणामना हेतु अज्ञान मिथ्यात्व कषायनो आपे समूल नाश कर्यो छे वली जेम आप अचल सिद्ध स्वक्षेत्रमा वसी स्वतत्र पणे अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनत सुख, अनंत वीर्य, अव्याबाधता, अटल अवगाहना, अगुरूलघुत्व, अमूर्त्तित्व, अजरता, अमरता, निर्भयता, निरामयता, निराकुलता, निर्द्धधता, निस्पृहता आदि अनंत गुण जन्य आनंद समूहना विलासी थया छो तेमज हु पण संग्रह नये आप समान सत्ताधारी छु. जो आपनी आज्ञाने मस्तके चढावी तदनुसार सम्यक्पराक्रम बजावी सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्रने आदरूं—सेवु तो आप सदृश परमानंद भोगने निःसंदेह प्राप्त थाउं. उक्तंच—" तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यग् दर्शनं, यथार्थ हेयोपादेय परीक्षा युक्त ज्ञानेन सम्यग्ज्ञानं, स्वरुप रमणं पर परित्याग रुपं चारित्रं येतद्रत्नत्रयी रूप मोक्ष मार्ग साधनात् साध्य सिद्धिः " एम में आपना न्याय युक्त अबाध्य वचनना प्रसादे परिक्षा पूर्वक माहरी सत्तानो निर्धार कर्यो छे ॥ ७ ।

तुं तो निज संपत्तिनो भोगी, हुं तो पर परिणतिनो योगी रे ॥ मन० ॥ तिणे तुम प्रभु माहरा स्वामी, हुं सेवक तुज गुण ग्रामी रे ॥ मन० ॥ ८ ॥

अर्थः—हुं अनादिथी कर्म शत्रुनी जेलमां पडेलो होवाथी अनंत काल सुधी माहरी ज्ञानादि अखुट लक्ष्मीनुं मने दर्शन पण न मल्युं तेथी जंम चल जगत् जीवनी एठ, जलना परपोटा जेवी क्षणभंगुर,

पराधीन, चाहदाहथी बालनार, माहराथी दूरवर्त्ती थई अनेक प्रकारना शोक दुःख उपजावनार, तेना काल प्रमाणे वर्त्तनार, सदा अतृप्त राख नार, जेनो जोग किंपाकफलनी पेठे प्राण घातक, एवी जे पुद्गल परिणति (पौद्गलीक विषयो) तेमां हु जोग सुख मानी मग्न, तल्लीन थई रह्यो, माहरी कर्तृत्व, जोक्तृत्व ग्राहकत्व, व्यापकत्व, दान लाभ, जोग, उपजोग आदि परिणतिने तद्‌गत करी संसार परिपाटीने वधारी उक्तच–" जो अपसत्थोरागो, वड्ढइ संसार जमण परिवाभी। विसयाइसु सयणाइसु, इठत्तं पुग्गलाइसु ॥ " माहरी अनुपम अखूट ज्ञानादिक सपदाथी वियोगी रह्यो पण हे जगवंत ! आप तो आत्म सपदाना जोगमा अतराय करनार कर्मशत्रुनो सम्यक्‌चारित्र वडे समूल नाश करी अनतज्ञान, अनतदर्शन, अनतसुख, अनतवीर्य अनतदान, अनंतलाज, अनंतजोग अनतउपजोग आदि स्वसपदानो लाज मेलवी स्वाधीन करी निरंतर निष्कंटक पणे ज्ञानादि अनंत अचल निरुपचरित अनुत्तर आत्म संपदाना जोगमां अत्यंत मग्न थया ठो तेथी हे प्रजु ! आपनेज माहरा स्वामी जाणुं हु, आपथीज माहरो मनोर्थ परिपूर्ण थशे आपनाज दर्शनथी मारी अखुट लक्ष्मी माहराउपर प्रसन्न थई माहरे स्वाधीन थशे माटे हु आपनी सेवाने निरंतर चाहनार आपनो सेवक आपनाज गुण ग्राममां संतोष वृत्ति धारण करु हुं ॥ ७ ॥

ए संबंधे चित्त समवाय, मुज सिद्धिनुं कारण थाय रे ॥
मन० ॥ जिनराजनी सेवना करवी, ध्येय ध्यान धारणा
धरवी रे ॥ मन० ॥ ए ॥

तुं पूरण ब्रह्म अरुपी, तुं ज्ञानानंद स्वरुपी ॥ इम तत्त्वा-
लंबन करिये, तो देवचंद्र पद वरिये रे ॥ मन० ॥ १० ॥

अर्थः–आपनी सेवामा जो माहरुं चित्त एकाग्र थाय, अभेद संबंध धारण करे तो तत्काल माहरा उपादानमां सिद्धिनुं कारणपद उत्पन्न थाय माटे में तो निश्चय कर्यो छे के हे जिनेश्वर! अन्य सकल परद्रव्यनी सेवा तजी आपनीज सेवामां निरंतर वसतुं, आपने शुद्ध ध्येय जाणी आपनाज ध्यानमां निश्चल वृत्ति धारण करवी. ॥ ९ ॥

कारण के हे जिनेश्वर! कोइ पण द्रव्यनी कामना आपमां जणाती नथी तथा पोताना ज्ञानादि सर्वे पर्यायोना आप कारण तथा ज्ञाता भोक्ता होवाथी आप पूरण ब्रह्म छो रूप रस गंध स्पर्श संस्थान आदि पुद्‌गल द्रव्यना कोइ पण पर्यायनो आपने रंच मात्र पण संश्लेष नथी तेथी आप अरूपी छो आप पोताना ज्ञानजन्य आनंदमां सदा लीन छो–तद्रूप छो माटे आपनुं अवलंबन धारण करूं छुं. कारण के जेम काष्टना अवलंबने लोढुं जलमां तरी जाय तेम हुं आपना अवलंबने आ नयकर भवार्णवमांथी तरी देवमां चंद्रमा समान शुद्ध सिद्ध परमात्म अवस्थाने प्राप्त थईश. ॥ १० ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ षष्ठम श्री स्वयंप्रभ जिन स्तवनं ॥

मो मनडो हेमाउ हो मिसरि ठाकुरो महदरो ॥ ए देशी ॥

स्वामी स्वयंप्रभने हो जाउं भामणे, हरखे वार हजार ॥
वस्तुधरम पूरण जसु नीपन्यो, भावकृपा किरतार ॥
स्वामी० ॥ १ ॥

अर्थः–महान् अखूट वैभवधारी इन्द्र चंद्र चक्रवर्त्ती आदिना समूहवडे पण वंदनीक, स्वय बुद्ध, स्वयं आत्म लक्ष्मीना स्वामी श्री स्वयंप्रभु स्वामीने हजारवार–वारंवार, निरंतर, भामणे जाउं–अत्यंत

प्रमोद भावना वडे गुणानुरागी थइ सेवा भक्तिमा लीन थाऊं. के जेनो " वस्तु धरम पूरण नीपन्यो " अर्थात् अनादि कालथी ज्ञानावरणादि कर्मवडे आवृत थइ रहेला होवाथी ज्ञानादि आत्म धर्मो पोतानु कार्य शुद्ध रीते करी शकता नहोता, परवश परानुयायी थइ रह्या हता, कर्मबंधनना हेतु थइ रह्या हता, ते सर्वे धर्मो संपूर्ण प्रगट–व्यक्त थया छे, तदन निरावरण थया छे, अप्रतिहत् पणे पोताना शुद्ध कार्ये निरंतर परिणमे छे तेथी अखंड अचल अविनाशी परमानंद दशाने प्राप्त थया छे परम निर्भय निराकुल दशामा अनंत शुद्धात्म अनुभूतिमा तल्लीन थइ रह्या छे तथा " भाव कृपा किरतार " अर्थात् चार गतिरुप अपरिमित भयकर भवाटवीमा विषय कषाय वशे छेदन भेदन ताडन तर्जन तिरस्कार वियोग शोक भय आक्रंद विगेरे अनेक प्रकारना असह्य शारीरिक तथा मानसिक दुःखो दीन अनाथपणे भोगवताने, अत्यंत कारुण्य भावनावडे सम्यक्‌दर्शन, ज्ञान, चारित्ररुप मोक्ष मार्गे दोरी, तेउना दुःखनो समूल नाश करी परमानदमय शिवपुरीमा बिराजमान करो छो एज श्री स्वयंप्रभु स्वामीनी दया परमोत्कृष्टता धरावे छे पण जे विषय कषायनी वृद्धि करनार उपदेश, तथा पदार्थो आपी, अज्ञानी जीवोनी विषय कषाय तथा हिंसानी प्रवृत्तिने वधारे छे–तेना कारणोने पुष्ट करे छे अने हमे दया करीए छीए एम कहेनार मिथ्याभिमानी जीवो तो हे प्रभु! दयालु नहि पण वास्तविक न्याये आपना वचनानुसार हिंसाना अनुमोदक प्रतित थाय छे ॥ १ ॥

द्रव्य धरम ते हो जोग समारवा, विषयादिक परिहार ॥
आतमशक्ति स्वभाव सुधर्मनो, साधनहेतु उदार ॥
स्वामी० ॥ २ ॥

अर्थ –प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध

मान, माया, लोज, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, रति-अरति, परपरिवाद, मायामृषावाद तथा मिथ्यात्वशल्य ए पापस्थानमा मन वचन कायाने न प्रवर्त्तावतां स्याद्वाद युक्त जिनेश्वरना पवित्र कल्याणकारी वचनो वांचवा, साजलवा, विचारवामां तथा तेना उपदेष्टा सद्गुरू आदिना विनय वैयावच्चादिमा तथा ज्ञान दर्शन चारित्रनी वृद्धि तथा स्थिति करवामा प्रवर्त्तावबां तथा " विषयादिक परिहार " अर्थात् वीणा, सारंगी, डुडुजि, विगेरे वाजीत्र तथा मेना, पोपट, स्त्री, किनरी आदिना ललित, मनोहर स्वर ते श्रवण-इन्द्रिनो विषय, तथा स्त्री पुरूष पशु पक्षी बालक बाग बगीचा तथा मनोहर आवास विगेरेना चित्र विचित्र मनोज्ञ वर्ण तथा घाट ते नेत्रइन्द्रिनो विषय, तथा पारिजातक, कुंद, कमल, मालति, गुलाब, अगर, तगर, चंदन, केशर, मलयागर विगेरे पदार्थोनी मनोज्ञ सुगध ते घ्राणेन्द्रिनो विषय, तथा स्वादीम, खादीम, पेय आदि वस्तुना मनोज्ञ मधुरादि स्वाद ते जीव्हाइंद्रिनो विषय, तथा स्त्री पुरुषादिनां मनोहर अग तथा शय्या आसन विगेरे पदार्थोना मनोज्ञ स्पर्श ते स्पर्शेन्द्रिनो विषय, ए पचेन्द्रिना विषयोनो त्याग करवो अर्थात् ते विषयोने इष्ट रम्य जोग्य सुहकर जाणी तेओमां राग, कामना, मूर्च्छा करवी नहि, प्राप्त स्वाधीन तथा जोगववानुं सामर्थ्य होवा उतां पण ते विषयादिने स्वजावाचरणथी चुकवाना हेतु तथा दु खना निदान जाणी तेओनो परिहार करवो ते साचो त्याग ठे पण नहि मलवाथी न जोगववुं ते कंई त्याग नथी, उक्तंच-(दश वैकालिके) "-जे य कंते पिए जोए, लद्धे विपिठि कुवइ ॥ साहीणे चयइ जोए, से हु चाइत्ति वुच्चइ "-एम त्रिजोगनु समारवुं तथा विषयादिनो त्याग ते आत्माना मलिन थयेला ज्ञान दर्शन चारित्र आदि स्वजाविक धर्मने शुद्ध प्रगट करवामां कल्याणकारी साधनो होवाथी द्रव्यधर्म

छे अर्थात् जाव धर्मना कारणो छे. उक्तंच-" कारण यासे दवं " अने कारण वगर कार्य सिद्धि असज्य छे, उक्तंच-कारण जोगे हो कारज नीपजेरे, एहमां कोइ न वाद । पण कारण विण कारज साधियेरे, ते निज मति उन्माद-माटे विषय परिग्रहादि जे रागादि अशुद्धोपयोगना हेतुओछे तेनो त्याग करवो अने ज्ञान ध्यानादिक, जे रागादिनो नाश करी शुद्धात्म जाव प्रगट करवाना हेतुओ छे ते आदरवा, जेथी कार्य सिद्धि थाय ॥ २ ॥

उपशम जावे हो मिश्र क्षायिकपणे, जे निज गुण प्राग्जाव ॥
पूर्णावस्थाने नीपजावतो, साधन धर्म स्वजाव॥स्वामी० ॥ ३

अर्थ-एम त्रिजोगनुं समारवुं तथा विषयादिकनो त्याग, ए ज्ञानादि धर्मो प्रगट करवानां साधनो छे ते उपशम क्षयोपशम तथा क्षायिकजावे प्रगट थयेला आत्म गुणोने पूर्ण शुद्ध अवस्थाने अर्थात् सिद्धदशाने प्राप्त करे छे. जे कइ आत्म धर्म उपशमपणे क्षयउपशमपणे वा क्षायिकपणे प्रगट-प्राप्त थयो ते क्रमे क्रमे आत्म गुणोनी शुद्धि करतो संपूर्ण शुद्धावस्थाने-सिद्ध अवस्थाने प्राप्त करवाने कारण रुप छे. जेम समकित प्राप्त थयाथी विरतिनी प्राप्ति थाय, अने विरतिवडे अप्रमत्त जावनी प्राप्ति थाय, तथा अप्रमत्त गुण वडे सपूर्ण कषायोनो नाश थाय, कषायोना नाशवडे वीतरागता प्राप्त थाय छे, अने वीतरागता वडे केवलज्ञान थाय एम क्रमे क्रमे आत्म गुणोनी अधिक अधिक शुद्धि थइ संपूर्ण शुद्धि थाय. तेथी जे गुण प्राप्त थयो ते अधिक गुणनी प्राप्तिनो हेतु छे. जेम कोइ माणस महान् व्याधिग्रस्त होवाथी जरा पण खोराक लइ पचावी शकवाने असमर्थ होय, अत्यत निर्बल होय पण ते कोइ रीते थोडुं बल पामे तो ते बलवडे धीमे धीमे अधिक खोराक पचावी अधिक अधिक बलवान थतो पूर्ण बलवा[illegible]

प्रशमरति ग्रंथे—आर्या छंद ॥ पूर्व करोत्यनंतानुबन्धि नाम्नां क्षयं कषायाणाम् । मिथ्यात्व मोह गहणं, क्षपयति सम्यक्त्व मिथ्यात्वम् ॥ सम्यक्त्व मोहनीयं, क्षपयत्यष्टावतः कषायांश्च। क्षपयति ततो नपुंसक, वेदं स्त्रीवेद मथतस्मात् ॥ हास्यादि ततःषट्कं, क्षपयति तस्माच्च पुरुषवेदमपि ॥ संज्वलनानपि हत्वा, प्राप्नोत्यथ वीतरागत्वम् । सर्वोद्घातित मोहो, निहत क्लेशो यथाहि सर्वज्ञः॥भात्यनुप लक्ष्य राह्वंशोन्मुक्तः पूर्ण चन्द्रइव ॥" तेथी समकित प्राप्ति माटे अत्यंत उद्यम करी प्रथम समकितनी प्राप्ति करवी जेथी बीजा सर्वे गुणो प्रगट थाय. ॥ ३ ॥

समकित गुणथी हो शैलेशी लगे, आतम अनुगत भाव ॥
संवर निर्जरा हो उपादान हेतुता, साध्यालंबन दाव ॥
स्वामी० ॥ ४ ॥

अर्थः—अनादि विभाव योगे आत्म परिणति परानुगत थएली छे अर्थात् ज्ञानशक्ति परद्रव्यने जाणवामां, दर्शनशक्ति परद्रव्यने देखवामां—निर्धार करवामां, चारित्रशक्ति परद्रव्यमां आचरण रमण करवामा, एम सर्वे गुणो आत्मगुणना बाधकपणे परानुयायी प्रवर्त्ते छे पण ज्यारे समकितनो लाभ पामे त्यारे परानुगत थएली आत्म परिणतिने शुद्धात्म अनुगत पणे प्रवर्त्तावबानो अभिलाषी थाय. शुद्ध कार्य सन्मुख परिणति करे अर्थात् " समकित गुणथी " एटले चोथा गुणस्थानथी माडी " शैलेशी गुण लगे " एटले चौदमा गुणस्थान सुधी परानुगत थएली आत्म परिणतिने वारी क्रमे क्रमे अधिक अधिक शुद्धताए वर्त्तावतो जाय. जेम जे परिणति अनात्म वस्तुने आत्म जाणवा—सद्दहवा विगेरेमां प्रवर्त्तती हती ते चोथे गुणस्थाने आत्माने आत्मा जाणवा—सद्दहवा विगेरेमां प्रवर्त्तावे तथा जे परिणति हिंसादि पांच

अव्रतमां वर्त्तती हती ते पाचमे छठे गुणस्थाने अहिंसादि पाच व्रतमा वर्त्तावे तथा मद विषय कषाय निद्रा विकथामा जे परिणति वर्त्तती हती ते वारी सातमे गुणस्थाने अप्रमत्त जावे आतमगुण रमणमा वर्त्तावे एम आठमे गुणस्थाने रसघात स्थितिघात गुणसंक्रम गुणश्रेणि करे, अपूर्व स्थिरतामा आत्म परिणतिने प्रवर्त्तावे, सज्वलन क्रोध मान माया विशेषथी आत्म परिणतिने वारी नवमे गुणस्थाने ते कषाय रहित–अकषायपणे–समजावमा वर्त्तावे, सूक्ष्म लोज शिवाय बाकीना कषायथी आत्म परिणतिने वारी दशमे गुणस्थाने अधिक शुद्ध समपरिणामे प्रवर्त्तावे, सर्वे कषायनो क्षय करी बारमे गुणस्थाने वीतराग यथाख्यात चारित्रमा वर्त्ते, चार घातीया कर्मनो समूल क्षय करी तेरमा गुणस्थाने अनंतज्ञान, अनंत दर्शन, अनत चारित्र, अनत वीर्यपणे आत्म परिणतिने वर्त्तावे–योग क्रियानी सकल चपलता वारी चौदमा गुणस्थाने अयोगी अवस्था करी पूर्ण परम निवृत्ति पद पामे एम दरेक गुणस्थाने आत्म गुणनी अधिक अधिक शुद्धि करतो संपूर्ण सिद्धावस्थाने प्राप्त थाय एम दाव राखी साध्यने आधारे साध्य सन्मुख उपादान–आत्म परिणतिनी शुद्धताना हेतुए वर्त्तवुं तेज सवर अर्थात् नवाकर्मनुं रोकवु तथा निर्जरा एटले पूर्व सचित कर्म क्षय थवानो हेतु छे, उक्तंच–" जो संवरेण जुत्तो, अप्पठ्ठ प्रसाधगोहि अप्पाणं । मुणिऊण फादि णियदं, णाणं सो संधुणोदि कम्मरयं" ॥ ४ ॥

सकल प्रदेशे हो कर्म अजावता, पूर्णानंद स्वरूप॥ आतम गुणनी हो जे सपूर्णता, सिद्ध स्वजाव अनूप॥स्वामी०॥ ५॥

अर्थ –आपना आत्म अंगना सर्वे प्रदेशथी ज्ञानावरणादि कर्म मलनो सर्वथा अजाव थयो छे तेथी सर्वे प्रदेश स्फटिकमणि समान शुद्ध सपूर्ण निरावरण थया छे, कोइपण काले हवे कर्म मलनो रंच मात्र पण

संश्लेष थवानो संभव नथी, तेथी आत्म अंगमां वसता अनंत गुण पर्यायना सर्वे अविभागो संपूर्ण शुद्ध थया छे, शुद्ध कार्ये परिणमे छे तेथी हे भगवंत ! आप पूर्णानंद स्वरुप छो अर्थात् जगत्जीव तो उपाधिना प्रतिकारथी आनंद माने छे, परद्रव्यने भोग जाणी तेमा लयलीन थई रहे छे तेथी जगत्जीवनो आनंद तो क्षणभंगुर अपूर्ण तथा भयसहित छे, पण आप तो पोताना स्वाधीन अविनश्वर एक क्षेत्रावगाही गुण पर्यायोना भोक्ता छो, तेमां रमण करो छो, तेमा संतुष्ट तल्लीन थई आनंद भोगवो छो तेथी आपनो आनंद कोईपण काले नाश थाय अथवा दूर जाय तेम नथी तथा स्वाधीन अने सहज होवाथी भय आकुलता स्पृहा रहित छे तेथी आपनोज आनंद एकांतिक आत्यंतिक पूर्णपदने योग्य छे जगत्जीवनो आनंद तो साचो आनंद नथी, अज्ञान वशे आनंद मनाय छे. एम आत्मगुणनी संपूर्ण शुद्धता, कर्त्तृता, भोक्तृता, परिणामीकता, ग्राहकता, व्यापकता आदि तेज आपनो अनुपम सिद्ध स्वभाव छे. हवे कंईपण कार्य करवानुं शेष नथी, कईपण आदरवानु तेम छोरुवानुं बाकी नथी तेथी अचल अबाधित शाश्वत परमानदना स्वामी छो ॥ ५ ॥

अचल अबाधित हो जे निःसंगता, परमातम चिद्रूप ॥
आतमभोगी हो रमता निजपदे, सिद्ध रमण ए रूप ॥
स्वामी० ॥ ६ ॥

अर्थ.—आत्म परिणामने चल करनार जे राग द्वेष मोह परिणाम तेनो सर्वथा अभाव होवाथी अचल, तथा आत्म परिणामने शुद्धपणे परिणमवामा घात, स्खलना करनार ज्ञानावरणादिक घातीकर्मनो अभाव होवाथी अबाधित छो तथा धन धान्य क्षेत्र वस्तु हिरण्य आदि बाह्य परिग्रह तथा मिथ्यात्व क्रोध मान माया लोभ हास्य रति अरति भय शोक जुगुप्सा पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद ए चौद

अभ्यंतर परिग्रह, एम बाह्य अभ्यतर परिग्रहथी सर्वथा रहित होवाथी निःसंगछो तथा ज्ञानानुयायी सर्वे धर्मो संपूर्ण शुद्ध निर्मल होवाथी परमात्मा छो तथा संसार अवस्थामां कर्म संयोगे शरीरमां छोली-जूतपणे वसी शरीर रूपे पुद्गल रुपे संसारीजीव पोताने माने छे पण आप तो शरीरथी सर्वथा अतित थयाछो तेथी मात्र ज्ञानरूप-ज्ञानमूर्त्ती छो तथा पुद्गल जोगनु रमण तजी आप पोताना शुद्ध ज्ञान दर्शनादि गुणोमां रमण करवावाला आत्म जोगी छो, शुद्ध स्वाधीन अविनश्वर रम्यमां रमण करो छो तेथी आपनुं रमण संपूर्ण अने अविनश्वर होवाथी सिद्धपद धारण करे छे ॥ ६ ॥

एहवो धर्म हो प्रभुने नीपन्यो, भाख्यो एहवो धर्म ॥
जे आदरतां हो भवियण शुचि हुवे, त्रिविध विदारी कर्म ॥
स्वामी० ॥ ७ ॥

अर्थ—एम हे प्रभु ! आपना ज्ञानादि सर्वे धर्मो कर्म मलथी रहित शुद्ध प्रगट थया अचल, अविनाशी, अनत, अज, अलेशी, अवेदी, अकषायी, अचल, अक्रिय, नित्य, स्वाधीन, निर्द्वंध, परमानद दशाने प्राप्त थया छो. अने जे रीते आप ए दशाने प्राप्त थया तेज उपाय, तेज धर्म, परम करूणा वडे भव्य जीवोने आ संसार समुद्रमाथी पारंगत थई शिवभूमीए पहोंचवा प्ररूप्यो-उपदेश्यो छे ते सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप धर्म आदरतां-सेवतां भव्य जीवो द्रव्यकर्म, भावकर्म अने नोकर्म ए त्रण प्रकारना कर्मनो नाश करी परम पवित्र शुद्ध निरावरण थाय ॥ ७ ॥

नाम धरम हो ठवण धरम तथा, द्रव्य क्षेत्र तिम काल ॥
भावधर्मना हो हेतु पणे भला, भाव विना सहु आल ॥
॥ स्वामी० ॥ ८ ॥

अर्थः—नामधर्म, स्थापनाधर्म, द्रव्यधर्म, क्षेत्रधर्म, कालधर्म तथा भावधर्म एम धर्म स्वरूप अनेक प्रकारे छे, पण नाम, स्थापना, द्रव्य क्षेत्र तथा काल ए जो भावधर्मना सन्मुख, भावधर्मना हेतु होय अर्थात् भावधर्म साधवामां कारणभूत होय तो प्रशंसनीय, कार्य-कारी छे पण जो ते भावधर्मनी अपेक्षा शून्य होय तो आल अर्थात् निरर्थक धुल उपर लींपण जेवा जाणवा. "भाव शून्या क्रिया न फलन्ति इति" अथवा एकडा विनानां मीडां जेवा जाणवा पण जो भावधर्मनी सापेक्षताए होय तो एकडा उपरना मीडांनी माफक गुणकारी छे ॥ ८ ॥

श्रद्धा भासन हो तत्त्व रमण पणे, करता तन्मय भाव ॥
देवचंद्र जिनवर पद सेवतां, प्रगटे वस्तु स्वभाव ॥
॥ स्वामी० ॥ ९ ॥

अर्थः—शुद्धात्म तत्त्वनी श्रद्धा अर्थात् जो हुं जिन प्ररूपित सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र रूप धर्म आदरूं तो हुं पण शुद्धात्म तत्त्वनो भोगी थई शकुं एम श्रद्धा करे, नय निक्षेप प्रमाण युक्त एम जाणे, तथा ते शुद्धात्म तत्त्वनेज पोतानुं रम्य जाणी तेमांज रमण करे, परद्रव्यादिमांथी रमणता टाळे, तो आत्म स्वभावमांज तल्लीन थाय—तद्रूप थाय. श्रीमान् देवचंद्र मुनिवर कहे छे के एम जिनेश्वरना द्रव्यचरण भावचरणने सेवता आपणो आत्म स्वभाव संपूर्ण शुद्ध प्रगटे, परमानंदनी प्राप्ति थाय. ॥ ९ ॥ ॥ संपूर्ण ॥



॥ अथ सप्तम श्री रुषजानन जिन स्तवनम् ॥ वारी हुं गोमी पासने ॥ ए देशी ॥

॥ श्री रुषजानन वंदिये, अचल अनंत गुण वास जिनवर।
॥ क्षायिक चारित्र जोगथी, ज्ञानानद विलास जिनवर ॥
॥ श्री० ॥ १ ॥

अर्थ.--धर्म धुरधर, धर्म तीर्थंकर, अशरण शरण, श्री रुषजानन प्रजुने आ लोक परलोकना विषय सुखनी अजिलाषा स्पृहा रहित तथा मान पूजाना लोज रहित, आ संसार समुद्रमांथी तारण तरण जहाज जाणी, अत्यत विशुद्ध जावनाए परम आदर पूर्वक वंदिये-सेवा जक्ति करिये के जे प्रजु अचल अर्थात् प्रदेश मात्र पण दूर न थाय तथा राग रूप मोह जन्य चपलता रहित एहवा ज्ञानादि अनंत गुणना वास-निधान छे तथा क्रोध मान माया लोज हास्य रति अरति जय शोक जुगुप्सा तथा त्रण वेद ए चारित्रमोहनीय प्रकृतिनो सत्ता सहित क्षय करी यथाख्यात् स्वजावाचरण ज्ञान दर्शन आदि अनत स्वजाविक जोग जन्य आनदमा अनंत ज्ञान सहित विलसे छे ॥ १ ॥

॥ जे प्रसन्न प्रजु मुख ग्रहे, तेहिज नयन प्रधान जिनवर ॥
॥ जिन चरणे जे नामीये, मस्तक तेह प्रमाण जिनवर ॥
॥ श्री० ॥ २ ॥

अर्थ --हे जगवत ! आपना ज्ञान दर्शनादि सर्वे जोग उपजोगो आपने सदा स्वाधीन वर्त्ते छे कोइ पण काले प्रदेश मात्र पण दूरवर्त्ती थाय तेम नथी तेथी आप सदा शोक रहित तथा ते जोग उपजोगने कोइ पण बाधा, पीमा तथा हरण करी शके तेम नथी तेथी परम

निर्भय, तथा ते जोग उपजोगो पर द्रव्यना मेल–मलिनता रहित सदा शुद्ध होवाथी आप गिलानी रहित, तथा ते जोग उपजोगो अखूट आनंद जनक होवाथी अरति रहित छो, एम क्रोधादि सर्वे कषाय रहित होवाथी आपनुं मुखकमल सदा अम्लान परम प्रफुल्लित प्रसन्न छे, दर्शनीय छे. एहवा आप श्रीना आनद वर्धक वदनकमलनु, जे नेत्र वडे दर्शन थाय तेज नेत्र प्रधान कल्याणकारी मानुं छु. तथा मोक्ष मार्गमां अति शीघ्रताए गमन करनार आपना चरण द्वयने, जे मस्तक वडे स्पर्श थाय तेज मस्तक पाम्युं प्रमाण गणु छु ॥ २ ॥

॥ अरिहा पदकज अरचीये, सलहीजे ते हथ्थ जिनवर ॥
॥ प्रभु गुण चिंतनमें रमे, तेहज मन सुकयथ्थ जिनवर ॥
॥ श्री० ॥ ३ ॥

अर्थः–अनादि कालथी आत्म साम्राज्यने कबजे करि राखनार मोहादि दुष्ट शत्रुओने जेमणे अति तिक्ष्ण ज्ञान बाण वडे गतःप्राण निर्वंश कर्या छे एहवा हे श्री अरिहंत ऋषभानन भगवंत ! माहरा मन मधुकरने अत्यत विश्रामना स्थान, शुद्धात्म अनुभूति परिमलथी भरपूर आपना चरण कमलने, जे हाथ वडे अर्चु पूजु तेज हाथ सत्य लाभकारी समजुं छुं तथा हे प्रभु ! शरद ऋतुना पूर्ण चंद्र समान आल्हादक शांति आपनार आपना अनंत निर्मल परम पवित्र गुण समूहना चिंतन मननमां जे मन रमे, प्रमोद सहित वर्त्ते तेज मन सुकृतार्थ–सर्व अर्थनी सिद्धि करनार मानुं छु पण जेम हरिणने तेना कान मनोज्ञ स्वरमां लुब्ध करी जालमां फसावी शस्त्र वडे प्राणनो वियोग करावे छे तथा पतंगने जेम तेना नेत्रो मनोज्ञ वर्णमां मोहित करी अग्निनी ज्वालामां तेना देहने भस्मीभूत करावे छे तथा मधु-

करने तेनी घ्राणेंद्रि कमलनी सुवासमां मोहीत करी ते स्थले घेरी राखी तेना बल्लभ प्राणनो त्याग करावे छे तेम जो माहरूं मन, इंद्रियो तथा अंगोपांग विषय कषायना पदार्थो उपार्जन करवामा, मेलववामा, तेनुं सेवन, तेनी रक्षा करवामा रोकाय, स्वपर जीवना द्रव्य भाव प्राणनी हिंसा करवामा वर्त्ते-मददकारी थाय, पाप कर्मनुं उपार्जन करी भव भ्रमणना हेतु थाय, तो एहवा मन तथा इंद्रियोना लाभथी शुं? तथा दश दृष्टांते दुर्लभ एहवा मनुष्य भवनो लाभ पण निष्फल-यदुक्त- "यः प्राप्य दुःप्राप्यमिदं नरत्व, धर्मं न यत्ने न करोति मूढ. ॥ क्लेश प्रबंधेन स लब्ध मब्धो, चिंतामणिं पातयति प्रमादात्" ॥ तथा "ते धत्तूर तरुं वपति भवने प्रोन्मूल्य कल्पद्रुमम् । चिंतारत्न मपास्य काचशकलं स्वीकूर्वते ते जनाः ॥ विक्रीय द्विरदं गिरींद्र सदृशं क्रीणति ते रासभं । ये लब्धुं परिहृत्य धर्ममधमा धावंति भोगाशया" ॥ ३ ॥

जाणो छो सहु जीवनी, साधक बाधक भात जिनवर ॥ पण
श्रीमुखथी सांभली, मन पामे नीरांत जिनवर ॥ श्री० ॥४॥

अर्थ -हे त्रिलोक पूज्य ! दर्पण तलनी माफक आपनी केवल-ज्ञान मय उत्कृष्ट ज्योतिमा सर्वे द्रव्यो पोताना त्रैकालिक संपूर्ण पर्यायो सहित प्रयास विना यथावत् प्रतिबिंबित थाय छे तेथी सर्वे जीवोनी साधक बाधक भाति आप जाणो छो अर्थात् अमुक जीव आ समये सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र रुप मोक्ष साधनमां वर्त्ते छे के रत्न त्रयना प्रत्यनीक पणे भव भ्रमणना हेतु कर्म बंधनमां वर्त्ते छे ए सर्वे वृत्तांत हे करुणा निधि ! आप तो प्रत्यक्ष पणे जाणोछोज, पण जो आपना मुखारविंदथी हुं साधक भावमां वर्त्तु छु एम

सांजलुं तो माहरुं मन निरांत पामे, जव भ्रमणना जयनो क्लेश शमे–दूर थाय ॥ ४ ॥

तीन काल जाणंग जणी, शुं कहिये वारंवार ॥ जि० ॥
पूर्णानंदी प्रजुतणुं, ध्यान ते परम आधार ॥ जि० ॥
श्री० ॥ ५ ॥

अर्थः–त्रणे कालनी परिणतिने हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष पणे समकाले जाणवा देखवावाला प्रजु प्रत्ये वारवार शुं कहुं ? मने तो हे प्रजु ! स्वयंजूरमण समुद्रनी पेठे अखूट आनंद रसथी जरपूर आपनाज पदनुं ध्यान–आपना पदमां एकाग्रचित्त–तल्लीनता तेज जव समुद्रथी तरवामां उत्कृष्ट आधार जूत छे. ॥ ५ ॥

कारणथी कारज हुवे, ए श्री जिनमुख वाण ॥ जि० ॥
पुष्ट हेतु मुज सिद्धिना, जाणी कीध प्रमाण ॥ जि० ॥
श्री० ॥ ६ ॥

अर्थः–जगत् दिवाकर, संपूर्ण तत्त्व वेत्ता, श्री केवली जगवंत एम प्ररुपे छे के योग्य कारणना योग वडे कार्य सिद्धि थइ शके अर्थात् कार्यना स्वरुपनो यथार्थ जाणनार कार्यनो अजिलाषी कर्त्ता, उपादान अने निमित्त कारण वडे कार्य सिद्धि पामी शके. उपादान–जे पदार्थ कार्य सन्मुख थाय तथा तेज संपूर्ण कार्य रुप थाय–कार्य सिद्धिए जेनी हयाति जणाय ते उपादान कारण जाणवुं जेम घटनु उपादन कारण माटी तथा पटनुं उपादान कारण रु अथवा सूतर, कारण के माटीनो पिंड थाय, पिंडथी स्थास कुसलादि पर्यायो थइ माटीज संपूर्ण घट रुप थाय, संपूर्ण घट थये पण माटीनी हयाती छे माटे माटी घटनुं उपादान कारण समजवुं माटीथीज घट उत्पन्न थइ शके पण अन्य वस्तुमांथी घट थइ शके नहि. उक्तंच–" यदात्मकं

कार्ये द्रश्यते तदिह तद् द्रव्य कारणं उपादान कारणं-यथा तंतवः पटस्य इति"

निमित्त—जे उपादान कारणथी भिन्न होय छे पण ते विना कार्य सिद्ध थइ शकतु नथी कार्य सिद्ध करवामां जेनी खास जरुर छे ते निमित्त कारण छे ते निमित्त कारण पद, कर्त्ताने आधिन वर्त्ते छे जेम घटनु उपादान कारण माटी छे अने माटीथी दंड चक्र चीवर आदि भीन्न छे तो पण कुंभारने घट सिद्ध करवामां दंड चक्रादिनी अवश्य जरुर छे, ते विना घट बनावी शके नहि, तेथी दंड चक्रादि घटनां निमित्त कारण जाणवां पण ते दंड चक्रादिने कुंभार ज्यारे माटीने घट रुप करवामां प्रवर्त्तावे (उपयोगमा ले) त्यारेज तेज (दंड चक्रादि) निमित्त कारण कहेवाय पण कुंभार घट कार्य करवामा दंड चक्रादिने वापरतो न होय तो ते कारण कहेवाय नहि कार्य करवा मांडता पहेला तथा कार्य सिद्ध थइ गया पछी ते दंडादिमां कारण पद नथी कारण के कार्य कारण एक समये छे पण जे कार्यानंतर तथा प्रथम अप्रयुक्त काले दंडादिकने निमित्त कारण कहे छे ते मात्र नैगम नयनो मत जाणवो एम कार्यना स्वरुपनो जाणनार कार्यनो अभिलाषी कर्त्ता साचा उपादान तथा निमित्तना योगे कार्य सिद्धि पामे पण कारण वगर कार्य सिद्धिनो आकाश पुष्पवत् अभाव जाणवो तेथी हे प्रभु! ज्ञान पूर्वक निर्धार करता माहरा परमात्म सिद्धिना पुष्ट हेतु आपने जाणी आपनुज शरण अंगीकार करुं हु निमित्त कारणना बे भेद छे (१) पुष्ट-निमित्त (२) अपुष्ट निमित्त "कार्यस्य आसन्न निमित्तं इति तदेव पुष्टं" "दूर तरं कारणं नैमित्तिक तत् अपुष्टं" अर्थात् साध्य धर्म जेमां प्रगट—विद्यमान होय तथा जेमां कदापि

कार्यनो ध्वंसक भाव न होय ते पुष्ट निमित्त जाणवुं. जेम तीर्थंकर भगवंतमां परमात्म पद प्रगट–विद्यमान छे तथा परमात्म पदना घातक भावनो जेमां सर्वथा अभाव छे माटे तीर्थंकर भगवंत परमात्म पद साधवामां पुष्ट निमित्त छे एम जाणवुं (पुष्ट हेतु जिनेंद्रोयं मोक्ष सद्भाव साधने)

अपुष्ट निमित्त–जेमां साध्य पद विद्यमान न होय, जे कर्त्तानी प्रेरणाथी कारण थाय छे, वली तेमां ध्वंसक भाव पण रहेलो होय ते अपुष्ट निमित्त छे जेम दंड ते घटनुं अपुष्ट निमित्त छे कारण के दंडमां घट पण विद्यमान नथी वली कुंभार ज्यारे घट करवामां प्रवर्त्ताने तोज घटोत्पत्तिनुं निमित्त कहेवाय पण जो कुंभार घट ध्वंस करवामां वापरे तो ते घट ध्वंसना निमित्त कहेवाय माटे दंड ते घटनु अपुष्ट कारण जाणवुं माटे हे ऋषभानन भगवंत! आप मारा परमात्मपदना पुष्ट निमित्त छो माटे आपनीज सेवाथी मारी सिद्धि थशे एम जाणी आपनीज सेवा अंगीकार करुं छुं ॥ ६ ॥

शुद्ध तत्त्व निज संपदा, ज्यां लगे पूर्ण न थाय ॥ जि० ॥
त्यां लगे जगगुरु देवना, सेवुं चरण सदाय ॥ जि० ॥
श्री० ॥ ७ ॥

अर्थः–अज्ञानरूप अंधकारनो अत्यंत नाश करनार तथा सम्यक्ज्ञान दर्शन चारित्र आदि संपूर्ण आत्म गुणनी सिद्धिने प्राप्त होवाथी जगतगुरु तथा जगतदेव हे ऋषभानन स्वामी! ज्यांसुधी शुद्धात्म तत्त्वरूप स्वाभाविक अखंड अखूट अनुत्तर संपदानी मने संपूर्णपणे सिद्धि प्राप्ति न थाय त्यांसुधी हे दीन दयाल! आपना द्रव्य भाव रूप चरणयुग्मनुं निरंतर सेवन करुं एम भावना भावुं छुं ॥७॥

कारज पूर्ण कर्या विना, कारण केम मूकाय ॥ जि० ॥
कारज रुचि कारण तणा, सेवे शुद्ध उपाय ॥ जि० ॥
श्री० ॥ ८ ॥

अर्थः--जेम समुद्र पार पामवानो इच्छक पुरुष जो समुद्र वच्चे वहाणनो त्याग करे तो समुद्र पार जइ शके नहि अने वच्चे मूवी जाय. माटे हे भगवंत! परमात्म सिद्धिरूप माहरुं कार्य ज्यांसुधि सिद्ध थयु नथी त्यासुधि पुष्टालंबन रूप आपना चरण युग्मनी सेवना केम छोडुं? कारणके कार्य सिद्धिनो रुचिवंत पुरुष कार्य सिद्ध थता सुधी शुद्ध कारणोने यथार्थ पणे सेवे--आदरे ए नीति छे ॥८॥

ज्ञान चरण संपूर्णता, अव्याबाध अमाय ॥ जि० ॥ देवचंद्र
पद पामीयें, श्री जिनराज पसाय॥ जि० ॥ श्री० ॥ ९॥

अर्थ --स्तवन कर्त्ता श्री देवचंद्र मुनि कहे छे के तरण तारण सामान्य केवलीओमां राजा समान श्रीरूपभानन तीर्थंकरना चरण पसाये सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्रनी संपूर्णता तथा पूर्ण अव्याबाध पणु तथा अमायी, अलेशी, अफंदी, अलोभीपणा आदि सर्वे आत्म गुणनी संपूर्णता रूप देवमां चंद्रमा समान परमात्म पदनी सिद्धि पामीये, कृत कृत्य थइये, अनंत काल सुधि सहज अखंड परमानंद विलासने पामीए. ॥ ९ ॥ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अष्टम श्री अनंतवीर्य जिन स्तवनम् ॥

चरणाली चामुंडा रण चडे ॥ ए देशी ॥

॥ अनंत वीरज जिनराजनो, शुचि वीरज परम अनंतरे ॥
॥ निज आतम भावे परिणम्यो, गुण वृत्ति वर्त्तनावंतरे ॥
॥ मन मोह्युं अम्हारुं प्रभु गुणे ॥ १ ॥

अर्थ –सामान्य केवलीओमां राजा समान श्री अनंतवीर्य भगवंत ! आपनुं "वीर्य" ज्ञानदर्शनादि सर्वे गुणोने वर्त्तवामां आधारभूत आत्मवीर्य ते "शुचि" पर परिणामिकताथी सर्वथा रहित अत्यत निर्मल तथा "परम" जगत्‌वासी कोइपण जीवोमां एवु आत्मवीर्य नथी तेथी सर्वोत्कृष्ट तथा "अनत" ज्ञानादि अनत गुणोमांथी कोइपण गुणने वर्त्तवामां जरापण स्खलना (व्याघात) न पामे तथा कोइपण काले हीण क्षीण न थाय तेथी अनत छे

एवुं श्रीअनंतवीर्य भगवंतनुं परम पवित्र परमोत्कृष्ट अनंत आत्मवीर्य ते फक्त ज्ञान दर्शनादि पोतानाज अनंत गुणने परिणमवामा निःप्रयासपणे सहायरूप सदा परिणमे छे एम श्री जिनेश्वरना, परभावरूप मलिनताथी सर्वथा रहित परम पवित्र ज्ञानादि अनत गुण जोइतेमां माहरुं मन मोह्यु–रत थयुं–लीन थयुं–गुणानुरागी थयु. ॥ १ ॥

॥ यद्यपि जीव सहु सदा, वीर्य गुण सत्तावंतरे ॥ पण कर्मे आवृत्त चल तथा, वाल बाधक भाव लहंतरे ॥
॥ मन० ॥ २ ॥

अर्थः–वीर्य ए जीवनो मूल गुण छे तेथी सर्वे जीवो त्रणे काले वीर्य गुणनी सत्ता सहित छे एटले कोइपण जीव कोइपण काले वीर्य वगरनो नथी, तथापि ससारी जीवोनु वीर्य अनादिथी कर्म पटल

वडे आवृत्त होवाथी आत्मगुणो संपूर्ण शुद्ध केवलज्ञान, केवलदर्शन, यथाख्यात् चारित्रादि रूप परिणमि शकता नथी अने तेथी पोतानी अनंत अव्याबाध आत्मीय सहज समाधिथी वियोगी रहे छे. तथा "चल" अर्थात् ज्ञानादि आत्म परिणतिमां निश्चल–स्थिर नहि रहेतां राग द्वेष वशे अनेक पुद्गल–पर परिणतिमां चलायमान थइ रह्यु छे, पर कार्यमां रोकाइ रह्युं छे जेम कोइ पुरुष परकार्यमां पोतानी शक्ति रोके तो ते स्वकार्य साधी शके नहि तेमज ते वीर्य "बाल" हिताहितना ज्ञानथी रहित होवाथी "बाधक" अर्थात् पोताने अहितकारी पणे परिणमे छे कारण के बाल बाधक वीर्य वडे जगत् जीवो अज्ञान मिथ्यात कषाय रूप परिणमी अनेक प्रकारना कर्मो बांधि पोताने अत्यंत अहितकारी–दुःख समूह रूप भवोपाधि व्होरी ले छे पण जो पोताना वीर्य गुणने मात्र सम्यक् ज्ञानादि आत्म परिणाममांज वापरे तो अनंत सुखना स्वामी थाय ॥ २ ॥

अल्प वीर्य क्षयोपशम अछे, अविभाग वर्गणा रूपरे ॥
षट्गुण एम असंख्यथी, थाये योगस्थान स्वरूपरे ॥
॥ मन० ॥ ३ ॥

सुक्ष्म निगोदी जीवथी, जाव सन्नीवर पजात्तरे ॥ योगनां
ठाण असंख्य छे, तरतम मोहे पगयत्तरे ॥ मन० ॥ ४ ॥

अर्थ –सर्वे छद्मस्थ जीवोनु आत्म वीर्य क्षयोपशम भावे सदा होय पण सर्वथा आवृत्त थाय नहिं. जो सर्वथा आवृत्त होय तो चेतनतानो समूल अभाव थाय तेथी छद्मस्थ जीवोनो पण वीर्य गुण क्षयोपशम भावे होयज अर्थात् छद्मस्थ जीवोने पण वीर्यांतरायनो सदा क्षयोपशम होय अने वीर्यांतरायना क्षयोपशम वडे छद्मस्थ जीवोने अल्पवीर्यनी प्रगटता होय छे अने ते अल्पवीर्यनी प्रगटताना

कारणथी रत्नत्रयनी मलिनताने योगे पोताना कर्तृत्व स्वभावने लीधे कर्म (क्रिया) रंगे आत्म प्रदेश चलायमान करे छे एटले " आत्म प्रदेश परिस्पंदो योगः " ए सूत्र प्रमाणे योगी बने छे 'यदुक्तं—
" छउमथ्थ वीरय लेश्या संगे, अभिसंधिज मति अंगेरे ॥
सूक्ष्म थूल क्रियाने रंगे, योगी थयो उमंगेरे ॥ " एम योग वशे कर्मनो ग्राहक थाय छे ते योगनुं स्वरूप निचे प्रमाणे " वीर्यांतराय क्षयोपशमोत्पन्नो मनो वचन काय वर्गणालंबनः कर्मादान हेतुभूत आत्मप्रदेश परिस्पंदो योगः " वीर्यांतराय कर्मना क्षयोपशम वडे उत्पन्न मन वचन अने काय वर्गणानुं अवलंबन करनार कर्म ग्रहण करवामां कारणभूत आत्म प्रदेशनुं परिस्पंद (संचलन) ते योग छे. तिहां जघन्य वीर्यवालो जे जीवप्रदेश ते वली केवलीना तीक्ष्ण बुद्धि रूप शस्त्रे करी छेदतां जे वीर्यांशनो बीजो विभाग थई शके नहि ते वीर्य विभाग छे अने भावाणु पण तेनेज कहीये तेवा लोकाकाशथी असंख्यात गुणा जे वीर्याणु तेणे करी सहित जे जीवप्रदेश तेनो समुदाय एटले जीवप्रदेशनी श्रेणी ते प्रथम वर्गणा, तेथी एक वीर्य विभागे अधिक एवी जे जीव प्रदेशनी श्रेणी ते बीजी वर्गणा, बे वीर्यविभागे अधिक एवी जे जीव प्रदेशनी श्रेणी ते त्रीजी वर्गणा, एम एकेक वीर्यविभागे अधिक वीर्यवाला प्रदेशनी श्रेणी ते घनीकृत लोकनी एक प्रदेशिक सूची श्रेणीने असंख्यातमे भागे जेटला आकाश प्रदेश होय तेटली वर्गणाए एक स्पर्धक थाय, ते प्रथम स्पर्धकनी उत्कृष्ट वीर्यांश वर्गणाथी एटले छेल्ली वर्गणाथी एक बे अथवा सख्याते वीर्यविभागे अधिका कोइ जीव प्रदेश नथी परंतु असख्य लोकाकाश प्रमाण वीर्यांशे अधिक जीव प्रदेशनी श्रेणी ते बीजा स्पर्धकनी प्रथम वर्गणा

जाणवी, वली तेथी एकेक वीर्यविभागे वधता वधता जीव प्रदेशनी वर्गणाए करी बीजो स्पर्धक थाय, तेथी वली असंख्य लोकाकाश प्रदेश भाग प्रमाण वीर्यांशे अधिक वीर्यवंत जीव प्रदेशनी श्रेणी ते त्रीजा स्पर्धकनी प्रथम वर्गणा, एणी पेरे श्रेणी प्रदेश असंख्येय भाग प्रमाण स्पर्धके पहेलुं जघन्य योगस्थानक थाय, तेथी अंगुलना असंख्यातमा भागना आकाश प्रदेश प्रमाण स्पर्धके वधतुं बीजुं योगस्थानक होय, तेथी वली तेटलेज स्पर्धके वधतु त्रीजुं योग स्थानक होय, एम असंख्याता योगस्थान थाय वीर्यांतरना क्षयोपशमना असंख्य भेद छे तेथी उपर प्रमाणे योगना पण असंख्याता भेद थाय अर्थात् सूक्ष्म निगोदीआ लब्धि अपर्याप्ता जीवने भव प्रथम समये सहुथी जघन्य योग होय छे अने सन्नि पचेंद्रि पर्याप्ता मनुष्य सौथी उत्कृष्ट योग पामी शके छे एम मोहनी तरतमता वशे (वीर्यांतरायना क्षयोपशमना भेद वशे) सूक्ष्म निगोदिया लब्धिअपर्याप्ता जीवना भव प्रथम समयथी मांडी सन्नि पंचेंद्रिय मनुष्य सुधी असंख्यात योगस्थान जाणवां ॥ ३ ॥ ४ ॥

॥ संयमने योगे वीर्य ते, तुम्हें कीधो पण्डित दक्षरे ॥ साध्य रसी साधक पणे, अभिसंधि रम्यो निज लक्षरे ॥ मन० ॥ ॥ ५ ॥

अर्थ –ज्यासुधी सम्यक्‌दर्शन सम्यक्‌ज्ञाननी प्राप्ति थइ नथी त्यासुधी ससारी जीव मिथ्यात अज्ञानवशे पौद्‌गलीक कार्यने पोतानु कार्य-मानी वीर्यांतरायना क्षयोपशम वडे प्राप्त थयेला आत्मवीर्यने असयममा अर्थात् स्वपर जीवनी [illegible] वापरे छे, पोताना वीर्यने बाल बाधक भावे प [illegible] वीर्य वडे कर्मबंध करी भव भ्रम [illegible] धि [illegible] आपे सम्यक्‌दर्शन सम [illegible]

वाल वाधक भावनो परिहार करी क्षयोपशम वडे प्राप्त थयेला वीर्यने संयम कार्यमां जोडयुं अर्थात् ज्ञानदर्शन चारित्रने निर्मलपणे परिणमवामां सहायकारी कर्युं मन वचन तथा काययोगने संयम कार्यमा जोड्या एम आत्मवीर्यने पंडितभावे तथा हितकारी भावे परिणमाव्यु. सच्चिदानंदमय शुद्धात्म द्रव्यने पोतानुं शुद्ध साध्य जाणी तेना रसीआ–ते साधवाना उमंगी थइ अभिसंधिज वीर्यने (जे मतिपूर्वक उपयुक्त वीर्य ते अभिसंधिज वीर्य) निज लक्षमां एटले अनंतसुख पिंड जे शुद्धात्मपद ते साधवामां रमाव्युं–वापर्युं. एम अभिसंधिज वीर्यने शुद्ध कारक प्रवृत्तिमां जोडी अबंधक भावे परिणमाव्युं ॥ ५ ॥

॥ अभिसंधि अबंधक नीपने, अनभिसंधि अबंधक थायरे ॥ स्थिर एक तत्त्वता वर्त्ततो, ते क्षायिक भाव समायरे ॥ मन० ॥ ६ ॥

अर्थ.–एम हे भगवंत ! आपनुं अभिसधिज वीर्य अबंधक भावे वर्त्तवाथी अनभिसंधिज वीर्य पण अबंधक भावे परिणम्युं (मन चितना पूर्वक आहार विहारादिक जे करण व्यापार ते अभिसंधिज वीर्य कहीये अने जे मन चितना विना केवल वचन अने कायाना व्यापार ते अनभिसधिज वीर्य कहीये) माटे जेनी मनोवृत्ति–अंतरग उपयोग अबंधक भावमां वर्त्ते छे तेनी वचन अने कायानी क्रिया पण अबंधक भावमांज गणाय, संवर हेतुज गणाय. “ यदुक्तं–भावास्रवाभावमयं प्रपन्नो, द्रव्यास्रवेभ्य. स्वत एव भिन्न· ज्ञानी सदा ज्ञान मयैक भावो, निरास्रवो ज्ञायक एक एव.” एम द्रव्यसवर तथा भावसंवरना स्वामी थइ कर्मबंधनो परिहार करी आत्मवीर्यने निर्मल रत्नत्रयमां सहायभूत करी पोताना

निर्मल [illegible] तत्वमा स्थिर तल्लीन पणे वर्त्तता " क्षायिक [illegible] शुद्धात्म परिणतिनो व्याघात करनार घातीया कर्मनो [illegible] अनंतज्ञान अनतदर्शन अनंतसुख अनतवीर्य रूप पोतानी [illegible] अविनश्वर केवल लक्ष्मीने वर्या, तेरमा गुणस्थाने [illegible] ॥ ६ ॥

॥ [illegible] न्याय सयोगता, तजी कीध अयोगी थामरे ॥ [illegible] वीर्य अनंतता, निजगुण सहकार [illegible] ॥ सुन० ॥ ७ ॥

[illegible] चक्रभ्रमण न्याये अर्थात् चक्रने फेरववा माटे कुंभार [illegible] वाली बहु जोरथी एकदम चक्रने फेरवे छे तेथी ते चलना [illegible] काढी लीधा पछी पण केटलीकवार सुधी चक्र फर्या करे छे. [illegible] अनादि कालथी आत्मा अज्ञान वशे पर कार्यने पोतानुं कार्य [illegible] सहित योग क्रियामां प्रवृत्ति करे छे तेथी केवल ज्ञान [illegible] काढी लीधा पछी चक्र जेम फर्या करे छे तेम तेरमा गुणस्थाने पूर्व उदयवशे निर्भमत्वपणे योगक्रिया थाय छे तेथी तेरमा गुणस्थाने पण सयोगीपणुं छे. ते चक्रभ्रमण न्याये रहेली सयोगता एटले [illegible] पण हे भगवंत ! आप त्याग करी " कीध अयोगी थामरे " [illegible] गुणस्थाने यथार्थ—करणवीर्य एटले इंद्रिजन्य बलवीर्यनो [illegible] करी अतींद्रिय अनंत आत्मीक वीर्यनी प्रगटता करी जे वीर्य [illegible] ज्ञानादिगुण वर्त्तनामांज सहायकारी थाय पण अन्यद्रव्यनी [illegible] कदापिकाले चलायमान थाय नहि. तेथी हे भगवंत ! [illegible] अकरण वीर्यना प्रभाव वडे [illegible] काम तथा स्वानुभूति जन्य परमानंदमां निरंतर [illegible]

॥ शुद्ध आचार निज वी[illegible]

॥ ते प्रगटी में जाणी सही, तेणे तुमहिज देव महंतरे ॥ मन० ॥ ८ ॥

अर्थः—सर्व विभाव रूप संश्लेष रहित जे आत्म वीर्य ते शुद्ध छे, तथा तेज वीर्य कामना रहित मात्र पोताना स्वगुण पर्यायमां वर्त्तवाथी परगुण पर्यायमां चलायमान थतुं नथी तेथी अचल छे, एवा शुद्ध अने अचल वीर्यनी नैरूपाधिक अर्थात् स्वाभाविक अनंत शक्ति छे अर्थात् ते वीर्य वडे अनंत ज्ञान. अनंत दर्शन विगेरेनी वर्त्तना थाय छे माटे ज्यांसुधी वीर्यगुणमां अशुद्धपणुं तथा चलपणुं छे त्यांसुधी अल्प बल छे, अनत ज्ञानदर्शनरूप अनंत शक्ति होइ शके नहि. पण हे भगवंत ! ते शुद्ध अने अचल वीर्यनी स्वाभाविक अनंतशक्ति आपमां प्रगटपणे छे एम में निसंदेह जाण्युं कारण के एक समयमां सर्व पदार्थना त्रैकालिक पर्यायने प्रगटपणे जाणो देखो छो तेथी हे भगवंत ! आपज देव इंद्रादिकने पूजवा लायक देवाधिदेव छो, अनंत केवल लक्ष्मी वडे सदा देदिप्यमान छो ॥ ८ ॥

॥ तुज ज्ञाने चेतना अनुगमी, मुज वीर्य स्वरूप समायरे ॥
॥ पंडित क्षायिकता पामशे, ए पूरण सिद्धि उपायरे ॥ मन० ॥ ९ ॥

अर्थः—हे भगवंत ! तमारा निरंतर शुद्ध परिणमता केवल ज्ञानादि गुणोने माहरी चेतना अनुगमे अर्थात् मारो चैतन्य उपयोग तदनुयायी वर्त्ते, केवलज्ञान केवलदर्शन रूप परिणमवानो रसीयो थाय तो माहरुं आत्मवीर्य "स्वरूप समायरे" राग द्वेषादि सर्व विभाविक कार्यमां उत्सुक तथा स्फुरायमान थतुं अटकी केवल आत्म गुणनेज सहायभूत पणे वर्त्ते एम माहरुं वीर्य पंडित भावे अबंधक पणे वर्त्ततां क्षायिक लब्धिने प्राप्त करशे एज पूर्णपदे सिद्ध थवानो साचो उपाय छे ॥ ९ ॥

॥ नायक तारक तुं धणी, सेवनथी आतम सिद्धिरे ॥
॥ देवचद्र पद संपजे, वर परमानद समृद्धिरे ॥ मन० ॥१०॥

अर्थ.—हे अनत वीर्य प्रभु ! आ जगत्त्रयमा सर्वेथी उत्कृष्ट अनतवीर्य आपनु होवाथी आपज नायक छो, वली भवसमुद्रमा डूबता भव्य प्राणीयोने आपे निर्माण करेला चरण जहाजे बेसाडी भवसमुद्रमाथी तारवाने आपज समर्थ होवाथी तारक छो, वली मोहादि शत्रुथी रक्षा करवामा आपज समर्थ होवाथी धणी छो, तेथी हे भगवंत ! आपनेज सेववाथी मारी सिद्धि थशे तथा देवमां चंद्रमा समान अरिहंत पदनी प्राप्ति थशे तथा परमानदरूप उत्तम समृद्धिनी सप्राप्ति थशे ॥ १० ॥ ॥ सपूर्ण ॥

॥ अथ नवम श्री सूरप्रभ जिन स्तवनम् ॥

॥ देशी करखानी ॥

सूर जगदीशनी तीक्ष्ण अति शूरता, तेणे चिरकालनो मोह जीत्यो ॥ भाव स्याद्वादता शुद्ध परगास करी, नीपन्यो परमपद जग वदीतो ॥ सू० ॥ १ ॥

अर्थ—अनादिकालथी लागेलो मोहरूप महान् शत्रु के जे दर्शन—मोहनीय प्रकृति वडे आत्माना सम्यक् दर्शन गुणनो, तथा क्रोध वडे आत्माना क्षमा गुणनो, मान वडे आत्माना मार्दव गुणनो, माया वडे आत्माना आर्यव गुणनो, तथा लोभ वडे आत्माना मुक्ति—निर्लोभ—निस्पृह गुणनो, एम अनेक गुणनो घात करी आत्मानी शुद्ध सहज अपरिमित आत्मीय समाधिनो नाश करी भवरूप जेलखानामा त्रिलोकपूज्य आत्माने केद करी राखे छे.

(मोहनो) जगतत्रयना ईश्वर, जगत् शिरोमणी श्री सूर
ए अत्यंत तीक्ष्ण सम्यक्पराक्रमथी सम्यक् ज्ञान चारित्र रूप
ंत तीक्ष्ण मर्म जेदक शस्त्रो वडे जिन्न जिन्न करी अत्य-
मां पराजय–समूल नाश कर्यो के जविष्यमा कोई पण काळे
दुष्ट कृत्य करवाने पुनः समुत्थित–सजीवन थाय नहि. अने
ादि पंचास्तिनो शुद्ध स्याद्वादपणे तथा लक्ष्य लक्षण
दपणे शुद्ध निश्चय नये निजपर सत्ता जाणी सत्तागते रहेला
त धर्मात्मक शुद्धात्म द्रव्यने कर्म मलथी रहित अत्यंत शुद्ध प्रगट
जगत् त्रयमां पूज्य, प्रशंसनीय, आह्लादकारी, आदरणीय पर-
र (मोक्ष) पद निपजाव्युं–संप्राप्त कर्युं यदुक्तं–शार्दूल विक्री-
म्॥ "त्यक्त्वाऽशुद्धि विधायि तत्किल पर द्रव्यं समग्रं स्वयं;
द्रव्ये रति मेति यः सनियतं सर्वापराधच्युतः; बन्धध्वंस
त्य-नित्य मुदितः स्वज्योतिरच्छोच्छल–चैतन्यामृतपूर-पूर्ण
हमा शुध्धो जवन्मुच्यते" ॥ १ ॥

थम मिथ्यात्व हणि शुद्ध दंसण निपुण, प्रगट करि
णि अविरति पणाशी; शुध्द चारित्रगत वीर्य एकत्वथी,
रिणति कलुषता सवि विणाशी ॥ २ ॥ सू० ॥

अर्थः–हवे श्री सूरस्वामीए परमपूज्य परमात्म पद जे रीते सिद्ध
ते साधना क्रम सहित वखाणे छे

प्रथम तो, जेना उदय वडे आत्मा शुद्ध देवने अदेव, अदेवने
देव, सुगुरुने कुगुरु, कुगुरुने सुगुरु, धर्मने अधर्म, अधर्मने धर्म,
ने अजीव; अजीवने जीव, मोक्षने अमोक्ष, अमोक्षने मोक्ष
छे, जीवादि तत्त्वमां विपरित श्रद्धान करे छे तथा उत्कृष्ट सीत्तेर

कोडाकोडी सागरोपमनी स्थितिनो बंध करे छे एवी मिथ्यात्वमोहनीय प्रकृति तथा मिश्रमोहनीय तथा सम्यक्तमोहनीयनो नाश करी चिंतामणि रत्न समान अत्यंत दुर्लभ शुद्ध निर्मल सम्यक्‌दर्शन संप्राप्त कर्युं के जे इन्द्रत्व, चक्रित्व, चिंतामणि तथा कल्पवृक्षथी पण अधिक दुःप्राप्य छे उक्तंच–"इंदत्तं चक्कित्तं,सुरमणि कप्पदुमस्स कोडीओ । लब्भो सुलहो दुलहो, दंसणो तीथ्थनाहस्स ॥" तथा जे विना नवपूर्व सुधीनुं ज्ञानपण अज्ञान कहेवाय छे तथा जे विना दशमा पूर्वनुं ज्ञान तो थतुज नथी, वली जे विना संसार परिभ्रमणनी सीमा आवती नथी, जे विना सम्यक्‌चारित्र–संयमनी प्राप्ति थई शकती नथी, जे विना द्रव्यचारित्र पालनार प्रथम गुणस्थाने वर्त्ते छे माटे श्री जिनेश्वर, सर्व धर्मनुं मूल तथा मोक्षनु प्रथम पगथीउं कहे छे यदुक्त–श्रीमदजयदेव आचार्येण–" दंसण मूलो धम्मो, उवइट्ठो जिणवरेहिं सीसाणं । तं सोउण सकन्ने, दंसण हीणो न वंदिव्वो ॥" लोकालोक प्रकाशक श्री जिनेश्वर देव पोताना शिष्यो प्रत्ये सर्वे धर्मनुं मूल सम्यक्‌दर्शनने बतावे छे माटे दर्शन हीण पुरुषने वंदना करवी नहि उक्तंच–" सम्मत्त रयण भठ्ठा, जाणंता बहु विहावि सच्छाइं।सुध्धाराहण रहिआ, भमंति तत्थेव तत्थेव॥" सम्यक्‌दर्शनथी भ्रष्ट पुरुष बहु प्रकारना शास्त्र जाणता छतां पण शुद्ध आराधना रहित होवाथी संसार चक्रवालमां ज्यां त्यां भ्रमण कर्या करे छे कारणके सम्यक्‌दर्शन विना शुद्ध आराधनानी प्राप्ति होय नहि "शुध्ध क्रिया तो संपजे, पुग्गल आवर्त्तने अध्धरे" ;" जह मूलंमि विणठ्ठे, दुमस्स परिवार नत्थि परिवुड्ढी । तह जिण दंसण भठ्ठा, मूल विणठ्ठा ण सिझंति ॥ "

जेम मूल विनष्ट वृक्ष शाखा परिशाखानी परिवृद्धि पामे नहि, तेम धर्मनुं मूल सम्यक्दर्शन नष्ट थतां मोक्ष प्राप्ति थाय नहि.

"जिण पणत्तं धम्मं, सद्दहमाणस्स होइ रयणमिणं ।
सारं गुण रयणाणय, सोवाणं पढम मोक्खस्स ॥"

गुण रत्नाकरमा सारभूत जे सम्यक्दर्शन ते श्री जिन प्ररुपित धर्मनी श्रद्धा राखनारने होय छे अर्थात् नयनिक्षेप पक्ष प्रमाण युक्त जिन प्ररुपित तत्त्वनी यथार्थ श्रद्धा ते सम्यक्दर्शन छे जे मोक्षनु प्रथम सोपान (पगथीउं) छे.

"संजम रहिअं लिंगं, दंसण भठं न संजमं भणियं ।
आणा हीणं धम्मं, निरत्थयं होइ सव्वंपि ॥"

साधुनो लिंग–वेश, संजम विना शोभा पामे नहि तथा फल पामे नहि अने सम्यक्दर्शन भ्रष्टने संजम कह्यु नथी एम जिनेश्वरनी आणा रहित सर्वे धर्मक्रिया निरर्थक अर्थात् मोक्ष फल आपी शके नहि.

तथा योगनी वीशीमां कह्युं छे के "णाण गुणेंहिं विहिणा, किरिया ससार वड्ढणी भणिया" ज्ञान गुण वगरनी क्रिया ससार वधारनारी कही छे कारणके सम्यक्ज्ञान वगर संवर थाय नहि, अने संवर विना सर्वे समये कर्मबंध थाय अने कर्मबंधथी संसार वृद्धि थाय ए स्पष्ट छे तथा सम्यक्दर्शन रहितने व्रत पालता छतां पण तत्त्वार्थसूत्रमां अव्रती कहे छे "निशल्यो व्रती" मिथ्यात्वशल्य, मायाशल्य, अने निदानशल्य रहित व्रतधारी होय ते व्रती छे. तथा वली श्रीमान् यशोविजयजी कहे छे के "रागमल्हार–भावी–जेरे समकीत जेहथी रुअडुं, ते भावनारे भावो मन करी परवडुं। जो समकीतरे ताजुं साजुं मूलरे, तो व्रत तरुरे दीये शिवपद अनु-

फूलरे । त्रूटक–अनुकूल मूल रसाल समकीत, तेह विण मति अंधरे। जे करे किरिया गर्व भरिया, तेह जूठो धधरे ॥" माटे जो समकीत-मूल ताजूं होय तो व्रततरु शिव फल आपी शके माटे मोक्षफलना इच्छक पुरुपे सर्वथी पहेला समकीत रत्न प्राप्त करवानो उद्यम करवो ए सार छे. माटे समकीत शी वस्तु छे ते जाणवुं जोइये

"जिय अजिय पुण्णपावा–सव संवर बंध मुक्क निज्जरणा । जेणं सद्दहइ तयं, सम्मं खइगाइ वहु भेअं ॥"

जीवा जीवादिक नव तत्वनु स्वरूप श्री जिनेश्वरना आगम प्रमाणे नयनिक्षेप पक्ष प्रमाणे यथार्थ जाणी सद्दहवु तथा हेय तत्त्वने छांडवानी रूची तथा उपादेय तत्त्वने आदरवानी रूची ते समकीत जाणवु तथा च तत्त्वार्थ सूत्रे–" तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्–" " जीवाजीवास्रव बंध सवर निर्जरा मोक्षास्तत्त्वम्–" तेमां जीवतत्त्व, संवरतत्त्व, निर्जरातत्त्व, अने मोक्षतत्त्व ए चार तत्त्व उपादेय छे तथा अजीव आस्रव बध ए त्रण तत्त्व आत्म गुणना रोधक होवाथी हेय छे माटे उपादेयने आदरवानी रूची तथा हेय तत्वने छोडवानी रूची होय तेनेज समकीती जाणवो पण मात्र जीव्हामे बोलवाथी समकीत नथी. कारण के श्री जिनेश्वर समकीतनां पांच लक्षण कहे छे अने लक्षण विना लक्ष्यनो असद्भाव होय ए न्याय छे माटे " उपशम, सवेग, निर्वेद, अनुकंपा अने आस्तिक्यता " ए पाच लक्षणो जे जीवमा न होय ते जीवने समकीत छे एम केम मनाय ?

• उपशम–क्रोधादि कपायोने उपशात करे.

• संवेग–सहज निरूपाधिक परमात्म पद प्रगट करवानी रूची

निर्वेद—संसारने तथा पौद्गलीक विषयोने हालाहल विष समान जाणी तेथी निवृत्त थवानी रुची.

अनुकंपा—स्वपर जीवना द्रव्य भाव प्राण घात करवानो परिणाम नहि.

आस्तिक्यता—अनंतज्ञानी अने वीतरागी आप्त श्री जिनेश्वरनुं एक पण वचन अन्यथा न होय एवी श्रद्धा.

एम सम्यक्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्रनुं मूल—कारण सम्यक्दर्शन छे एम जाणी श्री सूर प्रभुजीए दर्शनमोहनीय प्रकृतिनो नाश करी अत्यंत शुद्ध निपुण क्षायिक समकीत प्रगट कर्यु "अविरति पणाशी" पांच इंद्रिओ तथा मननो निग्रह नहि तथा षट्काय जीवना द्रव्य भाव प्राणनी हिंसानो त्याग नहि एवं बार प्रकारनी अविरति तेनो नाश कर्यो. पंच इंद्रिओना त्रेवीश विषयोमां तथा मनना शुभाशुभ संकल्पोमां आत्म परिणामने विक्षिप्त करवाथी तथा स्वपर जीवना द्रव्य भाव प्राणनी हिंसाथी ज्ञानावरणादि कर्मनो बंध थाय छे अने कर्मबंध वडे सहज आत्म समाधिनो घात थइ अत्यत दुःखदायक आ संसार समुद्रमां परिभ्रमण करवुं पडे छे. एम क्षायिकसमकीत वडे जेणे श्रद्धा पूर्वक जाण्युं तेनो परिणाम अविरतिमां केम प्रवेश करे ? एम अविरतिनो नाश थवाथी परभाव राग रूप विभावादिकनो त्याग तथा ज्ञान दर्शन चारित्रादि स्वगुणमा रमण रूप शुद्ध चारित्रथी पोताना आत्म वीर्यनी एकता करी अर्थात् सकल आत्म वीर्यने स्वभावाचरणमांज वर्त्तावी "परिणति कलुपता सवि विणाशी" आत्म परिणाममां कषायनो प्रवेश थवा दीधो नहि एम कलुपता परिणतिनो नाश कर्यो. ॥ २ ॥

भारि परभावनी कर्त्तृता मूलथी, आत्म परिणाम कर्त्तृत्व

धारी। श्रेणी आरोहतां वेद हास्यादिनी, संगमी चेतना प्रभु निवारी ॥ सूर० ॥ ३ ॥

अर्थः-आत्म स्वरूपना अज्ञान वडे जीव, परजावनो कर्त्ता बने छे अर्थात् अमुक पदार्थने में सुवर्ण कर्यो, अमुकने में कुवर्ण कर्यो, अमुकने में मनोज्ञ रसवालो कर्यो, अमुकने में अमनोज्ञ रसवालो कर्यो, अमुकने में सुगंधी कर्यो, अमुकने में दुर्गंधी कर्यो, अमुकने में मनोज्ञ स्पर्शवालो तथा अमुकने में अमनोज्ञ स्पर्शवालो कर्यो, तथा में सुंदर असुंदर शब्दादिक कर्या, पण रूप रस गंध स्पर्शादि जे पुद्गल द्रव्यनो परिणाम तेने आत्मा कदापी काले करी शके नहि छता पर द्रव्यना परिणामने अज्ञान वडे पोतानी क्रिया मानी ले छे. तथा अमुक जीवने में सुखी कर्यो अमुकने में दुःखी कर्यो एम परजीवना कर्मफलने पोतानी क्रिया मानी ले छे मन वचन कायाना योगनी क्रियानुं ममत्व करी ते क्रियानो कर्त्ता पोताने माने छे. तथा परजीवे मने सुखी वा दुःखी कर्यो एम पोताना कर्मफलने परजीवनी क्रिया मानी ले छे एवा मिथ्याभिमानवडे ज्ञानावरणादि कर्मनो बंध करे छे पण श्री सूरस्वामीए सम्यक्ज्ञानवडे एवा मिथ्याभिमाननो नाश करी पोतानी सहज आत्मीय ज्ञानादि क्रियामां पोतानुं कर्त्तापणुं आदर्युं, यदुक्तं-"आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं, ज्ञानादन्यत् करोति किम? परभावस्य कर्त्ताऽत्मा, मोहोयं व्यवहारिणाम् ॥" माटे वस्तुत परद्रव्यनो कोइपण कर्त्ता थइ शके नहि ए न्याय छे-"यःपरिणमति स कर्त्ता, यःपरिणामो भवेत् तु तत्कर्म। या परिणतिः क्रिया सा, त्रयमपि भिन्नं न वस्तुतया"

अर्थ -जे परिणमे ते कर्त्ता छे अने परिणाम ते तेनुं कर्म छे अने परिणति ते तेनी क्रिया छे एम ए त्रणे भाव वस्तुत अभेद छे.

तथापि–"आ संसारत एव धावति परं, कुर्वेऽह मित्युच्चके–र्दुर्वारं न तु मोहिनामिह महाहंकार रूपं तमः । तद्भूतार्थ परिग्रहेण विलयं यद्येकवारं व्रजेत्, तत्किं ज्ञान घनस्य बन्धन महो भूयो भवेदात्मनः"

अर्थ.–आ जगत्मां मोही अज्ञानी जीवो जाणे छे के "हुं पर द्रव्यने करुं छुं" एवो पर द्रव्यना कर्त्तृत्वना अहंकाररुप अतिशय दुर्वार अज्ञान अंधकार अनादिकालथी चाल्यो आवे छे पण जो तेनो शुद्ध निश्चय ज्ञानवडे एकवार पण समूल नाश करी नांखे तो शुद्ध केवलज्ञाननी प्राप्ति थाय अने पछीथी कदापि एवा अज्ञान अंधकारने न करे–कर्मबंध करे नहि. तथा "श्रेणी आरोहतां" रुपक श्रेणीए चढतां हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा ए हास्यादि षट्क तथा स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अने नपुंसकवेद, एम नव नोकषायमांथी पोतानी आत्म परिणतिने वारी अकषाय भावमां–शुद्ध स्वरुपमां तल्लीन करी. ॥ ३ ॥

भेदज्ञाने यथा वस्तुता ओलखी, द्रव्य पर्यायमें थइ अभेदी । भाव सविकल्पता छेदि केवल सकल, ज्ञान अनंतता स्वामी वेदी ॥ सूर० ॥ ४ ॥

अर्थः–"द्रव्यना सर्वे धर्मो तेना परमगुणना अनुयायीपणेज वर्त्ते" ए न्यायानुसारे आत्मानो परमगुण जे चेतनता तदनुयायीपणे वर्त्तता ज्ञान दर्शन चारित्र तप वीर्यादि परिणामोने पोताना परिणाम जाण्या सद्दह्या अने एथी विपरित, चेतनताने अनुयायीपणे नहि वर्त्तता, रुप रसगध स्पर्शादि तथा चलन सहायादिक परिणामोने पर द्रव्यना परिणाम जाण्या सद्दह्या. एम भेदविज्ञानना प्रबल पराक्रम वडे पोताना गुण पर्याय तथा पर द्रव्यना गुण पर्यायने

यथार्थ भिन्न भिन्न जाणी पर द्रव्यना गुण पर्यायमांथी अहंममत्व उगवी राग द्वेषादि विभाव परिणामने दुःखदायक तथा कर्मबंधना हेतु जाणी, पोतानी आत्म भूमिमांथी तेनो तदन अभाव करी, पोताना गुण पर्यायने पोताथी अभेद स्वरुप जाणी तेमाज अभेदपणे तल्लीन थया. सकल्प विकल्प रुप समल परिणामने तजी निर्विकल्प–अचल परिणामरूप यथाख्यात् चारित्र–द्वादशम गुणस्थान पामी अन्तर मुहूर्तमां घातीकर्मनो नाश करी श्री सूरस्वामी अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनत वीर्यना स्वामी तथा भोक्ता थया यधुक्तं

मालिनी छंद–निज महिमरतानां भेदविज्ञान शक्त्या; भवति नियतमेषां, शुद्ध तत्त्वोपलम्भ । अचलित मखिलान्य द्रव्य दूरे स्थितानां, भवति सति च तस्मिन्न क्षयः कर्म मोक्ष ॥

अर्थ.–जे पुरुष भेदविज्ञाननी शक्तिवडे आत्म स्वरुपनी महिमामां लीन थाय छे तेने निश्चय शुद्ध तत्त्वनी प्राप्ति थाय छे, अने शुद्ध तत्त्वनी प्राप्ति थवाथी सर्व परद्रव्य तथा परद्रव्यना परिणामथी दूर वर्त्ते छे, अक्षय मोक्ष अवस्थाने प्राप्त थाय छे. माटे ज्यांसुधी भेद विज्ञाननी प्राप्ति थई नथी त्यांसुधी अवश्य सर्व समय कर्मबंध थाय छे अने भेदविज्ञानवडे कर्मबंधथी मुक्त थवाय छे

"भेद विज्ञान त सिद्धा , सिद्धा ये किल केच न । तस्यैवाभावतो बद्धा, बद्धा ये किल केच न"

अर्थ –जे कोइ सिद्ध थया ते भेदविज्ञान वडेज सिद्ध थया छे अने जे कर्मथी बंधाय छे ते भेदविज्ञानना अभावथीज बंधाय छे माटे जो कर्मबंधनो अभाव करवानी रूची होय तो भेदविज्ञान–सम्यक् ज्ञाननी प्राप्ति करवी ए सार छे ॥ ४ ॥

वीर्य क्षायिकबलें चपलता योगनी, रोधि चेतन कर्यो शुचि अलेशी; भाव शैलेशीमें परम अक्रिय थइ, क्षय करी चार तनु कर्म शेषी ॥ सूर० ॥ ५ ॥

अर्थः–एम श्री सूरस्वामी अनंत चतुष्टयने प्राप्त करी तेरमा गुणस्थाने तीर्थंकर नामकर्मना उदये भव्य जीवोने आ दुःखदायक भव समुद्रमाथी तारनार स्याद्वाद नय युक्त जीवाजीवादि तत्त्वनो उपदेश आपी–पछी प्राप्त करेला क्षायिकवीर्यना बल वडे, करण वीर्य वडे थती चपलता दूर करी मेरु पर्वतनी पेठे निःप्रकंप–शैलेशी करण करी, मन वचन अने कायानी क्रियानो त्याग करी पोताना आत्म द्रव्यने पवित्र–पुद्गल परिणामना संश्लेष रहित–अलेशी करी परम अक्रिय अवस्था धारण करी, बाकी रहेला वेदनीय, नाम, गोत्र, अने आयु ए चार अघातीया कर्मनो सर्वथा नाश करी "पूर्व प्रयोगादसंगत्वाद्बन्धछेदा तथा गति परिणामाच्च" पूर्व प्रयोगना हेतुए असंग होवाथी कर्मबंधनो सर्वथा नाश होवाथी तथा गति परिणामवडे तुंबीना दृष्टांते आठमी इशिप्रभारा पृथ्वी अर्थात् सिद्ध अवस्थामां विराजमान थया ॥ ५ ॥

वर्ण रस गंध विनु फरस संस्थान विनु, योग तनु संग विनु जिन अरूपी । परम आनंद अत्यंत सुख अनुभवी, तत्त्व तन्मय सदा चित्स्वरूपी ॥ सूर० ॥ ६ ॥

अर्थः–श्री सूरस्वामी सिद्ध अवस्थाने प्राप्त थया ते सिद्ध स्वरुप केवु छे–पांच प्रकारना वर्ण, पांच प्रकारना रस, बे प्रकारनी गंध, आठ प्रकारना स्पर्श, छ प्रकारनां संस्थान, त्रण प्रकारना योग, पांच प्रकारनां शरीर तथा अंतरंग अने बाह्य ए बे प्रकारना परिग्रहथी रहित तथा राग द्वेषादि विभावथी पण रहित होवाथी सर्वे नये अरुपी अवस्थाने

सम्प्राप्त छे कारणके जीवनु शुद्ध स्वरुप वर्णादि तथा रागादि भावथी रहित के यदुक्तं–" तत्थ भवे जीवाणं, संसारत्थाण होंति वणाइ । संसार पमुक्काणं, णथ्थिहु वणादओ केइ ॥ जीवस्स णछि वणो, णवि गंधो णवि रसो णविय फासो । णवि रूवं ण सरीर, णवि संठाणं ण संहणणं ॥" पण संसार अवस्थामा जीव कर्मबंधयुक्त होवाथी शरीरादिमा अहंममत्व करी वसे छे तेथी व्यवहार नये रुपी कहेवाय छे. जेम जे घडामां घृत भरेलु होय ते घीनो घडो कहेवाय पण वास्तविक रीते जोता घडो काई घीनो नथी माटीनोज छे यदुक्तं–" पजातापजातय, जे सुहुमा वायराय जे चेव । देहस्स जीव सणा, सुत्ते व्यवहारदो उत्ता ॥ " पर्याप्त, अपर्याप्त, सूक्ष्म, बादर, एकेन्द्रिय बेइन्द्रिय विगेरे शरीरने जे जीव संज्ञा कही छे ते व्यवहार नयनी अपेक्षा जाणवी. कारण के चौदे जीवस्थान ते पुद्गल संगे छे, जीवनो मूल स्वभाव नथी पण श्री सूरस्वामी तो कर्मबंधथी–संसार अवस्थाथी सर्वथा मुक्त होवाथी व्यवहार तथा निश्चय बने नये अरूपी अवस्था भोगवे छे तथा " परम आनंद अत्यंत सुख अनुभवी, तत्व तन्मय सदा चित्स्वरूपी " परम आनंद–सर्वोत्कृष्ट आनंद जेनु आ त्रिलोकमा कोई उपमान नथी एवा परमानंदने तथा जे सुखनो कोईकाले अंत नथी एवा सहज अकृत्रिम अनुपचरित सुखने सम्प्राप्त–ते सुखने सदा निष्कंटक पणे अनुभवे छे–तेमाज निमग्न छे तथा पोताना शुद्धात्म तत्वथी तन्मय तथा चित्स्वरूपी अर्थात् अखंड अनंत ज्ञान स्वरुपमा सदा सादिअनंत भांगे अवस्थित थया छे. ॥ ६ ॥

तादृशी शूरता धीरता तीक्ष्णता, देखी सेवक तणो चित्त

राच्यो । राग सुप्रशस्तथी गुणी आश्चर्यता, गुणी अद्-
भुतपणे जीव माच्यो ॥ सूर० ॥ ७ ॥

अर्थः—उपसर्ग परिसहादि तथा अनेक प्रकारना शुभाशुभ कर्म उदय आवता छतां पण अत्यत धैर्य आदरी आत्म सत्ताभूमिमां निर्भय निष्कपपणे अकोल रही अतिशय शौर्य पूर्वक ज्ञान बाणना प्रहार वडे तथा अपरिमित आत्म वीर्यनी तीक्ष्णता वडे मोहादि कर्म शत्रुओने निर्वंश कर्या ते आपनी शूरता, धीरता अने तीक्ष्णता जोई हुं सेवकनुं चित्त तेमां राच्युं—रत थयुं

तथा आपना सर्वोपरी कल्याणकारी अद्भुत ज्ञानादि आत्मगुणो जोई अत्यत आश्चर्यता पामी सुप्रशस्त राग वडे आपना गुणमां माहरो आत्मा माच्यो, कारणके आलोक परलोकना विषयसुखनी आकांक्षा रहित अरिहंतादि पंच परमेष्टी तथा आगम, साधर्मीक उपर पक्षपात विना गुणीपणा माटे जे राग ते प्रशस्तराग जाणवो, ते जोके पुण्यबंधनो हेतु छे तथापि छता आत्मगुणने स्थिर थवानो तथा नवागुण प्रगट करवानो हेतु छे. यद्युक्तं “नाणाइसु गुणेसु, अरिहंताइसु धम्म ज्झवेसु । धम्मोवगरण साहम्मीएसु धम्मछं जोय गुण रागो ॥ सो सुपसथ्थो रागो, धम्म संयोग कारणो गुणादो । पढमं कायव्वो सो पत्तगुणे खवइ तं सव्वं ” ॥ ७ ॥

आत्मगुण रुचि थये तत्त्व साधन रसी, तत्त्व निष्पत्ति निर्वाण थावे । देवचंद्र शुद्ध परमात्म सेवन थकी, परम आत्मीक आनंद पावे ॥ सूर० ॥ ८ ॥

अर्थः—ज्ञानादि अनत आत्म गुणोने शुद्ध संपूर्णपणे प्रगट करवानी रुची थाय तोज ते पुरुष तत्त्व साधनानो रसीउ थइ संपूर्ण

सप्राप्त छे कारणके जीवनु शुद्ध स्वरुप वर्णादि तथा रागादि भावथी रहित छे. यदुक्तं—" तत्थ भवे जीवाणं, संसारत्थाण होंति वणाइ । ससार पमुक्काणं, णथ्थिहु वणादओ केइ ॥ जीवस्स णत्थि वणो, णवि गधो णवि रसो णविय फासो । णवि रूवं ण सरीरं, णवि संठाणं ण संहणणं ॥" पण ससार अवस्थामा जीव कर्मबंधयुक्त होवाथी शरीरादिमा अहंममत्व करी वसे छे तेथी, व्यवहार नये रुपी कहेवाय छे जेम जे घडामा घृत भरेलु होय ते घीनो घडो कहेवाय पण वास्तविक रीते जोता घडो काई घीनो नथी माटीनोज छे यदुक्तं—" पजातापजातय, जे सुहुमा वायराय जे चेव । देहस्स जीव सण्णा, सुत्ते व्यवहारदो उत्ता ॥ "
पर्याप्त, अपर्याप्त, सूक्ष्म, बादर, एकेंद्रिय बेइंद्रिय विगेरे शरीरने जे जीव सज्ञा कही छे ते व्यवहार नयनी अपेक्षा जाणवी कारण के चौदे जीवस्थान ते पुद्गल सगे छे, जीवनो मूल स्वभाव नथी पण श्री सूरस्वामी तो कर्मबधथी—संसार अवस्थाथी सर्वथा मुक्त होवाथी व्यवहार तथा निश्चय बने नये अरूपी अवस्था भोगवे छे तथा " परम आनद अत्यंत सुख अनुभवी, तत्व तन्मय सदा चित्स्वरुपी " परम आनद—सर्वोत्कृष्ट आनद जेनु आ त्रिलोकमां कोई उपमान नथी एवा परमानदने तथा जे सुखनो कोईकाले अत नथी एवा सहज अकृत्रिम अनुपचरित सुखने सप्राप्त—ते सुखने सदा निष्कंटक पणे अनुभवे छे—तेमाज निमग्न छे तथा पोताना शुद्धात्म तत्वथी तन्मय तथा चित्स्वरूपी अर्थात् अखंड अनत ज्ञान स्वरुपमां सदा सादिअनंत भागे अवस्थित थया छे. ॥ ६ ॥

ताहरी शूरता धीरता तीक्ष्णता, देखी सेवक तणो चित्त

लेनार श्री विशाल देवनी तत्त्व समाधि सहज अर्थात् स्वज्ञाविक सर्व पर द्रव्यनी अपेक्षा वगर मात्र पोतानाज द्रव्यथी उत्पन्न, तथा अकृत-पर द्रव्ये जेने उत्पन्न करी नथी एवी, तथा निरुपाधि अर्थात् पौद्गलीक विषयो जोगवतां अनेक प्रकारनी शारीरिक तथा मानसिक व्याधिर्ड उपजे ठे, पर रमणरूप मिथ्या चारित्र होवाथी आत्मगुण घातक अनेक प्रकारनां दुष्ट कर्म बंधाय ठे पण श्री विशाल देवनी समाधिमां कोइपण प्रकारनी उपाधिनो सद्जाव तथा उपजवानो संजव नथी तेथी निरुपाधि ठे माटे हे गुणानुरागी जव्य जीवो! निरुपचरित, निस्संग, निःप्रयासिक, निर्द्वंध, एकांतिक, आत्यंतिक अने स्वतंत्र समाधिमय श्री विशालस्वामीना अरिहंत पदने आपणो आत्मा निर्मल करी जव ज्रमणथी मुक्त थवा निमित्ते वंदीये-तेमां लीन थइए, वली श्री विशाल स्वामी के जे ज्ञानादि अनंत लक्ष्मीना स्वामी तथा जन्म जरा मरण तथा क्रोध, मान, माया, लोज, हास्य, रति, अरति, जय, शोक, जुगुप्सा विगेरे कषाय, अज्ञान जलथी जरपूर आ अपार पारावार जयंकर जव समुद्रथी उद्धारी अचल अव्याबाध अरुज आत्मीय अनंत सुखना स्थानक मोक्ष महेलमां धरनार, सर्वे प्राणीर्डना अघातक, करुणा सागर, तथा अनंतगुणना पात्र महान् धर्मात्मा ठे तेमने स्तवो-स्तुति करो-तेमना गुणोनुं गान, स्मरण, चिंतन, अनुजव करो. ॥ १ ॥

जव उपाधि गद टालवा, प्रजुजी ठो वैद्य अमोघरे ॥
रत्नत्रयी औषध करी, तुम्हें तार्या जविजन उंघरे ॥
॥ तुम्हें० ॥ अरि० ॥ २ ॥

अर्थः-महान् दुष्ट शत्रुरूप कर्मराजाना जवरूप कारागृहमा वसतां अज्ञान कषाय अने मिथ्यात्वरूप मिथ्याआहार विहारना सेवनथी, आत्म द्रव्यना ज्ञानदर्शनादि परिणामो दूपित थवाथी

आत्मतत्त्वनी सिद्धि-निर्वाण पद पामे. देवचंद्र मुनि कहे छे के शुद्ध परमात्मपदना सेवन थकी अत्यंत उत्कृष्ट सहज अनुपचरित अव्याबाध आत्मीक परमानंदनी प्राप्ति थाय. ॥ ८ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ दशम श्री विशालजिन स्तवनम् ॥

॥ प्राणी वाणी जिन तणी ॥ ए देशी ॥

देव विशाल जिणंदनी, तमे ध्यावो तत्त्व समाधि रे
चिदानंद रस अनुभवी, सहज अकृत निरुपाधि रे ॥ १ ॥
॥ स० ॥ अरिहंत पद वंदीये गुणवंत रे ॥ गुणवंत अनंत
महंत स्तवो भवतारणो भगवंत रे ॥ ए आंकणी ॥

अर्थ—साधु, आचार्य, गणधरो विगेरेमा प्रधान शिरोमणि अनंत दूषण रहित तथा अनंत आत्मीय गुणवडे देदिप्यमान महाविदेहमा विचरता श्री विशाल स्वामीए पोताना आत्म तत्त्वने एवंभूत नये सिद्ध-प्रगट करी जे शुद्धात्म तत्त्व जन्य समाधि-निवृत्ति प्राप्त करी छे ते अद्वीतिय अनुपम समाधिने हे भव्यात्माओ ! तमे एकाग्र चित्ते ध्यावो-राग द्वेषादि सकल विभावथी आत्म परिणामने वारी तदनुगत करो "चिदानंद रस अनुभवी" केवल ज्ञान वडे त्रैकालिक पर्यायो सहित सर्व द्रव्यना युगपत् प्रत्यक्ष ज्ञाता होवाथी पोताना आत्म द्रव्यने सर्वदा अखंड अव्याबाध ज्ञानदर्शनादि गुणे सदा परिपूर्ण, कोइपण द्रव्य जेने कोइपण काले बाधा करी शके नहि माटे अबाधित जुए छे, तेथी तज्जन्य निर्भयता-निराकुलता स्वाधीनतामय ज्ञानानंद रसना अनुभवी-आस्वादन भोग

आ जयंकर जवसमुद्रथी पारंगत थइ कोइपण रीते जेनो नाश न थाय–सदा शाश्वत रहेनार एवुं शिवनगरनुं निष्कंटक राज्य पामी एकांतिक शाश्वत सहज परमानंदना स्वामी थइए ॥ ३ ॥

जव अटवी अति गहनथी, पारग प्रजुजी सछवाहरे॥
शुद्ध मार्ग देशक पणे, योग क्षेमंकर नाहरे॥ योग० ॥
॥ अरि० ॥ ४ ॥

अर्थः–आ जवरूप अटवी–जंगल के जेमां अमारो आक्रंद परिताप जोइ करुणा रसवडे जेनु हृदय भिंजे तथा अमारी दया करे एवा सद्गुरुरूप सज्जननो समागम अत्यंत दुःप्राप्य छे तेथी निर्जन, तथा जेथी पारंगत थवानो साचो–सुगम मार्ग पामवो अतिशय मुश्केल होवाथी अत्यंत गहन–घोर, तथा जेमां अमारी ज्ञानदर्शनादि अमूल्य आत्म संपदाने लुंटी लेवावाला तीव्र अज्ञान मिथ्यात्वादि दुष्ट स्वजावना धारक कुगुरू रूप लुंटाराओ वसे छे, तथा अमारा ज्ञानदर्शनादि आत्मप्राणनो घात करनार क्रोध मान माया लोज विगेरे निर्दय श्वापदो वसे छे एवा घोर जंगलमां जूलो पडेलो हुं मारा आत्मीय कुटुंब तथा लक्ष्मीना वियोग वडे दयामणी अवस्थामां जय, त्रास, रोग, शोक, वियोग, तृष्णा, आताप विगेरे परितापो सहन करूं छुं, शांतिप्रद[1] संवर रूप जलना अजाव वडे अत्यत तृष्णा क्लेश सहुं छुं तेथी (जवाटवीथी) पारंगत थइ आत्म लक्ष्मी वडे परिपूर्ण शिवनगरे दोरी लइ जनार आपज समर्थ सार्थवाह छो कारण के आपज शुद्ध–अविसंवाद मार्गना बतावनावाला, कल्याणकारी सिद्धिपद योगना नाथ–मालीक–प्रणेता यथार्थपणे प्रगट करनार छो. तथा हे नाथ! आपना मन वचन अने काय ए त्रणे योग क्षेमंकर, कल्याणकारी, पाप क्लेशथी

[1] शांति दातार

आत्माने तीक्ष्ण शल्य तुल्य असह्य दुःख क्लेश आपनारा क्रोध मान माया लोभ शोक वियोग मिथ्यात्व अज्ञान-विगेरे महान् दुर्निवार सन्निपातिक रोगो उपजे छे जे रोगोना प्रभाव वडे वली ज्वर, अतिसार, जलोदर, कठोदर, भगंदर, क्षय, कुष्ट, प्रमेह, उपदंश, नेत्ररोग, कर्णरोग, मुखरोग, विगेरे अनेक शारीरिक रोग जन्य वेदनाओ भोगववी पडे छे पण हे विशाल प्रभुजी ! आपेज सम्यक् दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्रनी ऐक्यतारूप अमृत औषधीनु दान करी ते सर्वे सन्निपातिक रोगोथी भव्य जीवोना समूहने मुक्त करी अनंत आत्म वीर्ये भरपूर तुष्ट पुष्ट करी आगामि कोइ पण काले ते रोग पुनः उत्पन्न न थाय एवा अत्यंत निरोगी कर्या माटे हे प्रभुजी ! आ भुवनत्रयमा निःसंदेहपणे अमोघ—साचा—सफल (जेनो उपाय निष्फल जाय नहि एवा) वैद्य आपज छो. ॥ २ ॥

भवसमुद्र जल तारवा, निर्यामक सम जिनराजरे ॥
चरण जहाजें पामीए, अक्षय शिवनगरनुं राजरे ॥
॥ अक्षय० ॥ अरि० ॥ ३ ॥

अर्थ.—राग रूप जले परिपूर्ण दुस्तर आ भयानक भवसमुद्र के जेमा हुं अनादिकालथी निराधारपणे ज्यां त्यां भ्रमण करी दुःसह भय क्लेश रोग शोक वियोग तृष्णा आक्रंद विगेरे अनेक दुःखो सहन करु छु, अत्यंत सहज समाधिप्रद माहरी शुद्धात्म भूमिरूप शिवनगरथी अत्यंत दूरवर्ती—वियोगी थइ रह्यो छु ते भव समुद्रथी पारगत करी निर्विघ्नपणे शिवनगरे पहोंचाडवा माटे हे विशालप्रभु जिनेश्वर ! आप निर्यामक अर्थात् जहाजना सौथी अग्रेसर चलावनार छो माटे जो बीजा सर्वेनी आकांक्षा छोडी आपना स्वभावाचरणरूप पंचमहाव्रतरूप जहाजनो आश्रय लइए—तेमा अमारा आत्माने स्थापन करीए तो सहजे लीलामात्रमां निःप्रयासे

बचाववा माटे तथा ते मोहने नाश करवानो साचो उपाय बतावनार तथा ते उपायमां प्रवृत्त थवाने प्रेरणा करनार एक आपज समर्थ शुजट छो तेथी साचा मोहनिवारक पण आपज छो

तथा अत्यंत दुःखदायक जवाटवीमांथी नीकली अत्यंत कल्याणकारी मोक्ष नगरे जवाना जिज्ञासु, मोक्ष सन्मुख साचा मार्गे गमन करनार, क्रोध मान माया लोज आदिने दूर करी सम परिणामे वर्तनार जे श्रमण समूह तेनी आप रक्षा करनार छो, कारण के मोक्ष मार्गमां विघ्न करनार मिथ्यात्व कषाय आदि चोर लुटाराउने बरोबर उलखावनार तथा तेउ विघ्न नहि करी शके एवा उपायो बतावनार तथा आगेवान थइ पोताना अत्यंत बल वीर्य वडे तेउने निर्विघ्नपणे मोक्ष नगरे पहोंचाडनार होवाथी हे परमेश्वर ! आपज अद्वीतिय गोप तथा ईश्वर छो ॥ ५ ॥

जाव अहिंसक पूर्णता, माहणता उपदेश रे ॥ धर्म अहिंसक नीपन्यो, माहण जगदीश विशेषरे ॥ माहण० ॥ ॥ अरि० ॥ ६ ॥

अर्थः—हे जगदीश्वर ! आपना सर्वे ज्ञानदर्शनादि जावो पूर्ण अहिंसकपणे वर्ते छे तथा संसारी जीवोने पण स्वपर जीवना द्रव्य जाव प्राण न हणवा एवो उपदेश आपो छो तथा कोइपण, जीवना द्रव्य जावप्राणनी हिंसाना कर्त्ता न थाय एवा केवलज्ञान केवलदर्शनादि अनंत धर्मो सपूर्ण शुद्ध प्रगट—व्यक्त थया छे. तेथी आप अद्वीतिय माहण—अहिंसक पदवीना धारक छो. ॥ ६ ॥

पुष्ट कारण अरिहंतजी, तारक ज्ञायक मुनिचंदरे ॥ मोचक सर्व विजावथी, झीपावे मोह अरींदरे ॥ झी० ॥ ॥ अरि० ॥ ७ ॥

मुक्त करनार छे अने संसारी जीवोए मन वचन काया स्त्री पुत्र धन कुटुंबादि अनेक योग कर्या ते योग बहु वार विनाश थया-क्षेम कुशल न रह्या. पण प्रभुजी शुद्धात्म अनुभव योग करावी शाश्वती केवलज्ञानादि लक्ष्मीनो शिवयोग करावो छो माटे योगक्षेमंकर छो ॥ ४ ॥

रक्षक जिन छ कायना, वली मोह निवारक स्वामी रे ॥
श्रमण संघ रक्षक सदा, तेणे गोप ईश अभिरामरे ॥
तेण० अरि० ॥ ५ ॥

अर्थ:-जे अज्ञान विषय अने कषायादि दोषोथी निवृत्त थया नथी एवा कुदेवादि "अहिंसक" पदने योग्य नथी कारण के तेउ सर्वे जीवस्थान तथा सर्वे जीवोना द्रव्यभाव प्राणने तथा द्रव्य भाव प्राणनी हिंसाना हेतुउने तथा ते हेतुउना प्रतिकारने यथार्थ जाणता नथी तथा विषय कषायादि सहित होवाथी प्रमाद अवस्थामा अनेक जीवना द्रव्यभाव प्राणने हणी परने तथा पोताना आत्माने दुःखदायक थाय छे पण हे विशालप्रभु! आप तो अज्ञान विषय अने कषायादि दोषोथी सर्वथा निवृत्त होवाथी पृथ्वीकाय, अप्काय, तेज काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, तथा त्रसकाय ए छ कायना जीवोना द्रव्यभाव प्राणना यथार्थ ज्ञाता छो तथा विषय कषायादि दोषोए रहित होवाथी निरंतर अप्रमाद अवस्थामा अवस्थित रही कोइपण जीवना द्रव्यभाव प्राणोने रच मात्र पण दुभवता नथी माटे सत्य न्याये आ त्रिभुवनमा "जीव रक्षकनु" बिरुद आपनेज लायक छे

तथा स्थितिबंध अने रसबंधनो हेतु सर्वे कर्मनो राजा तथा संसारी जीवोनो अजीत शत्रु एवा मोहरुप महान् शत्रुथी संसारी जीवोने

॥ अथ एकादशम श्री वज्रंधर जिन स्तवन ॥

॥ नदी यमुना के तीर ॥ ए देशी ॥

विहरमान भगवान सुणो मुज विनती, जगतारक जगनाथ अछो त्रिभुवन पतिः भासक लोकालोक तिणे जाणो छती, तो पण वीतक वात कहुं छुं तुज प्रति ॥ १ ॥

अर्थः–महा विदेहमां विचरता, भव्यसमुहने भवाब्धिथी उद्धारनार, सर्वे प्राणीओना हितचिंतक तथा रक्षा करनार, त्रिलोक पूज्य, त्रिलोक स्वामी, हे श्री वज्रधर भगवंत! आपने जीवाजीवादिक कोई पण पदार्थ उपर रंचमात्र पण राग, द्वेष, मोह वा ममत्व परिणाम नथी, तेथी कोईपण द्रव्य आपना सहजे परिणमता ज्ञान प्रकाशने व्याघात करी शके तेम नथी, तेथी आप कोईपण द्रव्य, कोईपण क्षेत्र, कोई पण काल वा कोईपण भावमां स्खलना नहि पामतां स्वक्षेत्रे स्थिर रही सकल लोकालोकना त्रैकालिक भावने हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष समकाले जाणो छो. यदुक्तं–महा भाष्ये, "सर्व द्रव्य गतान् सर्वानपि पर्यायान् केवलंज्ञानं जानाति" तथा तत्त्वार्थ सूत्रे,–"सर्व द्रव्य पर्यायेषु केवलस्य" तोपण हुं मोहवशे अजाण, होवाथी अविवेकी तथा अधीर थई में चार गतिरुप घोर भवाटवीमां भमतां जे जे दुराचरण तथा दुःख क्लेशादि सेव्या ते सर्वे आपने अशरण शरण विलोकी आप प्रति सनमृता निवेदन करुं छुं ते करुणा पूर्वक सांभलशो, लक्षमा लेशो. ॥ १ ॥

हुं स्वरुप निज छोडी रम्यो पर पुद्गले, झील्यो उलट आणी विषय तृष्णा जले; आस्त्रव बंध विभाव करुं रुचि आपणी, भूल्यो मिथ्यावास दोष द्यु परभणी ॥ २ ॥

अर्थ –सत्तागते रहेला अनंत आत्मधर्मोने संपूर्ण शुद्ध प्रगट करवामां अर्थात् आ संसार समुद्रथी पारंगत थइ मोक्ष अवस्था प्राप्त करवामां हे विशालप्रभु अरिहंत! आप पुष्टकारण–अनंतर कारण छो उक्तंच–सिद्धसेन पूज्यै " पुष्ट हेतुर्जिनेंद्रोयं मोक्ष सद्भाव साधने " तेथी सर्वे मुनिओ–ज्ञानीओमां चंद्रमा समान प्रधान लोकालोकना ज्ञायक आपज आ जयंकर भवसमुद्रमांथी तारनार छो, तथा राग द्वेष मोह विगेरे सर्वे विभावथी मुक्त करवावाला तथा सर्वे शत्रुओमां श्रेष्ट अत्यंत बलवान् मोह शत्रुथी जीताववावाला छो ॥ ७ ॥

कामकुंभ सुरमणि परे, सहजे उपगारी थाय रे। देवचंद्र सुखकर प्रभु, गुण गेह अमोह अमायरे ॥ गुण० ॥ ॥ अरि० ॥ ८ ॥

अर्थ –जेम कामकुंभ तथा चिंतामणी रत्न, विनास्वार्थे अन्य जीवोने वांछित फलना दातार थाय छे, तेमज हे प्रभु! आपपण संसार जन्य सकल क्लेशथी भव्य जीवोने मुक्त करवामां विनास्वार्थे सहजे मददकारी थाओ छो ए आपनी परम सज्जनता सुचवे छे. देवचंद्रमुनि कहे छे के हे प्रभु! आप निःप्रयासिक अने निरुपचरित सुखना करवावाला तथा ज्ञानादि अनंत गुणना गेह–निधान छो, तथा परिवार सहित मोहराजानो समूल ध्वंस करी नांख्यो छे तेथी अमोही, तथा अमाय कहेता कपट रहित शुद्ध स्वरुपना प्रकाशक छो. ॥ ८ ॥ ॥ संपूर्ण ॥

सुखथी परोक्ष–विपरीत जे विषय भोग वास्तविक रीते दुःख छे तेने सुख मानी सेवे छे तथा जे जलना प्रवाह तथा विजलीना चमत्कारनी पेठे क्षणीक छे तेथी अवश्य जेनो वियोग थवानो छे एवा महान् शत्रुरुप पुद्गल विषयोनी तृष्णारुप जलमां हुं सदा हर्ष पूर्वक क्रिडा-करतो निमग्न रह्यो तेथी आत्म स्वरुपने भूली शुद्धात्म स्वरुपथी परा-ङ्मुख थई अत्यत दु.खदायक भवसमुद्रमां भ्रमण करावनार ज्ञाना-वरणीयादि कर्मना आस्रव (पांच प्रकारना मिथ्यात्व, बार प्रकारनी अविरती, पचीस कषाय तथा पंदर योग) तथा प्रकृति, स्थिती, अनुभाग अने प्रदेशबंधना हेतु राग द्वेष मोहादि विभाव तरफ में रुचि करी तथा मिथ्यावासमा अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थाने वसतां मिथ्यात्वना आवेशमा सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्रमय आत्म स्वरुपने भूली अनेक प्रकारनां कर्म बांधी तेना दुष्ट फलनो भागी थयो अने ते दुष्ट विपाकना अवसरे माहरा पूर्वकृत कर्मनो दोष न विचार्यो, अने "सव्वे पुव्व कयाणं, कम्माणं पावए फल विवागं । अवराहेसु गुणेसु अ, निमित्त मित्तं परो होइ" आ अमूल्य जिनवचनानु विस्मरण करी अमुके मने क्रोध उपजाव्यो, मानमा पाड्यो, माया तथा लोभमां प्रवृत्त कर्यो तथा शोक, भय, अरति, जुगुप्सा विगेरे कषायो उपजाव्या एम कही परने दोष दीधो. श्वान जेम लाकडी मारनारने नहीं पण लाकडीने करडवा तथा भसवा मांडे छे तेम में पण मारा पूर्वकृत दुष्ट कर्म तरफ लक्ष नहि देतां निमित्तमात्र जे परद्रव्य तेने दोष दीधो अने हाल पण तेमज वर्त्तुं छु "जो कत्ता सो भोत्ता," एवा जगजाहेर तथा सर्वमान्य जिनेश्वरना वचननो निरादर कर्यो, ॥ २ ॥

अवगुण ढाकण काज करूं जिन मत क्रिया, न तजुं अव-

अर्थ –अचल, अबाधित, निरुपाधि, स्वतंत्र अने सहज परमानंदमय मारा आत्मस्वरुपने अनादि अज्ञानवशे नहि जाणता सहज आत्मीय परमानंदनो वियोगी रही मारा आत्म द्रव्यथी पर, क्षणभंगूर, तथा अचेतन जे पुद्गल द्रव्य तेमा सदा आसक्त–लीन रह्यो तथा जे पौद्गलीक विषयो–शार्दूल विक्रीडित वृत्तम्–" भुंजंता महुरा विवाग विरसा, किंवाग तुल्ला इमे । कच्छकंडु अणंव दुःख जणया, दाविंति बुद्धिं सुहे ॥ मज्झण्हे मय तिण्हिअव्व सययं, मिच्छाभिसंधिप्पया । भुत्ता दिंति कुजम्म जोणि गहणं, भोगा महा वेरिणो "अज्ञानवशे भोगवता मधुर–प्रिय लागे छे पण विपाक काले किंपाकफलनी पेठे विरस, प्राणघातक छे, तथा जेम खसने खणता शांति थती नथी पण उलटी चेल वधे छे, तेम विषयो भोगवता शांति–तृप्ति थती नथी पण उलटी तृष्णा वधे छे तेथी परिणामे दु खवर्धक छे, तथा ते विषयोमा लीन थतां मृगतृष्णानी पेठे निरंतर दुष्ट अभिप्रायो उपजे छे तथा ते भोगव्याथी अनेक प्रकारे कर्मबंध थवाथी नरकादि दु खदायक कुगति, कुयोनिनी प्राप्ति थाय छे तथा गाथा–विषय रसासव मत्तो, जुत्ताजुत्तं न जाणई जीवो ॥ झूरइ कलुण पच्छा, पत्तो नरयं महाघोर ॥ जह निव द्रुम्म पत्तो, कीडो कडुअंपि मन्नहे महुरं। तह सिद्धि सुह परुक्खा, ससार दुह सुह भिंति ॥" विषय रस रुप मदिरामा मदोन्मत्त थता योग्य अयोग्यनु–हेयादेयनु भान नष्ट थाय छे अने तेथी ज्यारे महा दुःखमय घोर भयकर नरकादि गतिनी प्राप्ति थाय छे त्यारे अतिशय पश्चाताप भोगववो पडे छे जेम लींबडामा वसतो कीडो लींबडाना कटुक रसने पण मधुर मानी सेवे छे, तेमज मिथ्यादृष्टी बने मोक्ष

ज्ञाए ज्ञान पूर्वक हेय उपादेयनी परीक्षा करी अजीव तत्त्व तथा आस्रव तत्त्व तथा बंध तत्त्व उपर त्याग जाव अने जीवना गुण जे संवर, निर्जरा, मोक्ष तत्त्व उपर उपादेय परिणाम ते जाव छे. माटे शुद्धाग्र जाव सन्मुख अर्थात् आपणा आत्माने राग, द्वेष, मोहथी मात्र निवृत्त करवाना परिणाम सहित जो आवश्यकादि करणीउ करवामा आवे तो ते अवश्य मोक्षनु कारण थाय. वली "सम्मत्तेणं सुध्धो, सव्वसु किच्चो हवइ सिव हेऊ, संवर वुड्ढी तह निज्जराय धम्म मूलं च सम्मत्तं ॥" तथा- "मूलं दारं पइठाणं, आहारो जायणं निहिः डुसुक्कं साविधम्म- स्स, सम्मत्तं परिकित्तियं ॥" शुद्ध समकित तेज शिवनो हेतु, तथा संवरनी वृद्धि करनार, निर्जरानुं कारण होवाथी सर्वे धर्मनुं मूल, तथा मोक्ष महेलमां प्रवेश करवा माटे द्वार समान, चारित्र महेलनी पीठिका, तथा रत्नत्रयना जाजन रूप छे. एहवां आपनां पवित्र वचनो वांची सांजली में समकितने अमूल्य रत्न समान तो जाण्युं पण हे जगवंत ! आप तो " नय जंग पमाणेहिं, जो अप्पा साय- वाय जावेण, जाणइ मोक्ख सरूवं, सम्मदिठिउ सो नेउ " नय जग पक्ष प्रमाण सहित स्याद्वादनये जीवादि तत्त्वने यथार्थ जाणे ते तेमज श्रद्धा करे छे तथा हेयने त्याग करवानी तथा उपा- देय जावने आदरवानी रूचि होय तेने समकीती कहो छो. पण ते प्रमाणे तो में स्याद्वादनये आत्म तत्त्वनु स्वरूप यथार्थ जाण्यु, सद्दह्युं नहि तथा समकितना जे सडसठ (चार सद्दहणा, त्रण लिंग, दश प्रकारे विनय, त्रण शुद्धि, पांच दूषणनो नाश, आठ प्रकारे प्रजाविक पणु, पाच जूषण, पांच लक्षण, छ यतना, छ आगार, छ जावना तथा समकितना छ स्थानक) बोल आपे कह्या छे ते जाण्या शिवाय तथा

गुण चाल अनादिनी जे प्रिया; दृष्टि रागनो पोष तेह समकीत गणु, स्याद्वादनी रीत न देखुं निजपणुं ॥ ३ ॥

अर्थ.–अनादिथी अज्ञान वशे प्रिय थइ पमेली, कुदेव, कुगुरू अने कुधर्मने सन्मानवा आदरवा रूप मिथ्यात्व अज्ञाननो तथा क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा तथा वेदराग विगेरेनी दुष्ट चाल प्रकृतिनो तो त्याग कर्यो नहि अने कदाच श्री जिनेश्वरे बतावेली सामायिक, पोसह, प्रतिक्रमण, वदन, स्तवन, पूजा विगेरे क्रियाउं, अपमान निंदा तथा दुराचरण ढांकवा माटे, आलोक परलोकना विषयभोगनी आकांक्षा सहित, तथा माया मिथ्यात्व अने निदानशल्य सहित आदरी. " वैराग्य रंगो पर वंचनाय, धर्म्मोपदेशो जन रंजनाय " एम विष गरल अने अन्योन्यानुष्टान सेवता संसारीक दुःखथी मारी निवृत्ति थइ नहि. कारण के " निच्चुन्नो तंबोलो, पासेण विणा न होइ जह रंगो; तह दाण सील तव भावणाउं अहलाउं भाव विणा " जेम चुना विना तांबूल, अने पास विना वस्त्र रंग पामे नहीं तथा जेम अंक विना मींडा निष्फल थाय तेम शुद्धात्म भाव रहित दान, शील, तप अने भावना संसारथी मुक्त करी शके नहीं. जल विना जेम सरोवर, सुगंधी विना जेम कमल, चंद्रमा विना जेम रात्री, सूर्य विना जेम दिवस तथा जीव विना जेम शरीर शोभा पामतां नथी, तेम भाव वगर साध्य निरपेक्ष क्रियाउं शोभा पामती नथी पण जो ते आवश्यक आदि करणीउं भावपूर्वक करवामां आवे तो ते मोक्षनु कारण थाय जेम अंक सहितनां मींडां दशगुणी संख्या वधारनार थाय छे माटे भावनु स्वरूप जाणवु जोइए " उवओगो भाव इति " अर्थात् सूत्रनी साखे वीतरागनी आ-

लिनिवंद–" वहु विह नय नंगं, वत्तु णिच्चं अणिच्चं। सद सदन-भिलप्पं, लप्पमेगं अणेगं" ते में एकांत–मिथ्यात्व वशे न जाण्या–एम मिथ्यात्व नावमां फसी रह्यो अने तेथी इंद्रगणे वंदित, त्रिलोक पूज्य जे लोकोत्तर अरिहंत देव तेउने लौकीक रीते अर्थात् अज्ञान अने राग सहित, परन्नावना कर्त्ता हर्त्ता जाणी आलोक परलोक संबधी विषयोनी प्राप्ति अर्थे, तथा मान पूजा आदि अर्थे नमुं हुं-वंदन स्तवन पूजा प्रमुख करुं हुं पण तेथी जिनेश्वरे बतावेलो जे अत्यंत डुर्लन सिद्ध स्वनाव तेनी प्राप्ति केम थाय ? ॥ ४ ॥

महाविदेह मझार के तारक जिनवरु, श्री वज्रधर अरिहंत
अनंत गुणाकरु । ते निर्यामक श्रेष्ट सही मुज तारशे,
महा वैद्य गुणयोग रोग नव वारशे ॥ ५ ॥

अर्थः–महाविदेह क्षेत्रमां विचरता आ नीम नवार्णवमांथी नव्य समूहनो उद्धार करनार, सर्वे केवलीउमां इंद्र समान, शिरोमणी, ज्ञानादि अनंत गुणना आकर–निधान हे वज्रंधर अरिहंत ! आप, चरण जहाजने चलावनाराउमां अग्रेसर–प्रधान सर्वोत्तम निर्यामक होवाथी आ नयंकर नवाब्धिमांथी निःसंदेह अति त्वराए माहरो उद्धार करशो तथा महावैद्यरुप थइ माहरा आत्म परिणाममां सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्रनो योग करी मिथ्या आचरण वडे उप-जेला नवरोगनो वेगे समूल विनाश करशो एवी माहरा चित्तने दृढ प्रतित छे ॥ ५ ॥

प्रनु सुख नव्य स्वनाव सुणुं जो माहरो, तो पामे प्रमोद
एह चेतन खरो । थाये शिवपद आश राशि सुख चंदनी,
सहज स्वतंत्र स्वरूप खाण आणंदनी ॥ ६ ॥

अर्थः–" नवन व्यय विणु कार्य न निपजे हो, जिम

जे होवा जोइए तेनी मारामा प्रगटता थइ छे के नहि, तेनो विचार कर्या विना, समकीतना लक्षणोनी प्राप्ति विना, मात्र दृष्टी-रागना पोषने अर्थात् नय, निक्षेप, पक्ष, प्रमाण वडे परीक्षा कर्या शिवाय कुलक्रमानुगत देव गुरू धर्मनी द्रव्यपरंपराए श्रद्धाने समकित गणी क्रियानुष्ठान सेव्यां पण निश्चय समकीत विना मने मोक्ष फलनी प्राप्ति थइ नहि ॥ ३ ॥

मन तनु चपल स्वभाव वचन एकांतता, वस्तु अनंत स्वभाव न भासे जे छता। जे लोकोत्तर देव नमुं लौकीकथी, दुर्लभ सिद्ध स्वभाव प्रभो तहकीकथी ॥ ४ ॥

अर्थ —जेम पुंगीना स्वरमा लीन थइ नाग पोताना मस्तकने पुगी प्रमाणे डोलावे छे तेम हु पण पांच ईंद्रियोना विषयोमा लीन थइ माहरा आत्म परिणामने चपल करी कर्मजालमा फसायो "चलइ फदइ" तथा मिथ्यात्वना आवेशमा अनंत धर्मात्मक वस्तुमांथी कोइक धर्मने मुख्यतया वखाणता बाकीना धर्मोनी गौणपणे पण अपेक्षा नहि राखवा रुप एकांत वचन अर्थात् दुर्नयने ग्रहण कर्यो, ते प्रमाणे मे वस्तु स्वरूप सद्दह्यु तथा बीजाने पण तेमज एकांते उपदेश आप्यो "दोहिवि णयेहि णीयं सत्थ मूलस्स तहवि मिच्छत्तं, जम्हा विसयप्पहाणं, तणोणं अ-णुणणा निरवेक्खं" इति विशेषावश्यके—पण अनंत धर्मात्मक वस्तु स्वरुपने में यथार्थ जाण्युं नहि "अभिलाप्ये भावेभ्य अनभिलाप्या अनंत गुणा" एम अनंत गुण पर्यायनो भाजन ते द्रव्य-वस्तु छे माटे दरेक वस्तुमा अनंत भाव छता छे—मा-

वलग्या जे प्रभु नाम धाम ते गुण तणा, धारो चेतन राम एह थिर वासना ॥ देवचंद्र जिनचंद्र हृदय स्थिर थापजो, जिन आणा युत भक्ति शक्ति मुज आपजो ॥७॥

अर्थ.—हे भगवंत! जे पुरुषो आपना स्मरण, कीर्त्तन, भक्ति विगेरेमां लीन छे तेज पुरुषो गुणना धाम कहेतां भाजन छे. माटे हे चेतनराम! निरंतर प्रभुना स्मरणमां थिर वासकर, एक पण समय प्रभुपदने विसार नहि. देवचंद्र मुनि कहे छे हे जिनेश्वर देव! मने लब्धि वीर्यनुं दान करी आपनी आज्ञा प्रमाणे आपनी भक्ति करवानी मने शक्ति आपो कारण के आपनी आज्ञाथी विपरीतपणे करेला सर्वे क्रिया अनुष्ठान निष्फल छे "जो कोइ आणा रहिउं, पूआ पमुहं करेइ तिक्कालं । तस्सवि सव्वम सुद्धं, आणावज्जं अणुट्ठाणं ॥" जे कोइ पुरुष आज्ञा रहित पणे त्रणे काल पूजा प्रमुख करणी करे तो पण आणा रहित होवाथी तेनुं सर्वे अनुष्ठान अशुद्ध जाणवुं "जहतुस खंडण मय मंडणाइ रुण्णाइ सुन्न रन्नंमि ॥ विहलाइ तह जाणसु, आणा रहियं अणुट्ठाणं" जेम तुस—कुसकानु खांडवुं, मुडदाने शणगारवुं तथा सुना वगडामां विलाप करवो निष्फल छे तेम जिन आज्ञा वगरनुं अनुष्ठान पण निष्फल जाणवुं. "जह भोयण मविहिकयं, विणासए विहिकयं जियावेइ; तह अविहिकउ धम्मो, देइ भवं विहिकउ मुक्खं" जेम अविधिए करेलुं भोजन विनाश करे तथा विधिए करेलु भोजन जीवन आपे तेमज अविधिए आदरेलो धर्म भवभ्रमण आपे अने विधिए आदरेलो धर्म मोक्ष सुख आपे, माटे आपनी आज्ञानुं ज्ञान तथा ते आज्ञामां वसवा रूप सदाचरण ए बंनेनुं हे करुणा निधान! मने दान आपो. ॥ ७ ॥ ॥ संपूर्ण ॥

ठशदे न घटत्व" तेमज जेमा नव्य अर्थात् पलटन स्वजाव नथी एटले जे जीवमा मिथ्यात्वथी पलटी समकीत जावे परिणमवानुं सामर्थ्य नथी तेने अजव्य कहीए तथा अविरतीथी पलटी विरती-जावे परिणमवानु सामर्थ्य नथी तथा प्रमाद जावथी पलटी अप्रमाद जावे पलटवानु सामर्थ्य नथी, तथा कषाय जावथी पलटी अकषाय (शम) जावे परिणमवानु सामर्थ्य नथी (एटले पूर्व अहितकारी) पर्यायनो व्यय, नवा प्रशस्त पर्यायनुं जवन करवानुं सामर्थ्य जेमां नथी तेनुं कार्य थाय नही. ए विगेरे विजावथी पलटी स्वजाव रुपे परिणमवानु सामर्थ्य नथी एवा अजव्य जीवो अनन कालसुधी अनत उपाय करता ठता पण "कोटी जतन करी निशदिन धोवत उजरी न होवत कामर कारी" ए प्रमाणे आ ससार चक्रवाल-माथी मुक्त थई सिद्धि सुख पामी शके नहीं कारण तेओ व्रत, समिति, गुप्ति आदि पालता ठता पण मिथ्यात्व, अज्ञान अने पराचरण (मिथ्या-चरण)नां सेवक ठे उक्तच "वद समिदी गुत्तीऊ, सील तवं जिण-वरेहि पसत्तं, कुवंतोवि अजवो, असाणी मिठदिठीऊ" कारणके अजव्य जीवोनो स्वजावज एवो ठे के श्रुत अन्यास करे, द्रव्यथी पचमहाव्रत आदरे पण आत्मतत्वनी यथार्थ श्रद्धाविना कोई, पण काले प्रथम गुणस्थानने मूकी शके नहि माटे तेओ सिद्धिपद पाम-वाने योग्य नथी पण हे जिनेश्वर! आपनी आज्ञा प्रमाणे आ ससा-रथी निवृत्त थई मोक्ष स्वरुप साधवानी मने रुचि ठे, जवभ्रमणथी जयजीत तु, तथा सत्य न्यायने स्विकारु तु, ए आदि केटलाक जाव-वडे "हु नव्य तुं" एवुं अनुमान थायठे तो पण हे सर्वज्ञ देव! आपना मुखारविंदथी "तु नव्य तु" एवुं वचन सानलु, तो माहरा नव्यत्वनी मने सपूर्ण पणे प्रतीत थाय अने सहज स्वतंत्र सच्चिदा-नदमय अनंत सुख समूहरुप शिवपद प्राप्तिनो जरोंसो थाय ॥ ६ ॥

समर्थ एवी तत्त्वोपदेशरूप निर्मल चांदनीने आ भूमंडलमां फेलावनार हे जगत् चूडामणि चंद्रानन जिनेश्वर ! अज्ञान तथा कषाय जन्य दुःखथी भयभीत थएलो हु भवभीरु आप प्रति विनंती करुं हुं ते कृपाकरी सांभलो–अवधारो.

भरतक्षेत्र मानवपणोरे, लाध्यो दुःसम काल ॥ जिन पूरवधर विरहथीरे, दुलहो साधन चालोरे ॥ चंद्रानन० ॥ २ ॥

अर्थः–मेरुपर्वत जेटला राइना ढगलामां पडी गयेलो सरसवनो दाणो मली शकवो जेम अत्यंत मुश्केल छे तेमज मनुष्य भव पण आ भवसमुद्रमां भ्रमण करतां पामवो अत्यत दुर्लभ छे तेम छतां कदाच मनुष्य भवनी प्राप्ति थाय तो, आर्यक्षेत्र, लांबु आयुष्य, नीरोगता, उच्चकुल विगेरे उत्तरोत्तर अतिशय दुःप्राप्य छे छतां ते सर्वे सामग्रीउ कोईमाहरा महत् पुण्य प्रसादे आ दुःषमकालमां (पांचमा आरामां) हे चंद्रानन प्रभु ! मने प्राप्त थइ पण केवलज्ञानी, चौद पूर्वधर, दश पूर्वधर, तथा प्रत्येक बुध के जेउ तत्त्वना यथार्थ ज्ञाता उपदेष्टा छे, जेनां वचनो प्रमाण भूत छे, निशंकपणे विश्वास पात्र छे, जेना वचनानुसारे सर्वेनां वचनो परखी शकाय छे, एवा गुण समुद्र पूज्य पुरुषोना वियोग वडे सहजानंदरूप मोक्षपद साधवानो साचो मार्ग अतिशय दुर्लभ थइ पड्यो छे- ॥ २ ॥

द्रव्य क्रिया रुचि जीवडा रे, भाव धर्म रुचि हीन ॥ उपदेशक पण तेहवारे, शुं करे जीव नवीनरे ॥ चंद्रानन० ॥ ३ ॥

अर्थः–हे भव्यो ! अनादिकालथी आपणो आत्मा जे अज्ञान, मिथ्यात्व, अने कषाय वडे मलीन होवाथी आ भयानक भवसमुद्रमां भ्रमण करतां जन्म जरा मरण रोग-शोक वियोग ताडन तर्जन आदि अनेक प्रकारनां शारीरिक तेमज मानसिक दुःखो सहन करे छे,

॥ अथ श्री द्वादश श्री चंद्रानन जिन स्तवनम् ॥

॥ वीराचादला ए देशी ॥

चंद्रानन जिन सांजलिये अरदासरे, मुज सेवक जणी, छे प्रजुनो विश्वासरे चंद्रानन जिन ॥ १ ॥

अर्थ – हे जगवंत ! आप रूपी तेमज अरुपी, निकटवर्ती तेमज दूरवर्ती, सूक्ष्म तेमज स्थूल, सर्वे पदार्थोने तेना त्रैकालिक गुण पर्याय सहित एक समयमा हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष जाणनार होवाथी सर्वज्ञ, तथा अनंत आनंदमा पोताना गुणपर्यायोमां निरतर तल्लीन–स्थिर होवाथी अन्य कोईपण द्रव्य पर्यायमा आपनो राग द्वेषरुप परिणाम थतो नथी तेथी वीतराग छो, अने सर्वज्ञ तथा वीतराग होवाथी आपनी दिव्य वाणीमा प्रत्यक्ष परोक्षादि कोईपण प्रमाणवडे विसंवाद आवी शकतो नथी, कोईपण प्रकारना रंचमात्रपण दूषणने अवकाश मलतो नथी, माटे हे प्रजु ! आपज आ जीषण जवसमुद्रमांथी जव्य समूहने उद्धारवा समर्थ छो पण आपथी विमुख बुध कपिलादि अन्य तीर्थीओ के जे तेओना आचरण तथा वाणीवडे अज्ञान तथा राग द्वेषादि दूषणोयुक्त जरपूर कलंकित प्रतीत थाय छे, जवसमुद्रमा निमग्न जणाय छे, अने तेथी तेओना वचनमा प्रत्यक्ष परोक्षादि प्रमाणवडे अनेक दूषणो दृष्टिगोचर थाय छे, तेओ जवसमुद्रमाथी केम उद्धारी शके ? "जे नवि जव तर्या निर्गुणी तारशे किणपरे तेहरे" माटे पोते चूडनार तथा आश्रितने बूडावनार पत्थरनी नावनो केम विश्वास रखाय ? तेथी हे त्रिलोक पूज्य ! आ जवसमुद्रमाथी मुक्त थवा माटे हुं सेवकने आपनोज विश्वास–आधार छे, माटे समतारुप अमृत समुद्रने वृद्धिंगत करनार, तथा जव्यरूप कुमुद समूहने विकस्वर करनार, तथा कषाय तापने समाववामा, आत्मवीर्यनी वृद्धि करवामां

गेड्या पण ते द्रव्यलिंग, समकित रहित तथा साध्य निरपेक्ष होवाथी सिद्धिना हेतु थइ शक्या नहि. जेम घटनो ईच्छक कोइ कुंभार घट उत्पन्न करवानां साधनो जे दंड चक्रादि तेनो रात दिवस निरंतर घणो व्यापार करे पण साध्य जे घट ते सिद्ध करवा तरफ जो लक्ष आपे नहि अर्थात् माटीने चक्र उपर मूकी तेमांथी स्थास कुसल कुम्भादि पर्यायो निपजावे नहि तो कोइ पण काले घट सिद्ध थाय नहि. पण जो ते घट सिद्ध करवा तरफ लक्ष आपी स्थास कुशल कुम्भादि पर्यायो उपजाववामां दंड चक्रादिनो योग्य व्यापार करे तो अवश्य घट सिद्धि करी शके अने त्यारेज तेनो दंड चक्रादिनो सर्वे व्यापार सफल कहेवाय–तेमज भवभ्रमणथी उद्विग्न थएल भव्य जीव शुद्धात्म भाव सिद्ध करवानी रूचि धरी ते तरफ पुरतो लक्ष आपी गुणस्थान प्रमाणे योग्य व्यवहार आदरे अर्थात् प्रथम समकीत गुण प्राप्त करवानो व्यवहार आदरे कारण के ते मोक्षनुं प्रथम पगथीउं छे " जिन पणत्तं धम्मं, सद्दहमाणस्स होई रयण मिण ॥ सारं गुण रयणाणय, सोवाणं पढम मोख्खस्स " पछी देश विरति सर्वविरती थवानो व्यवहार आदरे, पछी अप्रमत्तादि गुण स्थान प्राप्त थवानो योग्य (आगमप्रणीत) व्यवहार आदरे तो केवलज्ञानादि अनुपम लक्ष्मीनो स्वामी थाय, पोतानुं अजर अमर शुद्धात्म (निर्वाण) पद प्राप्त करे. अने तेम करतां तेनो व्रत तप पच्चखाण प्रतिक्रमणादि सर्वे व्यवहार सफल कल्याणकारी कहेवाय. पण हे चंद्रानन प्रभु ! अनादि कालथी पुद्गल द्रव्यना गुण पर्यायोने अनुभवता, तेमांज तल्लीन थएला संसारी जीवोने सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र रूप भावधर्मनी रूचि क्यांथी थाय ? जो कदाच एम पोतानी मेळे थवी मुश्केल तो सद्गुरूना उपदेश वडे पण थइ शके पण आ निकृष्ट पंचम आरामां भावधर्ममां स्थापन करनार परमो-

पोतानी अनंत आनदमय दशाथी दूरवर्त्ती थइ रह्यो छे, तेथी अज्ञान मिथ्यात्व अने कषायादि दूषणोथी मुक्त करी, अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय परम निर्मल शुद्ध सिद्ध पदमां विराजमान करवो अर्थात् पूर्ण शुद्धात्म भाव प्रगट करवो–प्राप्त करवो, एज आपणुं परम कर्त्तव्य छे तथा एज आपणु सर्वोत्कृष्ट अनंत सुखप्रद अविनश्वर साध्य छे. पण मोहनिय कर्मना प्रबल उदय वडे पोताना सर्वोत्कृष्ट साध्य साधवानी रुचिथी पराङ्मुखपणे धर्मनुं मूल जे समकीत (सम्मत्तेणं सुध्धो, सव्वसु किच्चो हवइ सिवहेउ, संवर वुड्ढी तह निज्जरा य धम्म मूलं च सम्मत्तं) ते प्राप्त कर्या वगर पोताना दुष्कृतो ढाकवा माटे, अथवा मान पूजाने अर्थे, अथवा आ भव संबधी कामभोगना पदार्थो मेलववा माटे, अथवा देवादिक गतिना मनोहर विपुल भोगो प्राप्त थवा माटे घणा जीवो सामायिक, प्रतिक्रमण, पच्चखाण, तथा समिति परिसहसहनादि अनेक द्रव्य क्रियाओ रुचि सहित आदरे छे पण हे भगवत! ते सर्वे क्रियाओ शुद्ध साध्य निरपेक्ष अर्थात् परमार्थ विमुख होवाथी विष, गरल, तथा अन्यानुष्टान रूपे आस्रव हेतु थइ पडे छे यदुक्तं श्री आचारांग सूत्रे "जे आसवा ते परिसवा, जे परिसवा ते आसवा" माटे ते बालकनी क्रियावत् निर्वाण पद आपवाने असमर्थ छे, उक्तं च परमठ्ठमिट्ठअठिदो जो कुणइ तव वयच धारेइ, त सव बाल तव, बालवयं विंति सव्वण्हू॥ वयणियमाणि धरंता, सीलाणि तहा तवं च कुवंता। परमठ्ठ बाहिरा जे, निवाण तेण विंदति ॥ तथा उपदेश मालायाम्–संसार सागरमिणं, परिब्भमंतेहि सव्व जीवेहिं। गहियाणि अ मुक्काणिय, अणंतसो दव्व लिंगाइं–अर्थ–अरे आ संसार समुद्रमां परिभ्रमण करतां जीवोए द्रव्यलिंग अनंतीवार ग्रहण कर्या

तथा उपदेश मालायाम्. "जह जह बहु सुअसमउं, सीस गण संपरिवुडोय; अविणीच्छिउं असमए, तह तह सिद्धंत पडिणीउं."

आणा साध्य विना क्रियारे, लोके मान्यो रे धर्म। दर्शन ज्ञान चरित्तनोरे, मूल न जाण्यो मर्मरे॥ चंद्रानन०॥५॥

अर्थ-दर्शन ज्ञान चारित्रनो मूल मर्म जाण्यो नहि अर्थात् सत्ताए अनंत ज्ञान दर्शन चारित्र मय सिद्ध समान सर्वे जीवो छे, पण अनादिथी कर्म मल संबंधे अशुद्ध होवाथी ज्ञान दर्शन अने चारित्र रूप शुद्धात्म स्वभावथी विपरीतपणे मिथ्यात्व, अज्ञान, अने कषाय रूप परिणमे छे, पोताना आत्मवीर्यने तेमां वापरे छे अने तेथी निरंतर सात आठ प्रकारनां कर्म बांधी भवसमुद्रमां परिभ्रमण करतां अनेक प्रकारनी शारीरिक तथा मानसिक असह्य वेदनाउं भोगवे छे. पण ते मिथ्यात्व, अज्ञान, अने कषायने तीव्र दुःख दातार तथा अखूट सहजानंदने लूंटनार महान् शत्रुउं जाणी तेमां पोताना आत्मवीर्यने नहि वापरतां जीवादि तत्वोना यथार्थ श्रद्धानरूप सम्यक्दर्शन, तथा ते जीवादि तत्वोने नयनिक्षेप षद्र प्रमाणादि सहित संशय, विभ्रम अने विमोह रहित श्रद्धान पूर्वक जाणवा रूप सम्यक्ज्ञान, तथा रागादिक कषाय अने सावद्य योगना परिहार रूप सम्यक्चारित्रमां प्रयुंजी संसार समुद्रथी आपणा आत्मानो उद्धार करवो. (यतः-गाथाः-जीवादी सद्दहणं, सम्मत्तं तेसि मधिगमो णाणं; रागादी परिहरणं, चरणं एसो उ मोक्खपहो) दश दृष्टांते दुर्लभ, रत्न चिंतामणी समान मनुष्य भव त्यारेज सफल जाणवो; कारणके पंचेंद्रिउंना विषय भोग तो देवादि गतिमां मळी शके छे पण परमात्मपद-मोक्षपद तो आ मनुष्य भवमांज साधी शकाय छे. माटे आपणा आत्माने रत्नत्रयमां जोडवो, मोक्षमार्गमां प्रवृत्त थवुं,

पकारी सद्गुरूनी अतिशय विरलता अने भावधर्म एक कोरे मूकी साध्य शून्य द्रव्यक्रियामां लगाडनार उपदेशको घणा ए विषे न्याय विशारद श्रीमद् यशोविजयजी कहे छे–"ज्ञान दर्शन चरण गुण विना, जे करावे कुलाचाररे, लुटीया तेणे जन देखतां, किहां करे लोक पोकाररे ॥ काम कुंभादिक अधिकनुं, धर्मनु को नवि मूलरे, दोकडे कुगुरू ते दाखवे, शु थयु एह जग शूलरे ॥ अर्थनी देशना जे दिये, उलवे धर्मना ग्रंथरे, परम पदनो प्रगट चोरथी, तेहथी केम वहे पथरे ॥ विषय रसमां गृही माचीया, नाचीया कुगुरू मद पूररे, धूम धामे धमाधम चली, ज्ञान मारग रह्यो दूररे ॥ कलहकारी कदाग्रह भर्या, थापता आपणा बोलरे, जिन वचन अन्यथा दाखवे, आज तो वाजते ढोलरे ॥ केइ निज दोषने गोपवा, रोपवा केइ मत कदरे, धर्मनी देशना पालटे, सत्य भाखे नहि मदरे ॥" आचार्य कहे छे "किं भणिमो कि करिमो, ताणह आसाण धिठ्ठदुठ्ठाण । जो दंसिऊण लिगं, खिविंति णरयम्मि मुद्धजणं ॥" तो हे भगवत ! भवा जीवो जिन दर्शित शुद्धात्म धर्मने शीरीते पामी शके ? ॥ ३ ॥

तत्त्वागम जाणग तजीरे, बहु जन सम्मत जेह । मूढ हठी जन आदर्योरे, सुगुरू कहावे तेहरे ॥ चंद्रानन० ॥ ४

अर्थ –वली हे प्रभु ! आपना भाखेला आगमनुं यथार्थ रहस्य जाणनारने तो आ पंचम कालमां मूढ पुरुषो तजी दे छे–उवेखे छे, अने तत्त्व ज्ञानथी विमुख, मूर्खना टोलाने समत तथा मूढ अने कदाग्रही पुरुषोए आदरेला सन्मानेला एहवा कुगुरुओ, सुगुरू नाम धरावे छे, पण पत्थरनी नाव जेवा प्रगटपणे जिनशासनना वैरी रूप कुगुरुओ भवसमुद्रमांथी केम उद्धारी शके ? मोक्षमार्गे शी रीते दोरी-शके ? उक्तंच–जिम जिम बहु श्रुत बहुजन समत, बहु शिष्ये परिवरिओ, तिम तिम जिनशासननो वैरी, जो नवि निश्चय दरियोरे–

एज चारित्र ठे अर्थात् जिनाज्ञानुं पालवुं एज चारित्र ठे. तो जेणे जिनेश्वरनी आज्ञा नांगी तेणे शुं न नांग्युं ? हे प्राणी, जो तुं जिनेश्वरनी आज्ञाने उलंघन करे ठे तो तुं कोना आदेशथी क्रियानुष्टान करे ठे ? तथा उपदेश सिद्धांत रत्नमालायाम्–" जगगुरु जिणस्स वयणं, सयलाण जियाण होइ हिय करणं, ता तस्स विराहणया, कह धम्मो कहणु जीवदया " जगत्गुरु श्री जिनेश्वरनुं वचन सर्वे जीवोने हित करनार ठे तो ते वचनने विराधतां केवो धर्म अने केवी जीव दया ? ॥ ५ ॥

गच्छ कदाग्रह साचवेरे, माने धर्म प्रसिद्ध; आतम गुण अकषायतारे धर्म न जाणे शुद्धरे ॥ चंद्रानन० ॥ ६ ॥

अर्थ–सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान सम्यक्चारित्ररुप शुद्धात्म गुणनो, क्रोध, मान, माया, लोनादिक कपायो वडे घात न करवो, अकपाय नावमां, शुद्ध परिणामीक नावमां वर्त्तवुं तेज साचो धर्म ठे. कारणके " वत्थु सहावो धम्मो " एवुं श्री जिनेश्वरनुं पवित्र वचन ठे–तथा ते कपायोज कर्मबंधना हेतु ठे. " जोग निमित्तं गहणं, जोगो मण वयण काय सजूदो; नाव निमित्तो बंधो, नावो रदि राग दोस मोह जुदो " तथा अकपायमां वर्त्ततो–पोताना ज्ञानादि नाव प्राणोनी रक्षा करनारो ज्ञानी अप्रमादी मुनि पोताना तथा परना द्रव्यनाव प्राणनो हिंसक केम थाय ? अने जे अशुद्ध अध्यवसायमां वर्त्ते ठे ते हिंसा नहि करता ठता पण हिंसक ठे यतः–" अहणंतो विहु हिंसो, दुठतणुउ मउ अहिमरोव, वाहिंतो नवि हिंसो, सुद्ध तणुउ जहा विज्जो " माटे अकपायमा वर्त्तवुं तथा अहिंसामा वर्त्तवुं ए बेनी परमार्थे एकताज ठे अने अहिंसा धर्मनु पालन करनार सर्वे धर्मनु पालन करनार ठे, कारण के सर्वे

एज आपणुं सर्वोत्कृष्ट कर्त्तव्य छे, अने तेज धर्म छे-यत (सद्दृष्टीज्ञान वृत्तानि, धर्मं धर्मेश्वरा विदु, यदीय प्रत्यनीकानि, जवन्ति जव पद्धति) तेज जगत्वत्सल देवाधिदेव तीर्थंकर जगवंतनी आज्ञा छे- "मोरक पदे अप्पाणं, ववेहि तं चेव झाहि तं चेय, तत्थेव विहर णिच्च, मा विहरसु अण्ण दवेसु"-हे जव्य! तु मोक्षमार्गमा पोताना आत्माने स्थाप, तेज परमात्मपदनु ध्यान कर, तेज परमात्म पदने अनुजवगोचर कर, अने तेज परमात्म जावमां निरतर विहार कर, अन्य द्रव्य पर्यायमा विहार करीश नहि, तेमा इष्टानिष्ट बुद्धि वा राग द्वेषरुप परिणाम करीश नहि अर्थात् सर्वदा प्रमाद तजी परमात्मपदनी साधनामा मग्न था

पण हे चंद्रानन प्रजु! आ दुःषमकालमा ते परमात्म पदनु यथार्थ स्वरुप जाण्यावगर तथा तेनी साधनारुप जिनेश्वरनी आज्ञानी अपेक्षा तरफ लक्ष राख्या शिवाय अनेक प्रकारनी बाह्य क्रियाओनेज धर्म मानी लीधो, तेमाज रत थया, तेज करी पोतानें कृतार्थ समज्या अर्थात् बाह्य निमित्तने कार्य मानी साचा कार्यथी विमुख थई रह्या, पण जिनेश्वरनी आज्ञाथी विमुखपणे वर्त्तता सिद्धि थाय नहि कारणके जिनेश्वरनी आज्ञानी अपेक्षा वगरना सर्वे क्रियानुष्टान निरर्थक छे-श्रीमद् अजयदेव सूरि कहे छे-" संजम रहिय लिगं, दंसण जहं न संजमं जणिय, आणा हीण धम्म, निरत्थयं होइ सव्वपि " तथा " जो पुइज्जइ देवो, तव्वयण जे नरा विराहति, हारति बोहि लाज, कुदिट्ठि राएण अन्नाणी " तथा " पुआ पच्चरकाणं, पोसह उववास दाण सीलाइ सव्वपि अणुठाण, निरत्थय कणय कुसुमव" तथा श्री धर्मदास गणी उपदेशमालामा कहे छे "आणाइच्चिय चरणं, तन्नगे जाण किन्न नग्गति, आणं च अइकंतो, कस्साएसा कुणइ सेस, निश्चये आज्ञा

एम पोते आदरेल बाह्य लिंगने तथा बाह्य करणीने परमार्थे मोक्षनुं कारण मानी अमे साचो धर्म आराधीए छीये, अमारो धर्म प्रशंसनीय छे, एम जे पोतानी जीव्हाथी जल्पे छे अने ते माटे लांबा लांबा वितंडावादो मांडी बेसे छे, समतारुप अमृतने तजी कषायरुप हालाहलविषने भक्षण करे छे; एहवा एकांतवादी पुरुषोनो दुराग्रह नाश करवा माटे श्री जिनेश्वर प्रणीत शुद्धागमनुं रहस्य प्रगट करता श्रीमद् यशोविजयजी अध्यात्मसारमा कहे छे.—" अतो रत्नत्रयं मोक्षस्तदभावे कृतार्थता; पाखंडीगण लिंगैश्च, गृह लिंगैश्च कापिन। पाखंडी गण लिंगेषु, गृह लिंगेषु ये रताः; न ते समयसारस्य, ज्ञातारो बाल बुध्यः।भाव लिंग रतायेषु, सर्वसार विदोहिते, लिंगस्था वा गृहस्था वा; सिध्यन्ति धूत कल्मषा। भावलिंगं हि मोक्षांगं, द्रव्यलिंग मकारण; द्रव्यं नात्यतिकं यस्मान्नाप्येकांतिक मिष्यते।" आवोज भाव दिगम्बर आचार्य श्री कुंदकुंदाचार्य समयपाहुडमां कहे छे—गाथा—" पाखंमी लिंगेषु व, गिहिलिंगेसुव बहुप्पयारेसु, कुवंति जे ममत्तं, तेहि ण याणं समयसारं—णवि एस मोक्खमग्गो, पाखंडी गिहि मयाणि लिंगाणि. दंसण णाण चरित्ताणि मोक्ख मग्गं जिणा विंति" अर्थ—पाखंडि साधुलिंगमा वा गृहस्थ लिंगमां वा बहु प्रकारना लिंगमां जे ममत्व करे छे ते समय सारने जाणता नथी पाखंडीसाधुनो लिंग, वा गृहस्थनो लिंग विगेरे मोक्ष मार्ग नथी पण श्रीजिनेश्वर सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्रने मोक्षनो मार्ग कहे छे—"तह्मा जहित्तु लिंगं, सागार अणगारएहि वा गहिए; दंसणणाण चरित्ते, अप्पाणं जुंज मोक्खपहे" अर्थः—ते माटे सागार अने अणगारना लिंगनुं ममत्व तजी, पक्षपात तजी, दर्शन ज्ञान चारित्र रूप मोक्षमार्गमां आत्माने लगाव—जोड. तेमज वली

महाव्रतो, तथा क्षमादिक दश धर्मो, तथा परिसह सहन, तथा तप, संयम विगेरे सर्वे धर्मो अहिंसानाज अंग छे, तेनाज कारणो छे, माटे सर्वे धर्मोनो अहिंसामा समावेश थाय छे

" सव्वाओवि नइओ, जह सायरमि निवडति, तह भगवई अहिंसि, सवे धम्मा समिल्लन्ति, " तथा वली " अहिंसा सर्वे जीवानाम्, सर्वज्ञै परिज्ञापिता, इद हि मूल धर्मस्य, शेषस्तस्यास्ति विस्तर " माटे अकषायमा वर्त्ततो मुनि, नवा कर्मबधने अटकावतो, पूर्वे बांधेला कर्मनी निर्जरा करतो, जन्म मरणादि दु खनो क्षय करी परमानदपदने-मोक्षपदने प्राप्त करे छे यदुक्तं-आचारांग सूत्रे त्रीजा अध्ययने " जे क्रोधने छोडे छे ते मानने छोडे छे, जे मानने छोडे छे ते मायाने छोडे छे, जे मायाने छोडे छे ते लोभने छोडे छे, जे लोभने छोडे छे ते रागने छोडे छे, जे रागने छोडे छे ते द्वेषने छोडे छे, जे द्वेषने छोडे छे ते मोहने छोडे छे: जे मोहने छोडे छे ते गर्भथी मुक्त थाय छे गर्भथी मुक्त थाय छे ते जन्मथी मुक्त थाय छे, जे जन्मथी मुक्त थाय छे ते मरणथी मुक्त थाय छे, जे मरणथी मुक्त थाय छे ते नरकथी मुक्त थाय छे, जे नरकथी मुक्त थाय छे ते तिर्यंच गतिथी मुक्त थाय छे, जे तिर्यंच गतिथी मुक्त थाय छे ते दु खथी मुक्त थाय छे," एहवा अकषायरूप शुद्ध धर्मने नहि जाणनारा, तेनी अपेक्षा नहि राखनारा, एकाते बाह्य क्रियानी हठ धरनारा पुरुषो मात्र बाह्य क्रियानेज मोक्षनु कारण मानी, पोताना गच्छ प्रमाणे वर्त्ती ते बाह्य क्रियानेज परमार्थ ठराववा प्रयत्न करे अने कहे के आवु पात्र, वा आवी मुहपत्ती, विगेरे राखवा अने आवीज रीते प्रतिक्रमणादि क्रिया करवी तेज मोक्षनु कारण छे अमाराथी प्रकारातरे जे उपकरणो तथा प्रतिक्रमणादि बाह्य क्रियाउं आदरे छे ते मोक्ष पामी शके नहि.

अर्थः–देवाधिदेव श्री तीर्थंकरना चरणकमल के जे शुद्धात्म अनुजवरूप सुगंधे जरपूर तथा विषय कषायनी चाह दाहने शमन करनार, मोक्ष लक्ष्मीनु अतिशय प्रिय निवासस्थान ठे. तेने वंदन करवानो–पूजवानो ज्रमरनी पेठे तेमां लीन थवानो, माहरा मनमां अतिशय उमेद–उमंग ठे पण आ जवचक्रमा ज्रमण करतां अनेकवार मनुष्यजव पाम्यो, पण विषय कषायादिकमां मोहित रही रत्नचिंतामणी समान मनुष्यजव वृथा गुमावी दीधो, पुण्यानुबंधी पुण्यना वियोगे जिनेश्वरनी सेवामां रग लाग्यो नहि, तल्लीनता थई नहि. करीयातु कडवुं ठतां जेम मोढानी कुवासनो नाश करे ठे तेम जिनेश्वरनी लोकोत्तर सेवारुप प्रशस्त राग, ते राग नाश करवानो तथा आत्मगुण प्राप्तिनो हेतु बे. यत.–गाथाः–"नाणाइसु गुणेसु, अरिहंताइसु धम्म रुवेसु. धम्मोवगरण साहम्मीएसु धम्मथ्थं जोय गुणरागो ॥ सो सुपसथ्थो रागो, धम्म संयोग कारण गुण दो, पढमं कायवो सो, पत्त गुणे खवइ तं सवं ॥" जावार्थः–ज्ञानादि गुणो उपर, अरिहंतादि धर्मात्मा उपर, तथा धर्मना साधनो उपर, तथा साधर्मी उपर गुणावलवने जे राग करवो ते प्रशस्त राग, धर्म संयोगनुं तथा गुण प्रगट थवानुं कारण ठे. ॥ ७ ॥

जगतारक प्रजु वांदियेरे, महाविदेह मझार ॥ वस्तु धर्म स्याद्वादतारे, सुणि करिये निरधार रे ॥ चंद्रानन० ॥ ए ॥

अर्थः–संसार समुद्रमांथी उद्धारवा माटे समर्थ, महाविदेहमां विचरता श्री चंद्रानन प्रजुनुं निर्मल जावे वंदन करीए. सूत्रमां "वंदननुं फल श्रवण" एम प्रगट वचन ठे, माटे जगवंतने वंदन करतां अनंत धर्मात्मक वस्तुनुं स्वरुप स्याद्वादनये सांजलवानो लाज मले, ते सांजली वस्तु स्वरुपनो निर्धार करी शुद्ध धर्ममां प्रवृत्त थईए. ॥ ए ॥

श्री अमृतचन्द्राचार्य कहे छे "येत्वेन परिहृत्य सवृति पथ, प्रस्थापि तेनात्मना, लिंगे द्रव्यमये वहन्ति ममतां, तत्वाववोध च्युता । नित्योद्योत मखंड मेक मतुला, लोकं स्वभाव प्रभा, प्राग्भारं समयस्य सार ममल, नाद्यापि पश्यन्ति ते ॥" अर्थ:—जे पुरुषो परमार्थ स्वरूप मोक्षमार्गने छोडी बाह्य व्यवहारमा पोताना आत्माने स्थापी द्रव्यलिंगनी ममता धरे छे, तेनेज मोक्षनु कारण माने छे, ते पुरुषो तत्वज्ञानथी विमुख छे वली ते पुरुषो नित्योदित, अखड, एक, अनुपम, अपराजित, अतुल प्रकाशवंत अने पवित्र परमात्म स्वरूपने अथवा जिनेश्वरना पवित्र समय सारने हजु सुधी पण (मुनीनो वेष धारण कर्या छतां पण) जाणता नथी, प्राप्त थता नथी माटे एकात बाह्य क्रियानो हठ छोडी, परमार्थ समजी, शुद्ध साध्य तरफ लक्ष राखी शुद्धात्म पद जेथी सिद्ध थाय एहवो प्रशस्त व्यवहार आदरी, आपणा आत्माने अत्यत परमानदमय परमात्मपदमा स्थिर करो ॥ ६ ॥

तत्वरसिक जन थोडलारे, बहुलो जन संवाद ॥ जाणो छो
जिनराजजीरे, सघलो एह विवादरे ॥ चंद्रानन० ॥ ७ ॥

अर्थ —हे चंद्रानन प्रभु ! आ दुषमकालमा अमारा भरतक्षेत्रमा सद्गुरुनी विरलता वडे शुद्धात्म तत्व साधवाने रसिआ पुरुषोनी संख्या तो रत्न मणिनी पेठे अतिशय अल्प, अने पोतानो मत कदाग्रह स्थापन करवाने तत्पर एहवा कांचना कडका जेवा पुरुषो घणा, एवी अमारी दयामणी दशानु वर्णन हे जिनेश्वर ! आप सर्वथा जाणो छो ॥ ७ ॥

नाथ चरण वंदन तणोरे, मनमा घणो उमग ॥ पुण्य विना
किम पामीएरे, प्रभु सेवननो रग रे ॥ चंद्रानन० ॥ ८ ॥

॥ अथ त्रयोदशम चंद्रबाहु जिन स्तवनम् ॥

॥ श्री अरनाथ उपासना ॥ ए राग ॥

॥ चंद्रबाहु जिन सेवना, भव नाशिनी तेह ॥ पर परिणतिना पासने, निष्कासन रेह ॥ चंद्र० ॥ १ ॥

अर्थ.—अज्ञानादि अष्टादश दूषण रहित तथा अनंत चतुष्टय सहित तथा शुद्ध नये आत्मधर्मनो उपदेश आपी भव्य समूहने मोक्षमार्गे दोरनार, विदेह क्षेत्रमां विहरमान श्री चंद्रबाहु जिनेश्वरनी शुद्ध भावे (आलोक परलोक संबंधी विषय भोगनी आकांक्षा रहित शुद्धात्म भाव प्रगट करवाना हेतुरूप) करेली सेवा, सूर्य जेम अंधकारनो शीघ्रमेव नाश करे छे तेम लीला मात्रमां भव भ्रमणनो नाश करनार छे तथा "पर परिणतिना पासने निष्कासन रेह" जेम हरण शब्दना विषयमां मोहित थइ विविध प्रकारना वाजींत्रना मधुर कोमल स्वरना राग वशे पारधीये नांखेली जालमां आवी फसे छे, पोतानी स्वतंत्रताने गुमावी पराधीन थइ जीव जोखममां आवी पडे छे तेमज संसारी प्राणीओ शब्दादिक विषयना राग वशे मोह-पल्लीपतिए पाथरेली अतिशय विस्तीर्ण अने दृढ कर्मजालमां आवी फसे छे, पोताना सहज स्वतंत्र अव्याबाध आत्म भोगने गुमावी बेसे छे, पराधीन दीन थाय छे, पोताना शुद्ध ज्ञानादिक प्राणना जोखममां आवी पडे छे, कषायाग्निमां (दग्धमान) पच्यमान थाय छे, बलता रहे छे, एहवा पर परिणतिना रागरूप बंधनने छेदवा माटे चंद्रबाहु जिनेश्वरनी सेवना तीक्ष्णधारा समान छे, तेथी मुक्त करवा अत्यन्त सामर्थ्यवंत छे ॥ १ ॥

पुद्गल भाव आशंसना, उद्घासन केतु ॥ सम्यक्दर्शन वासना, भासन चरण समेत ॥ चंद्र० ॥ २ ॥

तुज करुणा सहु ऊपरेरे, सरखी छे महाराय ॥ पण अवि-
राधक जीवनेरे, कारण सफलु थायरे ॥ चंद्रानन० ॥ १० ॥

अर्थ.–हे चद्रानन प्रभु ! आप राग रूपी समुद्रने उलंघी गया छो, वीतराग भूमिमा विराजमान छो तेथी आप तो शत्रुमा तेमज मित्रमा, सेवकमां तेमज असेवकमा, निंदकमा तेमज स्तुतिकारमा समान वृत्तिवाला छो, सर्वे जीवो उपर आपनी करूणा तो हीणाधिकता रहित एक सरखी छे, ससार समुद्रथी तारवा माटे सर्वेने एक सरखो उपदेश आपो छो तो जे जीवो आपनी आज्ञाना विराधक होय ते न तरी शके ते तेमनोज दोष छे "पत्र नैव यदा करीर विटपे, दोषो वसंतस्य किम्, नो लूकोप्यवलोकते, यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणं" पण आपनी आज्ञाना आराधक जीवो आ संसार समुद्रथी तरी शके, आपनु निमित्त तेओनेज सफल थाय ॥१०॥

एहवा पण भवि जीवनेरे, देव भक्ति आधार ॥ प्रभु
समरणथी पामीएरे, देवचंद्र पद साररे ॥ चंद्रानन० ॥११॥

अर्थ.–एहवा आराधक भव्य जीवोने पण देवाधिदेव हे चद्रानन प्रभु ! आपनी भक्तिनोज आधार छे, ससार समुद्रमाथी तरवामा प्रवहण समान पुष्ट अवलंबन ते माटे हे प्रभु ! देवमा चद्रमा समान सर्वोत्कृष्ट परमात्मपद, आपना गुणनु स्मरण तथा ध्यान करवाथी प्राप्त थशे ॥ ११ ॥ ॥ सपूर्ण ॥

॥ अथ त्रयोदशम चंद्रबाहु जिन स्तवनम् ॥

॥ श्री अरनाथ उपासना ॥ ए राग ॥

॥ चंद्रबाहु जिन सेवना, भव नाशिनी तेह ॥ पर परिणतिना पासने, निष्कासन रेह ॥ चंद्र० ॥ १ ॥

अर्थः—अज्ञानादि अष्टादश दूषण रहित तथा अनंत चतुष्टय सहित तथा शुद्ध नये आत्मधर्मनो उपदेश आपी भव्य समूहने मोक्षमार्गे दोरनार, विदेह क्षेत्रमां विहरमान श्री चंद्रबाहु जिनेश्वरनी शुद्ध भावे (आलोक परलोक संबंधी विषय भोगनी आकांक्षा रहित शुद्धात्म भाव प्रगट करवाना हेतुरूप) करेली सेवा, सूर्य जेम अंधकारनो शीघ्रमेव नाश करे छे तेम लीला मात्रमां भव भ्रमणनो नाश करनार छे तथा "पर परिणतिना पासने निष्कासन रेह" जेम हरण शब्दना विषयमां मोहित थइ विविध प्रकारना वाजींत्रना मधुर कोमल स्वरना राग वशे पारधीये नांखेली जालमां आवी फसे छे, पोतानी स्वतंत्रताने गुमावी पराधीन थइ जीव जोखममां आवी पडे छे. तेमज संसारी प्राणीओ शब्दादिक विषयना राग वशे मोह पल्लीपतिए पाथरेली अतिशय विस्तीर्ण अने दृढ कर्मजालमां आवी फसे छे, पोताना सहज स्वतंत्र अव्याबाध आत्म भोगने गुमावी बेसे छे, पराधीन दीन थाय छे, पोताना शुद्ध ज्ञानादिक प्राणना जोखममां आवी पडे छे, कषायाग्निमां (दग्धमान) पच्यमान थाय छे, बलता रहे छे, एहवा पर परिणतिना रागरूप बंधनने छेदवा माटे चंद्रबाहु जिनेश्वरनी सेवना तीक्ष्णधारा समान छे, तेथी मुक्त करवा अत्यंत सामर्थ्यवंत छे ॥ १ ॥

पुद्गल भाव आशंसना, उद्घासन केतु ॥ सम्यक्दर्शन वासना, भासन चरण समेत ॥ चंद्र० ॥ २ ॥

अर्थ.—अनादिकालथी कर्म जालमां फसेलो पराधीन थएलो आत्मभोगना ज्ञान तथा आस्वादननो वियोगी पुद्गलना रुप रस गंध स्पर्शादि विषयभोगमा मग्न थएलो संसारीजीव निरंतर पुद्गल विषयोनी आशंसना—तृष्णाने वश वर्त्ते छे ते तृष्णाने छेदवाने चंद्रबाहु प्रभुनी सेवा केतु समान छे तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्ररुप आत्मस्वभावमा वास करावनारी छे, आत्मगुणनी सुधा-समा संतुष्ट करनार छे ॥ २ ॥

त्रिकरण योग प्रशंसना, गुणस्तवना रंग ॥ वंदन पूजन भावना, निज पावना अंग ॥ चंद्र० ॥ ३ ॥

अर्थ.—मन वचन अने काया ए त्रियेगनी शुद्धिए (कषायादि अप्रशस्त परिणाम रहित) देवाधिदेव श्री तीर्थंकर भगवतनो यश-वाद बोलवो, तेमना ज्ञानादिक पवित्र गुणनी स्तवना करवी, गुणानु-राग करवो, वंदन पूजन विगेरे करवु, तेमना ज्ञानादि शुद्धभाव अनुगत आपणो आत्म परिणाम करवो, ते सर्वे आपणा आत्माने ज्ञाना-वरणादि पापथी मुक्त, पवित्र करवानां तथा शुद्धात्मपद प्राप्तिना अंग छे ॥ ३ ॥

परमातमपद कामना, काम नाशन तेह ॥ सत्ता धर्म प्रका-शना, करवा गुण गेह ॥ चंद्र० ॥ ४ ॥

अर्थ.—केवलज्ञान, केवलदर्शनादि अनंत गुणपिंड आपणा शुद्धा-त्मपदनी कामना, ते साधवानी रुचि, ते पुद्गलादि अन्य द्रव्यनी कामना तृष्णाने नाश करवानो हेतु छे कारणके आपणो आत्माज परमात्मपदनु उपादान छे, तेज परमात्म भावे परिणमनार छे माटे परमातमपद क्षेत्रांतरे नथी अने क्षेत्रांतरे रहेली वस्तुनी कामनाज छु खदायी छे माटे परमात्म पदनी कामना करवाथी अन्य सर्व काम-

नानो उच्छेद थाय छे. ते परमात्मपदनी कामनाना हेतु श्री जिनेश्वर भगवंत छे तेथी तेमनी सेवा सत्तामां रहेली ज्ञानादि अनंत लक्ष्मीने प्रगट दृष्टीगोचर करवाने तथा आपणा आत्माने गुणनिधान पूज्य पद आपवाने पुष्ट हेतु छे. ॥ ४ ॥

॥ परमेश्वर आलंबना, राच्या जेह जीव ॥ निर्मल साध्यनी साधना, साधे तेह सदीव ॥ चंद्र० ॥ ५ ॥

अर्थः—जगत् चूडामणि तरण तारण परमेश्वरनो आश्रय जे भव्य जीवोए रुचि बहुमान पूर्वक ग्रहण कर्यो छे तेज पुरुषो निरंतर पोताना शुद्ध साध्यने साधवावाला छे परमात्मपद जेमां प्रगटपणे छे एवा तीर्थंकर भगवंत परमात्मपद साधनाना पुष्ट हेतु थइ शके पण अन्य कुदेवादिक जे पोते अशुद्ध आत्मभावमां वर्त्ते छे ते मोक्षना हेतु केम बनी शके ? ॥ ५ ॥

॥ परमानद उपायवा, प्रभु पुष्ट उपाय ॥ तुजसम तारक सेवतां, पर सेवन थाय ॥ चंद्र० ॥ ६ ॥

अर्थः—ते कारणमाटे हे चंद्रबाहु प्रभु परमानंद पद—मोक्षपद प्राप्त करवामां आपज पुष्ट उपाय छो.

"पुष्ट हेतु जिनेंद्रोयं, मोक्ष सद्भाव साधने"

हे प्रभु ! आप जेवा पूज्य पुरुषनी सेवा करतां अन्य जीव तथा पुद्गलनी आशा तृष्णा तथा सेवा मटी जाय, करवी न पडे ॥ ६ ॥

॥ शुद्धातम संपति तणा, तुम्हे कारण सार ॥ देवचंद्र अरिहंतनी, सेवा सुखकार ॥ चंद्र० ॥ ७ ॥

अर्थः—अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख तथा अनंतवीर्यरूप परमपवित्र, अविनश्वर अने स्वाधीन अखूट लक्ष्मी प्रगट—प्राप्त

करवाना, हे भगवंत! आपज साचा कारण छो. कारण के ते केवल ज्ञानादि लक्ष्मीने आप संपूर्ण प्रगट स्वाधीन करी निरंतर भोगवो छो, तज्जन्य परमानंदमां मग्न छो एवुं आपनु स्वरुप दृष्टि गोचर थतां मने पण एवुं भान थयुं के ए अनुपम विभूतिना ईश्वर माहरी स्वजाति छे, तेथी हुं पण आप समान लक्ष्मीनो स्वामी थवाने सत्तावंत छुं, एम भासन थतां आप समान परात्मपद साधवानी मने रुचि थइ तेथी आप माहरी सिद्धिना साचा कारण छो जो आपना परमानंदमय स्वरूपनुं मने दर्शन न थयु होत तो मने परमात्म पद साधवानी रुचि पण थती नहि अने रुची थयाविना कार्य साधनामा उद्यम प्रवृत्ति थाय नहि अने साधना विना कार्य सिद्धि पण थाय नहि माटे न्यायदृष्टिए जोतां आपनु सिद्धपद माहरी सिद्धिनु कारण प्रतित थाय छे ॥ उक्तंच विशेषावश्यके॥ "सर्वेपि बुध्दी संकल्प्य कार्यं करोति इति॥ व्यवहारस्ततो बुध्धाद्व्यवसितस्य कुंभस्य चिकीर्षितो मृन्मय कुंभस्तद्बुध्यालंबन तया कारण भवति" तथा वली ते परमात्मपद साधवानो यथार्थ मार्ग बतावनार पण आपज छो तेथी पण आप माहरी सिद्धिना कारण छो माटे सर्वे देवोमा चंद्रमा समान हे अरिहंत भगवंत! आपनीज सेवा सर्वे क्लेशथी मुक्त करी परमानंद परम सुखनी दातार छे ॥ १ ॥ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ चतुर्दशम श्री भुजग स्वामी जिन स्तवनम् ॥

॥ देशी ॥ लूअरनी ॥

पुष्कलावइ विजये हो, के विचरे तीर्थपती। प्रभु चरणने सेवेहो, के सुरनर असुर पती। जसु गुण प्रगट्या हो, के

सर्व प्रदेशमां । आतम गुणनी हो, के विकसी अनंत रमा ॥ १ ॥

अर्थः–पुष्कलावर्त विजयमां विचरता सम्यक्ज्ञान दर्शन चारित्र रूप तीर्थना प्रगट करनार, फेलावनार तीर्थपति श्री भुजंग स्वामी प्रभुने कषाय तथा अज्ञानथी बीलकुल रहित, परम पवित्र परमानंद स्वरूप जाणी, मोक्ष मार्गमां गमन करवा कुशल तेमना पवित्र चरण युगलने महान् रिद्धि सिद्धिना धारक सुर असुर तथा मनुष्यना इन्द्रो, विषय तथा कषाय जन्य भव समुद्रथी मुक्त थवा, बहु सन्मान सहित सेवे छे जे भगवंतना दरेक प्रदेशे रहेला ज्ञानादि अनंत गुणो संपूर्ण पणे निर्मल प्रगट थया छे, ते गुणनो व्याघात करनार ज्ञानावरणादि घाती कर्मनो सत्ता सहित नाश कर्यो छे अने तेथी ज्ञानादि आत्म गुणनी सहज, अकृत्रिम, स्वाधिन, अने अविनश्वर अनंत अनुभूति (लक्ष्मी) प्रगट प्राप्त थइ छे, निरंतर तेना स्वामी तथा भोक्तापणे वर्त्ते छे–परमानंदमां निमग्न छे ॥ १ ॥

सामान्य स्वभावनी हो, के परिणति असहायी । धर्म विशेषनी हो, के गुणने अनुजायी ॥ गुण सकल प्रदेशे हो, के निज निज कार्य करे । समुदाय प्रवर्त्ते हो, के कर्त्ता-भाव धरे ॥ २ ॥

अर्थः–सामान्य स्वभाव विना वस्तुनी छती नहि अने विशेष स्वभाव विना कार्य नहि, पर्याय प्रवृत्ति नहि, माटे पंचास्तिकाय ते सदा सामान्य विशेष स्वभावमयी छे.

जे स्वभावमां एकपणुं, नित्यपणुं, निरवयवपणुं, अक्रियपणुं, अने सर्वगतपणु होय ते सामान्य स्वभाव जाणवा (एगं निच्चं निरवय-वमक्रियं सव्वगं च सामन्नं) एवा मूलसामान्य स्वभाव छ छे–

अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्वं, सत्त्व अने अगुरूलघुत्वं. तथा उत्तरसामान्य स्वभाव वस्तु मध्ये अनंता छे. ते सामान्य स्वभावो सर्व द्रव्यमां सर्वे समय निज परिणामीकताए परिणमे छे, तेथी हे भगवंत ! आपना सर्व सामान्य स्वभावो सदाकाल असहाये परिणमे छे अने हे भगवंत ! आपना सर्व विशेष धर्म पोताना परम गुणने अनुयायीपणे परिणमे छे " यदुक्तं–भिन्न भिन्न पर्याय प्रवर्त्तन स्वकार्य करण सहकार भूता· पर्यायानुगत परिणाम विशेष स्वभावा " वस्तुमां जे भिन्न भिन्न पर्याय छे तेनु कार्य कारण पणे जे प्रवर्त्तन तेना सहकारभूत जे पर्यायानुगत परिणामी एवा जे स्वभाव ते विशेष स्वभाव छे

जीव द्रव्यमां ज्ञायकता कर्तृता भोक्तृता, ग्राहकता आदि अनंत विशेष स्वभाव छे, तेमज धर्मास्तिकायमा गमन सहकारतादि, अधर्मास्तिकायमा स्थिति सहकारादि, आकाशास्तिकायमां अवगाहदानादि, पुद्गलास्तिकायमा पूरणगलनादि, एम पंचास्तिकायमा अनंत विशेष स्वभाव छे

वली हे भगवत ! आप स्वतत्रपणे पोताना ज्ञानादिक कार्यना हमेशा कर्त्ता छो माटे आप परमेश्वर छो कारणके जीव द्रव्य शिवाय अन्य कोई पण द्रव्यमा कर्त्तापणुं नथी (कर्त्तृत्वं जीवस्य नान्येषाम्) कारण के " गुण सकल प्रदेशे हो के निज निज कार्य करे, समुदाय प्रवर्त्ते हो के कर्त्ता भाव धरे " आपना सकल प्रदेशे रहेला अनंत गुणो पोत पोतानुं कार्य करेछे पण ते सर्वे प्रदेशे समुदाय मलीने एकठी प्रवृत्ति करेछे माटे आप स्वतंत्र कर्त्ता छो ॥ २ ॥

जड द्रव्य चतुष्के हो के कर्त्ता भाव नहि, ॥ सर्व प्रदेशे

हो, के वृत्ति विभिन्न कही ॥ चेतन द्रव्यने हो, के सकल प्रदेश मीले ॥ गुणवर्त्तना वर्त्ते हो, के वस्तुने सहज वले ॥३॥

अर्थ.–पण हे जगवंत ! जडद्रव्य चतुष्कमां कर्त्ता जाव ठरी शकतो नथी, कारणके जो के ते जम द्रव्यना धर्म प्रदेशे प्रदेशे वर्त्ते ठे परंतु सर्वे प्रदेशोतुं एक समुदायीपणे कार्य प्रवर्त्तन नथी, भिन्न भिन्न प्रदेशे भिन्न कार्य होई शके ठे जेम धर्मास्तिकाय कोई प्रदेश वमे अमुक पुद्गलने चलनसहायी थाय ठे अने तेथी बीजा प्रदेशे बोजा पुद्गलने चलनसहायी थाय ठे एम भिन्न प्रदेशे भिन्न वृत्ति होवाने लीधे जड द्रव्यमां कर्त्तापणुं ठरी शकतुं नथी.

पण हे जगवत ! जीव द्रव्यनो सहज स्वजाव एवो ठे के तेना ज्ञान दर्शनादि सर्वे गुणोना अविजाग पर्याय दरेक प्रदेशे ठे,ते सर्वे प्रदेशना गुणाविजाग एक समुदाये आवीर्जावे थई कार्य करे अर्थात् एक कार्ये परिणमवामां सर्वे प्रदेशना गुणाविजाग सामर्थ्य पणे परिणमे, कोइ पण प्रदेशना गुणाविजाग ते कार्यमा जोडाया शिवाय रहे नही, एम जीव द्रव्यना सर्वे प्रदेश मली एक समुदायि पणे एक कार्ये परिणमे ठे ॥ ३ ॥

शंकर सहकारी हो, के सहजे गुण वरते ॥ द्रव्यादिक परिणति हो, के जावे अनुसरते ॥ दानादिक लब्धि हो, के न हुवे सहाय विना ॥ सहकार अकंपे हो, के गुणनी वृत्ति घना ॥ ४ ॥

अर्थः–एम दरेक सर्वे प्रदेशना गुणाविजागो एकत्र एक बीजाने सहकारीपणे सदा परिणमे, वली द्रव्य क्षेत्र कालनी प्रवृत्ति ते द्रव्यना परमजावने अनुसारे वर्त्ते ठे. जेम जीव द्रव्यनो जाव चैतन्यता ठे माटे चैतन्य गुण पर्यायनो एक पिंड ते जीव द्रव्य ठे, अने चैतन्य गुणने रहेवानुं असंख्यात प्रदेशमय स्थानक ते जीव द्रव्यनुं क्षेत्र ठे,

अने चैतन्य गुण पर्यायनी प्रवृत्ति ते जीव द्रव्यनो काल छे यदुक्तं- " गुण समुदाओ दव्वं, खित्तं ओगाह वट्टणा कालो ॥ गुण पज्जाय पवत्ति, जावो नियवत्थु धम्मो सो ॥" दान लाभ भोगादि लब्धीओ ते वीर्य गुणनी सहाय विना वर्त्ती शके नहीं पण हे भगवंत! आपनुं वीर्य क्षायिकपणे होवाथी गुण वृत्तिना समूहने अकंपपणे सहकारी थई शके छे तेथी आप हमेशा अवध तथा परमोत्कृष्ट अवस्थामां वर्त्तो छो, कारण के " चलइ स फंदई " ॥ ४ ॥

॥ पर्याय अनंता हो, के जे एक कार्यपणे ॥ वरते तेहने हो, के जिनवर गुण पजणे ॥ ज्ञानादिक गुणनी हो के वर्त्तना जीव प्रते ॥ धर्मादिक द्रव्यने हो, के सहकारे करते ॥ ५ ॥

अर्थ –त्रिलोक पूज्य श्री जिनेश्वर देव एम कहे छे के एक कार्य पणे परिणमनारा अनंता छती पर्यायनो समुदाय ते गुण छे जेम जाणवारुप सामर्थ्य छे जेमां एवा अविभागी पर्यायनो समुदाय ते ज्ञान गुण, देखवारूप सामर्थ्य छे जेमा एवा अविभाग पर्यायनो समुदाय ते दर्शन गुण, परिणामालंबन रुप कार्य सामर्थ्य छे जेमा एवा अविभागी पर्यायनो समुदाय ते वीर्यगुण, विगेरे एम दरेक द्रव्यना प्रति प्रदेशे पोतपोतानुं एक कार्य करवानुं सामर्थ्य धरनारा अनंता अविभागरुप पर्यायनो समुदाय ते गुण छे जीवद्रव्यना दरेक प्रदेशे जाणवा रूप कार्य करवानुं सामर्थ्य धरनारा अनंता अविभाग पर्याय छे तेनो समुदाय ते ज्ञान गुण. एम ज्ञानादि अनंत गुणनी वर्त्तना जीव द्रव्यमा छे यदुक्तं–नय चक्र सारे–" तत्रैकस्मिन् द्रव्ये प्रति प्रदेशे स्व स्व एक कार्य करण सामर्थ्य रुपा अनंता अविभाग रुप पर्याया स्तेषा समुदायो गुण भिन्न कार्य

करणे सामर्थ्यरूपा भिन्न गुणस्य पर्याया· एवं गुणा अप्यनंता· प्रतिगुणं प्रतिदेशं पर्याया अविभाग रूपाः अनंता स्तुल्याः प्रायीइति ते चास्ति रूपाः प्रति वस्तुनि अनंता स्ततोनत गुणाः सामर्थ्य पर्यायाः " अने धर्मादिक जड द्रव्यमां ज्ञान गुणथी अनिरिक्त चलनसहकारादि गुणो वर्त्ते छे ॥ ५ ॥

ग्राहक व्यापकता हो, के प्रभु तुम धर्म रमी ॥ आतम अनुभवथी हो, के परिणति अन्य वमी ॥ तुज शक्ति अनंती हो, के गातांने ध्यातां ॥ मुज शक्ति विकासन हो, के थाये गुण रमतां ॥ ६ ॥

अर्थः—हे प्रभु ! भेदविज्ञाननी पूर्णता वडे आप निरंतर ज्ञानादिक शुद्धात्म गुणना ग्राहक छो तेथी अतिरिक्त विषय कषायने ग्रहण करवाथी आप मुक्त थया छो, तेमज आपनी व्यापकता पण ज्ञानादिक शुद्धात्म गुणमांज निरंतर व्यापे छे पण विषय कषायमां कदापि काले व्यापे नहि तेथी आप सदा परभावथी अव्याप्त छो तथा नित्य शाश्वत स्वाधीन अने एकांतिक सहज सुख पिंड शुद्धात्म द्रव्यनी अनुभूतिनो निरंतर आस्वाद लेनारा तथा तेमांज विलासी थइ पौद्गलीक विभूतीनुं कर्त्तापणुं भोक्तापणुं तथा रमणपणुं वमननी पेठे सर्वथा प्रकारे तजी दीधुं कारणके शुद्धात्म अनुभवरूप अमृतपानमां मग्न पुरुष, पौद्गलीक विषय कषायरूप हालाहल विष पीवाने केम इच्छे ? हे प्रभु ! " अजमत्वात्मिका चितिशक्ति·, अनाकारोपयोगमयी दृशिशक्ति·. साकारोपयोगमयी ज्ञानशक्तिः, अनाकुलत्व लक्षणा सुखशक्तिः, स्वरूप निर्वर्तन सामर्थ्यरूपा वीर्यशक्तिः, अखण्डित प्रताप स्वातन्त्र्य

शालित्वलक्षणा प्रभुत्वशक्ति, क्रमाक्रमवृत्ति वृत्तलक्षणोत्पाद व्यय ध्रुवत्वशक्ति " तथा कर्तृत्वशक्ति, भोक्तृत्वशक्ति, परिणामशक्ति, स्वधर्म ग्राहकत्वशक्ति, स्वधर्म व्यापकत्वशक्ति, तत्त्वशक्ति, एकत्वशक्ति, अनेकत्वशक्ति, कारणशक्ति, सम्प्रदानशक्ति, अपादानशक्ति, अधिकरणशक्ति, सबधशक्ति, ए आदि अनंतशक्ति आपमा समवाय संबंधे रहेली छे ते शक्तिओनु स्मरण तथा ध्यान करता तथा शुद्धात्मगुणमा रमण करतां सत्तागते रहेली आप समान माहरी सर्वे शक्तिओ प्रगट थाय, सहज शिवलक्ष्मीनी प्राप्ति थाय ॥ ६ ॥

इम निजगुण भोगी हो, के स्वामी भुजंग मुदा ॥ जे नित
वंदे हो, के ते नर धन्य सदा ॥ देवचंद्र प्रभुनी हो, के पुण्ये-
भक्ति सधे ॥ आतम अनुभवनी हो, के नित नित शक्ति
वधे ॥ ७ ॥

अर्थ —एम शुद्धात्म गुण पर्यायने निरतर भोगवनारा परमानद समूह हे श्री भुजंग स्वामी ! पवित्र भाव वडे जे आपनुं नित्यवंदन स्मरणादि करे ते तेज पुरुषो आ जगतत्रयमा धन्य छे ! तेज पुरुषो स्तुति पात्र छे, तेज पुरुषो कृतार्थ छे, हे देवाधिदेव ! आपनी भक्ति महत्पुण्यना योगेज साधी शकाय छे वली आपनीज भक्तिना पसाये बीजना चद्रमानी पेठे आत्म अनुभवनी शक्ति दिन प्रतिदिन वृद्धिगत थाय, आखरे पूर्णानदनी प्राप्ति थाय ॥ ७ ॥ सपूर्ण ॥

॥ अथ पचदशम श्री ईश्वरदेव जिन स्तवनम् ॥

॥ काल अनतानत ए देशी ॥

सेवो ईश्वर देव, जिणे इश्वरता हो, निज अद्भुत वरी.
तीरोभावनी शक्ति, आवीर्भावे हो, सहु प्रगट करी ॥ १ ॥

अर्थ-महाविदेहमा विहरमान हे श्री ईश्वरदेव! आपे सर्व जगत् अने आश्चर्य तथा परमानंद पमाडे एवी ईश्वरता प्रगट-संप्राप्त करी छे, ते ईश्वरता केवी छे-पोताना शुद्ध गुण पर्यायोमां वरते छे तेथी पूर्ण पवित्र स्वाधीन तथा अविनश्वर छे परद्रव्यना रागथी रहित होवाथी राग द्वेष भय तथा कामनाथी रहित छे माटे अत्यंत सुख समूह रूप छे, परमानंदमय छे

अनादि विभावने लीधे आत्मा राग द्वेष रूप अशुद्ध भावे परिणमी ज्ञानावरणादि अनेक प्रकारनां कर्म बंधन वडे पोतानी ज्ञानादि अनंत विशेष शक्तिओने आच्छादित करे छे, पोताना स्वाभाविक परमानंदथी विमुख रहे छे पण हे परमेश्वर! आपे पोताना आत्मानुं तथा पुद्गलादि परद्रव्यनुं स्वरूप यथार्थ ओलखी पोताना स्वरूपने सुखनिधान जाणी तेना रसिया थई सम्यक्पराक्रम आदरी परकर्तृता, परभोक्तृता, परग्राहकता, परव्यापकता, पररमणता विगेरे अनंत विभावनो परित्याग करी, शुक्लध्याननी तीव्र अग्नि वडे ज्ञानावरणादि कर्ममलने भस्मीभूत करी, शुद्ध सुवर्ण समान परम प्रकाशमान् अनंत परमानदमय पोतानी ज्ञानादि सर्व शक्तिउ "आवीर्भावे प्रगट करी" प्रगट, निरावरण स्वकार्य प्रयुक्त करी राग द्वेष मोह विगेरे नाश करी, सर्व दूषण रहित स्वसत्तामां विराजमान रहि पोताना ज्ञानादि शुद्ध अनंत गुणोनी ईश्वरता निष्कंटकपणे भोगवो छो. तेथी हे परमेश्वर! आपमां साची ईश्वरता जोई परमाह्लादित थई पवित्र विनय युक्त आपनी द्रव्यभावथी सेवा करीए. द्रव्य भाव सेवानु स्वरुप-" द्रव्यसेव वंदन नमनादिक, अर्चन वली गुण ग्रामोजी । भाव अभेद थवानी ईहा, परभावे निःकामोजी " ॥

अर्थ –सर्व परभावनी कामना रहित जिनेश्वरना पवित्र गुणोमां बहु सन्मान धरी ते समान पवित्र गुणो प्रगट करी अरिहंत समान पोतानु परमात्म पद साधवुं ते भावसेवा छे तथा ते भावसेवाना कारणरुप, भावसेवाने प्रशस्त, परमपूज्य श्री जिनेश्वरना पवित्र गुणोनु स्मरण तथा गान करवु तथा ते जिनेश्वरनी परम पवित्र ज्ञान मूर्त्तिने वंदन नमनादि करवु ते द्रव्यसेवा छे ॥ १ ॥

अस्तित्वादिक धर्म, निरमल भावे हो सहुने सर्वदा ॥
नित्यत्वादि स्वभाव, ते परिणामी हो जड चेतन सदा ॥ २ ॥

अर्थः–अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व तथा सत्व ए छ मूल सामान्यस्वभाव सर्वे द्रव्यमां सदाकाल निरावरणपणे वर्त्ते छे तथा सर्वे जड तथा चेतन द्रव्यो नित्यत्वादि स्वभावे निरंतर परिणमे छे माटे ए सामान्यस्वभावनी निरावरणता वडे तथा साधारणधर्मना परिणाम वडे तो हे ईश्वर देव! आपने परमेश्वरपणानी पदवी प्राप्त थई शके नहि पण ॥ २ ॥

कर्त्ता भोक्ता भाव, कारक ग्राहक हो ज्ञान चारित्रता ॥
गुण पर्याय अनंत, पाम्या तुमचा हो पूर्ण पवित्रता ॥ ३ ॥

अर्थ –कर्त्तापणु, भोक्तापणु, कारकपणु, ग्राहकपणु, ज्ञान, चारित्र, विगेरे अनंत गुणपर्याय ते पूर्ण पवित्र थया छे, सदाकाल पूर्ण पवित्रपणे वर्त्ते छे, ए कारणमाटे आपमां परमेश्वर पदनी प्रतीत थाय छे. अनादि अज्ञान वशे जीव परभावनो कर्त्ता बने छे अर्थात् में घर बनाव्यु, में नगर बनाव्यु, मे अमुक पदार्थने सुवर्ण बनाव्यो, अमुक पदार्थने सुगंध बनाव्यो, अमुक पदार्थने सरस रसवाळो बनाव्यो, अमुक पदार्थने मनोहर स्पर्शवाळो बनाव्यो, विगेरे परभावना कर्त्तापणाना अभिमान वडे ज्ञानावरणादि कर्मनो कर्त्ता बने छे एम

द्रव्यकर्म, नोकर्मादिकनो कर्त्ता बनी पोताना शुद्ध ज्ञानादि परिणामे परिणमवा रूप शुद्ध कर्त्तापणाथी विमुख रहे छे. पण ज्यारे सम्यक् ज्ञाननी प्राप्ति थाय, तत्त्वरुची थाय, त्यारे परभावना कर्त्तापणाने तजी स्वाभाविक कार्यमां पोतानी शक्तिने जोडे, शुद्धज्ञान दर्शन चारित्रनो कर्त्ता थाय, तेमज अज्ञान वशे परभावनो भोक्ता बने छे अर्थात् वर्ण गंध रस स्पर्श स्त्री पुरुष वस्त्र खादिम स्वादिम पदार्थने मे भोगव्या, हुं भोगवुं छुं, हुं भोगवीश, एम परभावना भोक्तापणानुं अभिमान करे छे. पण ज्यारे सम्यक्ज्ञाननी प्राप्ति थाय त्यारे पोताना ज्ञानादि शुद्ध गुण पर्यायने पोताना भोग उपभोग जाणी ते भोगववानो कामी थइ तेना भोगमां मग्न थाय, परभावनुं भोक्तापणुं दूर थाय तेमज अनादि विभाव वशे अशुद्ध कारक प्रवृत्तिमां पोताना आत्म परिणामने थिर करे छे, तेमज परभावमां व्यापक अर्थात् तल्लीन–तद्गत थइ रहे छे, तेमज अशुद्ध ज्ञाने परिणमे छे अर्थात् देहने आत्मतत्त्व जाणे छे, पौद्गलीक भोगने आत्म भोग जाणे छे, पौद्गलीक विषय सुखमां सुख जाणे छे, शारीरिक वीर्यने आत्मवीर्य जाणे छे, तेमज पौद्गलीक परिणाममां पोताना आत्माने स्थित करे छे, एम अज्ञान वशे संसारी आत्मा पोताना सर्वे कर्त्तृत्वादि स्वभावने अशुद्धपणे परिणमावी अनेक प्रकारनां ज्ञानावरणादि कर्म बांधि पोतानी ज्ञानादिक अनंत संपदाना ईश्वरपणाथी दूर वर्त्ते छे पण हे ईश्वरदेव ! आपे ते पोताना सर्वे कर्त्तृत्वादि स्वभावने शुद्ध भावे परिणमाव्या–पूर्ण पवित्र थया. हवे कोइपण काले अशुद्धताए परिणमशे नहि माटे आप श्री एवंभूत नये पोतानी ज्ञानादि निष्कलंक, अविनश्वर लक्ष्मीना स्वामी–ईश्वर थया छो माटे आपज साचा ईश्वर छो ॥ ३ ॥

पूर्णानंद स्वरूप, भोगी अयोगी हो उपयोगी सदा ॥

शक्ति सकल स्वाधीन, वरते प्रभुनी हो जे न चले कदा ॥ ४ ॥

अर्थ:-वली हे भगवत ! आप पूर्णानंद स्वरूप छो जगत्वासी जीवो धन स्त्री आदि ईष्ट पदार्थोनी अधिकतर प्राप्ति वडे पोताने पूर्णानद माने छे, पण ते समुद्रना कल्लोलनी पेठे अवास्तविक छे, क्षणभंगूर छे, तृष्णा रूपी आगने वधारनार छे, तथा स्वाभाविक सपदानो घात करनार छे पण आपनी ज्ञानादिक संपदा ते आपथी प्रदेशांतरे नथी तेथी ते दूर थवानो कदापि भय नथी, वली एक क्षेत्रावगाही होवाथी चाह दाहथी अतीत छे, वली ते ज्ञानादि सपदा सहज स्वाभाविक छे माटे ते राखवानो अथवा मेलववानो प्रयास करवो पडे तेम नथी, वली ते आपने सहज सबंधे छे तथा परद्रव्यथी अग्राह्य छे माटे तेने कोइ भागी लुटी शके तेम नथी तेथी हे भगवंत ! आपज पूर्णानंद छो यदुक्तं-

श्लोक:-"पूर्णता या परोपाधेः सा याचितक मंडनं ॥ या तु स्वाभाविकी सैव जात्यरत्नविभानिभा ॥ अवास्तवी विकल्पै स्यात् पूर्णताब्धे रिवोर्मिभि ॥ पूर्णानंदस्तु भगवांस्तिमितोदधिसन्निभः ॥"

तथा हे भगवत ! आप स्वरूप भोगी छो, मात्र ज्ञानदर्शन चारित्रादि पोताना शुद्ध निरूपाधिक गुण पर्यायने भोगववा वाला छो तेथी आप सदा निष्कटक छो, तथा हे भगवंत ! आप मन वचन तथा कायानी क्रियाना अकर्त्ता थया छो, योगनुं ममत्व सर्वथा दूर कीधु छे तेथी आप अयोगी छो, वली आप सदा उपयोगी छो, ज्ञानोपयोगनो घात करनार ज्ञानावरणीय कर्म तथा दर्शनोपयोगनो घात करनार दर्शनावरणीय कर्म ए बनेनो आपे सत्ता सहित सर्वथा नाश

कर्यो छे माटे हवे आपना उपयोगने कोइ पण स्खलना पमाडनार नथी तेथी आप सदा उपयोगी छो, सर्वे समय शुद्ध ज्ञानदर्शनोपयोगमां निरंतर वर्त्तो छो; एम हे भगवंत! ज्ञानादि सर्वे शक्तिउ आप पोताने स्वाधीन वर्त्तावो छो वली सर्वे कर्मनो अभाव करी आपे ते शक्तिउ पोताने स्वाधीन करी छे माटे ते हवे आपथी कोइ पण काले क्षणमात्र पण प्रदेशांतरे थनार नथी, सदा काल आपमां अचल पणे रहेशे तेथी तज्जन्य आनंदमां आप सदा मग्न छो ॥ ४॥

दास विभाव अनंत, नासे प्रभुजी हो तुज अवलंबने ॥
ज्ञानानंद महंत, तुज सेवाथी हो सेवकने बने ॥ ५ ॥

अर्थः—ज्यांसुधी आत्मा सचेत थयो नथी त्यांसुधी अनादि विभाव स्वभाव होवाने लीधे आत्मा सम्यक्ज्ञाने नहि परिणमता अज्ञानपणे परिणमे छे, सम्यक्दर्शनपणे नहि परिणमतां मिथ्यादर्शनपणे परिणमे छे, स्वस्वरूपमां रमण नहि करतां विषय कषायमां रमण करे छे पंडितभावे वीर्य नहि फोरवतां बाल बाधक भावे फोरवे छे, सूक्ष्म तथा स्थूल क्रियानो रागी थई कर्म बंधन करे छे, शुद्ध स्वभावनो कर्त्ता नहि बनतां परभावनो कर्त्ता बने छे, शुद्ध स्वभावनो भोक्ता नहि बनतां परभावनो भोक्ता बने छे, शुद्ध ज्ञानादि गुणनो ग्राहक नहि थतां परगुण पर्यायनो ग्राहक थाय छे, शुद्ध स्वभावमां नहि व्यापता परभावमां व्यापे छे, एम ज्ञानादि अनंत गुणोने अशुद्धपणे परिणमाववारूप जे अनंत विभाव हुं सेवकने वलगेलो छे ते सर्व विभाव हे परमेश्वर! आपना अवलंबनवडे समूल नाश थशे वली हे परमेश्वर! आपनी पवित्र आज्ञामां विचरवारूप साची सेवाथी हुं सेवकने अखूट अचल अविनश्वर ज्ञानानंद प्राप्त थशे. ज्ञानानंद तेज साचो आनंद छे विषय कषाय वडे मनायेलो आनंद ते अवास्तविक कल्पित तथा दुःख निदान छे । ५ ॥

॥ धन्य ! धन्य ! ते जीव, प्रभु पद वंदी हो जे देशन सुणे ॥
॥ ज्ञान क्रिया करे शुद्ध, अनुभव योगे हो निज साधकपणे ॥ ६ ॥

अर्थ –धन्य छे ते जीवोने ! धन्य छे ते जीवोने ! के जे हे परमेश्वर ! आपना पवित्र चरणकमलने वंदी सर्वे जीवने सुखकारी संसार समुद्रमाथी तारनार धर्मदेशना रुची पूर्वक श्रवण करे, महत्पुण्यना योगे आप श्रीनो दिव्यवाणीनो लाभ मले छे रत्नचिंतामणीथी अत्यंत दुःप्राप्य अमूल्य आपनी देशनानो यथार्थ रहस्य पामी पोताना शुद्धात्म पदना साधकपणे शुद्धात्म अनुभव योगे ज्ञानशुद्धि तथा क्रियाशुद्धि आदरे "ज्ञानशुद्धि"–संशय विभ्रम अने विमोह रहित शुद्ध तत्त्वनु जाणवु ते शुद्धज्ञान छे, ते शुद्धज्ञान सर्व दोषथी रहित केवलज्ञानदिवाकर श्री अरिहंतादिना सदुपदेशद्वारा तथा तेउना प्ररुपेला सदागमद्वारा वाचना, प्रिच्छना, पर्यटना, अनुप्रेक्षा तथा धर्मकथा विगेरे साचा निमित्तथी शुद्धज्ञाननी प्राप्ति थाय छे माटे तेउनुं अतिचार रहित निरंतर सेवन करवुं जेथी ज्ञानशुद्धि थाय. "क्रियाशुद्धि"–क्रिया बे प्रकारे छे बाह्यक्रिया अने अंतरग क्रिया–शुद्धा हारादिकनु ग्रहण करवुं तथा इर्या भाषादि समितिनुं पालन करवु विगेरे बाह्यक्रियाशुद्धि छे तथा स्वसमय परसमय, स्वद्रव्य परद्रव्यने भिन्न भिन्न यथार्थ जाणवामा वर्त्तवु तथा शुद्धात्म स्वरुपनो घात करनार क्रोधादिक कषायोनो भेदविज्ञान रुप तीक्ष्ण बाणवडे नाश करवो, तेओनो आत्म सत्ताभूमिमां प्रवेश थवा देवो नहि, एम शुद्धात्म स्वरुपनु रक्षण करवु, शुद्धात्म अनुभवमा विचरवुं ते अंतरग क्रियाशुद्धि छे यदुक्त–द्रव्यानुयोग तर्कणायाम् "बाह्य क्रिया आवस्यकादि रुपा बहिर्योगोस्ति च पुन अंतरग क्रिया च स्वसमय

परसमय परिज्ञान रूपा ज्ञानक्रिया अपरो ऽन्यानुयोगोस्ति" अंतरंगक्रियाशुद्धिनी प्राप्ति माटेज बाह्यक्रियाशुद्धि आदरणीय, प्रशंसनीय छे, संवर हेतु छे, पण अंतरंगक्रियाशुद्धिनी अपेक्षा वगरनी बाह्यक्रियाशुद्धि ते बंध हेतु छे–"शुद्धातम अनुभव विना, बंध हेतु शुभ चाल ॥ आतम परिणामे रम्या, एहज आस्रव पाल ॥" माटे बाह्यक्रियाशुद्धिमा प्रवृत्त थतां अंतरगक्रियाशुद्धिथी चूकवुं नहि अने अंतरंगक्रियाशुद्धिनी कारणरूप बाह्यक्रियाशुद्धिनी उपेक्षा करवी नहि माटे क्रियाशुद्धि तथा ज्ञानशुद्धि ए बंनेनुं जिनाज्ञा प्रमाणे पालन करतो स्याद्वादमां कुशल एवो ज्ञानी शुद्ध निरामय निर्वाणपदने प्राप्त थाय छे.

यदुक्तः–वसंत तिलका "स्याद्वाद कौशल सुनिश्चल संयमाभ्यां, यो भाव यत्य हरहः स्वमिहोपयुक्तः । ज्ञान क्रिया नय परस्पर तीव्र मैत्री, पात्री कृतः श्रयति भूमि मिमा स एकः"

अर्थः–जे पुरुष स्याद्वादमां कुशल अर्थात् जीवादि तत्त्वना शुद्ध ज्ञानपूर्वक समिति गुप्तिरूप संयम आदरतो शुद्धात्म स्वरुपने निरंतर भावे छे ते ज्ञानी पुरुष ज्ञाननय अने क्रियानयनी तीव्रमैत्रीनुं पात्र थतो शुद्धात्मभूमि–निरवाण पदने प्राप्त थाय छे. ॥ ६ ॥

वारवार जिनराज तुजपद सेवा हो होजो निरमली ॥ तुज शासन अनुजाइ, वासन भासन हो तत्त्व रमण वली॥७॥

अर्थः–माटे स्याद्वाद वाणीना उपदेष्टा हे परमेश्वर! आ भीषण भवसमुद्रमांथी तारवाने समर्थ एवी आपना चरण युग्मनी सेवानो निरंतर मने लाभ मलजो, वली हे परमेश्वर! आपनां ज्ञाने न्याय

अने दया युक्त पवित्र शासननी रुची, ज्ञान तथा शुद्धात्म तत्त्वमा रमण ए सर्वे सदाकाल माहरा आत्म परिणाममा वास करजो ॥७॥

शुद्धातम निज धर्म, रुचि अनुभवथी हो साधन सत्यता ॥
देवचंद्र जिनचंद्र, भक्ति पसाये हो होशे व्यक्तता ॥ ८ ॥

अर्थः—शुद्धात्म धर्म (सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्रादि) नी रुची तथा अनुभव जे वडे थाय ते सर्वे साधनो सत्य छे, तथा हितकारी छे शुद्धात्म धर्मना अनुभवना हेतुरुपे आदरेला सर्वे बाह्य योगरूप साधनो सत्य तथा हितकारी छे श्री देवचंद्र मुनि कहे छे के हे जिनचंद्र ! आपनी भक्ति पसाये अर्थात् आपनी आज्ञानु सेवन करवाथी (आणाकारी भत्तो, आणा छेइओ सो अभत्तोत्ती) मारी सर्वे शुद्धात्म संपदा प्रगट थशे ॥ ८ ॥ (संपूर्ण)

॥ अथ श्री षोडशम नमिप्रभ जिन स्तवनम् ॥

अरज अरज सुणोने रूडा राजीया हो जी ॥ ए देशी ॥

नमिप्रभ नमिप्रभ प्रभुजी विनवुं हो जी, पामी पामी वर प्रस्ताव ॥ जाणोछो जाणोछो विण विनवे हो जी, तोपण दास स्वभाव ॥ नमिप्रभ० ॥ १ ॥

अर्थः—हे नमिप्रभ ! आपने आ जगत्त्रयमा प्रभु अर्थात् मालीक जाणी अति दुःप्राप्य आ मनुष्य भवरूप उत्तम अवसर पामी आप प्रति विनंति करुं छु. हे देवाधिदेव ! आप अनंत ज्ञानयुक्त होवाथी अमारा विनव्या वगर पण अमारी त्रणे कालनी सर्वे हकीकत प्रत्यक्ष पणे जाणो छो तोपण सेवकनो स्वभाव छे के स्वामी आगल पोतानुं दुःख दूर थवा माटे विनंति करे ॥ १ ॥

हुं करता हुं करता परभावनो हो जी, भोक्ता पुद्गल रूप॥ ग्राहक ग्राहक व्यापक एहनो हो जी, राच्यो जड भवभूप ॥ नमिप्रभ० ॥ २ ॥

अर्थः–हे परमेश्वर ! अनादि विभाव योगे हुं माहरा शुद्धात्म स्वरुपथी विमुख रही, स्वाभाविक कर्त्तृता, स्वाभाविक भोक्तृता, स्वाभाविक ग्राहकता, स्वाभाविक व्यापकता विगेरेथी चूकी माहराथी विपरीत, विलक्षण, रुप रस गंध स्पर्शादि गुणमय अचेतन जे पुद्गल द्रव्य तेने ग्रहण करवानो कामी, तेने नवा नवा अनेक रुपे बनाववानो अभिमानी, तेने भोगववानो ईच्छक विगेरे थइ तेमांज निरतर व्यापी रह्यो, एम माहरा स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभावथी, विमुखपणे वर्त्ती जड संगते जडवत् बनी भवसमुद्रमां भ्रमण करवाने निरंतर उद्युक्त थइ रह्यो ॥ २ ॥

आतम आतम धर्म विसारियो हो जी, सेव्यो मिथ्यामाग ॥ आस्रव आस्रव बंधपणुं कर्युं हो जी, संवर निर्जरा त्याग ॥ नमिप्रभ० ॥ ३ ॥

अर्थः–राग द्वेषादि विभाव रहित स्वपर स्वरूपने यथार्थ प्रत्यक्षपणे जाणवा रूप शुद्ध केवलज्ञान, निराकारोपयोग मयी केवलदर्शन, स्वरूपरमण–स्वरूपस्थिरता मय सम्यक्चारित्र, ए आदि ज्ञानानुयायी पणे वर्त्तता शुद्धात्म स्वभावो के जे आ संसार समुद्रमांथी मुक्त करी अव्याबाध स्वतंत्र अखूट परमानंद समूहनो निधान छे, ते शुद्धात्मधर्मने में न जाण्या, न चिंतव्या, न आदर्या पण ते शुद्धात्मधर्मने मलीन करनार–दूषवनार, मिथ्यात्व, अज्ञान, अने कषाय रूप मिथ्यामार्ग (विपरित आचरण) के जे घोर अनत दुःखनुं निदान छे तेनुं में रुचि सहित सेवन कर्युं. ए मिथ्यामार्गने सेवतां आस्रव तथा बंधनो कर्त्ता थयो मोक्षमार्ग रुप संवर निर्जराने आदरीशक्यो नहि.

आस्रव–" निरास्रव संवित्ति विलक्षण शुभाशुभ परिणामेन शुभाशुभ कर्मागमन मास्रव "–शुद्धात्म अनुभूतिथी विपरित जे शुभाशुभ परिणाम वडे ज्ञानावरणीयादि कर्मनु आगमन (आववु) ते आस्रव छे मिथ्यात्व अविरति कषायादि जे आत्माना अशुद्ध परिणाम ते भावास्रव छे अने ते भावास्रवना निमित्त वडे ज्ञानावरणीयादि कर्म दलनुं आववु ते द्रव्यास्रव छे

बंध–"बंधातीत शुद्धात्मोपलम्भ भावना च्युत जीवस्य कर्म प्रदेशै सहसंश्लेषो बन्ध –मिथ्यादर्शनाऽविरति प्रमाद कषाय योगा बन्ध हेतव " मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय अने योग वडे पूर्व कर्म साथे नवा कर्मनो संबंध (दृढ मलवुं) ते बंध छे ते बंध चार प्रकारे छे–प्रकृति, स्थिति, अनुभाग अने प्रदेशबध तमां योग वडे प्रकृतिबंध तथा प्रदेशबध थाय छे अने कषाय वडे स्थिति बंध तथा अनुभागबध थाय छे

विशेष विवेचन–" पडिणीअत्तण निन्हव, उवघाय पउस अंतराएणं ॥ अच्चासायणयाए, आवरण दुगं जिउ जयइ "–सम्यक्ज्ञान सम्यक्दर्शन तथा सम्यक्ज्ञानी तथा सम्यक्दर्शनीना प्रतिकुल आचरणथी, तथा सम्यक्ज्ञान तथा सम्यक्दर्शनने ओलववाथी, गुरूने छुपाववाथी तथा तेउनो उपघात करवाथी, तथा सम्यक्ज्ञान सम्यक्दर्शन तथा तेना स्वामी तथा तेना कारणो उपर द्वेष, मात्सर्य, ईर्षा करवाथी, तथा ज्ञान दर्शनमा अंतराय करवाथी, ज्ञान दर्शन तथा तेना स्वामीनी आशातना करवाथी ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण कर्मनो बध थाय छे

उन्मार्गनी देशनाथी तथा सन्मार्गनो घात करवाथी ए विगेरे कारणोथी मिथ्यात्वमोहनीयनो बंध थाय छे क्रोधादिक कषाय तथा हास्यादि नोकषायना सेवनथी चारित्रमोहनो बंध थाय छे

महा आरंज परिग्रहमां तल्लीनता, रौद्रध्यान तथा उग्रकषाय वमे नरकायुनो वंध थाय ठे. गूढ हृदय, मूर्खता, धूर्त्तता तथा मिथ्यात्वादि शल्य वडे तिर्यंच आयुनो वंध थाय ठे. अल्प कषायता, दानरुचि तथा मध्यम गुण वमे मनुष्य आयुनो वंध थाय ठे सम्यक् दृष्यादि अविरति गुण वमे देवायुनो वंध थाय ठे.

–बालतप, अकामनिर्जरा, सरलता, अनागारीपणुं, विगेरे गुण वडे शुजनामकर्मनो वंध थाय ठे एथी विपरीत आचरण वमे अशुज नामकर्मनो वंध थाय ठे.

गुणदृष्टी, मद रहितता, तत्त्व जणवा जणाववा उपर रुचि, जिन जक्तिमां मग्नता विगेरे गुण वमे उचगोत्रनो वंध थाय ठे. एथी विपरीत आचरण वडे नीचगोत्रनो वंध थाय ठे.

गुर्वादिकनी जक्ति, क्षमा, करूणा, व्रत, संयम, योग, कषाय विजय, दान, शीलादिक धर्ममां दृढता विगेरे गुणोथी शातावेदनीयनो वध थाय ठे. तेथी विपरीत आचरण वमे अशातावेदनीयनो वंध थाय ठे–

शंका–समकीत, तप, सयम, क्षमा विगेरेथी आस्त्रव वंध केम संजवे?

उत्तर–"रत्नत्रय मिह हेतु–र्निर्वाणस्यैव जवति नान्यस्य ॥ आस्रवति यत्तु पुण्यं, शुजोपयोगोऽय मपराधः ॥" रत्नत्रय मात्र निर्वाण हेतु ठे पण शुजाशुज कर्मना हेतु नथी, देवादिक गतिना हेतु नथी. पण ज्यांसुधी संपूर्ण वीतरागता प्राप्त थइ नथी, रत्नत्रयनी अपूर्णता ठे त्यांसुधी सरागता वर्त्ते ठे; ते सरागता–शुजोपयोगवडे आस्त्रव थाय ठे. जेम घृतमां बालवानो स्वजाव नथी परंतु घी साथे रहेली अग्निथी बलतां घीथी बल्यो एम बोलाय ठे. तेम रत्नत्रयथी तो कर्मबंध थतो नथी तथापि ते रत्नत्रय साथे वर्त्तता शुजोपयोग (सरागता) वमे वध थाय ठे. माटे चोथा गुणस्थानथी मांमी संपूर्ण

वीतराग गुणस्थान सुधी जे जे अंशे रत्नत्रय होय छे ते ते अंशे बंध नथी जेटला अंशे राग वर्त्ते छे तेटला अंशे बध थाय छे

एम शुद्धोपयोगथी चूकी अशुद्धोपयोगमां वर्त्तता मोक्षमार्गरूप संवर तथा निर्जरा तत्त्वनो अनादर कर्यो.

संवर–" कर्मास्रव निरोध समर्थ स्व संवित्ति परिणत जीवस्य शुभाशुभकर्मागमन संवरण संवरः " शुभाशुभ कर्मास्रवनो निरोध ते संवर छे ते संवरना हेतु समिति, गुप्ति, परिसहजय, जतिधर्म, भावना तथा चारित्र छे

निर्जरा–" शुद्धोपयोग भावना सामर्थ्येन नीरसीभूत कर्म पुद्गलानामेक देश गलनं निर्जरा ॥ " शुद्धोपयोग भावनाना सामर्थ्य वडे नीरसीभूत कर्म पुद्गलोनु एकोदेश गलवु ते निर्जरा तेनो हेतु तप छे " तपसा निर्जरा च " तथा सर्वे परद्रव्यनी इच्छानो निरोध ते तप छे "इच्छा निरोध स्तपः" ते इच्छा निरोधरूप भावयुक्त तप बे प्रकारे छे. "अणसण मूणोअरिया, वित्ती संखेवणं रसचाओ । काय किलेसो संलीणाया य बज्झो तवो होई ॥ पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ । झाण उस्सग्गोविय, अब्भितरओ तवो होई ॥ " एम छ प्रकारे बाह्य तथा छ प्रकारे अभ्यतर तप छे ॥ ३ ॥

जड चल जड चल कर्म जे देहने हो जी, जाण्युं आतम तत्त्व ॥ बहिरातमता बहिरातमता में ग्रही हो जी, चतुरंगे एकत्त्व ॥ नमिप्रभ० ॥ ४ ॥

अर्थ.–जड अर्थात् अचेतन तथा चल अर्थात् क्षणभंगूर पाणीना परपोटावत् अस्थिर जे शरीर तेने में आत्म तत्त्व जाण्युं एटले

शरीरमाज अहंबुद्धि करी शरीर तेज हुं छुं एम जाण्युं–शरीर वचन अने मननी क्रियाने में आत्मक्रिया जाणी योगक्रियानुं ममत्व कर्युं, एम में बहिरात्मभावनुं ग्रहण कर्युं, आत्माथी अन्य जे अ-चेतन, जड, क्षणभंगूर शरीर तेमां अहंबुद्धि तथा धन, स्वजन, परिजनादिकमां ममत्व बुद्धि करी आत्म स्वरूपथी अजाण रह्यो, माहरा स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभावने न जाण्या, पुद्गलना द्रव्य क्षेत्र, काल, भावमां अहं ममत्व मान्युं, जे भाव माहरा अस्तिधर्ममां नथी तेने में माहरा मान्या, आत्मप्रदेशथी बाहिरला परक्षेत्री भावने माहरा मान्या, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्यथी रहित रह्यो। ॥ ४ ॥

केवल केवलज्ञान महोदधि हो जी, केवलदंसण बुद्ध।
वीरज वीरज अनंत स्वभावनो हो जी, चारित्त क्षायक शुद्ध ॥ नमि० ॥ ५ ॥

अर्थ–पण हे नमिप्रभ जगत्गुरु ! आप तो बहिरात्मभावनो अत्यंत अभाव करी सर्वे द्रव्यने तेना त्रिकालवर्त्ती पर्यायो सहित एक समये- प्रत्यक्षपणे जाणवा समर्थ एवु जे केवलज्ञान तेना महोदधि अर्थात् महान् समुद्रनी पेठे अखूट निधान थया छो, तेमज सामान्य सत्ता अवलोकन रुप केवलदर्शनना तथा कोइ पण काले जरा पण हीण क्षीण न थाय एवुं सहज आत्मीय अनंत वीर्य प्रगट कर्युं–प्राप्त कर्युं तथा क्रोधादिक सर्वे कषायोनो अत्यंत अभाव करी क्षायक चारित्र प्राप्त कर्युं–प्रगट कर्युं, अनंत आत्मीय परमानंदना भोक्ता थया ॥-५ ॥

विश्रामी विश्रामी निज भावना हो जी, स्याद्वादी अप्रमाद।
परमातम परमातम प्रभु देखतां हो जी, भागी भ्रांति अनादि ॥ नमि० ॥ ६ ॥

अर्थः–तथा हे दयानिधान ! आप सर्वे परद्रव्योना गुण पर्यायोमाथी रमण तथा आराम विश्रामनो त्याग करी पोताना केवलज्ञानादि शुद्ध स्वभावमा रमण करनारा स्थिरतापणे विराजमान थया छो वली हे भगवत ! आप स्याद्वाद धर्मयुक्त सदा छो अर्थात् स्यात्अस्ति स्वभाववत छो, स्यात्नास्ति स्वभाववंत छो, स्यात्एक स्वभाववत छो, स्यात्अनेक स्वभाववंत छो, स्यात्वक्तव्य स्वभाववंत छो, स्याद् अवक्तव्य स्वभाववंत छो, स्याद्नित्य स्वभाववंत छो, स्यात्अनित्य स्वभाववत छो, स्यात्भव्य स्वभाववंत छो, स्यात्अभव्य स्वभाववत छो, विगेरे अनत स्याद्वाद धर्मयुक्त आप सदाकाल विद्यमान छो, तथा हे भगवंत ! आप निरंतर अप्रमादभावमा वर्त्तो छो, क्षणमात्र पण पोताना शुद्धात्मधर्मथी च्युत थता नथी, कारण के प्रमादना हेतु जे निद्रा विकथा विषय कषाय मद स्नेह विगेरे छे तेनो आपे सर्वथा नाश करेलो छे तेथी हे परमेश्वर ! आप परमात्म पदने संपूर्णपणे प्राप्त थया छो. एवा आप परमात्मानु साची रीते दर्शन थता माहरी अनादिकालनी अनात्मामां आत्मपणानी भ्रांतिनो नाश थयो ॥ ६ ॥

जिन सम जिन सम सत्ता ओलखी हो जी, तसु प्रागभावनी ईह ॥ अंतर अतर आतमता लही हो जी, पर परिणति निरीह ॥ नमि० ॥ ७ ॥

अर्थः–एम हे परमात्म प्रभु ! केवलज्ञान केवलदर्शनादि अनंत शुद्धधर्मयुक्त आप स्वजातिनुं यथार्थ रीते दर्शन थता में माहरी सत्ताने आप समान जाणी, सद्दही, आपना केवलज्ञानादि शुद्धात्म धर्म मने रुच्या, ते प्रगट करवानी ईछा थई, परपरिणतिथी विरागभाव उपज्यो, अंतर आत्मतानी प्राप्ति थई ॥ ७ ॥

प्रतिछंदे प्रतिछंदे जिनराजने हो जी, करतां साधक भाव

देवचंद्र देवचंद्र पद अनुभवे हो जी, शुद्धातम प्राग्भाव ॥ नमिप्रभ० ॥ ८ ॥

अर्थः—स्तुति कर्त्ता श्रीदेवचंद्र मुनि कहे छे—हे भगवंत! आप जेम मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय योगनो त्याग करी परमात्म अवस्थाने प्राप्त थया तेमज हुं जो आप प्रमाणे साधक भाव आदरुं तो हुं पण निःसंदेह देवमां चंद्रमा समान परमात्म पदनो आस्वाद लेनार भोगवनार थाउं, शुद्धात्म धर्मनी संपूर्ण प्रगटता थाय. ॥ ८ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ सप्तदशम श्री वीरसेन जिन स्तवनम् ॥

॥ छावलदे मात मल्हार ॥ ए देशी ॥

वीरसेन जगदीश, ताहरी परम जगीश, आजहो दीसे रे वीरजता त्रिभुवनथी घणीजी ॥ १ ॥

अर्थः—अतुल्य आत्मीय वीरपणुं (पराक्रम) स्फुरायमान करी, अत्यंत दुर्जेय दुष्ट परिणामी मोह शत्रुनो लीला मात्रमां नाश करी पोताना नामने सार्थपणे आ जगत् त्रयमां प्रसिद्ध कर्युं छे, एहवा हे त्रिलोकपूज्य देवाधिदेव श्री वीरसेन प्रभु! तमे ज्ञानावरणादि दुष्ट कर्मनो अत्यंत अभाव करी ज्ञानादि अनंत सर्वोत्कृष्ट संपदा पोताने स्वाधीन करी छे, तेना भोग—आस्वादमां निरंतर मग्नपणे परमानंद भोगवो छो. एवी आपनी ज्ञानादि लक्ष्मी आपथी अभेदपणे होवाथी कोइ पण तेने नाश करी शके तेम नथी तथा मोहराजाने वश पडेला जगत्वासी जीवोमां एहवी ज्ञानादि अनंत लक्ष्मीनुं स्वामित्व नथी

तेथी आपनी जगीश अर्थात् संपदा परम (सर्वोत्कृष्ट) पदने वास्तविक रीते योग्य छे.

वली जगतवासी जीवोनु वीर्य क्षायोपशमिक भावे होवाथी अल्प छे-अपूर्ण छे अने वीर्यनी अल्पता तथा चपलपणाने लीधे कर्मबंध करी पराधिन थाय छे, पण हे भगवंत! आपे वीर्यांतरायनो समूल क्षय करी, अखूट, अनंत, अचल वीर्य संपूर्ण पणे पोताने स्वाधीन-प्रगट करी लीधु छे, तेथी आ सर्वे जगतवासी जीवोमा उत्कृष्ट वीर्यवंत आपज छो, एहवा आपना दृढ स्थिर अने सतेज वीर्य सामे मोह-राजा दृष्टि करवाने पण समर्थ थई शकतो नथी तो नजीक आववानी शी वात? माटे आपनीज वीरजता सर्वोपरी पद धरावे छे ॥१

अणाहारी अशरीर, अक्षय अजय अति धीर ॥ आज हो अविनाशी अलेशी ध्रुव प्रभुता वणीजी ॥ २ ॥

अर्थ-शरीर ते अनंत पुद्गलोना समूह रूप अचेतन पदार्थ छे, अने जीव द्रव्य पोते एक तथा सचेतन पदार्थ छे. तेथी जीव द्रव्यथी शरीर तदन विलक्षण, वस्तुत भिन्न पदार्थ छे तथापि अनादि अविद्या वडे, भेद विज्ञानना अभावे संसारी आत्मा अनेक प्रकारना कर्म बाधी, ते कर्मना उदय वडे प्राप्त थएला शरीरनेज आत्मपणे जाणे छे सद्दहे छे, तेथी मनुष्यना शरीरमा रहेला जीवने मनुष्य तथा देवना शरीरमा रहेला जीवने देव विगेरे मनाय छे, अने तेथी संसारी आत्मा सशरीरी बने छे पण हे भगवंत! आप तो ते अविद्यानो नाश करी संपूर्ण भेद विज्ञान प्राप्त करी, स्वपर द्रव्यने तदन भिन्न भिन्न जाणी शरीरमाथी अहंममत्व उठावी शरीरथी सर्वथा अतीत थया छो माटे हे प्रभु! आप अशरीरी छो

शरीर अनंत पुद्गलोना संयोगथी बनेलुं होवाथी सचल तथा अस्थिर छे, तेथी तेमांथी केटलाक पुद्गलो स्थलांतरे जतां बीजा

पुद्गलो आहारवानी (लेवानी) जरूर पडे छे. माटे शरीरधारीने आहारनी जरूर पडे, परंतु हे जगवत ! आप तो अशरीरी छो माटे आपने आहारनी जरूर नथी आपनुं अंग एकता धारी छे तेथी तेमांथी कोइ पण काले रचमात्र पण घसावानो, क्षीण थवानो संजव नथी माटे निःसदेह आप अणाहारी छो.

अनेक पुद्गलोना मलवाथी जे वस्तु बनेली होय, तेज घसाई, जागी शके, पण एक पुद्गल परमाणु आदि जे जे पदार्थमां एकत्व छे, असंयोगी छे, ते ते पदार्थ घसाई, जागी अथवा विणशी शके नहि. माटे हे जगवंत ! आप असंयोगी तथा एकत्व सहित होवाथी आपना आत्म अंगमां कोइ पण काले रंचमात्र पण क्षय थवानो संजव नथी, आप अक्षय पदमां नित्य विराजमान छो.

सर्वे द्रव्यो पोतानी सत्ताजूमिमां पोताना गुण पर्यायोना स्वामी पणे वर्त्तवाने सदा काल सत्ताधारी छे कोइ पण अन्य द्रव्य, तेमां प्रवेश करवानेज समर्थ नथी तो आपने जीतवानी शुं वार्त ? माटे हे जगवंत ! आप सदा अपराजित (अजय) छो.

वली आपनुं वीर्य क्षायिकजावे होवाथी आप अत्यंत धीर वीर छो, जेम सूर्यना प्रताप सामे अधकार अत्यंत अजाव पामे छे, तेम आप श्रीना क्षायिकवीर्य जन्य धीर वीरताना प्रतापथी आपना कर्म शत्रुओ अत्यंत अजावने प्राप्त थई गया छे.

जो के सर्वे द्रव्यो वस्तुत. अविनश्वर छे. तथापि अनेक पुद्गलोथी बनेला शरीरमां ज्यांसुधी अहं ममत्व बुद्धि होय छे . त्यां सुधी ते शरीरनो नाश थतां आत्मा पोतानो नाश मानी नाशपणाना दुःखने अनुजवे छे पण आपे पोताना आत्म अंगमां आत्मपणुं जाण्युं स्वीकार्युं, पोताना एकत्व पिंडना अनुजवी थया तेथी विनाशपणानो प्रसंग नाश थयो माटे आप निरंतर अविनश्वर पदमां परमानंद जोगवो छो.

लेश्याना हेतु कषाय, योग छे पण आप तो कषाय तेमज योगथी सर्वथा मुक्त थया छो माटे अलेशी छो

वली हे भगवंत ! आपनी प्रभुता पण हवे ध्रुव (निश्चल) थई छे, संसारी जीवो अज्ञान वशे पोतानी सत्ताभूमिनी मर्यादा उलघी परक्षेत्रे परगुण पर्यायोनी प्रभुता चाहे छे, एहवा अन्यायी पुरूषोनी कृत्रिम प्रभुता नाश पामे परंतु आप न्याय शिरोमणी होवाथी परगुण पर्याय विषे पोतानी प्रभुता स्थापन करता नथी. निरतर पोताना गुण पर्यायमा सतुष्ट छो एम आपनी प्रभुता एक क्षेत्री, अप्रथग्भूत, तथा समवाय सबधे होवाथी तेनो कोइ पण कारणे वियोग थवा संभव नथी, माटे आपनी प्रभुता खरेखर ध्रुव निश्चल छे आपनी प्रभुताने कोइ पण स्खलना करवा समर्थ थई शके तेम नथी. जे अन्यायी पुरुष पोतानुं घर छोडी पारके घेर चोरी करवा जाय तेनुं धन बीजा चोरो वडे पहेला लूटाइ जाय, पण जे न्यायी पुरुष बीजाना पदार्थनी आकांक्षा नहि राखता पोतानी विभूतिमा सतोष पणे निरतर सचेत रहे तेनी विभूति बीजो कोण लूटी शके ?॥ २ ॥

अतींद्रिय गत कोह, विगत माय मय लोह ॥ आज हो सोहेरे मोहे जग जनता भणीजी ॥ ३ ॥

अर्थ —हे भगवंत ! आप अतींद्रिय छो. पाच इंद्रियोना स्पर्श, रस, गध, रूप, अने शब्द ए पांच विषयो छे, माटे इंद्रियोनो विषय फक्त पुद्गल छे, परतु आप अरूपी द्रव्य होवाथी इंद्रिय विषयथी तदन भिन्न छो तेथी आप इंद्रियो वडे अगोचर (अतींद्रिय) छो

शरीरादि परद्रव्यमा जेने अहं ममत्व बुद्धि होय तेने क्रोध उपजवानो संभव छे कारण के ते शरीरादि अनित्य अने परक्षेत्री पदार्थो होवाथी कोइ तेने बगाडे विणशावे अथवा वियोग करे ते उपर तेने क्रोध उपजे छे. पण हे भगवत ! आप तो ते शरीरादि परद्रव्यनुं

सर्वथा ममत्व तजी पोताना नित्य, अच्छेद्य, समवाय संबंधी ज्ञानादि गुणोमां पोतानुं स्वामित्व अनुजवो छो. तेने कोइ पण अन्य द्रव्य रंचमात्र पण हरकत करवा समर्थ नथी. तो आपना परिणाममां क्रोधने अवकाश क्यांथी ? क्षमा सरोवरमां निरंतर क्रीडा करता आप जगवंतनी पासे क्रोधाग्नि केम आवी शके ?

वली सर्प जेवी अविश्वास्य, जगत्‌मां फसाववाने अत्यत बलवत्तर जाल समान जे माया परिणति, तेने आपे तीक्ष्ण धारवाली आर्यव रूपी तरवार वडे छिन्न जिन्न करी नांखी छे.

वली जाति, लाज्ञ, कुल, विद्या, अधिकार विगेरे आठ प्रकारना मदरूप अतिशय दृढ पर्वतने आपश्रीए मार्दवरूप वज्रदंडवडे चूरेचूर करी नांख्यो छे.

तथा परद्रव्यादिने ग्रहण संग्रह करवारूप मूर्छाजले जरेला अतिशय विस्तीर्ण लोज्ञ समुद्रने आप निस्पृहरुप वहाणमां आरूढ थइ सहज लीला मात्रमां तरी संतोष जूमिमां विराजमान थया छो

एम आत्मगुणनो घात करनार तथा जवतरुना मूलरुप क्रोधादिक कषायोने आप जगवते समूल क्षय करी क्षमा, मार्दव, आर्यव, निस्पृहता, विगेरे अनुपम गुणालंकार वडे आप सर्वोत्तम शोजायमान छो, एवी आपनी निःकषाय परम शांत मुद्रा अवलोकतां जगत्‌वासी जीवो अत्यंत विस्मय थाय छे. ॥ ३ ॥

अमर अखंड अरूप, पूर्णानंद स्वरूप । आज हो चिद्रूपे दीपे थिर समता धणीजी ॥ ४ ॥

अर्थः–इंद्रिय, बल, आयु अने श्वासोश्वास ए चार जीवना व्यवहार प्राण छे अने ते प्राणना वियोगे मरण कहेवाय छे. पण हे जगवंत ! आपे ते व्यवहार प्राणने पौद्‌गलीक पर द्रव्यथी निष्पन्न साक्षात्‌पणे जाणी ते प्राण उपरथी ममत्व उठावी पोताना शुद्ध

चेतना प्राणवडे पोतानुं जीवन स्विकार्युं छे, ते चेतना प्राणनो आपथी कोइ पण काले वियोग थाय तेम नथी, माटे आप सदा अमर छो.

जे संयोगी पदार्थ होय तेमां संधि होय, अने जेमां संधि होय ते भांगी तूटी शके पण हे भगवंत ! आप असंयोगी शुद्ध एक तत्व छो, आपना अंगमां संधि नथी, तेथी आप सदा अखंड छो

परम स्वभावने अनुयायीपणे द्रव्यना सर्वे गुणो होय छे जीव द्रव्यनो परम गुण चेतनत्व छे माटे जीवना सर्वे गुणो चेतनानुगत होय, ए शिवायना गुणो जीव द्रव्यमां होइ शके नहि, माटे रुप, रस, गंधादि गुणो चेतनानुगत नथी माटे रुपादिगुणोनो जीव द्रव्यमां अत्यंताभाव छे तेथी हे भगवंत ! आप सदा अरूपी छो

जगत्वासी जीवो इष्ट पुद्गलोनी प्राप्ति, प्रभुता, तथा भोगवडे आनंद माने छे, पण ते परद्रव्यना भावे होवाथी जगत्जीवोनो आनंद पराधीन, अवास्तविक, तथा क्षण भंगुर छे. पण हे भगवंत ! आप तो मात्र पोताना गुण पर्यायोनीज प्रभुता, तथा भोगवडे आनंद मानो छो तेथी आपनो आनंद निरुपचरित पूर्ण तथा नित्य छे, एम हे प्रभु ! आप पूर्णानंद स्वरुप छो

तथा हे भगवंत ! आपना आत्मीय ज्ञान प्रकाश किरणो के जे सर्वे द्रव्यना त्रैकालिक परिणामथी अधिक छे, ते अनंत ज्ञान प्रकाश वडे आप निरंतर सर्वोपरी देदिप्यमान छो आपना ज्ञान प्रकाशनु आ जगत्त्रयमां कोइ उपमान नथी

वली हे भगवंत ! आप सर्वज्ञ तथा वीतराग होवाथी पूर्ण समतावंत छो इष्टानिष्ट विकल्पथी सर्वथा मुक्त छो ते समता क्षायिक भाव जन्य होवाथी हवे कोइपण काले आपना परिणाममां विसमतानो संभव नथी तेथी आप पूर्ण निश्चल समताना स्वामी छो. ॥४॥

वेद रहित अकषाय, शुद्ध सिद्ध असहाय । आज हो - ध्यायके नायकने ध्येय पदे ग्रह्योजी ॥ ५ ॥

अर्थ–नपुंसक वेद, स्त्रीवेद, अने पुरुषवेद ए त्रणे वेदनो नवमे गुणस्थाने तथा सर्वे कषायनो दशमा गुणस्थानना अंतसुधीमां समूल क्षय करी दीधो छे, तेथी हे भगवंत! आप वेद तथा कषाय रहित छो, तथा "खय परिणामे सिद्धा" ए सूत्र प्रमाणे आपमां क्षायिक अने पारिणामिक ए बे भावज वर्त्ते छे, सकल कर्मनो क्षय करी क्षायिकभावे पोतानुं शुद्धात्म स्वरुप सपूर्ण सिद्ध प्रगट कर्युं छे अनंतज्ञान, दर्शन, चारित्रना स्वामी थया छो. अने पारिणामिक भाववडे अनंतकालसुधी आपना ज्ञानादि गुणो असहायपणे निरतर परिणमशे. कोइपण काले कोइपण आपना ज्ञानादि परिणामने स्खलना करी शकशे नहि माटे हे भगवंत! आप सादिअनंतकाल सुधी शुद्ध सिद्ध तथा असहाय छो.

उपर वर्णवेला गुणो सहित शुद्ध सिद्ध तथा असहाय आप भगवंतने अवलोकी आप समान सिद्धपदनो कामी हु सेवक ध्याता, आप त्रिलोकपूज्य भगवतने ध्येयपदे स्थापुं छुं, आपना पदनुं ध्यान करु छु ॥ ५ ॥

दान लाभ निज भोग, शुध्द स्वगुण उपभोग। आज हो अभोगी कर्त्ता भोक्ता प्रभु लह्योजी॥ ६ ॥

अर्थः–अंतराय कर्मना क्षयवडे हे भगवंत! आपमां दानादिक लब्धिओ क्षायिक भावे वर्त्ते छे

वीर्यगुणनी सहायवडे सर्वे गुणो परिणमे छे, तेम ज्ञानगुणना उपयोग विना वीर्यगुण स्फुरायमान थइ शके नहि माटे वीर्यने ज्ञानगुणनी सहायता छे. तथा शुद्धज्ञान परिणामने चारित्रनुं सहाय छे. वली चारित्र पराचरण रुप न परिणमे ते चारित्रने ज्ञानगुणनो उपकार छे एम एक गुणने बीजा गुणोनी सहाय छे, ते सहायरुप

दानना कर्त्ता हे भगवंत ! आपज छो. वली एवुं दान आप निरंतर आप्यां करो छो माटे आप अक्षय दाता छो. तथा ते दानना प्रभावथके सर्वे गुणो पोतानी शुद्ध परिणतिए परिणमे छे, ते रुप लाभ लेनार पण आपज छो. एम आपमां दाता पात्र अने देयनी अभेदता छे एम ज्ञानादि परिणाम हमेशां शुद्धपणे वर्त्ते छे, तज्जन्य आनदना वेदनारा छो तेथी ज्ञानादि पर्यायना आप नि प्रयास पणे हमेशां भोक्ता छो

जे एकवारज भोगववा योग्य होय ते भोग, अने जे अनेकवार भोगववा योग्य होय ते उपभोग कहेवाय छे माटे ज्ञानादि शुद्धगुणो सहभावी होवाथी हमेशा आपमा कायमपणे रहेनारा छे, माटे आपमां ते गुणोनो उपभोग छे

वली हे भगवंत ! मन, वचन, काया तथा कोइ पण पुद्गलयोग विना आप परकर्तृत्व तथा परभोक्तृत्व निवारी स्वभावना कर्त्ता भोक्ता बन्या छो, एहवा आप त्रिलोकपूज्य प्रभुनुं मने कोइ महत् पुण्यना पसाये आजे दर्शन मल्युं छे, इंद्रिय गोचर वस्तुनुं दर्शन तो सहजे सर्वे पामी शके पण आप तो अरूपी निष्कर्म छो. आपना दर्शननी प्राप्ति तो विरलानेज थइ शके छे. ॥ ६ ॥

दरिसण ज्ञान चरित्र, सकल प्रदेश पवित्र ॥ आज हो निर्मल निःसंगी अरिहा वंदियेजी ॥ ७ ॥

अर्थ —आपनु दर्शन थतां आपना सर्वे प्रदेश अत्यत निर्मल ज्ञान दर्शन अने चारित्र वडे परिपूर्ण पवित्र जोइ तथा आपनेज जगत् प्रयमा निर्मल, तथा नि परिग्रही अवलोकी कर्मशत्रुनो अंत आणनार आप श्री वीरसेन प्रभुने कर्म रुप निमित्ते त्रिकरण योगे वंदु छुं. ॥ ७ ॥

देवचंद्र जिनचंद्र, पूर्णानंदनो वृंद ॥ आज हो जिनवर सेवाथी चिर आनंदियेजी ॥ ८ ॥

अर्थः—स्तुति कर्त्ता श्रीदेवचंद्र मुनि कहे छे सर्वे जिनोमां चंद्रमा समान वर प्रधान हे वीरसेन प्रभु ! स्वाभाविक, निःप्रयासिक, अनंत आनंदना समूहरुप आप जिनेश्वरनी आज्ञा सेवनरुप सेवाथी हुं पण आप समान अनंत परमानंदने प्राप्त थइश, शिवकमलानो विलासी थइश ॥ ८ ॥

॥ अथ श्री अष्टादशम श्रीमहाभद्र जिन स्तवनम् ॥

तट यमुनानुंरे अति रलीयामणु रे ॥ ए देशी ॥

महाभद्र जिनराज, राज राज विराजे हो आज तुमारडोजी। क्षायिक वीर्य अनंत, धर्म अभंगे हो तुं साहिब वडोजी ॥ हुं वलिहारीरे श्री जिनवर तणीजी ॥ १ ॥

अर्थ.—सर्वे जिनोमा शिरोमणी परमकल्याणना निधान हे श्री महाभद्र प्रभु ! आपनु राज्य सर्वोपरी समाधि तथा अनंत विभूति युक्त निर्विघ्नताए अलौकिक रीते शोभे छे, आपनुं राज्य पराक्रम अक्षय, अजय तथा अपरिसीम छे, आपे सर्वे कर्मशत्रुओनो सपरिवार नाश कर्यो छे, निर्वंश कर्या छे तेथी हवे कोइपण आपना राज्यमां विघ्न करी शके तेम नथी तथा आपनी अनत पर्यायरुप प्रजा, अत्यंत सरल पडित तथा सदाचरणी छे, आपना धर्मरुप कायदानो जरा पण भग करे तेम नथी, आपना सर्वे धर्म कायदा संपूर्ण न्याय तथा दया युक्त होवाथी सदा सर्वत्र अभंग छे, एम आप सर्वोत्तम राजापणे विराजो छो, आपना राज्यनी वलिहारी छे. ॥ १ ॥

कर्त्ता भोक्ता भाव, कारक कारण हो तु स्वामी छतोजी । ज्ञानानंद प्रधान, सर्व वस्तुनो हो धर्म प्रकाशतोजी ॥ हुं० ॥ २ ॥

अर्थ.--वली ते पर्यायरुप प्रजाना उत्पन्न कर्त्ता पण आपज छो तथा तेना उपादान कारणरुप पण आपज छो, तेना अधिकरणादि अन्य कारको पण आपमाज अभेदपणे शोभे छे तथा ते प्रजाने सदाचरण युक्त--न्यायानुसार गमन करनार निरखी तज्जन्य राज्यानंदना भोक्ता पण आपज छो.

ते सर्वे प्रजामा शिरोमणी, आदरणीय तथा अत्यंत वल्लभ एवा ज्ञानानंद स्वदेशी शेठने आपे प्रधान पदे स्थाप्यो छे, ते ज्ञान प्रधान सर्वे प्रजाथी संपूर्ण रीते माहितगार छे, जेना हृदयमा सर्वे प्रजाना भाव निरंतर प्रकाशित रहे छे वली ते ज्ञानानंद प्रधान निरंतर आप समीप हाजर रहे छे, समयमात्र पण दूर वर्त्ती नहि थतां सर्वे प्रजानुं सदैव निरिक्षण तथा संरक्षण करे छे तथा कोइने पण त्रास नहि आपता अत्यंत हर्षपूर्वक न्यायानुसार वर्त्तावे छे, लेशमात्र पण न्यायातिक्रम थवा देतो नथी, एवो अद्भुत चातुर्य तथा विवेकवंत छे ॥ २ ॥

सम्यकदर्शन मित्त, थिर निर्धारे रे अविसंवादताजी। अव्याबाधि समाधि, कोश अनश्वरे रे निज आनंदताजी ॥ हुं० ॥ ३ ॥ देश असंख्य प्रदेश, निज निज रीते रे गुण संपत्ति भर्याजी। चारित्र दुर्ग अभंग, आतम शक्ते हो परजय संचर्याजी ॥ हु० ॥ ४ ॥

अर्थ.--अभिग्रहादिक पांच मिथ्यात्वने समूल नाश करी जेणे पोतानुं अंग निर्मल करेलुं छे तथा जे सम, संवेग, निर्वेद, आस्तिक्यता अने अनुकंपादि लक्षणे युक्त, तथा कुशलता, तीर्थसेवा, गुरुभक्ति, दृढता तथा शासननी अनुमोदना विगेरे भूषणोथी भूषित, शंका, कांक्षादि सर्वे विसंवाद टाली अविसंवादताने स्थिर दृढपणे पोताना हृदयमा धारण करतो महा विनयवंत, आपना शासननो

प्रभावक गुणनिधान एवो "सम्यक्दर्शन" नामे महाधीर वीर सुभट आपनो मित्र छे, जेनी साथे आपनो सम्यक्ज्ञान प्रधान पण एटली तिव्र मैत्री राखे छे के क्षणमात्र पण तेथी छूटो पडी शकतो नथी, जेउनां अंग मात्र जूदां जणाय छे पण जीव तो जाणे एकज छे;

एवा सम्यक्दर्शन अने सम्यक्ज्ञान बे महान् पुरुषो आपनुं राज्य अत्यंत चातुर्य, न्याय अने दया पूर्वक सर्व प्रजाने आनंदमां राखता निष्कंटकपणे चलावे छे तथा अव्याबाध समाधिरुप अनेक प्रकारनां रत्नोवडे आपना खजानाने सदा परिपूर्ण तथा अखूट राखे छे, निरंतर तज्जन्य परमानंदमां आप विलसो छो,

वली आप ज्यानु राज्य करो छो ते देश असंख्यात प्रदेशवालो, जेनी सीमामां कोइपण वधघट करी शके नहीं एवो छे तथा जेना सर्वे प्रदेश अनंता गुणाविभागरूप संपत्तिवडे तथा पर्यायरूप प्रजावडे भरपूर भरेला छे

एवा आपना अनुपम देशना, तथा तेमां वसती सरल प्रजाना रक्षण निमित्ते आपना मित्र तथा प्रधाने मली पोताना अत्यत वल तथा चातुर्यवडे चारित्ररूप अत्यंत मजबूत तथा अभंग किल्लो बांध्यो छे. हे भगवंत ! एवा अलौकिक राज्यना आप स्वामी बन्या छो. एहवुं अलौकिक राज्य के जे मोहराजाए अनादिथी पोताना कबजे करी राख्युं हतुं तेने आपे केवी रीते प्राप्त कर्युं ?—" आतम शक्ति हो परजय संचर्याजी" अन्यनी मदद शिवाय मात्र पोतानी आत्मशक्ति स्फुरायमान करी सम्यक्दर्शनमित्र, तथा सम्यक्ज्ञान प्रधानने साथे राखी मोहशत्रुने पराजय करवा रणभूमिमां प्रवेश कर्यो ॥ ३ ॥ ४ ॥

धर्मक्षमादिक सैन्य, परिणति प्रभुताहो तुज वल आकरोजी । तत्त्व सकल प्रागभाव, सादि अनंतीरे रीते प्रभु धर्योजी ॥ ढुं० ॥ ५ ॥

अर्थ –मोहराजाना लश्करने शीघ्रमेव नाश करनारा “ क्षांति, मार्दव, आर्जव, मुक्ति, तव, संयम, सत्य, शौच, अकिंचन, अने ब्रह्मचर्य, ”एवा अपरिमित बलवाला सैन्य सज्ज कर्या अने ते सर्वे सैन्योनी प्रभुता (सेनाधिपति पणुं) शुद्धोपयोगरुप महा अजीत अने निडर सुभटने आपी एवा अत्यंत तीक्ष्ण बलवडे मोहराजाना लश्करनो नाश कर्यो क्षांति सैन्ये क्रोध लश्करनो, मार्दवे मान लश्करनो; आर्यवे माया लश्करनो, मुक्तिए लोभ–स्पृहा लश्करनो, तपे पराकाक्षानो, संयमे हिंसानो, सत्ये असत्यतानो, शौचे मलिनतानो, अकिंचने पर संग्रह बुद्धिनो अने ब्रह्मचर्ये पररमणनो, एम मोहराजाना सर्वे लश्करतो तथा परिवारनो नाश करी मोहराजाने प्राण रहित कर्यो अने सादिअनंत भांगे “ तत्त्व सकल प्राग्भाव ” पोतानो संपूर्ण राज्याधिकार प्रगट कर्यो ॥ ५ ॥

द्रव्य भाव अरि लेश, सकल निवारीरे साहिब अवतर्योजी । सहज स्वभाव विलास, भोगी उपयोगीरे, ज्ञानगुणे भर्योजी ॥ हुं० ॥ ६ ॥

अर्थ –द्रव्य तथा भाव ए बंने प्रकारना शत्रुनो समूल नाश करी आप शिवक्षेत्रना राजा बन्या छो तथा पोताना नैरुपाधिक सहज स्वतंत्र भोगना विलासी थया छो तथा आप ज्ञानानंदे परिपूर्ण सदा उपयोगवंत अर्थात् पोताना राज्यनी संभालमां निरंतर वर्त्तो छो ॥ ६ ॥

आचारिज उवझाय, साधक मुनिवर हो देश विरत धरुजी । आतम सिद्धि अनंत, कारण रूपे रे योग क्षेमकरूजी ॥ हु० ॥ ७ ॥

अर्थः–ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार अने वीर्याचार, ए पंचाचारमां वर्त्तनार तथा शिष्यजनने तेमां वर्त्तावनार (जोडनार) एहवा छत्रीश गुणवान् श्रीआचार्य, तथा सूत्रपाठना दातार श्री उपाध्याय, तथा पोताना शुद्धात्मतत्वने साधनार श्री मुनिराज, तथा पंचम गुणस्थानवर्त्ती देशव्रत धारीउ, ए सर्वे आप महाराजनी आज्ञामां वर्त्तनार, पोताना मनवचन काययोगने संयममां वर्त्तावनार होवाथी अनंत आत्म सिद्धिरुप आप समान राज्यभोग पामवाना कारण छे अर्थात् तेउ अल्पकालमां आप समान शिवपुरिनु राज्य प्राप्त करशे तथा ते आचार्यादिकोने शिवपुरिनु राज्य प्राप्त करवामां आप भगवंत कारणरुपे अर्थात् मददगार छो ॥ ७ ॥

सम्यग्दृष्टि जीव, आणारागी हो सहु जिनराजनाजी।
आतम साधन काज, सेवे पदकज हो श्री महाराजनाजी ॥ हुं० ॥ ८ ॥

अर्थः–वली चतुर्थ गुणस्थानवर्त्ती उपशम, क्षयोपशम वा क्षायिक सम्यक्दृष्टि सर्वे जीवो हे भगवत ! भवसमुद्रमां सेतु समान आपनी आज्ञाना रागी छे, आपनी आज्ञा पालवाने उत्सुक छे, तेउ पोतानुं शुद्धात्म स्वरुप प्रगट करवा माटे आप भगवतना द्रव्यभाव चरणकमलने सन्माने छे ॥ ८ ॥

देवचंद्र जिनचंद्र, भगतें राचो हो भवि आतम रुचिजी।
अव्यय अक्षय शुद्ध, संपत्ति प्रगटे हो सत्तागत शुचिजी ॥ हुं० ॥ ९ ॥

अर्थ.–स्तुतिकर्त्ता श्रीदेवचंद्र मुनि मित्र भावनाना आवेशमां पोताना मुखकमलमांथी परम कल्याणकारी उपदेश आपे छे के पोतानी शुद्धात्म सिद्धिना इच्छु हे भव्यात्माउ ! शिवक्षेत्रना महाराजा श्री जिनद्रभगवाननी आणा सेववामां लीन थाउ जेथी तमारी सत्तामां

रहेली पवित्र, अविनश्वर, अप्रगट, अक्षय, शुद्धात्म संपदा सहज प्रगट थशे ॥ ए ॥ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ एकोनविंशतिम श्री देवजसाजिन स्तवनम् ॥

॥ महाविदेह क्षेत्र सोहामणुं ॥ ए देशी ॥

देवजसा दरिसण करो, विघटे मोह विभाव लाल रे ॥
प्रगटे शुद्ध स्वभावता, आनंद लहरी दाव लाल रे ॥
देवजसा० ॥ १ ॥

अर्थ—सर्वे कर्म कलंकथी रहित अत्यंत पवित्र तथा अनंत ज्ञान दर्शन आदि अंतातीत अभ्यंतर लक्ष्मियुक्त त्रिलोकी चार निकायना देव तथा इंद्रादिना समूह जेनो अनुपम यशवाद बोले छे एवा श्री देवजसा प्रभुनुं हे भव्यात्माओ ! दर्शन करो ते पूज्य भगवंतना स्वरुपनुं सम्यक्प्रकारे अवलोकन करो. जेथी अनादिथी वलगेला अज्ञान मिथ्यात्व मोह विगेरे दु:खदायक विभाव समूल नाश पामे तथा जेमाथी निरंतर परमानंदनी कल्लोलो उछ्यां करे एवो संवर पूरे भरेलो पवित्र रत्ननिधान शुद्धात्म स्वभाव प्रगट थाय एवा आपना प्रत्यक्ष दर्शननी हे प्रभु ! मने अत्यंत अभिलाषा छे परंतु ॥ १ ॥

स्वामी वसो पुष्करवेरे, जंबू भरते दास लाल रे ॥ क्षेत्र
विभेद घणो पड्यो, किम पोहोंचे उल्लास लाल रे ॥
देव० ॥ २ ॥

अर्थ.—हे भगवंत ! आप तो पुष्कलावर्त विजयमा विचरो छो अने आपना दर्शननो अभिलाषी सेवक हुं जंबुद्विपना भरतक्षेत्रमा वसु हुं एम आपना तथा माहरा स्थानकने घणु अंतर छे तेथी आपना प्रत्यक्ष दर्शननी माहरी मनोकामना शीरीते पूर्ण थाय ?

प्रकारांतरे–हे जगवंत ! ज्यां कर्म कलकनो रच मात्र पण प्रवेश नथी एवा पवित्र ज्ञानादि लक्ष्मीना निवासरूप विदेह अर्थात् देह रहित अरूपी सिद्धक्षेत्रे आप विराजमान छो अने हुं सेवक कर्मकलंक वडे मलिन, अज्ञान अने मोह अंधकार वडे जरपूर ससारक्षेत्रमां परिभ्रमण करूं बुं; एम आपना तथा माहरा क्षेत्रमा अत्यंत जेद (अंतर) पड्यो छे. तो आपना प्रत्यक्ष दर्शननी माहरी मनोकामना शीरीते पूर्ण थाय ? ॥ २ ॥

होवत जो तनु पांखमी, आवत नाथ हजूर लालरे ॥
जो होती चित्त आंखमी, देखत नित्य प्रभु नूर लालरे ॥
॥ देव० ॥ ३ ॥

अर्थः–पण हे जगवंत! जो माहरा शरीरे पांखो होत तो हुं ते पांखो वडे उमी पुष्कलावर्त विजयमां आप प्रजुना समीप आवी आपनु दर्शन, वंदन करत अथवा जो मने चित्त आंखडी अर्थात् ज्ञान नेत्र अवधिदर्शन होत तो आहिआं रहीने पण चोत्रीश अतिशय अने अष्ट महा प्रातिहार्यादिक विजूति सहित आपना तेजस्वी रूपने हमेशा निरख्या करत.

प्रकारांतरे–हे जगवंत ! जो माहरा आत्म अंगे सम्यक्चारित्र रूप प्रबल पांखो होत तो ते पांखो वडे चिदाकाशमां उमतो–विहार करतो आप ज्यां वसो छो एवा विदेह–देह रहित सिद्ध क्षेत्रमां आप समीप आवी हाजर थात अथवा जो कदाच चित्त आंखडी कहेता केवलदर्शन होत तो आ क्षेत्रमां रहीने पण अनत ज्ञान दर्शन आदि अत्यत अभ्यंतर विजूति युक्त आपना लोकालोक प्रकाशक अनंत प्रकाश युक्त महान् तेजस्वी स्वरूपने निरतर निरख्यां करत पण ते बंने शक्तिओथी हु रहित छुं तो आपनुं दर्शन केम पामुं ? ॥ ३ ॥

शासन भक्त जे सुरवरा, विनवुं शीष नमाय लालरे ॥
कृपा करो मुज ऊपरे, तो जिन वंदन थाय लालरे ॥
॥ देवजसा० ॥ ४ ॥

अर्थ –उपर प्रमाणे माहरामा देवजसा प्रभुनु दर्शन पामवानी शक्ति नहि होवाथी जिनशासनना भक्त हे महान् देवो ! हु आपनी सहाय चाहु छु, मस्तक नमावी विनंति करू छुं के जो आप माहरा उपर कृपा करी जो आपना सामर्थ्य वडे देवजसा प्रभु पासे मने लेई जाओ तो ते प्रभुना दर्शन वंदननो मने लाभ मळे

प्रकारांतरे–उपर प्रमाणे सम्यक्चारित्ररुप पाखो अथवा केवल दर्शनरुप आखो मने नहीं होवाथी देवजसा प्रभुनुं दर्शन वंदन प्राप्त करवामा जिन शासन अर्थात् जिनेश्वरनी आज्ञानु पालन करनारा तथा बीजाने तेमा जोडनारा हे सूरवरा अर्थात् महान् आचार्यो हुं आपने मस्तक नमावी अंतरग बहु सन्मान (विनय) युक्त आपने विनती करुं छु के जो आप माहरा उपर कृपा करो, मने सम्यक् चारित्रमां जोडो तो हुं ते चारित्ररुप पाख वडे श्री देवजसा प्रभुनी समीप जई शकु, ते प्रभुना प्रत्यक्ष दर्शननो मने लाभ मळे ॥ ४ ॥

पूर्वं पूर्व विराधना, शी कीधी ईणे जीव लाल रे ॥ अविरति मोह टले नहीं, दीठे आगम दीव लाल रे ॥ देव जसा० ॥ ५ ॥

अर्थ –हे प्रभु ! आ माहरा जीवे पूर्वे आत्मधर्मनी केवी तीव्र विराधना करी छे के आत्म अनात्मनु स्वरुप यथार्थ प्रकाश करनार जिनागमरुप दीपकनी प्राप्ति थया छता पण पचेंद्रियना विषय जे पुद्गल परिणाम ते उपर रागरुप अविरति तथा स्वपर जीवना द्रव्यभाव प्राण हणवारुप हिंसा, तथा क्रोधादिक कषाय विगेरे आत्म भावने अत्यत अप्रशस्त तथा दु खदायक परिणाम हजुसुधी टलता नथी ॥ ५ ॥

आतम शुद्ध स्वभावने, बोधन शोधन काज लाल रे ॥
रत्नत्रयी प्राप्तितणो, हेतु कहो महाराज लाल रे ॥ देव
जसा० ॥ ६ ॥

अर्थः—कर्म कलंक (सर्व विभावथी) रहित शुद्धात्म तत्त्वनुं स्वरुप यथार्थ पणे जे वडे जणाय तथा अनादिथी वलगेला मिथ्यात्व अज्ञान कषायादि विभावनो सर्वथा अभाव थई जे वडे माहरो आत्मा कर्म कलंकथी रहित परम पवित्र थाय ते सम्यक्ज्ञान सम्यक्दर्शन सम्यक्चारित्ररुप रत्नत्रयनी प्राप्ति शीरीते थाय- ते करुणा करी कहो ॥ ६ ॥

तुज सरिखो साहिब मिल्यो, भांजे भव भ्रम टेव लालरे ॥
पुष्टालंबन प्रभू लही, कोण करे पर सेव लालरे ॥
देवजसा० ॥ ७ ॥

अर्थः—समस्त दूषणोथी रहित परम पवित्र अनंत गुणनो निधान, लोकालोक प्रकाशक, रत्नत्रयनी प्राप्ति करावी अनादिथी लागेली भव भ्रमणनी टेवथी मुक्त करनार, भव समुद्रथी तारवामां पुष्टालंबनरुप आप भगवंतनुं दर्शन पाम्या पछी अन्य कुदेवादिकनुं कोण सेवन करे ? कल्पवृक्षने त्यागी धंतूराने कोण सेवे ? ॥ ७ ॥

दीनदयाल कृपालुओ, नाथ भविक आधार लालरे ॥
देवचंद्र जिन सेवना, परमामृत सुखकार लालरे ॥
देवजसा० ॥ ८ ॥

अर्थः—संसारमां भ्रमण करता अनेक प्रकारना दुःख सहता ज्ञानादिक लक्ष्मी रहित दीन कंगाल जीवो उपर अत्यत करुणा करी मोक्ष मार्गे दोरनार होवाथी हे प्रभु ! आपज दीन दयाल छो तथा

कृपालुर्ड कहेतां कृपाना आलय (निधान) छो, दीन अनाथ जीवोना नाथ छो, ससार समुद्रमां डूबता जव्य जीवोने उद्धारवा माटे आप पुष्ट अवलंबन छो, सर्वे देवोमा चद्रमा समान हे देवजसा प्रजु ! आपनी सेवना सर्वोत्कृष्ट अमृत समान परमानद दातार तथा शिव सुखनी करनार छे ॥ ७ ॥ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ विंशति श्री अजितवीर्यजिन स्तवनम् ॥

अजितवीर्य जिन विचरतारे, मन मोहनारे लाल ॥ पुष्कर अर्द्ध विदेहरे, जवि बोहनारे लाल ॥ जंगम सुरतरु सारिखोरे, मन मोहनारे लाल ॥ सेवे धन्य धन्य तेहरे, जवि बोहनारे लाल ॥ १ ॥

अर्थ —अतिशय दुर्जय मोहराजानो जेणे लीला मात्रमां समूल क्षय करी नारयो छे, तथा जेनु वीर्य हणवाने कोइ पण समर्थ नथी एहवा अतिशय निश्चल अनत वीर्यवत, पुष्कलावर्त विदेहमा विचरता हे श्री अजितवीर्य प्रजु ! जेम कमलने सुगधनु आवास जाणी ज्रमर तेमा मोही रहे छे, तेम शुद्धात्म अनुजव वमे जरपूर आपनी अत्यत शात मुद्रा विलोकी प्रशस्त राग वडे जव्य जीवोनु चित्त आपमा मोहित रहे छे, एवी रीते आ त्रिलोकमां आप मनमोहन छो तथा अज्ञानरुप अंधकार वडे आवृत थएला जव्य जीवोना हृदय कमलने विकश्वर करनार छो तथा कल्पवृक्ष तो स्थावर होवाथी हमेशा एकज ठेकाणे रही ईछित फल आपी शके छे तो पण ते पौद्गलीक तथा विनश्वर छे पण आप तो अनेक स्थले विहार करी कोई पण काले नाश अथवा विरस न थाय एहवु स्वाधिन तथा सर्वे कामना जेथी पूर्ण थाय एहवुं रत्नत्रयरुप फल जव्यजीवोने निरतर प्रदान करो छो माटे हे जगवत ! खरेखर आपज आ जगतत्रयमा अद्वितीय कल्पवृक्ष

छे. तेथी हे जगवंत ! जे प्राणीओ आपना चरणकमलनी सेवामां लीन छे तेओने धन्य छे ! वली धन्य छे ! तेओने के जे आ अपार जवसमुद्रने गोपदनी पेठे सहज ओलघी जनारा छे॥ १ ॥

जिन गुण अमृत पानथीरे, मन० । अमृत क्रिया सुपसायरे, जवि० ॥ अमृत क्रिया अनुष्टानथीरे, मन० । आतम अमृत थायरे ॥ जवि० ॥ २ ॥

अर्थः-जिनेश्वरना ज्ञानादि शुद्ध गुणोनु सेवन बहुमानरुप अमृतनुं पान करवाथी अमृतक्रिया (अमृतानुष्टान) नी प्राप्ती थाय, अने अमृतानुष्टान वमे सकल मोहनो क्षय थई आत्मा अजर अमर अविनश्वर शुद्ध सिद्धपदने प्राप्त थाय, अने अन्य जीवोने अमृत समान जव रोगथी मुक्त करवानो हेतु थाय अनुष्टान पांच प्रकारनां छे-विषानुष्टान, गरलानुष्टान, अनानुष्टान, तद्धेतु अनुष्टान, अने अमृतानुष्टान.

विषानुष्टान-आहारोपधि पूजर्द्धि, प्रभृत्याशंसया कृतं, शीघ्रं सच्चित्तहन्तृत्वा द्विषानुष्टान मुच्यते ॥ अध्यात्मसार पा ४५६।

अर्थः-मिष्टान्न जोजननी लालचे, वस्त्रादिक उपकरणनी लालचे पूजानी लालचे, रिद्धिनी लालचे जे तप जपादि क्रिया करे ते क्रिया चित्त शुद्धिनी हणनारी छे तेथी ते विषानुष्टान कहेवाय छे आ जवमां पौद्गलीक जोगोनी प्राप्ति थवानी लालचे ईछाए जे तपादि अनुष्टान आदरवु ते विषानुष्टान छे.

गरलानुष्टान-दिव्यजोगाजिलाषेण, कालांतर परिक्षयात् । स्वादिष्ट फल संपूर्त्ते र्गरानुष्टान मुच्यते॥ यथा कुद्रव्य संयोग, जनितं गर संज्ञितं। विषं कालांतरे हन्ति तथेदमपि तत्त्वतः॥ अध्यात्म सार पा० ४५७

अर्थः—परभवे देव इंद्रादिकना दिव्य भोग मले एवी इच्छा, लाभ- चवडे जे तपादि अनुष्टान आदरवु ते गरलानुष्टान छे जेम वगमीचूर्ण प्रमुख द्रव्यना संयोगे प्रगट थतुं विष ते गरल नामा विष कहिए, ते घणा दिवस कष्ट पमाडी मारे छे तेम गरलानुष्टान पण अहित कारी कुगति आदि आपे छे

अन्योन्यानुष्टान—प्रणिधानाद्यभावेन कर्म्मानध्यवसायिन ॥ संमूर्छिम प्रवृत्त्याभ मननुष्टानमुच्यते ॥ ओघ संज्ञात्र सामान्यं, ज्ञानरूपानिबधन । लोक संज्ञा च निर्दोष, सूत्र मार्गानपेक्षणी॥ अध्यात्मसार पा ४५७

अर्थ —सूत्र कथित निर्दोष मार्गनी अपेक्षा विना तथा शुद्ध प्रणि- धानादिकने अभावे उपयोग शून्ये समूर्छिमनी पेठे बीजाना देखादेखी जे क्रिया करवी ते अन्योन्यानुष्टान जाणवु—सूत्रनी शैली रहित पणे गतानुगतिक पणे ओघसज्ञाए तथा लोकसज्ञाए जे करवुं ते अन्यो- न्यानुष्टान छे ते उपयोग शून्य अर्थात् ज्ञान रहित होवाथी ते वडे सकाम निर्जरा थइ शके नहि आ विषादि त्रणे अनुष्टानमा अशुद्ध क्रियानो आदर उपजे छे माटे आ त्रणे अनुष्टान त्यागवा लायक छे यद्युक्त सूत्रकृतांगे—"जे अबुध्धा महाभागा, वीरा असमत्त दसिणो । असुध्द तेसि परक्कंत, सफल होइ सव्वसो ॥"

अर्थ —व्याकरणादिक लोकिक अनेक शास्त्रने जाणनारा पण जैन सिद्धांतना शुद्ध तत्वज्ञानथी अजाण अर्थात् सम्यक्त्व परिज्ञानथी रहित होवाथी अबुध, एहवा पुरुषो जो के शूरवीर होय तथा त्यागादि गुण वडे लोकमा पुज्य गणाता होय तथापि तेउनो दान, तप, नियम आ- दिकने विषे उद्यम पराक्रम ते सर्वे अशुद्ध जाणवो. कारणके तेउनुं तपादिक सर्वे अनुष्टान कर्मबंधना कारण विषे सफल थाय एटले

नवा कर्मबंधननुं कारण थाय पण निर्जरानुं कारण थई शके नहि; कारणके सकाम निर्जरा तो सम्यक्ज्ञानेज थाय–" जेय बुध्धा महाभागा, वीरा सम्मत्त दंसिणो, सुध्धं तेसिं परक्कंतं, अफलं होइ सवसो;"

अर्थः–जे सम्यक्ज्ञान सम्यक्दर्शन सहित छे तेज बुध पुरूष छे, जे पूज्य छे, जे साचा शूरवीर छे, अने तेउंनोज तपादिक अनुष्टानमां उद्यम–पराक्रम शुद्ध जाणवो; अने तेउंनुं अनुष्टान नवां कर्मबंधन अटकावी शके छे तथा सकाम निर्जरानो हेतु छे.

तध्धेतु अनुष्टान–सदनुष्टान रागेण, तध्धेतु मार्गगामिनां ।एतव चरमावर्त्ते नो भोगादेर्विना भवेत् ॥ धर्मयौवनकालोयं, भवबालदशा परा ॥ अभस्यात् सत्क्रिया रागो न्यत्र चासत् क्रियादरः ॥

अर्थः–चरमपुद्गल परावर्त्ते धर्मना यौवनकाले बालदशा टले थके मार्गानुसारी पुरुष शुद्धानुष्टानना राग वडे उपयोग सहित जे कंई क्रिया आदरे ते तद्धेतुअनुष्टान जाणवु

अमृतानुष्टान–सहजो भाव धर्मोहि, शुध्ध चंदन गंधवत् ॥ ए तद्गर्भमनुष्टानममृतं संप्रचक्ष्यते ॥ जैनीमाज्ञां पुरस्कृत्य, प्रवृत्तं चित्त शुध्धितः संवेग गर्भमत्यंत ममृत्तं तद्विदो विडुः॥

अर्थ–सहज भावधर्म ते शुद्ध चंदननी सुगंध समान छे अने ते भावधर्म सहित जे अनुष्टान ते अमृतानुष्टान छे अत्यंत संवेग गुण सहित चित्त शुद्धिए जिनेश्वरनी आज्ञामा वर्त्तवु तेने गणधरादिक अमृतानुष्टान कहे छे तेज मोहनो संपूर्ण क्षय करवा समर्थ छे ॥२॥

प्रीति भक्ति अनुष्टानथीरे ॥ म० ॥ वचन असंगी सेवरे ॥ भवि० ॥ कर्त्ता तन्मयता लहेरे ॥ म० ॥ प्रभु भक्ति नित्यमेवरे ॥ भवि० ॥ ३ ॥

अर्थ –सर्वे पुद्गल भावमाथी प्रीति उगावी मात्र एक जिनेश्वरना स्वाभाविक पवित्र ज्ञानादि गुणोमा अत्यंत प्रीति भाव करवो तेमा चित्तनी तल्लीनता करवी ते प्रीति अनुष्ठान छे

तथा श्री जिनेश्वरने परम करुणाना निधान, भवसागरमाथी भव्य जीवोने मुक्त करनार, धर्मधुरधर, तीर्थना प्रवर्तक जाणी तेउना गुणनु बहुमान करवु, अतिशय आदर विनय पूजा सेवना विगेरे करवा ते भक्तिअनुष्ठान छे

वली लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञानवडे सर्वे तत्त्वना यथार्थ वेत्ता तथा उपदेशक परम वीतराग आप्त श्री जिनेश्वरना वचननी यथार्थ श्रद्धा करवी तदनुसार हर्षयुक्त आचरणमा प्रवर्त्तवुं ते वचनानुष्ठान छे

हे प्रभु ! ए त्रण अनुष्ठान जे भावयुक्त सेवन करे तेने सर्वे विभाविक क्रियाथी निवृत्ति तथा सहज आत्मीक परिणामीकतानी प्राप्तिरूप असंग अनुष्ठान थाय

एम ए चार अनुष्ठाननो कर्त्ता हे भगवत! आप स्वरूपने प्राप्त थाय माटे हे प्रभु ! आपनी भक्तिमा माहरूं चित्त निरंतर लीन रहे एम भावना भावुं छुं ॥ ३ ॥

परमेश्वर अवलंवनेरे ॥ मन० ॥ ध्याता ध्येय अभेदरे ॥ भवि० ॥ ध्येय समाप्ति हुवेरे ॥ मन० ॥ साध्य सिद्धि अविछेदरे ॥ भवि० ॥ ४ ॥

अर्थ –हे परमेश्वर ! आपना अवलवनथी आपना अनुकरणवडे ध्याता पुरुप पोताना शुद्ध सिद्ध समान परमात्मपदथी अभेद थाय अर्थात् पोते परमात्मा थाय एम ध्येय जे परमात्मपद तेनी समाप्ति कहेतां संपूर्ण प्राप्ति थाय, निष्कटकपणे अविनश्वर साध्यनी सिद्धि थाय ॥ ४ ॥

जिन गुण राग परागथीरे ॥ मन० ॥ वासित मुझ परिणामरे ॥ भवि० ॥ तजशे दुष्ट विभावतारे ॥ मन० ॥ सरशे आतम कामरे ॥ भवि० ॥ ५ ॥

अर्थः—जेम मलयागिर चंदनना ससर्गवडे निंबादिक सुगंधमय थई जाय छे, तेम हे जगवंत! आपना दिव्य स्तुति पात्र पवित्र गुणना रागरुप सुगधीवडे जो माहरूं हृदय संश्लेषित थाय तो अनेक प्रकारनां असह्य दुःख आपनार परकर्त्तृत्व, परजोक्तृत्व, परग्राहकत्व, परव्यापकत्व विगेरे विजावनो नाश थाय अने परमात्मपद पामवानो माहरो मनोर्थ पूर्ण थाय. ॥ ५ ॥

जिन जक्तिरत चित्तनेरे ॥ मन० ॥ वेधकरस गुण प्रेमरे ॥ जवि० ॥ सेवक जिनपद पामशेरे ॥ मन० ॥ रसवेधित अय जेमरे ॥ जवि० ॥ ६ ॥

अर्थः—कठोर अने कुरुप एवुं अय कहेता लोढु ते रस वेधित थवाथी जेम सुदर अने कोमल एहवा सुवर्णपणाने प्राप्त थई जाय छे तेम जिनेश्वरनी जक्तिमां चित्त लीन थाय ते चित्तने ते जिनेश्वरना गुण रागरुप वेधकरसनो योग थाय तो ते चित्त पूर्ण निर्मलपणाने प्राप्त थाय. एम सेवक आप समान अरिहंत पदने प्राप्त करे ॥ ६ ॥

नाथ जक्तिरस जावथीरे ॥ मन० ॥ तृण जाणुं पर देवरे ॥ जवि० ॥ चिंतामणि सुरतरु थकीरे ॥ मन० ॥ अधिकी अरिहंत सेवरे ॥ जवि० ॥ ७ ॥

अर्थः—आ घोर जवाटवीमां ज्रमण करता अशरण प्राणीउने हे जगवंत! मात्र एक आपज शरण छो, शिवपुरीए दोरवावाला छो माटे आपज नाथ छो तेथी हे प्रजु! आपनीज जक्तिरूप रसमां माहरु चित्त लीन थाय छे विषय कषायथुक्त कुदेवो तरफ तृणनी पेठे त्याग जाव उपजे छे चिंतामणी तथा कल्पवृक्षथी पण प्रजुनी सेवाने अत्यंत आदरणीय मानु छु आपनी सेवा आगल ते चिंतामणी तथा कल्पवृक्षादि अतिशय तुच्छ पदार्थ जासन थाय छे ॥ ७ ॥

परमातम गुण स्मृति थकीरे ॥ मन० ॥ फरश्यो आतम रामरे ॥ भवि० ॥ नियमा कंचनता लहेरे ॥ मन० ॥ लोह ज्युं पारस पामरे ॥ भवि० ॥ ८ ॥

अर्थ—वली हे प्रभु! संपूर्ण सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन, सम्यक्चारित्र, अनंत निश्चल वीर्य विगेरे आप परमात्माना गुणोना चिंतनमां जो माहरो आत्म परिणाम स्पृष्ट थाय तो जेम पारसमणिना स्पर्श थकी लोढा जेवी कुधातु कांचन थई जाय छे, तेम विषय कषायमां परिणमतो माहरो आत्मा ते पण कांचन समान शुद्ध परमात्म पदने प्राप्त थाय ॥ ८ ॥

निर्मल तत्त्व रुची थईरे ॥ मन० ॥ करजो जिनपति भक्तिरे ॥ भवि० ॥ देवचंद्र पद पामशोरे ॥ मन० ॥ परम महोदय युक्तिरे ॥ भवि० ॥ ९ ॥

अर्थ—भावदयाना आवेशे मित्रभावना युक्त स्तवनकर्त्ता श्री देवचंद्र मुनि भव्यजीवो प्रति सदुपदेश आपे छे के आ भव परभव संबंधी विषयभोग तथा मान पूजा विगेरे पौद्गलीक भावनी आशंसा तजी, मात्र एक शुद्धात्म तत्त्वना रुचिवान थई, ओघसंज्ञा तथा लोक संज्ञा परिहरी, विधि विवेक पूर्वक सर्वे जिनमां शिरोमणि श्री अरिहंत भगवंतनी भक्तिमां आणा सेववामां लीन थजो तो सर्वे देवोमां चंद्रमा समान अरिहंत भगवंत सदृश परमात्म पदने पामशो एज उत्कृष्ट स्वाधिन अविनश्वर महोदय प्राप्त करवानी युक्ति छे. ॥ ९ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ कळश ॥ राग धन्याश्री ॥

वंदो वंदो रे जिनवर विचरंता वंदो, कीर्तन स्तवन नमन अनुसरतां ॥ पूरव पाप निकंदो रे जिनवर विचरंता वंदो ॥१॥

अर्थः—विहरमान जिनेश्वरने हे भव्यो ! भाव सहित वंदो, तेउना सद्गुणोनुं किर्तन करो, तेउनुं स्तवन करो, मार्दव परिणामी थई तरण तारण जिनेश्वरने नमो, तेउनी आज्ञाने अनुसरो, जेथी पूर्वे बांधेलां अनेक प्रकारनां कर्मों निर्मूल थाय ॥ १ ॥

जंबु द्वीपे चार जिनेश्वर, धातकी आठ आणंदो ॥ पुष्कर अर्द्ध आठ महामुनि, सेवे चोसठ इंदो रे ॥जिनवर०॥२॥

अर्थः—जंबुद्वीपमां चार, धातकीमां आठ अने पुष्करार्धमां आठ एम सर्वे मळी वीश तीर्थंकर विहरमान जेने महारिद्धिना धारक एवा चोसठ इंद्रो पण सेवे छे ॥ २ ॥

केवली गणधर साधु साधवी, श्रावक श्राविका वृंदो ॥ जिन मुख धर्मअमृत अनुभवतां, पामे मन आणंदो रे ॥ जिन० ॥ ३ ॥

अर्थ—श्री तीर्थंकरना मुख कमलमांथी वहेता अमृत समान वचनोने अनुभवतां तेनो आस्वाद लेतां केवली गणधर साधु साधवी श्रावक श्राविका सम्यक्दृष्टी जीवो शुद्ध आनंदमां मग्न रहे छे॥ ३ ॥

सिद्धाचल चोमास रहीने, गाया जिनगुण वृंदा ॥ जिनपति भक्ति मुक्तिनो मारग, अनुपम शिवसुख कंदो रे ॥ जिन० ॥ ४ ॥

अर्थ—सिद्धाचल क्षेत्रमां चोमासुं रहीने जिनेश्वरना पवित्र गुणोनुं जेमां वखाण छे एवा वंदो (स्तवनो) बनाव्या—कारणके जिनेश्वरनी

त्कि तेज मुक्तिनो मार्ग छे तथा तेज अनुपम अव्याबाध स्वाभा-विक शिवसुखनुं मूल छे ॥ ४ ॥

खरतर गच्छ जिनचंद सूरिवर, पुण्य प्रधान मुणिंदो ॥
सुमति सागर साधु रंगसु वाचक, पीधो श्रुत मकरंदो रे ॥
जिन० ॥ ५ ॥

अर्थ.--हवे स्तवन कर्त्ता श्री देवचन्द्र मुनि पोतानी परंपरा वखाणे छे. जेणे जिनप्रणित सूत्रनो शुद्ध आस्वादन लीधो छे एवा खरतर गच्छमा श्रीजिनचन्द्र सूरि भट्टारक नामे प्रधान आचार्य थया, तेउ श्रीना शिष्य प्रधान पुण्यवान मुनिशिरोमणि श्री पुण्यप्रधान नामे महोपाध्याय थया, तेउना शिष्य सुमतिना समुद्र जेवा श्री सुमति-सागर नामे उपाध्याय थया, तेउना शिष्य मुनिपणामा जेने रंग लाग्यो छे एवा साधु रंगवाचक थया ॥ ५ ॥

राजसार पाठक उपकारी, ज्ञानधर्म दिणंदो ॥ दीपचंद सद्गुरु गुणवता, पाठक धीर गयंदो रे ॥ जिन० ॥ ६ ॥

अर्थ --ते पछी आवश्यकोद्धार प्रमुख ग्रथना कर्त्ता सुविहित सा-माचारी धारक श्रीराजसारजी महोपाध्याय थया, ते पछी न्यायादिक ग्रथ अध्यापक सूर्यसमान तपस्वी ज्ञानधर्म उपाध्याय थया, ते पछी माहरा सद्गुरु ज्ञान दर्शन चारित्र गुणना धारक, पचाचारना पालक, उपसर्ग परिसह सामे गजेंद्रनी पेठे निश्चल रहेवावाला महाधीर वीर दीपचंद्र पाठक थया ॥ ६ ॥

देवचंद्र गणि आतम हेते, गाया वीश जिणंदो ॥ रिद्धि वृद्धि सुख संपति प्रगटे, सुजस महोदय वृंदो रे ॥
जिन० ॥ ७ ॥

अर्थः—तेमना शिष्य में देवचन्द्र गणिए आत्म पदार्थने कर्म कलंकथी मुक्त करवाना हेतुए विहरमान श्री वीश तीर्थंकरना गुण गाया जेथी कर्म कलंक वडे आच्छादित थएली आत्मानी ज्ञानदर्शनादि अनेक रिद्धिओ प्रगटे, वृद्धिने पामे तथा तज्जन्य सुख संपत्ति प्रगट थाय, अखूट निर्मल यश विस्तरे, आत्मीय गुण समूहनो महोदय थाय, सर्वत्र कल्याण वर्त्ते, सर्व जीव परमानंदने प्राप्त थाय ॥ ७ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ कलश ॥ हरिगीत छंद ॥

विहरमान जिनंद मंगल कंद ज्ञान दिनंद जे,
विकसावता नय कर समूहे भव्य उर अरविंद जे;
उपशम सुधा सागर उल्लासन पूर्ण अनुपम चंद जे,
भवदंद फंद निकंदि दायक शुद्ध परमानंद जे ॥ १ ॥
मोह मदिरामां मचेला कुमति मत मातंगना,
मद गजवा बल भंजवा बलवान प्रभु पंचानना,
ते तीर्थनायक तत्त्वदायक वीश जिनवर गुणमणी,
"श्री देवचंद्र" पवित्र मतिए स्तव्या गुणमाला भणी ॥ २ ॥
ते स्तवन वीश विषे अतिशे बोध अनुपम वरणव्यो,
त्या चित रमण हित मुज मनोरथ अरथ लखवानो थयो;
मधु मासमां अति मधुर स्वरथी कोकिला जे गाय रे,
ते तो खरेखर आम्र तरुना पुष्पनोज पसाय रे ॥ ३ ॥
तेम गुण निधि "श्री सद्गुरु मनसुख" तणो आश्रय लही,
"संतोष" प्रेमे अर्थ आ मे लख्यो "दोहदमां" रही;

ओगणीश गसठ साल आसो शुक्ल सातम शशि दिने,
जिनराज चक्ति पसायथी पूरण थयो उल्लसित मने ॥ ४ ॥
हे नव्य शुन मति विनति आ मम क्षमायुत उरमा धरी,
गुण क्षीर ग्रहजो हस पेठे नीर अवगुण परिहरी,
जरपूर सुखप्रद ग्रंथ आ शशि सूर सम शाश्वत रहो,
वांचन मनन अनुजव करी जवि शिव रमा अनुपम लहो ॥ ५ ॥

महोपाध्याय श्री देवचन्द्रजी कृत वीश
स्तवन बालावबोध सहित संपूर्ण

गांधी दलसुख नाथजी कृत ॥ पद ॥

मगन थयु मनरे ॥ ए राग ॥

प्रसन थयु मनरे, मुज शिवमग प्रेरक मलिआ। शांतीनो जनम दिन आजे, दिव्यनयण खोलि निज काजे, जोई डुरित दोष दूर जाजे ॥ प्रसन० ॥ १ ॥

॥ साखी ॥

धर्म धुरंधर सुख निधि, निकट मल्या आ वार।
वश प्रमाद नवि चूकिए, न्याय वाणि पोकार ॥

तत्वागम जाव जणावे, वलि हेयादेय जचावे, प्रजु निपुण बुद्धि फेलावे ॥ प्रसन० ॥ २ ॥

॥ साखी ॥

स्वपर दया तुज चित्त विषे, मृषा वचन नाहि लेश ॥
अण आपी तृण नवि लिये, विरक्त जाव हमेश ॥

विषयातुरता सवि त्यागी, परमति परदारा जागी, परिग्रह मूर्छा नहि लागी ॥ प्रसन० ॥ ३ ॥

॥ साखी ॥

संकल्प विकल्प विकारथी, द्रव्य जाव जीव प्राण ॥
विषयादिक कारण वशे, न हणे समतावान ॥

अरिहतादिक महंता, पूर्वाचारज मुनि संता, तस बहुमाने विचरता ॥ प्रसन० ॥ ४ ॥

॥ साखी ॥

वर सुमति गुप्तिधरु, वर प्रधान जिन धर्म ॥
सेवे तस अनुमोदतां, जाणे सुतना मर्म ॥

मनसुख वर ज्ञानी सेवो, वचनामृत अनुजव मेवो, "दलसुख" कहे सो जवि लेवो ॥ प्रसन० ॥ ५ ॥ ॥ संपूर्ण ॥

॥ श्री ऋषभदेव जिन स्तवन ॥

माता मरुदेवाना नंद, पूज्यपणु तुज देखी मुज मन अति लोभाणुंजी ॥
ज्ञाता द्रष्टा रमण थिरता, शुद्ध बुद्ध निरवेदि
तिहाण वीर्य शक्ति उल्लासथी, सतति योग उछेदि ॥ माता० ॥ १ ॥
तारक वारक धारक गुण गण, साचो शिवपुर साथ
निरवद्य जापानी तुज आणा, जीव सकलनी आथ ॥ माता० ॥ २ ॥
परकृत पूजा तु नवि इछे, साधक कारज दाव
शल्य रहित तुज आणा साधे पामे पूज्य स्वभाव ॥ माता० ॥ ३ ॥
उपचरित चउ निखेप सेवे, उपचरित सुख थाय
अनुपचरित निखेपा सेवे, नि प्रयास सुख थाय ॥ माता० ॥ ४ ॥
पूज्यनी पूजा अक्षय सुख दे, वलि कापे संताप
मूढ अपूज्यने जे जन सेवे, चूके आपही आप ॥ माता० ॥ ५ ॥
जिनवर प्रतिमा श्रीजिन सरिखी, कही जिनागम मांह्य
रहस्य लखे तेहिज नर बूजे, नहितर गोता खाय ॥ माता० ॥ ६ ॥
पुद्‌गल परिणतिनो हु कामी, दोष अनतनी खाण
स्वामी एहवो छे सेवकने, हाथ जालीने ताण ॥ माता० ॥ ७ ॥
तुम नहि कर्त्ता मुज सिद्धिना, तुज कारणथी तरेश
दलसुख साध्य साधक परिणति ए, निज पद सिद्धि वरेश ॥ माता०॥८॥

॥ द्वितीय अजित जिन स्तवन ॥

धन्य धन्य वीर वाणी ॥ ए राग ॥

अजित जिनेश उपासना, दुरित नाश न एह,
सम्यक् दर्शन वासना, निकासन हो मिथ्यातनो नेह ॥
तारक श्री धन्य धन्य तुज वाणी, धन्य प्राणी रे जेणे हीयडे आणी के
धन्य धन्य तुज वाणी ॥ ए आकणी ॥ १ ॥
स्वपर हितने कारणे, पूछु प्रश्न उदार,
द्वेष क्रोध मद मानथी, नवि पूछु हो पूछुं आणा सुसार ॥ तारक० ॥२॥

विधि अविधि किम जाणिए, दाखो श्री जगवंत,
साध्य दृष्टि साधन क्रिया, विधि जाणो हो जवि आगम तंत॥तारक०॥३॥
योग असख्य शिव मग तणा, कह्या में सुविशाल,
शुद्धातम अनुजव जले, योग साचो हो नंहि तो सवि आल ॥तारक०॥४॥
दान शील संयम क्रिया, आवश्यकादि एम,
साध्य शून्य साधन सवि, अविधि जाणो हो ते नहि तुज क्षेम ॥ता०५॥
क्रिया अविधे करे करावे, वलि अनुमोदे जेह,
विराधक खट कायनो, आवश्यक हो सूत्रे जाख्युं ठे एह ॥ तारक०॥ ६॥
अविधे क्रियाकंवर चलावे, उत्सूत्र जापी तेह,
गुरु प्रायश्चित तेहने, परजावनो हो ठे तेहने नेह ॥ तारक० ॥ ७ ॥
मोक्ष मार्गे लेइ जवाने, वलावीया थइ तेह,
लूंटे सकल जग देखतां, किहां लोको ते पोकार करेह ॥ तारक० ॥ ८ ॥
सर्वज्ञथी अधिकी गणे, निज मति चलावे अनाण,
निजपरने बूडावता, डुर्गतिमां हो सहे डुख अमान ॥ ९ ॥
विधि सहित अनुष्ठान शुज, सवि दीए शिवपुर गेह ॥
पुरुष प्राक्रम फोरवी, ते सेवो हो अवलवो एह ॥ १० ॥
बलिहारी श्रुतधरतणी, सम्यक् प्रकाशे तत्त्व ॥
तीर्थंकर सम ते आश्रये,दास दलसुख हो पामे शुद्ध सत्त्व ॥ ता० ॥११॥

संपूर्ण

॥ शा. वाडीलाल पानाचंद कृत ॥ पद ॥

मगन थयु मनरे, खुबी कारक खुब खुशाली,
श्री धर्माचारज आव्या, सहु जविजन आणंद पाया,
महाशांति मेह वरसाया ॥ मगन० ॥ १ ॥

॥ साखी ॥

नाव जीवन पुष्टिकरु, त्रिभुवनमा हितकार ॥
आप समो नहि अवर छे, सघ सकल आधार ॥
जिनशासनना सुलतान, सुर करता बहु गुणगान
सेवे मुनिगण शुद्ध आण ॥ मगन० ॥ २ ॥

॥ साखी ॥

विषयाक्रांत नवि जीवने, तुज आज्ञा हितकार ॥
दर्शावो प्रनु सुनयथी, लहे चेतन नवपार ॥
तुज आण सदा मन धरशु, निज ज्ञायक नावे विचरशु ॥
पूर्णानंद पद हमे वरशु ॥ मगन० ॥ ३ ॥

॥ साखी ॥

जन्म जरा मरणादिनी, टाली सकल उपाधि ॥
अव्याबाध सुख अनुनवी, लहिशुं परम समाधि ॥
तुज गुण गणरिद्धि प्रकाशी, चित्त "वाघीलाले" विकाशी ॥
नोगी थईशु शिव वासी ॥ मगन० ॥ ४ ॥

संपूर्ण

श्रीमान् मनसुखलालजी कृत ॥ पद ॥

कब में साधु स्वरूप धरुंगा ॥ए राह॥

द्रव्य सकल सहजे परिणामी, गुण परिणाम समय नवि चूके ॥
सहज स्वतंत्र स्वनावे वरते, कोइ समय निज धर्म न मूके ॥ द्रव्य ॥ १ ॥
पर परिणामने सहाय करे नहीं, पर परिणामने कोइ न रोके ॥
पर परिणाम विषे जम रीझ्यो, रोष विकल्प करे अति फोके ॥द्रव्य०॥२॥
ठीक अठीक कयुं में माने, विविध जोग किरिया परिणामी ॥
कर्त्ता नोक्ता आपकु माने, निज अनुनव विण रह्यो परकामी॥द्रव्य०॥३॥

ठीक अठीक कर्युं तेणे कल्पे, मुज इष्टीत कृत मेंज कराव्युं ॥
जल्प विकल्प करे इम बोहोला, तव तिहां मोह अरी बल फाव्युं॥द्रव्य०॥४
अष्ट करमदल एणि विध बंधे, निज निधि सहज न आप संजारी ॥
आतम परिणामीकता धारो, मनसुख अचल वीरज शिवकारी॥द्रव्य०॥५॥

॥ रुचिरा छंद ॥ मात्रा ३० ॥

चौदराज गत जीव छ कायिक, खेदज्ञ तेहना थइए;
द्रव्य जाव दोय जेद प्राणनी, परमदया जर थिर रहिए ॥ १ ॥
अक्षय निज ज्ञायकता जाणी, समजावे द्रढता धारो;
माहणता पद राखि रखावी, दुविधे यतना संजारो ॥ २ ॥
द्वादशांग श्री जिनशासननो, एह सार अक्षय धारो,
ज्ञान न्याय शुध दया रहित जे, मनुष्य जन्म तस निःसारो ॥ ३ ॥
खेदज्ञ खट्काय तणा जे, ज्ञानी न्यायी ते कहिए;
दुविधे यतना धारी वरते, शुद्ध संयमी ते लहिए ॥ ४ ॥
खट कायानो खेद न जाणे, आप स्वछंदे अनुसरता;
आदि अंत ने मध्य विना ते, जव कंतारे दुःख खमता ॥ ५ ॥
खटकायानो खेद न जाणे, ते नहि ज्ञानी नहि न्यायी;
नहीं संयमी मूढ मती ते, मिथ्याती मानी मायी ॥ ६ ॥
संक्षेपे ए मार्ग मोक्षनो, पुरुष पराक्रम करि सेवो;
मनसुख लब्धि वीर्य निज पामी, शिव संगे चाखो मेवो ॥ ७ ॥

प्राणी एकल जावना जाव ॥ ए राग ॥

सोहम गणधरने नमो जी, ध्यावो आतमराय ।
पर परिणामीकता तजी जी, पामो सिद्धि सदाय रे ॥ प्राणी निज ॥
गुण पज्जाव सेव, लहिए सुख अहमेव रे प्राणी० ॥ ए आंकणी ॥ १ ॥
परिणामीकता वस्तुनी जी, परिणमे पूर्ण सदाय ।
सहज स्वतंत्र स्वजाव छे जी, रुके न केम कदाय रे ॥ प्राणी० ॥ २ ॥

कोइ केना परिणामने जी, रोके न समये एक।
परिणामीकत्ता अनंतरे जी, परिणमे जाणो विवेक रे ॥ प्राणी० ॥ ३ ॥
वर्णादिक परिणमे सदा जी, पुद्गल धर्म अनंत।
अणगमता गमता लखे जी, मोही मिथ्याती जंत रे ॥ प्राणी० ॥ ४ ॥
पुद्गल परिणति नव नवे जी, समय समय पलटाय।
आत्म ज्ञान विण मूढ त्यां जी, व्यापे मन ललचाय रे ॥ प्राणी० ॥ ५ ॥
पुद्गल गुण परिणामने जी, पलटी शके नहि जीव।
शाश्वत जाव ए कल्पना जी, वरते सहज सदीव रे ॥ प्राणी० ॥ ६ ॥
ज्ञानादिक निज धर्म ठे जी, निज परिणामीक शुरू।
पर परिणति ममता करी जी, जूल्यो बाल अबुरू रे ॥ प्राणी० ॥ ७ ॥
पुद्गलमां बहु कल्पना जी, पुद्गलना आलाप।
काय क्रिया पुद्गल विषे जी, करतो हर्ष विलाप रे ॥ प्राणी० ॥ ८ ॥
जबलग पुद्गलमा लखे जी, सुख रिद्धि निज जोग।
तबलग शुद्धातम तणो जी, होय न अनुजव योग रे ॥ प्राणी० ॥ ९ ॥
बांधे आठे कर्मने जी, अणलहतो जिनधर्म।
निजपद रिद्धि अजाण ते जी, किम पामे शिव शर्म रे ॥ प्राणी० ॥ १० ॥
आतमता पुद्गल विषे जी, लखि व्यापे मिथ्यात।
अविरति तेथी ऊपजी जी, प्रमाद कषाय उत्पात रे ॥ प्राणी० ॥ ११ ॥
जोग चपलता त्यां थई जी, शांति निवृत्ती न पाय।
हवे जिन वचन लखि करो जी, जेद ज्ञान सुखदाय रे ॥ प्राणी० ॥ १२ ॥
जर्मे मोहे वाहियो जी, सहज निवृत्ती न थाय।
निज परिणामिकता लखे जी, शुक्लध्यान शिव पाय रे ॥ प्राणी० ॥ १३ ॥
जेदो अहंता जर्मने जी, आश्रव सघला जाय।
हुं माहरुं पुद्गल विषे जी, तजतां सवर थाय रे ॥ प्राणी० ॥ १४ ॥
संवर अवरमा जशे जी, नजि प्रूरण विकल्प।
ज्ञायकता एक आपणी जी, बीजा जूठा जल्प रे ॥ प्राणी० ॥ १५ ॥

जेम जेम पुद्गलमां लखे जी, निज कारण निज काज ।
तिम तिम आतम गुण विना जी, परवश होय अकाज रे ॥ प्राणी० ॥ १६ ॥
स्याद्वाद अमृत समा जी, वचन सुएयानी न खोट ।
पण परमाद वशे रह्यो जी, चित्तमां न लागी चोट रे ॥ प्राणी० ॥ १७ ॥
कारण कारज आत्ममां जी, निश्चे सिद्ध समाधि ।
जाणी बुध आदर करो जी, नाशे कर्म उपाधि रे ॥ प्राणी० ॥ १८ ॥
तेणे विकल्प तजी सवे जी, थिर उपयोग अडोल ।
शुक्लध्यान लहि पामजो जी, मनसुख शिव रंग चोल रे ॥ प्राणी० ॥ १९ ॥

॥ मंगलाचरण ॥ हरिगीत छंद ॥

जग परम सुखकर दुरित दुखहर सहज धरम शुद्धातमा,
विकलप तजी थिर ध्यानमां निज-ध्याइ हो परमातमा ।
पंचास्तिनी जे परिणती ते सहज जावे परिणमे,
तस रोकवा नहीं अन्य समरथ कोइनी पण कोइ समे ॥ १ ॥
निज सहज परिणति धर्म अणलहि करत जूठ विकल्पना,
कर्त्तादि परमां आप माने शुजाशुज करि जल्पना ।
निज साध्य शून्य एकात करणी आदरे त्रय जोगनी,
निज ज्ञान वीर्य अनंत चूक्यो धारि मति पर जोगनी ॥ २ ॥
परजोग ईहा शल्य जबलग आत्म अनुजव तिहा नहीं,
वलि होय मिथ्या शल्य तवलग आत्मथिरता नवि कही ।
नर आपना जे दोष ढांके मानी माया सालथी,
व्रत नियम तेहना सर्व निष्फल मलिन माया जालथी ॥ ३ ॥
ए कारणे जे शल्य तजशे तेहने जव जय नथी,
गुरु अजावे जिन धर्म जाख्यो सूत्रमा बहु थल कथी ।
तत्त्वार्थमा निःशल्य विरती प्रगट वचने जाणिए,
जडमूलथी सवि शल्य छेदी विरति रति मन आणिए ॥ ४ ॥
परमादथी छे दोष सघला जाणि समय न चूकिए,
सवि पुद्गलोनो राग त्यागी आत्म लक्ष न मूकिए ।

समजाव साचे जेह राचे धारि ऊदाशीनता,
सविकल्प छेदी मोह जेदी शुकल ध्याने लीनता ॥ ५ ॥
जिन आण राखी समय साखी जिन सुगुणगण गाइए,
निज आत्म गुणमां तृप्ति राखी स्वगुण अनुजव पाइए ।
धरि धीरने निष्कपतता त्रय जोग थिरता आदरो,
तजि कोजना शुज ध्यान धरतां परालंबन परिहरो ॥ ६ ॥
एम छेदि आठे कर्म मर्म सुपर्म शीतलता वरो,
धरि चटक चितमा साचि पूरण जाव वीरज थिर करो ।
उमग रंगे सुमति संगे करो मंगल जवि जना,
सहजात्म परिणति साधतां निज रिद्धि पावो शिवघना ॥ ७ ॥
आ ग्रंथमा जे जाव दाख्या जूल टाली साधजो,
अज्यास सूत्र सिद्धांतनो करि आत्म गुण आराधजो ।
जग मुकुटमणि श्री सिद्ध प्रजुजी वीलसे शिव संपदा,
तिहा लगि रहो आ ग्रंथ अचलो टालतो जन आपदा ॥ ८ ॥
तीरथपतिना स्तवन अरथो आदि बहु शिव साधना,
डुविधे दया सहु जीवनी वलि रत्न त्रय आराधना ।
शिवकारी हो सवि वचन जिननां जव्यने अति वेगथी,
" मनसूख " शाश्वत सिद्धि पामो सहज विमल संवेगथी ॥ ९ ॥

ग्रंथ समाप्त.